भारत का भौतिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय भूगोल

(Physical, Economical & Regional Geography of India)

लेखक

बसन्तसिंह

प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर-8

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्र भाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित, उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए *"वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १६६६ में* पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है।

इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक तैयार करवाई गई है। इसमें भारत की भूगोल के भौतिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय पक्षों का विवेचन किया गया है। भारत की प्राकृतिक स्थितियों का वर्णन करने के अतिरिक्त लेखक ने उद्योग, कृषि, खनिज आदि की दृष्टि से भारत के विभिन्न प्रदेशों का विवेचन किया है तथा प्रत्येक प्रदेश की विशेषताओं का वर्णन भी किया है।

इसमें अद्यावधि प्रामाणिक आंकड़ों तथा सरकारी रिपोर्टों का उपयोग किया गया है। आशा है यह विश्वविद्यालयीय छात्रों को भारतीय भूगोल के अध्ययन में पर्याप्त सहायता प्रदान करेगी तथा सामान्य अध्येताओं के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी। अकादमी ग्रन्थ लेखन में मार्गदर्शन हेतु डॉ० रामलोचनसिंह भूगोल विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की आभारी है।

खेतसिंह राठौड़
शिक्षा मंत्री, राजस्थान सरकार, एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

गोपीकृष्ण व्यास
निदेशक

दो शब्द

लेखक द्वारा प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन करने का अवसर मुझे मिला है। हिन्दी में 'भारत का भौतिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय भूगोल' लेखक ने राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की प्रेरणा से लिखने का जो प्रयास किया है वह सराहनीय है। उन्होंने प्रायः सभी उपलब्ध संदर्भ-ग्रन्थों का उपयोग किया है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वाले महाविद्यालयीय विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगी। इन विद्यार्थियों को मेरी यह सलाह है कि राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक से पूर्ण लाभ उठाने का प्रयास करें।

इस पुस्तक के लेखन के लिये अपने प्रिय विद्यार्थी डॉ० बसन्तसिंह को तथा इसके प्रकाशन के लिये राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को मैं विशेष धन्यवाद देता हूँ।

रामलोचनसिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-५

प्राक्कथन

भारत मानव सभ्यता एवं संस्कृति की एक अमूल्य निधि है जिसके निर्माण में आर्यों; की सम्पूर्ण मानसिक सम्पत्ति प्रतिबिम्बित है। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों इसकी भौगोलिक प्रतिमा में अनेक वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उपलब्धियों तथा व्यावसायिक उन्नतियों के कारण विभिन्न रंग जुड़ते गये। इन्हीं समस्त स्तरों के भौगोलिक पहलुओं का अध्ययन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से वर्तमान पुस्तक का निर्माण किया गया है। इसमें तेरह अध्याय हैं जिनमें देश के प्रमुख भौगोलिक पक्षों की विशद व्याख्या की गई है। पश्चिमी पण्डितों की विवेचनाओं, नवीनतम सरकारी एवं अन्य प्रकाशनों, रेडियो तथा समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रसारित समाचार सूचनाओं आदि का भी समावेश करते हुए इसे सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है। महत्त्वपूर्ण अध्यायों के प्रारम्भ में देश की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पीठिका भी संक्षेप में उपस्थित की गई है तथा तदन्तर संबद्ध विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ-साथ देश की भौतिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन किसी पूर्वाग्रह के आधार पर नहीं बल्कि समन्वित जिज्ञासा एवं उत्सुकता की भावना के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली अपनाकर किया गया है। इतनी विस्तृत पुस्तक के तैयार करने के लिए उपयुक्त समय के अभाव के कारण और निश्चित परिकल्पना से बंधे रहने के कारण इसमें अन्य साधनसुविधाओं से अधिक सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। लेखन का सम्पूर्ण कार्य मुझे स्वयं को ही करना पड़ा। पुस्तक की भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल एवं बोधगम्य रखी गई है। कहीं-कहीं तकनीकी अवधारणाओं की अभिव्यक्ति के लिये कुछ संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है किन्तु शैली सर्वत्र सुबोध हो यह ध्यान रखा गया है। वर्तमान पुस्तक में सदर्भ-ग्रन्थों की सूची प्रत्येक खण्ड अथवा पृष्ठों के स्थान पर सुविधा की दृष्टि से सभी को मिलाकर पुस्तक के अंत में तथा आंकड़ों एवं मानचित्रों के स्रोतों को विषय-सूची के तुरन्त बाद दिया गया है।

चूँकि लेखक भारत के भूगोल का विनम्र अध्येता मात्र है इसलिए मौलिकता लाने का दावा वह नहीं करता। उसे यह भी विदित है कि अनेक स्थलों पर उतने सुचारु ढंग से विवेचन नहीं हो पाया जितनी उसकी इच्छा थी। फलस्वरूप एकाध विषय ऐसे भी रह गये हैं जिन्हें समय अधिक मिल पाने पर शायद लेखक दूसरी ही तरह लिखता। फिर भी आशा है कि ईमानदारी के साथ किये गये प्रस्तुत प्रयास का पाठक स्वागत करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन का शुभारम्भ प्रो० रामलोचनसिंह की प्रेरणा एवं इस अनुष्ठान से आद्योपान्त संबद्ध रहने वाले श्री शंकरसहाय सक्सेना की सहायता के परिणामस्वरूप हुआ है। अतएव इनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना मैं अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ। श्री रामप्रीतिसिंह, श्री रामस्वरूपसिंह 'अटल' तथा श्री तेजधारीसिंह निरन्तर स्नेह-भाव एवं प्रोत्साहन स्रोत के अक्षुण्ण भण्डार बने रहे इसलिए मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

१	२	३	४
जापान	४	५	४
टर्की	३	४	३
अन्य देशों का सम्मिलित	४०	४४	४५

सिगरेट, बीड़ी, पान आदि के बढ़ते हुए प्रचलन के कारण इसकी कृषि अधिक लाभप्रद होती जा रही है इसलिए तम्बाकू के उत्पादन में हमारे देश में क्रमशः वृद्धि हो रही है। तम्बाकू उत्पादन वृद्धि को निम्न तालिका की मदद से दिखाया गया है।

तम्बाकू कृषि की प्रगति

तालिका ७७

वर्ष	क्षेत्रफल लाख हैक्टर	उत्पादन लाख मी. टन
१९५०-५१	३.५७	२.६१
१९५५-५६	४.१०	३.०७
१९६०-६१	४.००	३.१२
१९६५-६६	४.३०	३.६७
१९६८-६९	४.४०	३.६१
१९७०-७१	४.४०	३.५०
१९७१-७२	४.८५	४.१०

तम्बाकू व्यापार

भारत के अधिकांश तम्बाकू की खपत देश में ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त उत्तम किस्म की सिगरेट बनाने के लिए तम्बाकू का आयात भी करना पड़ता है। बदले मे कुछ स्वदेशी तम्बाकू विदेशी मुद्रा के लालच से संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, अदन, श्रीलंका तथा चीन आदि देशो को निर्यात भी की जाती है। तम्बाकू निर्यात व्यापार से भारत को सन् १९५१ तथा १९७२ मे क्रमशः १४ करोड़ तथा ४२ करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई थी।

फल एवं सब्जियों का उत्पादन

आलू—आलू अन्तर्राष्ट्रीय भोज्य सब्जी एवं भारत में सब्जियों का राजा माना जाता है। यह भी दक्षिणी अमेरिका का पौधा है। आलू भारत में धरातल की विभिन्न ऊँचाइयों तक पैदा किया जाता है। इसके पैदा करने की अधिकतम ऊँचाई २१०० मीटर है। यह बहुत स्थायी तथा रबी और खरीफ दोनो ही मौसमो में पैदा होता है। आलू की किस्म

का निरन्तर आविष्कार होता जा रहा है। इस समय भारत में लगभग ३० किस्मों के आलू पैदा किए जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, पश्चिमी बंगाल देश के उत्पादन का लगभग ८०% भाग पैदा करते हैं। २०% को देश का शेष भाग पैदा करता है।

अरबी, तोरी, भिन्डी, लौकी, बैंगन, गाजर, टमाटर, पपीता, मूली, शलजम, कोहड़ा, आदि अन्य सब्जियाँ हैं जो भारत में सर्वत्र जलवायु, मिट्टी, वर्षा, प्रबन्ध तथा कृषकों की पारिवारिक जरूरतों के अनुसार पैदा की जाती हैं।

भारत मे कृषि के साथ बगीचों का लगाना अथवा सड़कों पर फलदार वृक्षों का रोपण। बहुत पवित्र एवं धार्मिक कार्य समझा जाता रहा है। यह प्रथा बहुत प्राचीन है। 'खेती . बोडी' की प्राचीन कहावत इसी बात का परिचायक है। प्राचीन कृषक खेती के साथ-साथ बाग भी लगाते थे।

फल उत्पादक क्षेत्र

काश्मीर घाटी, कुमायूँ की पहाड़ियाँ, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, कुल्लूकांगड़ा की घाटी मे उत्तम कोटि के फल, सेब, नासपती आदि पैदा किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त देश के अन्य सभी भागों मे भी किसी न किसी फल की प्रधानता अवश्य है। उदाहरणस्वरूप आम, फालसा, नासपती, अनार, बेर, अंगूर, अमरूद, लीची, संतरा तथा केला आदि मिट्टी, धरातल तथा जलवायु के अनुसार देश के विभिन्न भागों मे पैदा की जाती हैं और कृषकों के लिए खेती का एक अंग है।

कृषकों की अपनी अशिक्षा, फलों के उपयोग के ज्ञान से अनभिज्ञता, वृक्षों का देर से बढ़ना तथा शीघ्र खराब होना, फलों का अधिक व्यापारिक महत्त्व का न होना, सिंचाई, बीज, बिमारी की रोकथाम की कमी के कारण फलों का उत्पादन हमारे देश में कम होता है।

इसको बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें जमीन की लगान पर छूट, बाग के अंतर्गत भूमि को 'सीलिंग' के बाहर रखने की नीति, नर्सरी से बीजों की पूर्ति, डाक्टरों, हार्टीकल्चरों की स्थान-स्थान पर नियुक्ति कर इस कार्य को प्रोत्साहित कर रही है।

मसालों का उत्पादन

गर्म मसाले

मसालों के व्यापार के लिए हमारा देश बहुत प्राचीन समय से प्रसिद्ध रहा है। इन मसालों का व्यापार, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, चीन तथा थाई देशों से बहुत प्राचीन काल से होता चला आ रहा है।

लाल मिर्च—इसके उत्पादनार्थ उष्ण तथा अर्ध-उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की आवश्यकता होती है। ६० से. मी. से १५० से. मी. तक की वर्षा में यह उगाया जाता है। कंकड़, पत्थर, घास तथा अन्य कूड़ा-करकट से रहित दुमट मिट्टी मे सफलतापूर्वक पनपता है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, गुजरात तथा बिहार में इसका

व्यापारिक उत्पादन किया जाता है। ७०० हजार हैक्टर भूमि पर इसकी खेती करके लगभग ४०० हजार टन लाल मिर्च प्रतिवर्ष पैदा की जाती है।

काली मिर्च—कहवा तथा नारंगी के साथ मिश्रित एवं अलग से भी काली मिर्च पैदा की जाती है। इसकी लता घरों तथा झोपड़ियों पर फैला दी जाती है। इसके लिए लाल दुमट और रेतीली दुमट मिट्टियों की जरूरत होती है। १०० से १५० से. मी. तक की वर्षा तथा १०° से ३८° से. ग्रे. तापमान इसके लिए विशेष लाभदायक होती है। केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक तीन राज्य मिलकर देश के उत्पादन का लगभग ६८% पैदा करते हैं। इसका निर्यात ग्रेट ब्रिटेन, इटली, मिश्र, अदन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस आदि को किया जाता है। इसकी खेती ११६ हजार हैक्टर पर की जाती है तथा वार्षिक उत्पादन भी २६ हजार टन के आसपास होता है।

इलायची—यह जंगल के रूप में भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्रों में पैदा होती है। इन क्षेत्रों की ऊँचाई १८०० मीटर तक है। गर्म, नम मौसम १० से ३०° से. ग्रे. तक का तापमान और १५० से. मी. अथवा इससे अधिक वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र प्रधान उत्पादक राज्य हैं जहाँ इलायची की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। राजस्थान के उदयपुर जिले में भी यह पैदा की जाती है। हमारे देश से इलायची का निर्यात सऊदी अरब, ब्रिटेन, सयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन आदि राष्ट्रों को किया जाता है।

इसके अलावा मसालों में हल्दी, जीरा, धनियाँ, सोंठ, प्याज, लहसुन, अदरक आदि भी देश के प्रत्येक भाग में स्थानीय जरूरतों के अनुसार पैदा किए जाते हैं।

तिलहन का उत्पादन

यह फसल मुद्रादायिनी तथा रबी और खरीफ दोनों ही फसलों में मिश्रित एवं अकेले भी पैदा की जाती है। तिलहनों में सरसों, तिल, अलसी, नारियल, बिनौला तथा अरण्डी विशेष उल्लेखनीय हैं। देश की आर्थिक दशा पर इनका महत्वपूर्ण हाथ है आगे दी गई तालिका में एक साथ सबकी अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार की खेती में १२,३८६६ हजार हैक्टर भूमि लगी हुई है जिसका वार्षिक (१९७०-७१) उत्पादन १०७८११ हजार टन है।

कृषि प्रदेश

कृषि प्रदेशों का निर्धारण वर्षा की मात्रा, मिट्टी, फसलोत्पादन तथा इसी प्रकार के अन्यान्य भौगोलिक सूचनाओं की सहायता से किया जाता है। कृषि प्रदेशों से न केवल इनके आपसी संबंधों तथा कृषि पद्धति की जानकारी होती है बल्कि भविष्य की कृषि विकास के लिए योजनाओं के निर्माण में भी सहायता मिलती है। अनेक स्थलों एवं प्रसंगों में कहा जा चुका है कि यहाँ की वर्षा भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करती है। इसकी मात्रा के अनुसार यहाँ के कृषि कार्यों में भारी अंतर पाये जाते हैं। चित्र नं० ४३ में भारतीय कृषि प्रदेशों को दिखाया गया है। प्रत्येक प्रदेश में विभिन्न फसलों का प्राधान्य है। चावल-जूट तथा चाय (सर्वाधिक वर्षा प्रदेश) दक्षिण-पूर्वी राज्यों, गेहूँ तथा गन्ना

तिलहन उत्पादन की परिस्थितियाँ

नाम तिलहन	धरातल, मिट्टी, जलवायु की किस्म	उत्पादक क्षेत्र एवं विवरण
मूंगफली	उष्ण कटिबन्धीय, १५° से २५° से. ग्रे. तापमान, ८० से १५० से. मी. वर्षा, बलुई दुमट मिट्टी, वर्षा की कमी में सिंचाई की आवश्यकता है।	विश्व की मूंगफली के क्षेत्र का १/३ भाग भारत—गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु राज्य प्रमुख उत्पादक। राज्य की मिट्टी तथा जलवायु आदि के कारण अनेक किस्में। ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, जर्मनी व इटली को निर्यात। उत्पादक क्षेत्र ७२९३ हैक्टर तथा उत्पादन १९ करोड़ टन है।
अलसी	८० से २०० से. मी. वर्षा, सभी प्रकार की मिट्टी तथा ठंडी जलवायु की आवश्यकता।	उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र मिलाकर ९०% उत्पादन। निर्यात नगण्य। १८३२ हजार हैक्टर भूमि पर कृषि। सन् १९७०–७१ में ४५५ हजार टन अलसी पैदा किया गया था।
तिल	२०° से २५° से. ग्रे. तापमान, ५० से १०० से. मी. वर्षा, हर प्रकार की मिट्टी अनुकूल।	अगस्त मे बुआई, दिसम्बर में कटाई, उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक प्रमुख उत्पादक राज्य। ब्रिटेन, मारीसस, फान्स, श्रीलंका, बेल्जियम, जर्मनी, इटली आदि को निर्यात की जाती है।
सरसों	१६° से. ग्रे. तापमान, ७५ से १७५ से. मी. तक की वर्षा, ओला पाला इसके लिए घातक।	राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य-प्रदेश, आसाम, बंगाल, गुजरात इसके प्रधान उत्पादक राज्य। ६०% केवल उत्तर प्रदेश में पैदा। ब्रिटेन, बेल्जियम, इटली तथा फ्रांस को निर्यात। ३३३१ हजार हैक्टर भूमि पर कृषि तथा वार्षिक (१९७०–७१) उत्पादन १९६२ हजार टन है।
अरंडी	उष्ण जलवायु अनुकूल।	भारत का विश्व मे दूसरा स्थान। रबी खरीफ दोनों में उत्पादन। आन्ध्र, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा उड़ीसा प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

१	२	३
नारियल	उष्ण कटिबन्धीय वृक्ष, २०°–२५° से. ग्रे. तापमान, १५० से. मी. वर्षा, समुद्री वायु लाभदायक होती है।	पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश, अण्डमान, लक्ष द्वीपों में जावा, थाई तथा न्यूगीनी किस्मों की पैदावार। केरल, तमिलनाडु, प. बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र, महाराष्ट्र, गुजरात तथा कर्नाटक में भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

(अधिक वर्षा प्रदेश) कपास (मध्यम वर्षा प्रदेश) तथा फल एवं तरकारी देश के अन्य भागों में पैदा किए जाते हैं। विविधता भारतीय कृषि की मुख्य विशेषता है। पूर्व पृष्ठों पर इस बात की भी चर्चा की गई है कि किस प्रकार देश के पश्चिमी भागों में जूट एवं चावल के स्थानों को धीरे-धीरे गेहूँ तथा ज्वार-बाजरा आदि मोटे अनाज लेते जाते हैं। आगे की तालिका में भारतीय कृषि प्रदेशों तथा उनकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
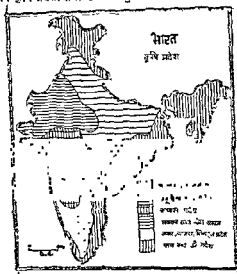
चित्र ४३

चावल जूट और चाय प्रदेश

इस कृषि प्रदेश में प. बगाल, उडीसा, आसाम (ब्रह्मपुत्र की घाटी) तथा निचले डेल्टा प्रदेश सम्मिलित हैं। चावल सबसे प्रधान उपज है। भूमि मे अत्यधिक नमी, अधिक वर्षा एव वर्षा के दिनों की अधिक सख्या, सिंचाई की न्यूनतम आवश्यकता, उगने का मौसम (Growing Season) लम्बा तथा जलोढ मिट्टी इस प्रदेश की प्रमुख भौगोलिक विशेषताएँ हैं। फसल वैभिन्य न्यूनतम, कृषि की उत्तम व्यवस्था, खेत छोटे, पशुओं का अधिक उपयोग, जनसख्या घनी, परिवहन की उत्तम व्यवस्था, औद्योगीकरण एवं उच्च शैक्षणिक स्तर आदि अनेक सास्कृतिक उपलब्धियाँ हैं। इसके प्रतिकूल बाढ़ तथा खरपतवार की *प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं।*

गेहूँ और गन्ना प्रदेश

इस कृषि प्रदेश में उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, पजाब, हरियाणा तथा मध्यप्रदेश का बडा भाग सम्मिलित किए जाते हैं। वर्षा की मात्रा सामान्य रूप से अधिक से मध्यम वर्षा और तापमान मे मौसमी वितरण की विभिन्नता, शीत ऋतु ठडी तथा ग्रीष्म उष्ण होती है। वर्षा की भिन्नता के कारण इस कृषि प्रदेश में अधिक अकाल पडते हैं जिसके कारण इस प्रदेश को अकालगृह के नाम से भी पुकारते हैं। कृषि की सफलता सिंचाई पर निर्भर

क्र. सं.	कृषि प्रदेश	वर्षा प्रदेश	वर्षा की मात्रा	स्थलाकृति	मिट्टी की किस्म एवं कृषि व्यवस्था
१.	चावल-जूट-चाय प्रदेश	सर्वाधिक वर्षा प्रदेश	२०० से. मी. से अधिक	समतल, डेल्टा प्रदेश एवं पर्वतीय ढाल	जलोढ़, डेल्टा एवं पर्वतीय मिट्टियाँ अच्छी व्यवस्था
२.	गेहूँ और गन्ना प्रदेश	अधिक वर्षा प्रदेश		समतल, नवीन एवं प्राचीन जलोढ़	"
३.	कपा[illegible] प्रदेश	मध्यम वर्षा प्रदेश		समतल मैदानी एवं पठारी	प्राचीन जलोढ़ एव काली मिट्टियाँ
४.	[illegible]ल और तरकारी [illegible]देश	कम वर्षा प्रदेश (सिंचाई आवश्यक)		विभिन्न स्थलाकृतियाँ	उपजाऊ और बहुत अच्छी कृषि व्यवस्था
५.	म[illegible]का तथा अन्य मोटे [illegible]ज प्रदेश	न्यून वर्षा प्रदेश (अंसिंचित क्षेत्र)		विभिन्न स्थलाकृतियाँ	विभिन्न मिट्टियाँ अनुपजाऊ न्यून कृषि व्यवस्था
६.	ज्वार बाजरा और तिलहन प्रदेश	अति न्यून वर्षा प्रदेश		ऊबड़ खाबड़ एवं विभिन्न स्थलाकृतियाँ	अनुपजाऊ मिट्टियाँ

होती है। कुओं तथा नहरों द्वारा सिंचाई समतल स्थलाकृति के अनुरूप है। देश के अन्य कृषि प्रदेशों की तुलना में फसल वैभिन्य अधिक है। कृषि उपजों में अधिक उर्वरक दिया जाता है। पशुओं के मलमूत्र मुख्य खाद का काम करते हैं। गेहूँ, चावल और गन्ना प्रधान फसलें हैं। पूर्वी भाग में चावल तथा पश्चिमी भाग में गेहूँ और मध्योत्तर भाग में गन्ना पैदा किया जाता है। खराब एवं अपेक्षाकृत अन-उपजाऊ भूमि में मोटे अनाज पैदा किए जाते हैं। इस कृषि प्रदेश में भी खेत छोटे-छोटे, कृषक गरीब, जनसंख्या घनी तथा बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों की कमी है। नगरों के आसपास तथा उनके प्रभाव क्षेत्रों में फलों एवं तरकारियों (आलू, गोभी) की सफल एवं बड़े पैमाने पर खेती की जाती है।

कपास प्रदेश—प्रायद्वीपीय भारत की काली मिट्टी में कपास सबसे अधिक पैदा की जाती है। इसके अलावा मध्य प्रदेश, गुजरात, पंजाब तथा राजस्थान के छोटे बिखरे एवं सिंचित क्षेत्रों में भी कपास उगाई जाती है। कपास के अनुकूल मिट्टियों एवं जलवायु में स्थानीय विविधताएँ भी पाई जाती हैं। इस प्रदेश में ७० से १०० से. मी. तक वर्षा होती है। इस प्रदेश के बड़े भाग में बिना सिंचाई के कपास की खेती की जाती है। कतिपय अपवादों के साथ इस प्रदेश की नदियों का उपयोग सिंचाई के कार्यों में नहीं किया जा रहा है क्योंकि उत्तरी भारत की नदियों के प्रतिकूल इस प्रदेश की अधिकांश नदियाँ झरनों, गार्जों, चट्टानी क्षेत्रों और सामान्य सतह के नीचे से प्रवाहित होती है। मौसमी जल प्रवाह, ग्रीष्म में सूखना तथा पूर्ण रूपेण वर्षा के जल पर आश्रित रहना इस प्रदेश की नदियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

कपास इस प्रदेश की सबसे प्रमुख फसल है परन्तु सर्वत्र पैदा नहीं की जाती है। कपास के अनुपयुक्त इस प्रदेश के भागों में ज्वार बाजरा तथा मक्का जैसे मोटे खाद्यान्न पैदा किए जाते हैं। इस प्रदेश में खेत अपेक्षाकृत बड़े तथा मिट्टी असमान रूप से उपजाऊ है। सिंचाई संसाधन अपर्याप्त, प्रतिएकड़ उपज कम और कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय है।

फल एवं तरकारी प्रदेश

इस कृषि प्रदेश में जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर-प्रदेश के पर्वतीय जिले तथा पंजाब क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं। हिमालय पादपर्वतों में जहाँ पर्याप्त वर्षा होती है इस प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। नहरों द्वारा सींचे जाने वाले भूभागों पर फल एवं तरकारियाँ कम पैदा की जाती हैं। इनके उगने का मौसम लगभग ४ अथवा ५ महीनों का होता है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के कारण आलू अब लगभग सर्वत्र और हरेक मौसम में पैदा किया जाने लगा है।

मक्का तथा अन्य मोटे अनाज प्रदेश

इस कृषि प्रदेश में पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तरी गुजरात, राजस्थान मुख्यरूप से सम्मिलित किए जाते हैं। [illegible] प्रदेश में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें मानसून के प्रारम्भ में बोई तथा मानसूनोपरान्त काट ली [illegible] इस प्रदेश की मिट्टी जलोढ़ सिल्ट है। यहाँ की मिट्टियाँ वर्षा की कमी के कारण पश्चिमी भाग में रेगिस्तान में बदलती जाती है। यहाँ की जलवायु शुष्क एवं वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होता है। प्रमुख फसलों में

मक्का, बाजरा तथा अन्य मोटे अनाज पैदा किए जाते हैं। इस प्रदेश में खेत अपेक्षाकृत बड़े और देश के अन्य प्रदेशों की तुलना में कृषक परिश्रमी एवं अच्छी आर्थिक स्थिति में हैं। इसके प्रतिकूल शुष्क जलवायु के कारण पशुओं के लिए चारे की सदैव कमी रहती है।

ज्वार, बाजरा और तिलहन प्रदेश

मध्यप्रदेश का बड़ा हिस्सा और कर्नाटक इस कृषि प्रदेश में सम्मिलित किए जाते हैं। यहाँ की मिट्टी लाल-पीली तथा कहीं-कहीं लेटेराइट किस्म की और अनुपजाऊ है। सतह टूटी-फूटी तथा उमड़-खाबड़ है। छोटा नागपुर, कर्नाटक तथा आन्ध्र के पठारी भाग भी इसी प्रदेश में सम्मिलित किए जाते हैं। उत्तर के विशाल मैदान के प्रतिकूल यहाँ कृषि टुकड़ों एवं बिखरी हुई रूपों मे होती है। औसत तापमान पूरे वर्ष ऊँचा रहता है। परन्तु शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओं के तापमान में भारी अंतर नहीं पाया जाता है। वर्षा की मात्रा (७५-१२५ से. मी.) बहुत कम है। इस प्रदेश मे जाड़े में भी वर्षा होती है। इस प्रदेश में भी अकाल पड़ते हैं। ज्वार-बाजरा के साथ-साथ मूंगफली, कपास, गन्ना, तथा चावल की भी खेती होती है।

कृषि को सुनियोजित करने की समस्याएँ

भारत सरकार ने प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय (१९५६-६१ तथा १९६२-६६) योजनाओं को कृषि प्रधान घोषित किया था। तृतीय पंचवर्षीय योजना में भी कृषि को प्रधानता दी गई थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे सामान्य रूप से कृषि की प्रगति हेतु रासायनिक उर्वरक की पूर्ति, सिंचाई संसाधनों का विस्तार, उन्नत तथा अधिक उपजदायिनी बीजो की खोज, उत्पादन विधियों में आधुनिकीकरण तथा तकनीकी ज्ञान के समावेश जैसे कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया। इसके अतिरिक्त चावल के लिए जापानी कृषि पद्धति को अपनाने के साथ-साथ सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा कार्यक्रमो को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया। कपास तथा जूट जैसी मुद्रादायिनी फसलों का उत्पादन १९५६ में बढ़ाकर क्रमशः ४० तथा ४२ लाख गाँठ किया गया जो पहले (१९५०-५१) क्रमशः २९ तथा ३३ लाख गाँठे थी। इस योजना में १९६० करोड़ वास्तविक व्यय रखा गया था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में इस व्यय को बढ़ाकर ४६७२ करोड़ रुपया कर दिया गया परन्तु योजना में उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान की गई। खाद्यान्नो का उत्पादन ६.५८ करोड टन (प्रथम पंचवर्षीय योजना) से बढ़ाकर ८.२ करोड़ टन, कपास ४० लाख गाँठ से बढाकर ६५ लाख गाँठ तथा जूट ४२ लाख गाँठ से ५५ लाख गाँठ रखा गया। परन्तु चीन एवं पाकिस्तान से युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण लक्ष्य की उपलब्धि सम्भव न हो पायी। फलस्वरूप कपास तथा जूट का क्रमशः उत्पादन केवल ५३ लाख गाँठ तथा ४१ लाख गाँठ ही रह गया। इसी प्रकार सिंचाई सुविधाओं में भी २१० लाख एकड़ के स्थान पर केवल १७० लाख एकड भूमि मे सिंचाई सुविधाएँ प्रदान की जा सकी थी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना पुनः कृषिप्रधान होने पर भी पूरी तरह से असफल रही।

इस पंचवर्षीय योजना में उर्वरक, भूमि-संरक्षण, उन्नत बीजों तथा कृषि यंत्रों, कृषि विधियों तथा सिंचाई योजनाओं पर कुल मिलाकर १७५४ करोड़ अर्थात् सम्पूर्ण योजना व्यय का २२% खर्च किया गया। योजना की प्रगति नकारात्मक रही। खाद्यान्न १० करोड टन (लक्ष्य) के स्थान पर केवल ७.२२ करोड़ टन पैदा हो सका। इसी तरह कपास (७० लाख गांठ) लक्ष्य से कम ४८ लाख गांठ तथा जूट उत्पादन ५४ लाख गांठ से घटकर केवल ४३ लाख गांठ ही पैदा हो पाया। खेती के विकास के साथ इस पंचवर्षीय योजना में बागों का विकास, मुर्गीपालन, पशुपालन तथा दुग्ध उत्पादन, कृषि इन्जीनियरिंग तथा मिट्टी की किस्मों की जाँच की वैज्ञानिक व्यवस्था भी की गई थी।

तीन वार्षिकी योजनाएं—अन्तर्राष्ट्रीय सहायता, राजनैतिक अस्थिरता एवं देश में प्राकृतिक प्रकोपों के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना को समय से प्रारम्भ करने के स्थान पर तीन वार्षिकी योजनाओं को प्रस्तुत किया गया। कृषि एवं सिंचाई पर १६२३ करोड़ रुपए निर्धारित किए गये। इन वार्षिक योजनाओं के काल में खाद्यान्नों तथा नकदी फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तथा कृषि विकास—तीन वार्षिकी योजनाओं की समाप्ति पर अप्रेल १९६९ से चौथी पंचवर्षीय योजना को पुनः कार्यान्वित किया गया। कृषि तथा इससे संबंधित कार्यों की सफलतार्थ कुल मिलाकर २७२८ करोड़ रुपया व्यय करने का निश्चय किया गया। इस राशि में सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण पर व्यय होने वाली राशि (१०८७ करोड़ रु०) सम्मिलित नहीं थी। चौथी पंचवर्षीय योजना के उत्पादन एवं लक्ष्य को निम्न तालिका में दिखाया गया है :

चौथी पंचवर्षीय योजना की उपलब्धि एवं लक्ष्य*

तालिका ७८

फसल	लाख	उत्पादन				लक्ष्य
		१९६९-७०	७०-७१	७१-७२	७२-७३	१९७३-७४
चावल	हैक्टर	४०४.३०	४२२.००	४२७.००	४१०.००	५२०
गेहूं	हैक्टर	२०१.००	२३८.००	२६५.००	३१०.००	३४०
कपास	गाँठें	५२.३३	४५.००	६५.००	६०.००	८०
जूट	गाँठें	५६.१०	६२.००	६८.४०	६०.००	७४
चाय	टन	३.९६	४.२०	४.३०	४.४०	४.६
गन्ना	टन	१३७.८०	१३०.००	११७.००	१२०.००	१५०
तम्बाकू	टन	३.३८	३.६०	४.१०	३.५०	४.५
तिलहन	टन	७७.३०	९२.६०	८२.७०	७२.३०	११८

* कामर्स ऐनुअल १९७२

भारत की सम्पूर्ण कृषि को तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है :

(म) मर्द्ध उष्ण कटिबन्धीय कृषि क्षेत्र
(ब) शीतोष्ण कटिबन्धीय कृषि क्षेत्र
(स) मल्पाइन कृषि क्षेत्र

भूमि से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने की दृष्टि से कृषि विधि को वैज्ञानिक तरीकों से स्थानीय जलवायु, मिट्टी, धरातल, तापमान आदि के अनुकूल करने की सिफारिश की गयी है। इस व्यवस्था में अधिकतम भूमि तथा अधिकतम श्रमिकों को रोजगार दिए जाने की व्यवस्था है।

भारतीय कृषि की समस्याएँ एवं पिछड़ापन

कृषि की कुछ बड़ी जटिल स्थानीय, क्षेत्रीय, तथा राष्ट्रीय समस्याओं से भी देश के कृषिशास्त्री, अर्थशास्त्री, भूगोलवेत्ता तथा योजना आयोग अपरिचित नहीं हैं। उन पर विजय पाने के लिए स्थानीय भौगोलिक दशाओं के अनुकूल तरीके भी सुझाये गये हैं। कुछ समस्याओं की तरफ नीचे संकेत किया जाता है जो भारतीय कृषि को सुनियोजित करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं।

(१) प्राकृतिक समस्याएँ
- (i) प्रतिकूल जलवायु
- (ii) धरातल की असमान बनावट
- (iii) मिट्टी का कटाव एवं बहाव
- (iv) फसलों की बीमारियाँ

(२) तकनीकी समस्याएँ
- (i) अपर्याप्त सिंचाई के साधन
- (ii) अच्छे बीजों की कम पूर्ति
- (iii) कृषि फार्मों की कमी
- (iv) रासायनिक तथा नत्रजन खादों की कमी
- (v) पौधों के संरक्षण तरीकों का कम प्रयोग
- (vi) कृषि औजारों की भारी कमी

(३) आर्थिक कठिनाइयाँ
- (i) अतिरिक्त श्रम के उपयोग का कोई साधन नहीं है।
- (ii) अकृषित रोजगारों की कमी
- (iii) जमीन के प्रति भारतवासियों का सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक लगाव।
- (iv) रोजगार पाने के स्थानों तथा तरीकों की अज्ञानता
- (v) सुरक्षा की कमी
- (vi) परिवहन का अधिकतम मूल्य
- (vii) पूंजी को उत्पादक ढंग से लगाने के ज्ञान का अभाव
- (viii) बाजारों में सामानों की अनिश्चित कीमत तथा असुविधाजनक बाजारीकरण।

(४) संरचनात्मक तथा संस्थान संबंधी कठिनाइयाँ

(i) खेतों का छोटा और अनार्थिक रूप से बिखरा होना।

(ii) जमीन पर अधिकार की अनिश्चितता।

(५) प्रशासकीय कठिनाइयाँ

(i) सुनियोजित कृषि और ज्ञानप्राप्त कृषकों की कमी

(ii) सुयोग्य प्रशासक तथा व्यक्तियों की कमी

(iii) भारत में मशीनों, विज्ञान, तकनीकी ज्ञान से अनभिज्ञता।

(६) सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयाँ

(i) भारतीय कृषकों का रूढ़िवादी दृष्टिकोण

(ii) समन्वय, प्रबन्ध तथा मार्गनिर्देशन की हमारे देश में भारी कमी है।

इन कठिनाइयों के बावजूद भी भारत सरकार, राज्य सरकारें तथा कृषकों ने मिलकर उपर्युक्त कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने के लिए काफी प्रयास किए हैं और किए जा रहे हैं। उन प्रयत्नों में कुछेक की तरफ नीचे संकेत किया जा रहा है :

(१) कृषि के उत्पादन को बढ़ाने के लिए

(i) सिंचाई और भूमि संरक्षण की व्यवस्था की जा रही है।

(ii) उन्नत किस्मों के बीजों को, कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य अनुसंधान केन्द्रों के माध्यम से विकसित तथा वितरित किया जा रहा है।

(iii) रासायनिक, कम्पोस्ट तथा अन्यान्य प्रकार की उर्वरकों को विकसित किया जा रहा है।

(iv) फसलों की सुरक्षा के लिए दवाइयों के छिड़काव, टिड्डियों आदि को भगाने तथा उनकी पूर्व जानकारी प्राप्त कराने की व्यवस्था की गई है।

(v) भूमि-उद्धरण योजना पर सबसे पहले और प्रभावशाली ढंग से उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आसाम तथा मध्यप्रदेश में प्रतिपालन किया गया। कुछ उपलब्धियों को निम्न तालिका में अंकित किया गया है :

जिला/क्षेत्र	किस्म जमीन	खेती योग्य बनाई गई भूमि का क्षेत्रफल (000) हेक्टर
मेरठ	गंगा खादर	१८.८
तराई	तराई दलदली भूमि	२०.०
कोटा क्षेत्र	राजस्थान चम्बल क्षेत्र	—
आसाम	केन्द्रीय ट्रैक्टर की वन सफाई योजना	१.१०
दण्डकारण्य	दण्डकारण्य योजना	१.२
मध्यप्रदेश-बिहार	मध्यप्रदेश तथा बिहार का संयुक्त क्षेत्र	२७.६०

भूमि उद्धरण की प्रगति

योजनाएँ	लाख हैक्टर
प्रथम पंचवर्षीय योजना	६.२
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	१३.३
तृतीय पंचवर्षीय योजना	१६.८
चौथी पंचवर्षीय योजना	८०.०० (लक्ष्य)

(vi) कृषकों को आर्थिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक तरीकों से उत्तम किस्म के औजारों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

(२) कृषि की समस्याओं के समाधान हेतु कतिपय उपाय

(i) बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा सहकारी समितियों के गठन आदि से कृषकों को कम ब्याज पर रुपये कर्ज दिये जाने की व्यवस्था की जा रही है।

(ii) कृषकों को अपनी फसलों को उचित मूल्यों पर बेचने के लिए भी सहकारी समितियाँ गठित की जा रही हैं और उनके निजी अन्न भण्डार के उपलक्ष में नकद रुपये उधार भी दिये जाने की व्यवस्था की जा रही है।

(iii) परिवहन की व्यवस्था की जा रही है जिससे किसान अपने उत्पादन को अच्छे बाजारों में समय पर ले जाकर उचित मूल्य प्राप्त कर सकें। पक्की सड़कों का निर्माण, उन पर बसों तथा ट्रकों के चलने से भारतीय ग्राम्य जीवन उन्नत हो रहा है।

(iv) स्थानीय स्थलाकृति के अनुसार कृषि पद्धति, सिंचाई के साधनों (स्थानीय, छोटी, बड़ी तथा बहुद्देशीय) पशुपालन, वृक्षारोपण, फल उत्पादन आदि को किसी क्षेत्र विशेष में एक साथ और अलग-अलग प्रोत्साहित किया जा रहा है।

(v) खेती पर बढ़ते जा रहे अत्यधिक मानव-भार को अकृषित कार्यों की तरफ मोड़ा जा रहा है और कृषकों की पूंजी को भी नयी दिशा प्रदान की जा रही है। अब तक जो पूंजी जमीन के अन्दर तथा सोने-चाँदी के गहनों के रूप में रहना पसन्द करती थी अब बाजार में लाई जा रही है।

इन सब के अलावा कुछ आधुनिकतम आविष्कारों से भी कृषकों को लाभान्वित कराये जाने का कार्यक्रम है :

(i) तकनीकी के क्षेत्र में भारतीय अनुसंधान की अपरिपक्वता को दूर किया जा रहा है। इससे बीज, खाद के प्रयोग और फसलों की बीमारी आदि को रोकने में अभूतपूर्व सफलता मिलेगी।

(ii) पौष्टिक तथा भोज्य पदार्थों का भण्डार बनाये जाने तथा उसके उचित वितरण की व्यवस्था की जा रही है।

(iii) खेतों पर कृषकों के स्वामित्व को बड़ी तेजी से स्थायित्व प्रदान किया जा रहा है।

(iv) भारत सरकार तथा राज्य सरकारें प्रत्येक गाँव में परिवहन के सुव्यवस्थित साधन, संचार व्यवस्था तथा विद्युत शक्ति पहुँचाने के लिए कृतसंकल्प है और इस दिशा में बड़ी तेजी से कार्य किया जा रहा है।

(v) वर्षा की अनिश्चितता को देखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं अनुसंधान संस्थान (कनाडा) के सम्मिलित प्रयासों से मौसम सम्बन्धी पूर्वानुमान कृषकों तक पहुँचाया जाएगा। दो दिनों की आयोजित संगोष्ठी ने आन्ध्र, महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान के अकालग्रस्त क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान के समावेश का मूल्यांकन तथा शुष्क कृषि पर दिनांक ५–६ अक्टूबर १६७३ को विचार-विनिमय किया। मिट्टी की ऊपरी परत को बहने से रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के उपयोग की शिक्षा कृषकों को दी जा रही है। ग्रामीण ईंधन की समस्या सुधारने, मिट्टियों की दशाओं के अनुकूल उर्वरक का प्रयोग, नवीन पौधों का विकास तथा बहावों के समानान्तर कृषि का प्रचार किया जा रहा है। कृषि, पशुपालन, वनविकास तथा रोपण व्यवस्थाओं की सम्मिलित एवं समन्वित योजनाएँ बनाई जा रही हैं। कृषिविज्ञान-केन्द्रों के माध्यम से अशिक्षित कृषकों को नवीनतम तकनीकी उपयोग की शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था की जा रही है।

□ □ □

अध्याय ९

भारत के प्रमुख उद्योग

किसी देश का औद्योगिक विकास उस देश के प्राकृतिक संसाधनों, नागरिकों के ज्ञान (वैज्ञानिक एवं तकनीकी) तथा वहाँ के सांस्कृतिक स्तर के अंतर्संबंधों का प्रतिफल होता है। फलस्वरूप विश्व की अधिकांश विकसित सभ्यताएँ इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों के (अकेले अथवा एक से अधिक का एक साथ) विकृत होने अथवा उपयोग में लाये जाने की प्रवीणता के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश के औद्योगिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधन सर्वाधिक प्रभावशाली और आधारभूत कारक होते हैं। विश्व के अधिकांश विकसित देशों ने उन्नीसवीं शताब्दी में अपने यहाँ उद्योगों को संस्थापित कर लिया था जबकि भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से बहुत धनी होते हुए भी वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रवीणता के अभाव में निर्धन ही बना रहा। इस पिछड़ेपन के कारण देश की अर्थव्यवस्था की धुरी कृषि ही बनी रही तथा सम्पूर्ण भारत विदेशी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को कच्चा माल भेजने तथा बदले में विदेशी पक्के माल के लिए सर्वोत्कृष्ट बाजार का काम करता रहा। देश में विदेशी शासन की जड़ें गहराई तक जमती गई और देश में शहरी सभ्यता पुन. विकसित होने लगी। शहरों में कृषि कार्य द्रुतगति से लुप्त होने लगे; फलस्वरूप २०वीं शताब्दी में यहाँ के लोगों का स्वाभाविक सबंध आधुनिक निर्माण उद्योगों से बढ़ने लगा। समूचे देश में खनिज, कृषि, रसायन, पशुधन, वन एवं इन्जीनियरिंग आदि कारकों पर आधारित उद्योग देश के विभिन्न भागों में संस्थापित होने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के औद्योगिक मानचित्र में बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाओं का सबसे बड़ा योगदान रहा। इनसे मुख्य रूप से सिंचाई, शक्ति एवं जल, यातायात जैसी सुविधाओं में भी सतत वृद्धि हो रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य रूप से कृषिप्रधान होने पर भी कृषि कार्यों में विद्युत के पूर्ण रूप से प्रवेश कर जाने पर न केवल कृषि पर आधारित उद्योगों का विस्तार-विविधीकरण (Diversification), लचीलापन एवं पैमाना बढ़ रहा है बल्कि अन्य अनेक कारकों पर भी आधारित उद्योगों के बीच संतुलन एवं समन्वय लाने में विद्युत सबसे बड़ी कड़ी बन रही है।

भारतीय उद्योगों के प्रमुख आधार

१. कृषि उत्पादन
२. खनिज उत्पादन
३. वनोत्पादन
४. पशुधन
५. रसायन
६. इन्जीनियरिंग आदि

वर्तमान अध्याय मे इन्हीं उपर्युक्त आधारों एवं समन्वय कारकों को ध्यान मे रखकर, भारत के प्रमुख उद्योगो का बारी-बारी से, आकड़ो एवं मानचित्रो की सहायता से उनकी स्थिति, योजना, वितरण, उत्पादन एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे, अध्ययन किया गया है।

सूती वस्त्र उद्योग

वस्त्र पहिनने से मनुष्य सभ्य, सुसस्कृत और सामाजिक प्राणी कहलाता है। आदिम अवस्था समाप्त कर लेने के बाद मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्य होने का गर्व करने लगा वस्त्र पहिनना आवश्यक होता गया। शरीर को मृगछाला, वृक्षाला तथा अन्य लता, फूल व पत्तों से ढकने की चर्चा प्राचीनतम साहित्यो के सृजन के पूर्व से होती चली आ रही है इसलिए उस ऐतिहासिक समय की खोज करना, कि मानव ने कब वस्त्र बनाकर शरीर पर धारण किया, बडा कठिन है। परन्तु हमारे प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद मे 'हिरण्य द्रापि' नामक सुन्दर और कलात्मक वस्त्रो की चर्चा की गई है। अथर्ववेद के अनुसार वर, सुहागरात के दिन अपनी नव-विवाहिता के हाथ का ही बना हुआ वस्त्र धारणकर उसका स्वागत करता था। मनुस्मृति में भी सूती वस्त्र व्यवहार की चर्चा की गई है।

वर्तमान औद्योगिकरण के पूर्व पाश्चात्य श्वेतबालाएँ भारतीय वस्त्रो को अपने उत्सवों, त्योहारों, पर्वों और दिनचर्या मे पहनकर गौरवान्वित होती थीं। भारतीय वस्त्रों की शुभ्रता एवं पारदर्शिता से, पाश्चात्य महिलाएँ न केवल सदैव हैरान ही रहा करती थीं अपितु वस्त्रों को बड़े रोचक नामो जैसे गगादेश वाली, (Gangetic) प्रवाहित जल, (Ab-i-rawan-Running Water) वायु वितान,(Baft-i-hawa-Woven Air)साम्घ्य सीकर (Shab-i-nam-Evening Dew) आदि नामों से विभूषित भी किया करती थीं। इस सम्बन्ध में श्री बुकानन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—'सूती वस्त्र व्यवसाय भारत के प्राचीन युग का गौरव, अतीत एव वर्तमान समय में कष्टों का कारण, परन्तु सदैव की आशा लिए हुए है'। शायद यह कथन कि 'वर्तमान समय में कष्टो का कारण' (श्री बुकानन) उस ऐतिहासिक, निर्मम और कठोर प्रतिस्पर्धा की तरफ संकेत करता है जब अग्रेजों के पैतृक देश मे औद्योगिक क्रान्ति के बाद भी यहाँ का वस्त्र व्यवसाय बराबर पनपता रहा और भारत के इस उद्योग को नीचा दिखाने, विश्व बाजार को अपने अधिकार मे करने की कोशिश उठा नहीं रखी जा रही थी। उस समय भारत के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक स्तरों में बडी गिरावट आ चुकी थी और सदियो से चले आ रहे अपने व्यवसाय मे पूर्ण कुशल होते हुए भी भारतीय बुनकर अग्रेजो के अत्याचार को न सह सकने के कारण अपने गौरवशाली उद्योग को अतीत के गर्भ में सदैव के लिए विलीन कर देने पर मजबूर हो गये।

प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार, एरियन मेगास्थनीज, स्ट्रेबो मार्को हैतेलो के अलावा कई अन्य चीनी यात्रियों ने भी अपने आलेखो मे भारतीय सूती वस्त्र व्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस प्रकार अग्रेजों के अत्याचारों और औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप भारत का यह समृद्धिशाली और गौरवपूर्ण उद्योग दो-तीन सदियों में ही समाप्त हो गया और भारत ग्रेट ब्रिटेन को केवल कपास भेजने वाली मंडी को छोड़कर कुछ नही बचा।

औद्योगिक क्रान्ति की छाप भारत पर भी पडी, प्रथम तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध

क्रमशः १९१४ तथा १८३९ में प्रारम्भ हुए थे। यहाँ रहने वाले अंग्रेजों की सुख-सुविधाओं तथा प्रशासनिक कार्यों आदि तक के चलाने योग्य कपड़ा बाहर से आना बन्द हो गया। उस समय भारत मे भी आधुनिक ढंग से सूती वस्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया गया।

यह वैज्ञानिक तथा तकनीकी ढंग से सुसंगठित उद्योगों में सबसे बड़ा है क्योंकि इस समय विश्व के कपास उत्पादन क्षेत्र का २०% भारत में स्थित है। कपास उत्पादन की क्षमता को देखते हुए देश में आधुनिक ढंग के कारखाने लगाना नितान्त आवश्यक हो गया था। आधुनिक कारखाना खोलने का सबसे पहला असफल प्रयास सन् १८१८ ई० में कलकत्ता में किया गया। सन् १८६१ तक इस उद्योग की १२ मिलें देश के विभिन्न भागों में खुल चुकी थीं। इस समय भारत के संगठित और एकल उद्योग में यह सबसे बड़ा है। धागे तथा वस्त्रोत्पादन की दृष्टि से इसका स्थान विश्व में तीसरा है। उत्पादन लगभग ८०० करोड़ रुपये के आसपास होता है। राष्ट्रीय आय में इसका हिस्सा १०० करोड़ रुपये का है। इसमें ६ लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इस समय भारत में मिलों की संख्या ६२२ हैं जिनका राज्यानुसार वितरण, प्रगति और विकास निम्न तालिका में दिखाया गया है :

राज्यानुसार मिलों, मजदूरों तथा कपास के उपयोग का विवरण

तालिका ७६

राज्यों का नाम	मिलों की संख्या	सभी शिफ्टों में मजदूरों की संख्या	कपास की खपत (गांठ) एक गांठ= १८० कि. ग्रा.	वस्त्र उत्पादन मिलियन मीटर
आन्ध्र	२६	१५०८४	१३८१८	२६.०
बिहार	५	१४७५	११००	०.१
गुजरात :	११५	१८०३६६	६१६३४	—
(अ) अहमदाबाद	६६+३	१३४१४५	६५५६१	१३२५.०
(ब) शेष राज्य	४३	४६२२४	२७३४३	—
हरियाणा	८ (11)	८५७२	११८१८	२५.०
जम्मू एवं काश्मीर	१	—	—	—
केरल	२२	११२०६	७६०७	१७.७
मध्य-प्रदेश	२२	४५६४३	२५६३७	३६७.०
तमिलनाडु	१६१	१०२६६१	८८४८६	१४५.०
महाराष्ट्र :	६५	२४७०६५	१२५०६०	१४१७.०
(अ) बम्बई शहर	५६+३	१६५६८८	६७३६६	—
(ब) शेष राज्य	३६+१	५१३७०	२७७२४	—

१	२	३	४	५
कर्नाटक	२६	२८६२८	१६००४	७८.०
उड़ीसा	४	५२६१	३३८४	३४.०
पंजाब	१८	७०४७	८४२६	४२.०
राजस्थान	१६	१५३६६	१६३५५	६३.०
उत्तर प्रदेश	३१	५५०५६	३५०४४	२८७.०
(अ) कानपुर	१४	३८८०६	२२६६४	—
(ब) शेष राज्य	१७	१६१६७	१२४४४	—
पं० बंगाल	३६(४२)	४६७१७	२३१४१	२१८.०
दिल्ली	४+३	२०१२८	१३६२६	१४८.०
पाण्डिचेरी	५	८०७८	६४०६	४३.०
योग	६२२	७६६७३५	४६३८५२	—

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ८५१ मिलियन मीटर कपड़ा तैयार किया गया जिसमे ३५०० मिलियन मीटर हाथ करघा तथा शक्ति चालित तकुओं द्वारा और बाकी भारतीय मिलो द्वारा उत्पन्न किया गया था। नवीनतम आंकड़ों (१६७१) के अनुसार इस समय देश मे ६४७ सूती मिलें हैं। भारतीय मिलो को प्रतिवर्ष लगभग ५ लाख गाठ कपास की आवश्यकता पड़ती है। चौथी पंचवर्षीय योजना में कपड़े का उत्पादन बढ़ाकर १६३३४० लाख मीटर करने का लक्ष्य रखा गया था। जिसमें ५०६२० लाख मीटर भारतीय मिलों एव बाकी हाथ-करघों तथा अन्य साधनों से उत्पन्न किया जाता।

सूडान, ब्रिटेन, अरब-गणराज्य, पूर्वी अफ्रीका, इथोपिया, बर्मा, सीरिया, ईरान, श्रीलंका, ईराक, अदन तथा अन्य नवोदित व छोटे-छोटे राष्ट्र भारतीय वस्त्र के प्रमुख खरीददार हैं। हमारे देश से जो कपड़ा निर्यात किया जाता है उसका ६४% मोटा (चादरें, कमीज का कपड़ा, लट्ठा, कोटिंग, छींट) होता है। सन् १६६६ में भारत से अब तक सभी वर्षों से अधिक धागा निर्यात किया गया जिसकी मात्रा लगभग ४ करोड किलोग्राम तथा मूल्य पहले वर्ष से लगभग १३ करोड़ रुपये अधिक था।

सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्रीयकरण

भारत के पूर्वी भाग में जूट तथा पश्चिमी भाग में सूती-वस्त्र व्यवसाय के केन्द्रीयकरण को देखकर एक व्यक्ति आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि इनको आपस में लगभग प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती होगी। भारत के मानचित्र पर यदि ८१° पूर्वी देशान्तर रेखा खींची जाय तो सम्भवतः यह रेखा सूती वस्त्र एवं जूट व्यवसाय के केन्द्रीयकरण के बीच मे दीवार सदृश्य होगी। इसके पूर्व में भारत की अधिकांश जूट मिलें तथा पश्चिम में अधिकांश सूती मिलें स्थित मिलेंगी। कुछ विशेष सुविधा प्राप्त स्थान ही इस कथन के अपवाद हैं। क्योंकि जूट के प्रतिकूल इसके लिये

यह आवश्यक नहीं है कि मिलें कपास उत्पादक क्षेत्रों में ही स्थापित की जांय । जूट उद्योग कच्चे माल के उत्पादक क्षेत्रों तथा सूती वस्त्र बाजार की समीपता से प्रभावित होते हैं। इसलिए सूती वस्त्र उद्योग का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र गुजरात व महाराष्ट्र (न्यून वर्षा) और जूट उद्योग का महत्त्वपूर्ण केन्द्रीयकरण पश्चिमी बंगाल (अधिकतम वर्षा) हैं जहां देश के सूती और जूट निर्मित मालों का क्रमशः ६०% तथा ६४% पक्का-माल तैयार किया जाता है।

जूट की भांति सूती-वस्त्र उद्योग के क्षेत्र को भी कई उप-विभागों में बांटा जा सकता है। परन्तु समस्त भारत की नई-पुरानी ६४७ मिलों में से केवल बम्बई तथा अहमदाबाद शहरो में १३४ तथा पूरे देश के ३८% तकुए, ४२% करघे और ६०% श्रमिक इन्हीं दो शहरों में हैं। गुजरात और महाराष्ट्र को मिलाकर मिलो की संख्या २१३ हो जाती है। इस उद्योग के केन्द्रीयकरण के निम्न कारण हैं :

कच्चे-माल की सुविधा—दक्कन की काली मिट्टी कपास उत्पादन के लिए विश्व-प्रसिद्ध है तथा बम्बई बन्दरगाह के पृष्ठ-प्रदेश में स्थित है। इसको कपास-प्रदेश भी कहना अनुचित नहीं होगा । सूती-वस्त्र उद्योग के आधुनिक विकास के पूर्व सम्पूर्ण रूई इसी बन्दरगाह पर इकट्ठी करके विदेशों को भेजी जाती थी। इसलिए कपास की अत्यधिक उपज होने के कारण कच्चे-माल की प्राप्ति की समस्या स्वयं हल हो चुकी थी जो उद्योग विकसित करने में सहायक सिद्ध हुई।

सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्रीयकरण के कारण

१. कच्चे माल की उपलब्धि
२. यातायात की सुविधायें
३. पूर्व औद्योगिक जानकारी
४. पूंजी, बैंकिंग, बीमा, साख सुविधाएँ
५. प्राकृतिक जलवायु की अनुकूलता
६. सस्ती जल विद्युत
७. मजदूरों की प्राप्ति
८. औद्योगिक क्रान्ति में प्राचीनतम देशों की निकटता

यातायात एवं बन्दरगाह की सुविधाएँ—यदि किसी मिल को कुछ उत्तम किस्म की रूई मँगवानी पड़ती है तो वह संयुक्त राज्य अमेरिका, संयुक्त अरब गणराज्य तथा आस्ट्रेलिया से सुविधापूर्वक आ जाती है। प्रारम्भिक समय में पश्चिमी राष्ट्रों (ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी व अमेरिका आदि) से संयंत्रों का भी आयात आसानी से हो सका था। बम्बई बन्दरगाह, सड़क एवं रेल-मार्गों द्वारा देश के अन्य भागों से जुड़ा हुआ है।

पूर्व औद्योगिक जानकारी—भारत के पूर्वी-भाग में कलकत्ता तथा पश्चिमी भाग में बम्बई अपने-अपने सामुद्रिक स्थिति, पृष्ठ-प्रदेश के धनी होने, कच्चे-माल के उत्पादन और घने बसे होने के कारण औद्योगिक क्रान्ति के पहले से ही यहाँ की सामान्य जनता तथा व्यापारी दोनों ही इसकी सारी तकनीकी जानते थे।

पूंजी एवं अन्य वित्तीय साधनों की उपलब्धि—देश के विभिन्न भागों से पूँजीपतियों

और उत्तर-प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान आदि राज्यों से मजदूरों का ध्यान इन केन्द्रों की तरफ आकर्षित हुआ। प्राचीन व्यापारिक केन्द्र होने के कारण बम्बई तथा आसपास बैंकिंग, बीमा, साख तथा बिक्री सम्बन्धी अनेकानेक सुविधाएँ स्वयं एकत्रित होती गई।

सामुद्रिक स्थिति के कारण बम्बई की जलवायु लगभग ब्रिटेन की भाँति है जो विश्व-प्रसिद्ध सूती-वस्त्र व्यवसायिक देशों में से एक है, जहाँ जलवायु के नम होने के कारण सूती धागे जल्दी-जल्दी टूटने के बजाय लम्बे होते हैं।

सन् १९१४ तक भारत में कोयला बम्बई बन्दरगाह पर विदेशों से मँगाया जाता था और उसीसे बम्बई की सूती मिलें चलाई जाती थीं। सन् १९१४ में टाटा-जल-विद्युत् योजनाओं से सूती मिलों को सस्ती बिजली भी मिलने लगी।

उपर्युक्त औद्योगिक सुविधाओं के कारण बम्बई मे मिलो की संख्या निरन्तर बढ़ती रही और इस समय तीन नई मिलो को मिलाकर केवल बम्बई मे ही ६२ मिलें हैं। जहाँ विविध एवं आधुनिक वस्त्र उत्पादन होता है।

सूती वस्त्र व्यवसाय का दूसरा सबसे बड़ा केन्द्र गुजरात राज्य तथा इसकी राजधानी अहमदाबाद है जहाँ राज्य को ११४ मिलों मे से ७२ केवल अहमदाबाद शहर में स्थित हैं। यहाँ भी प्राचीनतम कपास उत्पादन, साहसी व्यापारी, सौराष्ट्र-गुजरात के बन्दरगाह, प्राचीनतम कुटीर उद्योग, सूती-वस्त्र मे विशिष्टता प्राप्त करने, बस्तियों तथा फैक्टरियों की स्थापना के लिए खुली जगह, उच्चकोटि की यातायात सुविधाएँ, बैंकिंग व बीमा सम्बन्धी सुविधाएँ, उत्तर-प्रदेश, गुजरात, पंजाब व हरियाणा से मजदूर जैसी वे सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं जो बम्बई के सम्बन्ध मे कही गई हैं। अहमदाबाद की तुलना बोस्टन से की जाती है। यहाँ देश का २५% वस्त्रोत्पादन होता है।

सूती-वस्त्र व्यवसाय का तीसरा जमाव पश्चिमी बंगाल है जहाँ छोटी-बड़ी सभी को मिलाकर ४२ मिलें हैं। यहाँ की सुविधाएँ महाराष्ट्र एव गुजरात जैसी न होकर कुछ भिन्न और निम्न हैं :

(१) रानीगंज तथा झरिया की कोयले की खानों से शक्ति का स्रोत (कोयला) यहाँ की मिलो को प्राप्त होता है।

(२) कलकत्ता बन्दरगाह से मशीनों के आयात की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

(३) पूँजी तथा अन्य व्यापारिक सुविधाएँ (बैंकिंग, शेयरों को बेचने व खरीदने की व बीमा) प्राप्त हैं।

(४) कलकत्ता का पृष्ठ प्रदेश सबसे घना बसा होने के कारण बिहार, *आसाम*, उत्तर-प्रदेश से सस्ते मजदूर प्राप्त होने की सुविधा है।

(५) जलवायु अनुकूल है।

(६) कलकत्ता बन्दरगाह के समीपस्थ देश इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, पूर्वी-द्वीप-समूह, में बड़ी मात्रा में वस्त्रों की माँग है।

(७) भारतीय बाजार भी इसके समीप है।

(८) भारत की सबसे धनी खनिज-पेटी इसके समीप है। मशीनरी सहायता तथा

कल-पुर्जों की खराबी दूर करने और अन्यथा मदद देने के लिए भारत की भद्रावती को छोड़कर लगभग सभी इस्पात कारखानें इसी बन्दरगाह के पृष्ठ प्रदेश में हैं।

यहाँ की असुविधाएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) पं० बंगाल की सूती मिलों के समक्ष कच्चे कपास प्राप्त करने की सबसे बड़ी समस्या है।

(२) जूट उद्योग, जो पहले से पूर्ण सगठित है और जिसमे पूँजीपति पहले धन लगाना चाहता है, से कड़ी प्रतिस्पर्धा है।

सूती-वस्त्र व्यवसाय में उत्तर-प्रदेश भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ कानपुर (सबसे बड़ा केन्द्र) के अलावा आगरा, अलीगढ़, मोदीनगर, हाथरस, रामपुर तथा इटावा आदि अन्य विकसित केन्द्र हैं। कानपुर के सूती-वस्त्र विकास के कुछ स्थानीय कारण इस प्रकार हैं—

(१) गंगा की घाटी मे कपास का उत्पादन किया जाता है।

(२) देश के सभी बड़े तथा व्यावसायिक नगरों से कानपुर जुड़ा हुआ है।

(३) यह शहर जूट तथा प्रधान सूत व्यवसाय केन्द्रों के लगभग मध्य मे स्थित है।

(४) यह बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा आदि के कोयले की खानों के अपेक्षाकृत पास है।

(५) उत्तर-प्रदेश स्वयं बहुत घना बसा है और मजदूरी भी अपेक्षाकृत सस्ती है।

तमिलनाडु में भी सूती मिलों की अधिकता (१६१) है। यहां की मिलें बहुत छोटी तथा अधिकांश मिलें जल-विद्युत् से चलती हैं। कोयम्बटूर, सलेम, पेराम्बूर, मदुराई तथा मद्रास प्रसिद्ध केन्द्र हैं। आन्ध्र की १६ मीलें पूर्वी गोदावरी, गंटूर, हैदराबाद जैसे जिलो में केन्द्रित हैं।

केरल की १८ मिलें चलापरम, अलवाय, त्रिवेन्द्रम तथा अलप्पी आदि नगरों मे केन्द्रित है। मध्य-प्रदेश की सूती मिलें (२६) रायपुर, इन्दौर, ग्वालियर, राजनन्दगाँव, भोपाल उज्जैन आदि नगरो मे स्थित हैं। पंजाब में १८, हरियाना मे ८, उड़ीसा में ६, बिहार मे ३ तथा दिल्ली मे ७ मिलें हैं। राज्यानुसार कपड़े के उत्पादन तथा मिलों की संख्या के लिये देखिए तालिका ७६।

सूती-वस्त्र उद्योग की समस्याएँ

भारतीय सूती-वस्त्र व्यवसाय के समक्ष कुछ सामान्य समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं।

कृषि सम्बन्धी समस्याएँ—औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों से ही भारतीय सूती-वस्त्र व्यवसाय को उत्तम किस्म की लम्बे रेशे वाली रूई उपलब्ध नही हो रही थी क्योंकि देश मे कुछ ही वर्षों से और वह भी थोड़ी मात्रा मे उत्तम रूई पैदा होने लगी है। प्रति एकड़ उपज कम है। रासायनिक उर्वरक, उत्तम बीज, सिंचाई सुविधाएँ तथा कृषि का यंत्रीकरण आदि वैज्ञानिक विधियों की भारतीय कपास उत्पादन में भारी कमी है।

यांत्रिक समस्याएँ—मिलों व मशीनों का निर्माण देश मे कम होता है। फलस्वरूप

अधिकांश मशीनें विदेशों से मंगाई जाती हैं। इसके उपरान्त मिलों की उत्पादन-शक्ति कम व स्वचालित करघों की कमी है। मिलों में अधिकांश मशीनें पुरानी हैं तथा इस वैज्ञानिक युग में भी आधुनिकीकरण की प्रतीक्षा कर रही हैं।

सूती वस्त्र उद्योग की समस्याएँ

१. कृषि संबंधी समस्याएँ
२. यांत्रिक समस्याएँ
३. प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याएँ
४. बाजार संबंधी समस्याएँ
५. शक्ति सम्बन्धी समस्याएँ
६. सरकारी नीति सम्बन्धी समस्याएँ

प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याएँ—भारत में घाटे पर चल रही और अनार्थिक मिलों की संख्या १५० है। सगठन, प्रबन्ध तथा पूंजी आदि की कमी के साथ ही साथ उत्पादन बढ़ाने एवं प्रतिस्पर्धा स्वीकार करने की न तो इन उद्योगों में जिज्ञासा है और न ही शक्ति। यहाँ विघटन शक्तियाँ अधिक कार्य कर रही हैं और जोर पकड़ती जा रही है।

बाजार सम्बन्धी समस्याएँ—भारत के कपड़ों को विश्व बाजार में कड़ी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है। प्रतिस्पर्द्धा में सफलता प्राप्त करने हेतु—बढ़िया तथा अच्छे रंगों कपड़ों का उत्पादन, मशीनों का आधुनिकीकरण, अच्छी नस्ल और लम्बे रेशे की रूई का उत्पादन, सगठित और सुव्यवस्थित भण्डारों की स्थापना, हाथ-करघे तथा मिलों मे एक स्वस्थ निर्भरता का होना, उत्पादन लागत कम करना तथा स्वचालित करघों की संख्या में वृद्धि करना, जैसे कुछ उपाय काम में लाये जा सकते हैं।

शक्ति सम्बन्धी समस्याएँ—भारतीय सूती-वस्त्र व्यवसाय को कोयला, तेल एवं विद्युत् की सदैव कमी का अनुभव करना पड़ता है। कोयले का उत्पादन अधिकांश मिलों से दूर किया जाता है और उसको मिलों तक लाने मे अन्य समस्याएँ भी सम्मिलित हो जाती हैं। जल-विद्युत् का उत्पादन भी पर्याप्त नहीं हो पा रहा है। इन शक्तिदायिनी खनिजों की अनुपस्थिति मे भारतीय सूती-मिलों को पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

सरकारी नीति—उपर्युक्त समस्याओं के साथ-साथ सरकार की भी नीति इस उद्योग के लिए अधिक उत्साहवर्धक नहीं रही है। ऊँची दरों पर उत्पादन कर लगाये जाते हैं तथा सरकार की तरफ से आधुनिकीकरण में भी विशेष अभिरुचि नहीं दिखाई जाती है।

स्थानापन्न वस्तुओं का आविष्कार—वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में जहाँ अनेक मुद्रादायिनी फसलों (नील, रबर, चीनी तथा जूट) की पूरक पदार्थों का आविष्कार कर लिया गया है वहाँ कपास इस अनुसधान का अपवाद नहीं है। इसके स्थान पर टेरेलीन, टेरीन, तथा टेरीकाटन के वस्त्र अधिक टिकाऊ, आकर्षक एव सुविधाजनक होने के कारण सामान्य जनता मे अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

अन्य समस्याएँ—अन्य समस्याओं मे तालाबन्दी, श्रम अशान्ति, तकनीकी अज्ञान, उत्पादन, अनुसधान तथा बिक्री शोध की कमी आदि प्रमुख हैं जिनसे हमारे देश के सूती-वस्त्र व्यवसाय को काफी परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं।

भारत सरकार द्वारा सस्थापित 'भारतीय कपास भविष्यवाणी समिति' के द्वारा तृतीय

पंचवर्षीय योजनाकाल में ७८ लाख गाँठ कपास उत्पादन का लक्ष्य रखा गया था।

सूती-वस्त्र व्यवसाय पुनर्गठन समिति अथवा मनुभाई शाह समिति—सूती-वस्त्र व्यवसाय की आर्थिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयों को देखकर महाराष्ट्र सरकार ने श्री एस० बी० कोगेकर की अध्यक्षता में अक्टूबर, सन् १९६७ में सूती-वस्त्र व्यवसाय के लिए एक समिति 'Committee for cotton textile Industry' तथा केन्द्रीय सरकार ने शाह समिति का गठन किया था। शाह समिति ने सारे मामलों की समुचित जाँच करके कुछ निम्न सुझाव दिये हैं :

(१) छोटी, आर्थिक और प्रबन्ध की दृष्टि से कमजोर सूती मिलों को बड़ी तथा आर्थिक-दृष्टि से मजबूत मिलों के साथ मिला दिया जाय।

(२) कुछ बन्द पड़ी मिलों को भारत की राष्ट्रीय सूती-वस्त्र व्यवसाय निगम को अपने नियन्त्रण में लेकर पुनः चलाना चाहिए अथवा जिस राज्य की मिलें बन्द हों उस राज्य को उन्हें चलाने का दायित्व अपने कन्धों पर लेना चाहिए।

(३) कुछ मिलों को, जिनकी आर्थिक दशा बिल्कुल खराब हो गई है, समाप्त घोषित करके नये सिरे से प्रारंभ किया जाना चाहिए। क्योंकि अधिकांश माल भेजने वाले मध्यम-वर्ग के होते हैं इसलिए स्टोर की सुविधा, रंग तथा रसायन सप्लाई करने वालों को बड़ा घाटा होने लगता है।

इन सुझावों को ध्यान में रखकर भारतीय सरकार ने सन् १९६६ में 'औद्योगिक कम्पनियों का विलीनीकर कानून' (एक्ट) पारित किया। केन्द्रीय सरकार ने एक विलीनीकरण कमिश्नर की नियुक्ति भी की।

सूती वस्त्र व्यवसाय का पुन निर्माण

इन योजना के अन्तर्गत सरकारों ने निम्न योजनाएँ स्वीकार की हैं :

(१) इस व्यवसाय को श्रम-प्रधान से पूँजी-प्रधान करने की व्यवस्था हो।

(२) मनुष्य निर्मित रेशों ने जो प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ कर दी है, उस पर विजय पाने के लिये निम्न उपाय सुझाये गये हैं :

(अ) कपास का अत्यधिक उत्पादन किया जाय।

(ब) कपास के क्षेत्र में नई-नई खोजें की जाँय।

(स) सूती-वस्त्र मिलों से निकलने वाली बेकार वस्तुओं का अधिकतम प्रयोग कैसे किया जाय इसकी खोज करना भी इसमें सम्मिलित है।

(द) नये-नये बाजारों की अधिकतम खोज की जाय।

(य) बिक्री में प्रगति की जाय।

(न) प्रबन्ध व्यवस्था का नये सिरे से सुधार किया जाय।

भूतपूर्व केन्द्रीय उद्योग मंत्री श्री बलिराम भगत ने १८ फरवरी, सन् १९६७ को ७२ सूती मिलों के बन्द होने की सूचना लोकसभा में दी थी। परन्तु सन् १९६८ में ३९ मिलों को फिर से चलाया गया और बाकी ३३ बन्द ही पड़ी रहीं। फलस्वरूप जुलाई, सन् १९६९ में ३१,२६० श्रमिक बेरोजगार और ८० सूती मिलें बन्द थीं। बेरोजगारी को खत्म करने,

मिलों को पुनः चलाने तथा प्रोत्साहित करने के लिए निम्न उपाय काम में लाये गये हैं :

(१) ८ मिलो की आर्थिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी बुराइयों की जाँच तथा छानबीन कर ली गई है।

(२) ८ मिलो की जाँच जारी है।

(३) ४ मिलों के मामलें न्यायालयों में चल रहे हैं।

(४) १३ मिलें सम्बन्धित राज्य सरकारों की राय के साथ जाँच के अन्दर हैं। इसी तरह अन्यान्य मिलों का मामला भी जाँच के अधीन है।

भारतीय सरकार ने सूती-वस्त्र व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के लिये निम्न कदम उठाए हैं जिनमे एक्साइज करो में कमी, मिलों के आधुनिकीकरण के लिए वसूल की गई आधी एक्साइज कर मिलों के पास छोड़ दिया जाना, रिजर्व बैंक में जमा धन की वापसी शर्तों को आसान कर देना, मिलों की सहायतार्थ दी गई धनराशि पर ब्याज की दर कम करना, बड़ी और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ मिलों को छूट दिया जाना कि यदि वे चाहें तो कमजोर मिलों का प्रबन्ध उनकी राय से अपने हाथ में ले सकते हैं, सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, सरकार ने भविष्य मे इस उद्योग का फैलाव बन्द कर दिया है।

विभिन्न राज्य सरकारों ने आर्थिक और प्रबन्ध की दृष्टि से बिल्कुल कमजोर १३ मिलों को स्वयं चलाने का कार्यभार अपने हाथो मे ले रखा है :

गुजरात	१	पॉडिचेरी	१
मध्य-प्रदेश	४	राजस्थान	१
महाराष्ट्र	५	उत्तर-प्रदेश	१

कुल योग : १३

राज्य सरकारें कितनी मिलो को स्वयं चलाने की जिम्मेदारी अपने हाथों में लेगी यह अनुमान लगाना कठिन है। परन्तु निजी-क्षेत्र में मिलों को सुविधापूर्वक चलने देने के लिये आर्थिक सहायता की सुविधाएँ अवश्य प्रदान की गई हैं :

(१) राष्ट्रीय सूती-वस्त्र निगम की स्थापना की गई है, जो १३ मिलो को चला रही है।

(२) इनके अलावा अन्य मिलो को भी इस निगम से आर्थिक सहायता प्राप्त करने की सुविधाएँ हैं।

(३) भारत का राष्ट्रीय उद्योग विकास बैंक मिलों को नई खरीद, पुनर्वास तथा मिलो को आधुनिक बनाने के लिए कर्ज प्रदान करता है।

(४) नियंत्रित (Controlled) कपडो के उत्पादन को ४०% से घटाकर २५% तक कर दिया गया है।

(५) अच्छा, मध्यम तथा उच्चस्तर और सुपरफाईन किस्मो के कपड़ों पर से सरकारो ने नियन्त्रण हटा लिया है।

(६) नियंत्रित वस्त्रों को बनाने वाली मिलों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा अतिरिक्त सहायता प्रदान की जाती है।

जूट उद्योग

भारत के वैज्ञानिक तथा तकनीकी ढंग से सुसंगठित उद्योगों में से जूट उद्योग भी एक है जिसका विश्व में सबसे अधिक केन्द्रीयकरण भारत के पश्चिमी बंगाल में हुआ है। यहाँ पर विश्व के समस्त करघों का लगभग ६०% पाये जाते हैं। इसमें ३ लाख व्यक्तियों को १०० मिलों में रोजगार मिलता है। भारत प्रतिवर्ष लगभग २२० करोड़ रुपये के मूल्य के बराबर जूट तथा जूट से निर्मित सामान थैले, बोरे, टाट, दीवाल ढँकने,
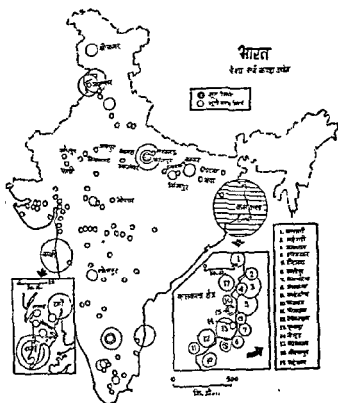
चित्र ४४

खिड़कियों तथा दरवाजों पर लटकाने के रंग-बिरंगे परदे, फर्श पर बिछाने के लिए दरियाँ तथा टाट, सोफों के कपड़े, वाटर-प्रूफ कपड़े, प्लास्टिक फर्नीचर, कम्बल, बिजली निरोधक सामान, ऊन अथवा कपास के साथ मिलाकर कपड़े बनाकर-विदेशों, मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, कनाडा, न्यूज़ीलैण्ड, पाकिस्तान आदि देशों को निर्यात किया जाता है। यह भारत का सबसे प्रमुख विदेशी विनिमय प्राप्त करने वाला उद्योग है। इससे बनी वस्तुएँ बड़ी मजबूत होती हैं। इनसे निर्मित बोरे सीमेन्ट, अनाज, कोयला तथा अन्य सामान भरने के काम भी आते हैं। देश के जिस भाग में यह उद्योग

स्थित है वह विश्व के सबसे घने बसे क्षेत्रों में से एक है। यहाँ राजनैतिक उथल-पुथल मची रहती है, तथा जनता के जागरूक एवं क्रान्तिकारी होने के कारण इस उद्योग में बड़े ही उत्थान और पतन आये हैं। इस उद्योग से अधिकतम लोगों को जीविकोपार्जन का साधन प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ यह कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है। विश्व में इसको 'सोने के रेशे' के नाम से जाना जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीनकाल में न केवल भारत बल्कि समस्त विश्व में हर उद्योग (रेशम, सूती व ऊनी वस्त्र व्यवसाय, इस्पात आदि) मानव परिश्रम से कुटीर उद्योगों के रूप में ही किये जाते थे। देश के इस भाग में 'कपाली लोग' इसको भी कुटीर उद्योग के रूप में चलाकर अनाज भरने के बोरे तथा मोटे कपड़े बनाया करते थे। पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक, तकनीकी तथा औद्योगिक क्रान्ति हुई, सभी जगह के कुटीर उद्योगों में वैज्ञानिक यन्त्रों का समावेश हुआ इसलिए भारत का पटसन उद्योग भी इससे अछूता नहीं रह पाया। चूँकि सारे विश्व में इसकी खपत थी और भारत की ही भौगोलिक परिस्थितियाँ इसके उत्पादन में समर्थ थीं इसलिए इस उद्योग का सबसे पहले मशीनीकरण सन् १८३२ ई० में डंडी में प्रारम्भ किया गया। इसके पश्चात् जब डंडी कारखाने में निर्मित जूट-वस्त्र भारत के बाजारों में लोकप्रिय होने लगा तब एक स्काटलैण्ड नागरिक श्री जार्ज आकर्लैण्ड महोदय ने सन् १८५५ में जूट के पैतृक कारखाने डंडी से कुछ मशीनों, कुशल श्रमिकों तथा इन्जीनियरों का आयात कर, कलकत्ता में श्रीरामपुर के निकट, जो पहले से ही औद्योगिक केन्द्र था, हुगली नदी के दाहिने किनारे पर रीसरा नामक स्थान पर एक जूट उद्योग की स्थापना की। इसकी प्रारम्भिक दैनिक उत्पादन क्षमता केवल ८ टन थी। इसके बाद इस उद्योग का महत्त्व, लाभ तथा उपयोगिता आदि को समझा गया और उद्योग की निरंतर वृद्धि होती रही। ४ वर्षोपरान्त इस उद्योग में शक्ति-चालित करघों का भी समावेश किया गया। सन् १८८२ में २२ कारखानें, ४७४६ करघे तथा २७ हजार श्रमिक कार्य करने लगे थे। १९१४ का प्रथम विश्व युद्ध जैसे अन्य उद्योगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ उसी तरह इसके लिए भी। युद्धकाल में मिलों की संख्या, मिलों का उत्पादन, जूट कृषि का विकास, प्रति एकड़ उपज वृद्धि तथा श्रमिकों की रोजगारी आदि में अत्यधिक वृद्धि हुई और १९१४ में ही मिलों की संख्या बढ़कर ६४ तथा श्रमिकों की संख्या २ लाख तक पहुँच चुकी थी। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने से इस उद्योग को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला फलस्वरूप संयुक्त भारत (१९४६) में मिलों की संख्या बढ़कर १०९, करघों की संख्या की ६६,००० और उत्पादन १० लाख टन हो गया इस समय भारत के जूट उत्पादन का अनुमानित क्षेत्र ८८५,३०० हैक्टर तथा उत्पादन ६३६९२०० गाँठ है।

सन् १९४७ में भारत के राजनैतिक बँटवारे तथा जूट उत्पादक क्षेत्र के बंगला देश में चले जाने के कारण इस उद्योग को अस्थायी रूप से बड़ी हानि उठानी पड़ी थी क्योंकि कई वर्षों तक भारत-पाक (बंगलादेश) व्यापारिक संबंध खराब रहे थे और चूँकि अधिकांश मिलें भारत में थीं इसलिए मिल मालिकों की परेशानी तथा कच्चे जूट की कमी को दूर

जूट उद्योग, उत्पादन एवं निर्यात प्रगति

तालिका ८०

वर्ष जुलाई-जून	जूट क्षेत्रफल (लाख एकड़)	उत्पादन (000) टन	मिलों में जूट की खपत (लाख गांठ)	निर्यात अप्रेल-मार्च (000) टन	निर्यात मूल्य मार्च-अप्रैल (करोड़ रुपये)
१९६१-६२	२५.५६	१०५६		७८०	१४४.७६
१९६२-६३	२०.२६	११९९		८६०	१५५.६६
१९६३-६४	२१.५०	१२३०		८६४	१५७.४२
१९६४-६५	२०,७२	१३००	७५.८५	९३५	१६८.५५
१९६५-६६	१८.६६	१२२६	७०.३६	९८२	१८२.८५
१९६६-६७	१६.७२	११५२	६५.९५	७६२	२३४.५०
१९६७-६८	२१.८७	११५६	६५.२०	७५३	२३४.१०
१९६८-६९	१३.२०	९९८		६५५	२१८.००
१९६९-७०	१६.२०	९९५०		६००	२०६.७०
१९७०-७१	१८.७५			६०९	२१६.००
१९७१-७२	२०.४५				२६३.२९
१९७२-७३					२६६.०९

करने के लिए, भारत के अधिक से अधिक भागों में, जो भौगोलिक दृष्टि से बंगाल के अधिक समीप थे, *'अधिक जूट उत्पादन' का नारा चावल की कीमत पर बुलन्द किया* गया। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के उत्तरोत्तर वृद्धि और जूट की पूरक वस्तुओं के आविष्कार के कारण इस उद्योग को पुनः नयी प्रतिस्पर्धाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। उनमें से कुछेक समस्याएं निम्न प्रकार से हैं :

जूट उद्योग की समस्याएँ

राजनैतिक कठिनाइयाँ—बहुत से देशों में राजनैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध खराब होने के कारण संबंधित देश भारतीय जूट निर्मित बोरों को मंगवाने में कई प्रकार की परेशानियाँ उपस्थित करते हैं। इसलिए इन देशों में कागज, कपड़े तथा सन आदि के थैले काम में लाये जाने लगे हैं।

जूट उद्योग की कठिनाइयाँ

१. स्थानापन्न वस्तुओं का आविष्कार
२. बोरों के बिना गेहूँ का निर्यात
३. कच्चे माल की कठिन उपलब्धि
४. विदेशी प्रतिस्पर्धा
५. आधुनिकीकरण एवं कताई की समस्या
६. क्षमता का पूरा उपयोग नहीं
७. उत्पादन लागत अधिक
८. समुद्री एवं आंतरिक यातायात की कठिनाई
९. राजनैतिक कठिनाइयाँ

जूट के बोरों के बिना गेहूँ का निर्यात—कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अर्जेन्टाइना विश्व में सबसे अधिक गेहूँ उत्पादक राष्ट्र हैं और इनको गेहूँ के निर्यात करने के लिए विश्व में सबसे अधिक बोरों की आवश्यकता होती थी। अब ये राष्ट्र जहाज में बिना बोरों के ही गेहूँ का निर्यात करने लगे हैं।

कच्चे-माल की कठिन उपलब्धि—कच्चे माल की उपलब्धि जूट उद्योग की एक प्रमुख समस्या है। भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण देश के विभाजन के पश्चात् के उत्पादन लक्ष्य पूरा नहीं किये जा सके और देश के केवल ८८ कारखाने चालू अवस्था में हैं। माँग एवं पूर्ति में सामंजस्य नहीं स्थापित किया जा सका। इसलिए कच्चे जूट की लागत भी अधिक हो गई।

विदेशी प्रतिस्पर्धा—बंगला देश तथा भारत के जूट की प्रतिस्पर्धा में प्रथम (बंगला देश) का जूट विश्व बाजार में सस्ता पड़ता है।

आधुनिकीकरण एवं कताई की समस्या—देश की अधिकांश जूट मिलों में अब तक पुरानी मशीनरी ही काम कर रही है। बुनाई कार्यों में अभी विशेष रूप से पुरानी मशीनें कार्य कर रही हैं। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् भी अधिकांश मिलों की आधुनिकीकरण हेतु विदेशी आयात पर निर्भर रहना पड़ता है।

उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नहीं—जूट मिलों की पूरी क्षमता का ८ से २५ प्रतिशत तक का उपयोग नहीं किया जा रहा है।

उत्पादन लागत अधिक—देश में कच्चे जूट की कमी के कारण बंगला देश से ऊँची कीमतें देकर जूट का आयात किया जाता है। इसलिए उत्पादन लागत का ५०% से भी अधिक कच्चे जूट को एकत्रित करने में व्यय होता है। विदेशों में निर्मित जूट की होड़ में सफलता प्राप्त करने के लिए लागत मूल्य की कमी नितान्त आवश्यक है।

समुद्री एवं आंतरिक यातायात की कठिनाई—देश के अन्दर जूट मिलों को कच्चा-माल, तथा कोयला पहुँचाने एवं पक्के माल को उपभोक्ता बाजारों तक ले जाने आदि के लिए समुचित एवं सस्ता परिवहन की कमी है। देश का विदेशी व्यापार भी अभी अपने जलयानों के स्थान पर किराये के जहाजों से किया जाता है जिस पर अधिक किराया व्यय करना पड़ता है। इन समस्याओं के हल के लिए देश में जलयान, छोटे-छोटे वाष्पचालित स्टीमरों तथा मोटर नावों को प्रोत्साहित करके और जलयानों के निर्माण से इस समस्या पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

स्थानापन्न वस्तुओं का आविष्कार—कई राष्ट्रों ने जूट के स्थान पर अन्य स्थापन्न नये रेशों का आविष्कार कर लिया है उदाहरणार्थ—न्यूजीलैण्ड में टिनैक्स, रूस में किनाफ के रेशों, अफ्रीका में सिसाल, मैक्सिको में हैनेक्वीन, कोलम्बिया में फिक, ब्राजील में कैरोम्रो, स्पेन में एस्पार्टोघास, इटली में जूलीटल, जावा में रासेला, दक्षिण अफ्रीका में स्टाकु तथा क्यूबा में मालवा नामक रेशों का अब खूब प्रयोग होने लग गया है। इन स्थानापन्न रेशों की सबसे बड़ी बुराई यह है कि या तो वे जूट से बिल्कुल घटिया होते हैं अथवा जूट से महँगे हैं या इनकी पूर्ति बहुत ही सीमित है।

चूँकि यह विदेशी मुद्रादायिनी और किन्हीं विशेष भौगोलिक परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाली फसल है इसलिए इस उद्योग की तरफ भारत सरकार की विशेष अभिरुचि रहती है। इसकी उन्नति, विकास तथा विश्व बाजार में इसकी माँग बढ़ाने आदि के सम्बन्ध में एक आयोग का भी गठन किया गया है। जूट की कृषि क्षेत्रफल बढ़ाने के स्थान पर, किस्म सुधार, नई मिलों का खुलना बन्द करवाने, पटसन व्यापारिक संस्था स्थापित करने, कलकत्ता

में स्थित जूट गोदामों का अधिकतम और वैज्ञानिक उपयोग करने, श्रमिकों की दशा सुधारने, लाभांश कम करने, मशीनों को बदलने तथा समय-समय पर कारखानों का कायाकल्प करने पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए अन्यथा कुछ वर्षों में उसका बाजार और भी अधिक गिर सकता है।

जूट उद्योग का स्थानीयकरण

किसी भी भूखण्ड के अधिकतम उपजाऊ और अधिकतम वर्षा प्राप्त करने वाले क्षेत्रों में जूट का उत्पादन सम्भव हो सकता है। भारत इसका अपवाद नहीं है बल्कि इस देश की तो सबसे अधिक उपजाऊ जमीन, सबसे अधिक और सुव्यवस्थित वर्षा प्राप्त करने वाले, तथा सबसे घने बसे प्रदेश इसके उत्पादन में लगे हुए हैं। (देखिये चित्र ४०) पश्चिमी बंगाल में इस उद्योग का केन्द्रीयकरण निम्न कुछ विशेष भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही हो पाया है।

जूट उद्योग के स्थानीयकरण के प्रमुख कारण

१. कच्चे माल की उपलब्धि
२. मिलों को जल की प्राप्ति
३. सस्ते जल यातायात की सुविधा
४. सबसे बड़ी कोयले की खानों की समीपता
५. अति-प्राचीन प्रशिक्षण
६. कलकत्ता बन्दरगाह की सुविधाएँ
७. बैंकिंग, बीमा तथा अन्यान्य प्रबंधीय सुविधाएँ
८. शहरी जीवन का आकर्षण

कच्चे माल की प्राप्ति—भारत के जूट उत्पादन का ९०% गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में, जहाँ प्रतिवर्ष नई मिट्टी पड़ती है, होता है। इसलिए इस प्रदेश की मिलों को सहज ही कच्चा-माल उपलब्ध हो जाता है।

पर्याप्त जल-प्राप्ति—गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा इसकी डेल्टाई सहायक नदियों के माध्यम से मिलों को जूट धोने के लिए जल प्राप्त होता है।

सस्ते जल यातायात की व्यवस्था की गई है।

कोयले की खानों की निकटता—भारत की सबसे बड़ी-बड़ी कोयले की खानें इसी क्षेत्र या समीपस्थ भागों में स्थित हैं जिससे बहुत पहले भी शक्ति उत्पादन में दिक्कतें नहीं आने पाई थीं।

अति-प्राचीन प्रशिक्षण—कुटीर उद्योग अवस्था से यहीं पर इस उद्योग को विकसित होने के कारण यहाँ के श्रमिक पीढ़ी-दर-पीढ़ी जूट के कार्यों में उसी तरह कुशल हो गये हैं जैसे बिहार के धनबाद तथा हजारीबाग जिलों के श्रमिक अभ्रक की पर्तें निकालने में प्रवीण हो गये हैं।

बन्दरगाह की सुविधाएँ—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत का औद्योगिकीकरण नहीं हुआ था क्योंकि भारत को कृषि-प्रधान देश बनाकर अंग्रेजों ने इस उद्योग को 'विदेशी व्यापार' के लिये स्थापित और विकसित किया था। इसलिए कलकत्ता का बन्दरगाह जूट की अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण निर्यात कार्यों के लिए सबसे उपयोगी सिद्ध हुआ।

बैंकिंग एवं बीमा कम्पनियों आदि की सुविधाएँ—कलकत्ता में अंग्रेजों का तिजारा पहले

जमा, वे लोग समुद्री व्यापार के अधिक ज्ञाता तथा प्रवीण थे इसलिए अंग्रेजों ने कलकत्ता को अपनी पहली राजधानी बनाया। फलस्वरूप बैंकों, बीमा कम्पनियों, औद्योगिक केन्द्रों का विकास और विस्तार किया गया। बन्दरगाह, राजधानी और औद्योगिक केन्द्र होने के कारण कलकत्ता मे अन्य भी अनेक मानवीय सुविधाएं बढ़ती गई। शहरी जीवन की चकाचौंध से आकर्षित होकर बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर-प्रदेश से लोग यहाँ स्वतः आने और बसने लगे।

जूट उद्योग को कलकत्ता तथा उसके इर्द-गिर्द जिलो में स्थापित होने के लिए उपर्युक्त भौगोलिक, प्राकृतिक तथा परम्परागत कारण पर्याप्त थे। इसीलिए यह उद्योग कलकत्ता से केवल ६० किलोमीटर उत्तर तथा त्रिवेणी से लगभग ४० किलोमीटर दक्षिण बजबज तक केवल ४ किलोमीटर चौड़ी तथा १०० किलोमीटर लम्बी एक सकरी पेटी में स्थापित हो गया है।

यदि इस केन्द्रीयकरण का और सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो पता चलता है *कि इस १०० किलोमीटर की लम्बी पेटी मे २५ किलोमीटर उत्तर मे रीसरा से दक्षिण* में नौहाटी तक केन्द्रीयकरण की सघनता अपेक्षाकृत अधिक है जहाँ समस्त उत्पादन का लगभग ६०% सामग्रियाँ पैदा की जाती हैं। जूट उद्योग के प्रमुख केन्द्र रीसरा, टीटागढ़, बजबज, सालकया, शिवपुर, श्रीरामपुर, अगरपाड़ा, बाली, बसबरिया, श्यामनगर, हावड़ालिलुआ, बाटानगर, बेलूर, कचनपाड़ा, काकनारा, बिरलापुर, बारकपुर तथा नौहाटी हैं। देखें चित्र ४४ इन्सेट

ज्यों ज्यों भारत के अन्य क्षेत्रों का औद्योगिकीकरण और विकास होता जा रहा है और फसलों के उत्पन्न करने की प्राकृतिक दशाओ पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी विजय प्राप्त होती जा रही है इन उद्योगो का विकेन्द्रीकरण होता जा रहा है। नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्धियो के कारण आज इस उद्योग का विकेन्द्रीकरण तथा अन्य राज्यों (उत्तर प्रदेश ३, बिहार ३ तथा आन्ध्र ४) मे इनकी स्थापना होती जा रही हैं।

कलकत्ता तथा उसके आसपास के प्रदेशो मे जूट उद्योग के केन्द्रीत होने, के कारण यहाँ के स्थानीय निवासियो को अनेक सुविधाएं प्राप्त होनी हैं। उनमे से, रोजगार, बेकार चीजों का पुनः उपयोग, उद्योगों का निरन्तर विकास, प्रखण्ड का घनी होना, शिक्षा का विकास, शहरीकरण आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु इन उद्योगों के सिमटकर विकसित होने के कारण दूसरी तरफ शहरों मे गंदी-बस्तियाँ, गरमी, निवास की समस्या, अन्नाभाव, जलाभाव, शुद्ध वायु का अभाव, यातायात की असुविधाएँ, आराम के क्षणों की कमी, अत्यधिक व्यस्तता, वायुमण्डल का दूषित होना, अशान्ति, दुर्घटनाएँ तथा बीमारियाँ जैसी अनेकानेक और दिन-प्रतिदिन की असुविधाएँ भी बढ़ गई हैं। शहरों में गंदी-बस्तियाँ बड़ी भारी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गई है।

सन् १९६६ में वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण किया गया और उस समय देश में मिलों की संख्या ६४, तथा ७४,५०७ करघे और ९.८० लाख तकुए थे। चौथी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य ११० लाख गाँठ जूट सामग्री पैदा करने का रखा गया था। यह अतिरिक्त उत्पादन

सलेम, नीलगिरी, मदुराई, कुर्ग, चिकमंगलोर, अण्डमान, त्रिपुरा, गोआ आदि प्रदेशों में रबर पैदा किया जाता है। देश के वार्षिक एवं प्रति हैक्टर उत्पादन को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

तालिका ८९

वर्ष	कृषित क्षेत्र (000 एकड़ में)	उत्पादन (000 मीट्रिक टन)	औसत उत्पादन (प्रति हैक्टर किलोग्राम)
१९६४-६५	३८४	४५	४२१
१९६६-६७	४२३	५५	४८३
१९६७-६८	४८९	६४	५४८
१९६८-६९	५००	९२	८५१
१९७०-७१	७५०	९२	—
१९७१-७२	—	१०१	—

भारत के रबर उत्पादन केंद्रों को चित्र ४६ में दिखाया गया है जो पूर्णतः दक्षिणी भारत में ही केन्द्रित हैं। केरल, कर्नाटक तथा तमिलनाडु के लगभग १.६ लाख हैक्टर भूमि पर २५ हजार टन रबर प्रति वर्ष पैदा किया जाता है। रबर की वस्तुओं की माँग निरंतर बढ़ने के कारण भारत का उत्पादन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल नहीं हो पाता और फलस्वरूप देश को रबर का आयात विभिन्न देशों से करना पड़ता है। देश की रबर आवश्यकता एवं आयात को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

रबर का उत्पादन एवं आयात

तालिका ९० (टन)

वर्ष	उत्पादन	आयात	आवश्यकता
१९६४-६५	५७,२४९	१८३१८	७६३४२
१९६५-६६	६५,२७१	१९०९२	८४३१८
१९६६-६७	७७,१७६	२९१५०	९२२७७
१९६७-६८	६६,०६६	१०१५६	७३२२५
१९६८-६९	६४४६८	८८७१	—
१९७२	१२१६६४	५६९३	१२६२८३
१९७३	१२६७२१	४७८०	१३२६१६

देश के विकास, जीवन स्तर के ऊपर उठने तथा अनेकानेक सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्तियों के कारण रबर की सामग्रियों की माँग द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल से बढ़ती जा रही है। टायर, ट्यूब, वायुयान में ईंधन डालने की नालियों, हाइड्रोलिक, ब्रेक नालियों,

आग बुझाने वाली नालियों तथा भारतीय जल सेना में रबर आदि का प्रचुर मात्रा में उपयोग हो रहा है। जबसे रबर के स्थान पर बनावटी रबर का प्रयोग होने लगा है तब से इस उद्योग को काफी धक्का लगा है। चूँकि इसका उत्पादन मुख्यरूप से जलवायु से अनुशासित होता है, इसलिए भारत के कुछ ही राज्य अपनी भौगोलिक अनुकूलता के कारण रबर का उत्पादन कर पाते हैं जिन्हें निम्न तालिका में दिखाया गया है।

राज्यानुसार रबर के क्षेत्र एव बगीचों की संख्या

तालिका ६१

राज्य	होल्डिंग इकाइयों की संख्या	क्षेत्रफल हैक्टर	इस्टेट इकाइयों की संख्या	क्षेत्रफल हैक्टर
केरल	६१७६०	११८६२१	५८४	५६११३
तमिलनाडु	१५८५	३३८६	४१	५८५६
मैसूर	१००	३२४	१२	२७७८
अण्डमान,	—	—	३	३८८
महाराष्ट्र	१	१६	—	—
गोवा	३	१८	—	—
त्रिपुरा	१	८	—	—
योग	६३४५०	१२२३७६	६४०	६५१३८

सन् १९४७ में इस उद्योग की देखरेख एवं प्रोत्साहन आदि के लिए भारतीय रबर बोर्ड की स्थापना की गई। यह बोर्ड उत्पादन, आयात तथा निर्यात आदि विषयों में सदैव सचेष्ट रहता है। भारत विश्व के रबर का केवल २% भाग ही पैदा करता है। विश्व का सबसे अधिक रबर मलेशिया तथा सिंगापुर में संयुक्त रूप से पैदा किया जाता है। परन्तु प्रति व्यक्ति सबसे अधिक (१३ किलोग्राम प्रति व्यक्ति) उपयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में किया जाता है। विश्व के देशों में रबर ब्रिटेन, कनाडा तथा पं० जर्मनी क्रमश: दूसरे, तीसरे तथा चौथे स्थानों पर रहते हुए प्रति व्यक्ति क्रमशः ८, ७.५ तथा ७.० कि. ग्राम रबर का उपयोग करते हैं। नीचे विश्व के देशों में रबर के उत्पादन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है :

प्राकृतिक रबर उत्पादन प्रतिरूप (१९७०–७१)

तालिका ६२

देशों के नाम	उत्पादन (000) मी. टन	कुल प्रतिशत
मलेशिया एवं सिंगापुर	१३३१	४४.०

१	२	३
इंडोनेशिया	८२०	२७.२
थाइलैंड	३२६	१०.५
श्रीलंका	१५२	५.०
नाइजीरिया	७७	२.५
द. वियतनाम	२१	०.७
भारत	१००	३.३
कम्बोडिया	५१	१.५
लीबिया	५४	१.४
ब्राजील	२४	०.७
कांगो	४०	१.३
विश्व उत्पादन	३०३१	—

काफी उद्योग

चाय की ही भांति काफी भी एक पेय पदार्थ है। दोनों के (चाय एवं कहवा) उपयोग मे सबसे बड़ा अन्तर यह है कि चाय की पत्तियां पीने के काम आती हैं जबकि कहवा के बीजों का बुरादा पीने के काम में आता है। समार का केवल २% कहवा भारत मे पैदा किया जाता है। कर्नाटक, तमिलनाडु, तथा केरल इसकी खेती के लिए प्रसिद्ध हैं। (देखें चित्र ४६) व्यापारिक स्तर पर कहवे की केवल दो किस्मे—अरेबिक तथा रोबस्टा पैदा की जाती हैं। इसके साथ स्थानीय सेवन हेतु ५० अन्य किस्मो को भी पैदा किया जाता है। काफी के बगीचो मे गान्दर पर सतरे आदि के वृक्ष भी लगाये जाते हैं।

भारत की जलवायु एव वर्षा सम्बन्धी अनिश्चितता के कारण उत्पादन तथा उनमें लगी हुई जमीन की मात्रा प्रत्येक वर्ष बदलती रहती है काफी निर्यात से देश को लगभग १८ करोड़ रुपये प्राप्त होते हैं। यह निम्न तालिका में दिखाया गया है :

काफी क्षेत्र एवं निर्यात

तालिका ९३

वर्ष	अरेबिका (००० हैक्टर)	रोबस्टा (००० हैक्टर)	योग	निर्यात (००० टन)
१९६३–६४	३९	३०	६९	३३.००
१९६४–६५	४२	१९	६१	२३.००
१९६५–६६	३८	३६	६४	२९.००
१९६७–६८	३८	२०	५७	३०.००
१९६८–६९	४५	२५	७०	३३.००
१९७१–७२	७९	५६	१३५	३५.७
१९७२–७३	८२	५२	१३४	५०.६०

भारत एक कृषिप्रधान देश है जहां अधिकतर लोग गांवों मे रहते हैं। गांवों में अभी चाय एव काफी पीने का अधिक प्रचलन नहीं होने के कारण अधिकांश काफी विदेशी मुद्रा के लाभ के कारण विदेशों को निर्यात की जाती है।

कहवा की खेती विश्व के अन्य भागों जैसे ब्राजील, वेनेजुएला, बोलीविया, मध्य अमेरिका, पश्चिम द्वीप समूह, कीनिया, पूर्वी अफ्रीका, अरब देशो, जावा तथा सुमात्रा में भी होने लगी है। साधारणत. कहवा क्षेत्र २५° उत्तर तथा २५° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य स्थित हैं।

कहवा उत्पादन मे तीन राज्यो कर्नाटक ३७%, तमिलनाडु ३०% तथा केरल ३३% के अनुपात में हिस्सा है। चाय बागानों की भांति इस उद्योग का भी लगभग ७०% अंग्रेजों तथा ३०% भारतीयों के अधिकार में हैं।

वनस्पति तेल उद्योग

यह एक प्रकार का तेल है और तिलहनों से निकाला जाता है। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इसे साफ तथा स्थायी बनाया जाता है। सन् १९२८–२९ तक २३,४०० टन प्रतिवर्ष तेल बाहर से आयात किया जाता था। सन् १९३० ई० मे प्रथम कारखाना ३०० टन की क्षमता का देश मे ही स्थापित किया गया। जिन राजनैतिक, आर्थिक, परिवर्तनों सैनिक तथा असैनिक आवश्यकताओं ने अन्य उद्योगों को प्रोत्साहन प्रदान किया उन्हीं के कारण इसका भी विकास हुआ क्योंकि यह भी लगभग विशुद्ध रूप से कृषि पर आधारित था और फलस्वरूप वनस्पति तेल का उत्पादन सन् १९३० में ३०० टन से बढ़कर १९३९ मे ५२००० टन तथा १९४६ मे १,३५,००० टन हो गया था। इस उद्योग की प्रगति को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

वनस्पति तेल उद्योग का क्रमिक विकास

तालिका ६४

वर्ष	मिलों की संख्या	उत्पादन क्षमता (लाख टन)	वास्तविक उत्पादन (लाख टन)
१९४५	५६ लाइसेन्स दिये गये।	४.००	—
१९५१	४८	३.३३	१.७
१९५५–५६	५८	४.४५	—
१९६६–६७	४२	५.००	२.६
१९६७–६८	—	—	४.२
१९७०–७१			५.५
१९७१–७२	—	—	५.६

डालमियानगर (बिहार) हैदराबाद, हास्पेट, आमलनेर, पालनपुर, मद्रास, कानपुर, गाजियाबाद, वेलघरिया, बम्बई, दिल्ली, भीलवाड़ा, जयपुर, कलकत्ता, बड़ोदा, देवनगर, राघेल, कालीकट तथा सिकन्दराबाद वनस्पति तेल उत्पादन के प्रधान केन्द्र हैं। अभी हाल

में जयपुर (राजस्थान) में भी इस की इकाइयों को स्थापित किया गया है।

इसके लिए कृषि से उत्पन्न होने वाली मूंगफली, बिनोले, तिल, सरसों के साथ रासायनिक पदार्थों में कास्टिक सोडा, ब्लीचिंग पाउडर, कृत्रिम विटामिन आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

रेशम उद्योग

ऐतिहासिक समीक्षा

रेशम का निर्माण रेशम के कीड़े करते हैं। यह भारत का बहुत प्राचीन उद्योग रहा है। उस समय रेशम के वस्त्रों को पवित्रता, सामाजिक गौरव तथा आर्थिक समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। रेशम का बना हुआ कपड़ा कलात्मक, सुन्दर, हल्का तथा आकर्षक होता है। अंग्रेजों के आने के पूर्व तथा उस समय तक (१६ वीं तथा १७ वीं शताब्दियों तक) यह उद्योग अपने सुनहले समय में था। उस समय यह उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में विकसित हुआ था। तुगलक शासन काल का वर्णन करते हुए अरब के प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता दिमश्की ने लिखा है कि सुल्तान के एक रेशम के कारखाने में ४०० कारीगर काम करते हैं। दूसरी जगह एक अन्य कारखाने में 'खान' नामक अधिकारी की देखरेख में सुनहले तारों का काम होता था। परन्तु यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति, पूरक पदार्थों का आविष्कार, लोगों में कलात्मक अभिरुचि का ह्रास, कुशल मजदूरों की कमी, विश्व व्यापार में प्रतिस्पर्धा तथा आर्थिक मंदी आदि इस उद्योग के लिए कठिनाइयां बन गयीं।

रेशम की किस्म एवं उत्पादन

कच्चा रेशम ४ प्रकार का होता है। (१) शहतूती रेशम, (२) मूंगा रेशम, (३) टसर रेशम, (४) अण्डी रेशम। हैण्डलूम तथा खादी के बाद देश में यह तीसरा सबसे बड़ा ग्रामोद्योग है। इसमें ३.२ मिलियन व्यक्ति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अपनी जीविकोपार्जन कर रहे हैं। १६३ कारखानें तथा १४ हजार तकुए रेशम तैयार करने तथा उससे कपड़े बनाने में लगे हुए हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ३.० मिलियन कि.ग्रा. कच्चे रेशम के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया था। सन् १९६७ में यह उत्पादन २.२ मिलियन टन था। भारत के १२ राज्यों तथा तीन केन्द्रशासित क्षेत्रों में रेशम का उत्पादन होता है। शहतूती रेशम के लिए कर्नाटक, प० बंगाल, तथा जम्मू व काश्मीर सबसे प्रसिद्ध हैं। ये तीनों राज्य मिलाकर समस्त शहतूती रेशम के उत्पादन का लगभग ९८% पैदा करते हैं। इसके अलावा टसर का उत्पादन बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा के जंगलों में खूब होता है। अण्डी तथा मूंगा रेशम का ९०% आसाम पैदा करता है। कुल मिलाकर जम्मू-काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा गुजरात आधुनिक ढंग के कारखानों एवं नवीनतम वस्त्रों के उत्पादन के केन्द्र बन गये हैं।

रेशम उद्योग का स्थानीयकरण

आन्ध्र—आंध्र में सभी किस्मों के रेशम पैदा किये जाते हैं।

आसाम—यह गैर-शहतूती रेशम का सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। गोलपारा, कामरूप

तथा जलगांव जिले अधिक प्रसिद्ध हैं। लगभग १० लाख लोग इस उद्योग से अपनी जीविका कमाते हैं। आसाम में ११ सिल्क फार्म, २ शहतूत के कलम केन्द्र, ४ मूंगा फार्म, १२ दूर्रा-फार्म, ३३ ककून उत्पादन क्षेत्र तथा ३ ककून बाजारों को विकसित किया गया है।

बिहार—भारत के समस्त टसर सिल्क का ४०% इस राज्य में पैदा किया जाता है। इसमें १२ लाख व्यक्ति अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। बिहार में १ लाख कि. ग्रा. टसर प्रतिवर्ष पैदा किया जाता है। इस उद्योग की सफलता तथा इसे आर्थिक बनाने के लिए सरकार ने बहुत प्रयास किया है। यहाँ १६ टसर-बीज-पूर्ति-केन्द्र, ४२ उपकेन्द्र, १८ ट्रेनिंग सेन्टर, ४ मार्केटिंग सेन्टर तथा १५ कोआपरेटिव स्टेशनों की स्थापना की गई है।

जम्मू-काश्मीर—जम्मू-काश्मीर राज्य रेशम उद्योग के लिए प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। यहाँ १० कारखाने हैं। बिजली की शक्ति, रेशम के कीड़े पालने के लिए चतुर श्रमिकों की प्राप्ति, सरकार की औद्योगिक विकास के लिए विशेष अभिरुचि तथा काश्मीर घाटी की रेशम के अनुकूल जलवायु जैसी सभी सहायक परिस्थितियाँ तथा प्रोत्साहन के तत्व यहाँ मौजूद हैं। इस राज्य मे अनन्तनाग, बारामूला, जम्मू, रीआरी, तथा ऊधमपुर रेशम उत्पादन के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ का वार्षिक उत्पादन ६६,८८२ कि. ग्रा. है। इस उद्योग मे ३.५ लाख लोग लगे हुए हैं। इस राज्य में ४५ नर्सरी (२९ जम्मू तथा १६ काश्मीर मे) स्थित हैं। इनके अलावा ४ कलम नर्सरी (२ जम्मू व २ काश्मीर में) भी कार्य कर रहे हैं।

मध्यप्रदेश—मध्यप्रदेश टसर रेशम के लिए प्रसिद्ध है। इस राज्य के लगभग ५० हजार लोगों को इस उद्योग से रोजगार मिलता है। टसर के अतिरिक्त एक छोटा-सा शहतूत उत्पादक केन्द्र भी स्थापित किया गया है। यहाँ पर १ शहतूती रेशम फार्म, १ धागा निकालने, १ कलम करने तथा १ रीलिंग यूनिट हैं। यहाँ पर ८ टसर ट्रेनिंग सेन्टर तथा एक टसर शोध सस्थान भी काम कर रहे हैं।

महाराष्ट्र—भण्डारा तथा चन्दा जिलो मे परम्परागत टसर का उत्पादन होता है। अरमोरी मे एक टसर फार्म भी प्रारम्भ किया गया है। राज्य सरकार की तरफ से अण्डी कृषि फार्म भी प्रारम्भ कर दिया गया है। सागली, पूना, नागपुर, अम्बरनाथ तथा शोलापुर रेशमी वस्त्रों तथा चादरों के लिए प्रसिद्ध हैं।

कर्नाटक—यहाँ सबसे अधिक (देश का ३/४) शहतूती सिल्क पैदा की जाती है। बंगलौर, कोलार, मदप्पा, टुमकर, बेलगाँव तथा कुर्ग मे सिल्क उद्योग अधिक केन्द्रित है। पूरे राज्य की जनसंख्या का ७% इसमे जीविकोपार्जन करता है। ७८ हजार हैक्टेयर भूमि पर शहतूत के वृक्ष लगाये गये हैं। जहाँ सिंचाई की व्यवस्था है वहाँ वर्ष मे ५ या ६ तथा उन क्षेत्रों से जहाँ सिंचाई की व्यवस्था नही है, ४ या ५ फसलें पैदा की जाती हैं।

अन्य राज्यों मे उडीसा शहतूती रेशम पैदा करता है, टसर सिल्क का भी वार्षिक उत्पादन १५ हजार कि. ग्रा. है। यहाँ के १५ हजार लोग इस व्यवसाय में लगे हुए हैं। अमृतसर, गुरुदासपुर, होशियारपुर, फिरोजपुर (पंजाब) मे शहतूत के वृक्ष लगाये जा रहे हैं।

कोयम्बटूर, तंजोर, तिरुचिरापल्ली, नीलगिरि, सलेम (तमिलनाडु) प्रसिद्ध रेशम पैदा

करने वाले केन्द्र हैं। इस राज्य में ११ शहतूत के कलम स्टेशन, १ बीज केन्द्र, ४ राजकीय सिल्क फार्म तथा ४ वार्षिक ककून बाजार हैं। रेशम का समस्त उद्योग इन्हीं के माध्यम से होता है। इस राज्य का वार्षिक उत्पादन ३६५० कि. ग्रा. है। देहरादून, इटावा, गढ़वाल, गोरखपुर, नैनीताल तथा सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) ६ जिले मिलकर ३००० कि. ग्रा. शहतूती रेशम पैदा करते हैं। रामपुर तथा देवरिया में अण्डी रेशम, मिर्जापुर में टसर सिल्क और वाराणसी, प्रतापगढ़ तथा शाहजहाँपुर में रेशमी वस्त्र पैदा किए जाते हैं। मुर्शिदाबाद, बांकुरा, वीरभूम, दार्जिलिंग, माल्दा, विष्णुपुर, हावड़ा, पानीहाटी, सोनामुखी, चौबीस परगना (प० बंगाल) मिलकर प्रतिवर्ष २.६१ लाख कि. ग्रा. रेशम पैदा करते हैं। इस राज्य में शहतूत की खेती ६,५०० हैक्टेयर भूमि पर झाड़ियों में की जाती है। १६ शहतूत नर्सरी, १२ राजकीय ग्रेनेज, ४० सहायता प्राप्त ग्रेनेज, ४ शहतूत के कलम करने के केन्द्र तथा भारत सरकार का रेशम अनुसन्धान केन्द्र भी यहीं स्थित है। देश के अन्य राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, मनीपुर तथा त्रिपुरा में भी रेशम पैदा किया जाता है। निम्न तालिका देखें :

राज्यानुसार रेशम का उत्पादन

तालिका ६५

(कि. ग्राम)

राज्य	टसर	एरी	मूंगा	योग
आन्ध्र	३७६	१२	—	३८८
आसाम	—	२६६८७५	६६०००	३६५८७५
बिहार	१०७६३६	८५६१	—	११६१६७
मध्यप्रदेश	१४८०००	—	—	१४८०००
महाराष्ट्र	१३८४	—	—	१३८४
उड़ीसा	१५५००	—	—	१५५००
उत्तर प्रदेश	११५	९३	—	२०८
प. बंगाल	७८२७	५२६३	—	१३१८६
मनीपुर	—	२२६	—	२२६
त्रिपुरा	—	४००	—	४००
योग	२८०६३८	२११४२६	६६०००	५६१३६७

लौह एवं इस्पात उद्योग

हमारे देश का सबसे प्राचीन साहित्य ऋग्वेद माना जाता है। उसमें दारिद्र्य को दूर करने के लिए लोहे को अमोघ अस्त्र बताया गया है। ऋषि-मुनियों ने अपनी भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है :

युद्ध प्राचीर जंग तोरो मण्डूर धात्विकी
हता इन्द्रस्य शंभव सर्वे बुद्बुद् पाशयः

अथर्ववेद में भी लोहे की चर्चा की गई है। महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्यान्य ग्रंथों में लोहे और लोहे के बने सामानों, अस्त्रशस्त्रों आदि की चर्चाएँ हैं। महाभारत की लड़ाई में रथ-चक्र तथा बन्दूकों जैसी चीजों के प्रयोग की चर्चा की गई है। अशोक महान के स्तम्भ, महाराणा प्रताप का भाला, तथा अकबर के शासन काल में निर्मित अस्त्रशस्त्र इस उद्योग की प्राचीन प्रगति के परिचायक हैं।

इस्पात, लोहे तथा कार्बन का मिश्रित रूप है। यह वर्तमान उद्योगों का आधारभूत पदार्थ, उद्योगों का बुनियादी उद्योग और भौतिक सभ्यता की रीढ़ है। मौन मूर जोन्स ने लोहे का वर्णन करते हुये एक स्थान पर लिखा है कि 'लोहे और कार्बन को मिश्रित धातु का नाम इस्पात है और यदि इसको अलग कर दिया जाये तो मानव जाति के समक्ष एक ऐसा संसार होगा जिसमें रेलें, जलयान वायुयान तथा नाना प्रकार के अन्य यंत्र, उपकरण तथा परिवहन के साधन न रहेंगे और इस प्रकार का समाज आधुनिक जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ तैयार करने में पूरी तरह असमर्थ होगा"। जेवन्स का कहना है कि आधुनिक युग का यांत्रिक आविष्कार मुख्यतः यांत्रिक युग की देन है जिनमें वाष्प प्रेरक शक्ति तथा लोहा उनकी आधारशिला तथा केन्द्रीय शक्ति है। लार्ड केन्स ने लोहे के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है, "जर्मन साम्राज्य की नींव कोयले और लोहे पर ही पड़ी थी।" यह उद्योग राष्ट्रीय आर्थिक विकास तथा अर्थ व्यवस्था को न केवल संतुलित रखता है अपितु राष्ट्रीय सुरक्षा, व्यापार, संवाद-वाहन तथा वैज्ञानिक कृषि आदि का भी भविष्य निर्धारित करता है। यह निर्माण व विनाश, विकास व विघटन सब कर सकता है। वर्तमान लेखक का ऐसा मत है कि इस समय मानव पुन: अपने 'लौहयुग' में पहुँच गया है जहाँ से वह एक बार आगे बढ़ा था और इस युग में लोहे को छोड़कर किसी अन्य वस्तु की कल्पना करना कठिन प्रतीत होता है।

इस्पात प्राप्त करने के लिए कच्चे लोहे के पिण्ड, फिर इस्पात पिण्डों से तैयार इस्पात बनाया जाता है। इसके लिए प्रधानतः ४ प्रमुख विभागों—कोक भट्टी, लपट वाली भट्टी, इस्पात गलाने का सयंत्र तथा ढलाई मिल की आवश्यकता पड़ती है।

उपर्युक्त पंक्तियों से पाठक को इस बात की जानकारी देने का प्रयास किया गया है कि भारत का लौह उद्योग बड़ा ही पुराना है परन्तु आधुनिक खोजों से भारत का यह उद्योग ईसा से ५००० (पाँच हजार) वर्ष पुराना ठहरता है। इतिहास से इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि जब सिकन्दर भारत से वापिस जा रहा था तब यहाँ से कुछ लोहा भी ले गया था। ऐसा भी कहा जाता है कि यह लोहा सम्राट पुरु ने उसे भेंट स्वरूप दिया था।

व्यक्तिगत कारखानों की स्थापना, स्थिति, लागत क्षमता, उत्पादन तथा किस्म आदि का वर्णन करने के पूर्व एक मिलीजुली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आगे दी गई है।

वर्ष	संस्थापक का नाम	उद्योग का नाम	स्थान
१७७६	मोती तथा फरकूहर	लोहा उद्योग	झरिया के पास
१८०८	श्री डंकन तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी	लोहा उद्योग	मद्रास प्रेसीडेन्सी
१८२५	श्री जोशियाह हीथ	लोहा उद्योग	मद्रास
१८३०	श्री जोशियाह हीथ	लोहा उद्योग	दक्षिणी अर्काट
१८३७		लोहा उद्योग	मद्रास
१८३६		जेसाप एण्ड कम्पनी	बराकर
१८५६	ईस्ट इंडिया कम्पनी	पोर्टो नोवों का कारखाना (मद्रास)	कम्पनी को ईस्ट इंडिया कम्पनी ने खरीदा पर नहीं चला पाई।
१८५६	डेविस	डेविस एण्ड कम्पनी	सुरपाताल

उपर्युक्त कारखाने बड़ी लगन एवं उत्साहपूर्वक अधिकतर दक्षिणी भारत में खोले गये परन्तु जैसाकि वर्तमान भौगोलिक परिस्थितियों से स्पष्ट है कि दक्षिणी भारत जहाँ ये उद्योग प्रारंभ किये गये थे अब भी इस उद्योग के उपयुक्त नहीं है। इन भागों में कच्चे माल की अत्यधिक कमी, कोयला और बिजली का न होना, यातायात की प्रारंभिक कठिनाइयाँ, अविकसित प्रदेश, वर्तमान की भाँति कार्यकुशलता, पूंजी तथा प्रबंध आदि की भारी कमी के कारण सभी उद्योग एक दो अथवा अधिक कारणों से एक या दो साल काम करने के बाद बंद हो गये। सन् १८७४-७५ में कलकत्ता से २३२ कि. मी. दूर पश्चिम में कुल्टी नामक स्थान पर 'बराकर आयरन वर्क्स' के नाम से लोहा एवं इस्पात कारखाने को प्रारंभ किया गया परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई। सन् १८८६ में यह कारखाना बंगाल लोहा एवं इस्पात कम्पनी के अधिकार में चला गया। सन् १६०० में इससे ३५ हजार मीट्रिक टन लोहा तथा इस्पात का उत्पादन हुआ था। सबसे वैज्ञानिक, सुसंगठित, सर्वेक्षणात्मक और दूरदर्शितापूर्ण इस्पात कारखाना सन् १६०७ में बिहार के साकची नामक स्थान पर श्री जमशेद जी टाटा द्वारा श्री सी. एम. वेल्ड और पी. एम. बोस की सहायता से टाटा आयरन एण्ड इस्पात कम्पनी की स्थापना की। चार वर्षोपरांत सन् १६११ में पहली बार ढला हुआ लोहा तथा सन् १६१३ में इस्पात का उत्पादन किया गया। सन् १६०८ में एक अन्य कारखाना इण्डियन आयरन एण्ड स्टील क. के नाम से आसनसोल के निकट हीरापुर में स्थापित किया गया। इस उद्योग की स्थापना के २८ वर्ष बाद सन् १६३६ में कुल्टी (१८७१) और हीरापुर (१६०८) के दोनों कारखानों को मिला दिया गया और उसका नाम भारतीय लोहा एवं इस्पात कम्पनी रखा गया। इस प्रकार का विलय स्थान का नहीं अपितु आर्थिक एवं प्रबन्ध सम्बन्धी था। इस कार्य के पश्चात् सन् १६३७ में बर्नपुर में एक स्टील कारपोरेशन आफ बंगाल की स्थापना की गई और २६ वर्षोपरांत तीनों

इकाईयाँ—कुल्टी, हीरापुर तथा बर्नपुर को मिलाकर महाशय दिया गया। सन् १९२३ में कर्नाटक राज्य मे भद्रावती के तट पर भद्रावती लोहा एवं इस्पात कारखाना स्थापित किया गया।

उपर्युक्त उद्योगों की स्थापना भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व की गई थी। इस्पात एवं इस्पात से निर्मित पदार्थों की भारी कमी को देखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस्पात उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए दो नीतियाँ अपनाई गईं।

(१) पुराने उद्योगों की कार्यक्षमता, आर्थिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी, स्तर को ऊँचा करना।

(२) सरकारी क्षेत्र मे नये उद्योगो की स्थापना करना।

उत्पादन क्षमता बढ़ाने की नीति के अन्तर्गत सभी पुराने कारखानो को आर्थिक सहायता प्रदान की गई, उत्पादन बढ़ाने की अनुमति दी गई, आधुनिक तकनीकी तथा अन्य प्रसाधन आदि भी उपलब्ध करवाये गये। इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप पुराने कारखानों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई जिसको निम्न तालिका में दिखाया गया है :

पुराने कारखानों की उत्पादन क्षमता

तालिका ६६

नाम कारखाना	उत्पादन क्षमता लाख टन	बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता	
प्रथम पंचवर्षीय योजना			
(१) टाटा लोह एवं इस्पात कारखाना	७.५ लाख टन इस्पात	९.३ लाख टन इस्पात	
(२) इंडियन आयरन एण्ड स्टील कं. (तीनों इकाईयाँ)	४.० लाख टन इस्पात	७.० लाख टन इस्पात	
द्वितीय पंचवर्षीय योजना			
		लोहपिंड	इस्पात
(१) टाटा लोह एवं इस्पात कारखाना	९.३ लाख टन इस्पात	२०.०	१५.०
(२) इंडियन आयरन एण्ड स्टील क.	७.० ,,	१०.०	८.०
(३) मैसूर आयरन वर्क्स	७५ हजार टन ,,	२.०	८५.०० हजार टन

सरकारी क्षेत्र में लोहा इस्पात के विकास के लिए चार इकाईयाँ—रूरकेला (उड़ीसा), भिलाई (मध्यप्रदेश), दुर्गापुर (प. बंगाल) तथा बोकारो (बिहार)—में स्थापित कर, सबको एक प्रबन्ध और एक नाम—हिन्दुस्तान स्टील लि०—के अन्तर्गत रखा गया। प्रारंभिक स्तर पर प्रथम तीनों में प्रत्येक की उत्पादन क्षमता १० लाख टन रखी गई। द्वितीय योजना काल में इस्पात का उत्पादन लक्ष्य ६० लाख टन रखा गया। इन चारों इकाईयों मे क्रमशः

जर्मनी, सोवियत रूस, ब्रिटेन तथा रूस से वैज्ञानिक, तकनीकी तथा ग्राथिक सहायता प्राप्त हुई है। चौथी पंचवर्षीय योजनाकाल में रूस की सहायता से बोकारो लोह उद्योग स्थापित किया गया। इसको बोकारो स्टील लि० के नाम से पुकारा जाता है तथा इसका प्रथम चरण १९७१ तक पूरा हो गया। निम्न तालिका में भारत के निजी तथा सरकारी क्षेत्रों के कारखानों के उत्पादन को दिखाया गया है।

तैयार इस्पात उत्पादन (००० टनों में)

तालिका १७

कारखाने का नाम	१९६०-६१	१९६३-६४	१९६५-६६	१९७१-७२
(१) टाटा लोह एवं इस्पात कारखाना	८२७	१०३५	१०८४	२०००
(२) भारतीय लोह एवं इस्पात कारखाना	४७२	६५२	६२३	१०००
(३) भद्रावती लोह एवं इस्पात कारखाना	३९	४१	४६	७७
(४) रूरकेला लोह एवं इस्पात कारखाना	३०	५६८	७८२	१०००
(५) भिलाई लोह-इस्पात कारखाना	२४	६५८	७३५	१९५३
(६) दुर्गापुर लोह एवं इस्पात कारखाना	२	३८४	५३२	७००
(७) बोकारो स्टील लिमिटेड	—	—	—	१७

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में औद्योगिक क्रान्ति के कारण इस्पात की माँग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। भारत कुछ विशेष किस्म के लोहे और लोह-निर्मित चीजों को जापान, पं. जर्मनी, रूस तथा सं. रा. अमेरिका आदि से आयात करता है। इसके बदले में अफ्रीका के कुछ विकासशील देशों को लोहे का निर्यात भी करता है। इस आयात-निर्यात को निम्न तालिका में दिखाया गया है :

तालिका १८

(करोड रुपयों मे)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९६०-६१	१२५.२	१५.३
१९६१-६२	१०६.५	१६.०
१९६२-६३	६४.७	४.३
१९६३-६४	६३.७	६.०
१९६४-६५	१०६.४	१०.३
१९६५-६६	६८.०	१२.४
१९६६-६७	६१.०	२४.३
१९६८-६९	८८.७६	७.०

१	२	३
१९७१–७२	२३७.६	१.६६
१९७२–७३	२१७.१	१.२ (स्टील स्क्रैप)

भारत में लोहा उद्योग बराबर विकसित हो रहा है और कारखानों की संख्या, उत्पादन क्षमता तथा उत्पादन निरन्तर बढ़ रहा है फिर भी देश की अत्यधिक जनसंख्या, कृषि प्रधानता, लोगों की गरीबी, उद्योगों की अविकसित स्थिति, वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के अभाव पूंजी की कमी तथा सरकार की औद्योगिक नीति की अस्थिरता आदि के कारण विश्व के अन्य देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति लोहा तथा लोहनिर्मित वस्तुओं के उपयोग की मात्रा की भारी कमी है, जिसको निम्न तालिका में दिखाया गया है :

प्रति व्यक्ति लोहा उपयोग

तालिका ११

(कि० ग्राम)

देश	१९६५	१९७१
सं. रा. अमेरिका	६५६	६१८
प. जर्मनी	५४०	५६२
चेकोस्लोवाकिया	५२४	४५२
ब्रिटेन	४२४	४५२
सोवियत रूस	३५५	४१६
जापान	३००	४८३
भारत	१६	२८

उद्योगों का स्थानीयकरण

लोहा एवं इस्पात उद्योग 'भार ह्रास मूलक उद्योग' होने के कारण केवल कच्चे माल-लौह अयस्क एवं कोयले की प्राप्ति के क्षेत्रों में ही विकसित किया जा सकता है। टैरिफ बोर्ड के निश्चयानुसार १ टन शुद्ध इस्पात प्राप्त करने के लिए २ टन कच्चे माल १½ टन कोकिंग कोल और १½ टन अन्य कच्चे माल—मैंगनीज तथा चूना, आदि की आवश्यकता पड़ती है। भारत का लोहा उद्योग इसी नियम से अनुमानित होता है और लगभग सभी लौह उद्योग इन्हीं कच्चे मालों की प्राप्ति के क्षेत्रों में स्थित है। लोहा एवं इस्पात उद्योग केन्द्रों की स्थिति को चित्र ४४ में दिखाया गया है।

भारतीय लोहा और इस्पात का कारखाना—यह कलकत्ता से २२५ कि. मी. उत्तर-पश्चिम में लोहे कोयले के क्षेत्रों के निकट दामोदर की सहायक, बराकर नदी पर सन् १८७१–७२ में स्थापित किया गया था। इसकी एक दूसरी शाखा कुल्टी से केवल १४

कि. मी. दूर बर्नपुर में स्थित है। जैसाकि ऊपर कहा गया है दोनों स्थानों की इकाईयाँ एक ही प्रबन्ध मे हैं। गुआ, बर्योफर, मयूरभंज तथा कोल्हान से लोहा, रामनगर, जीतपुर, नुनोदिह (झरिया) की खानो से कोयला, बिसरा (गंगपुर) से चूना पत्थर, दामोदर तथा उसकी सहायक नदी बराकर से इस इकाई को पर्याप्त पानी प्राप्त होता है। यह पाँच विभिन्न खंडों में विभक्त है। इसमें ढलाई का लोहा, नल, रेल के स्लीपर आदि बनाये जाते हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस कारखाने को भी विकास कार्यक्रम मे रखा गया है और इसकी उत्पादन क्षमता बढ़ाकर ८ लाख टन करने की योजना है।

टाटा लोहा एवं इस्पात कारखाना—इस औद्योगिक इकाई को लोहा गुरु महिसानी (१०० कि. मी.) नोवामंडी, बादाम पहाड़ तथा सुलाईपट से, कोयला झरिया (१०० कि. मी.), चूना बिरमित्रपुर, हाथीबारी, बिसरा, कटनी, बाराद्वार से, डोलोमाइट तथा मैंगनीज समीपवर्ती क्षेत्रों से, स्वर्ण रेखा नदी जिसकी लगभग ८ कि. मी. लम्बी घाटी मे यह औद्योगिक इकाई स्थित है, जल प्राप्त होता है। इस इकाई मे गर्डर, रेल के पहिए, पटरियाँ, स्लीपर, चादरें, फिसप्लेट तथा सलाखें बनाई जाती हैं। इसके आसपास एग्रिको कम्पनी, टाटा फाउन्ड्री, जमशेदपुर इंजीनियरिंग मशीन कम्पनी तथा टिन प्लेट के अन्य कारखानें भी स्थापित हो गये हैं। यह शहर देश के अन्य मार्गों से वायुयान, सड़क तथा रेल मार्गों द्वारा जुड़ा है। इस कारखाने का विस्तार कार्यक्रम चल रहा है जिस पर लगभग ८५ करोड़ रुपये के व्यय होने की सम्भावना है। इसकी उत्पादन क्षमता इस तरह १५ लाख टन वार्षिक हो जाने की सम्भावना है।

भद्रावती लोहा एवं इस्पात लिमिटेड—इसकी स्थापना कर्नाटक राज्य के भद्रावती नामक स्थान पर भद्रानदी की १३ कि. मी. चौड़ी घाटी मे सन् १९२३ में की गयी थी। इस उद्योग को यातायात तथा भूमि की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। बाबाबूदन की पहाड़ियों (४२ कि. मी.) से कच्चा लोहा तथा भाडीगुडा (२१ कि. मी.) से चूना पत्थर आता है। कोयले के स्थान पर लकडी का कोयला तथा जल विद्युत से शक्ति का काम लिया जाता है। इसके विस्तार कार्यक्रम के अनुसार उत्पादन क्षमता बढ़कर १ लाख टन हो जाएगी।

भिलाई लोह-इस्पात कारखाना—इस कारखाने की स्थापना सोवियत रूस की सहायता मे सार्वजनिक क्षेत्र मे भिलाई नामक स्थान पर रायपुर (म. प्र.) से ३५ कि. मी. पश्चिम में दुर्ग-रायपुर रेलमार्ग पर की गयी है। कच्चा लोहा राजहरा पहाड़ियों (३२ कि. मी.), कोकिंग कोल झरिया तथा कोरबा (२०० कि. मी.), बिजली (६००० कि. वा.) कोरबा तापशक्तिगृह से, जल तदुला नहर से, चूना दुर्ग (रायपुर), डोलामाइट बिलासपुर तथा रायपुर जिलो से उपलब्ध होता है। इस कारखाने का निर्माण सन् १९५७ में प्रारंभ हो गया था। इसकी प्रारम्भिक लागत एवं उत्पादन लगभग १३१ करोड रुपये तथा १० लाख टन इस्पात था। सन् १९६७ में इसका विस्तार किया गया जिसके परिणामस्वरूप इसकी उत्पादन क्षमता १० लाख टन से बढ़कर २५ लाख टन हो गई। कारखानों का व्यक्तिगत वार्षिक उत्पादन तालिका १०० में दिखाया गया है।

यहाँ रेलें, छड़े, स्लीपर, कतरनें, अमोनिया, सल्फेट बैंजोल, जिलोन, सोलवेंट, नेप्था, कार्बोलिक एसिड, एन्थ्रासीन तेल तैयार किया जाता है।

राउरकेला लोहा एवं इस्पात उद्योग—यह कारखाना उड़ीसा के राउरकेला नामक स्थान पर कलकत्ता से ४३० कि. मी. दूर कलकत्ता-बम्बई रेलमार्ग पर सांख और कोइल नदियों के बीच, जर्मनी की सहायता से सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया गया है। बोनाई में तालडीह (८० कि. मी.) से कच्चा लोहा मंगाया जाता है। बरसुआ (७२ कि. मी.) में नई खानों का पता चला है। चूना विरमित्रपुर तथा मैंगनीज समीपस्थ क्षेत्रों से मँगाया जाता है। कोयला बोकारो तथा झरिया की खानों से क्रमशः (२४० और ३२० कि. मी.) से तथा हीराकुण्ड से विद्युत और टाटानगर की खानों से डोलामाइट प्राप्त किया जाता है। प्रारम्भ में इस कारखाने को १७० करोड़ रुपये की लागत से १० लाख टन इस्पात उत्पादन हेतु तैयार किया गया था। सन् १९६८ में ११.६६ इस्पात तथा १९७० में १०.७७ लाख इस्पात पिण्ड बनाये गये थे। सभी इकाइयों में एक साथ कार्यारम्भ हो जाने के कारण इस्पात उत्पादन बढ़कर अब १८ लाख टन हो गया है।

यहाँ अलग-अलग मोटाई की प्लेटें, चादरें, टिन चादरें, पत्तियाँ जहाज, रेल के डिब्बों के निर्माण योग्य चादरें और पाइप का उत्पादन होता है। इनके अतिरिक्त वाशतेल, एथेसिन तेल, प्राणविक तेल तथा हल्के तेल भी बनाये जाते हैं। इस कारखाने में २० ब्लास्ट फरनेस, ४ क्षुमी भट्टियाँ, स्लेविंग मिल तथा प्लेट मिलें भी कार्य कर रही हैं। यह सन् १९५९ से कार्य कर रहा है।

दुर्गापुर लोहा एवं इस्पात कारखाना—इस उद्योग को बंगाल के दुर्गापुर नामक स्थान पर कलकत्ता से १७६ कि. मी. दूर ग्राड ट्रंक रोड पर ब्रिटेन की सहायता से सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया गया है। भारतीय तथा ब्रिटिश सरकारों की ओर से सहमति पत्र पर ३१ अक्टूबर १९५६ को हस्ताक्षर किये गये थे। इस उद्योग के लिए रानीगंज से (६२ कि. मी.), कोयला दामोदर नदी परियोजना से जलविद्युत, दुर्गापुर बाँध की नहरों से जल, गुम्रा (२४० कि. मी.) की खानों से लौह अयस, विरमित्रपुर से चूना का पत्थर प्राप्त होता है। इसकी प्रारम्भिक लागत १३८ करोड़ रु० तथा उत्पादन क्षमता १० लाख टन इस्पात की थी परन्तु क्षमता को बढ़ाकर १६ लाख टन कर दिया गया है।

यहाँ पहिये, धुरियाँ, रेल की पटरियाँ, छड़ें, टायर, अमोनिया सल्फेट, जिलोर, नेप्थलीन तथा कोलतार आदि तैयार किये जाते हैं। यह औद्योगिक काम्प्लेक्स तथा समीपवर्ती क्षेत्र मिलकर भविष्य में किसी दिन भारत का रूर तथा रूर बन सकता है।

बोकारो लोहा एवं इस्पात उद्योग—इस औद्योगिक इस्टेट को सोवियत रूस की सहायता से विकसित किया जा रहा है। प्रगति का प्रथम चरण १९७१–७२ में पूरा हो गया। पूर्ण रूप से विकसित होने पर यह सम्पूर्ण क्षेत्र एक औद्योगिक समन्वय प्रखण्ड बन जाएगा।

चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ४ और इस्पात कारखानों का निर्माण किया जा रहा है। १७ सितम्बर सन् १९७० को प्रधानमंत्री ने सलेम इस्पात कारखाने का उद्घाटन किया था। इसके अतिरिक्त कर्नाटक में हास्पेट तथा आन्ध्र व विशाखापट्टम में भी इस्पात कारखाने खोले जा रहे हैं।

सलेम इस्पात कारखाना—तमिलनाडु में प्राप्त होने वाली लौह अयस की खदानों तथा नवेली कोयले के विशाल भण्डार का उपयोग करने के लिए सलेम जिले में इस उद्योग को

तैयार इस्पात का इकाईवार उत्पादन :

तालिका १००

(000) टन

वर्ष	भिलाई	दुर्गापुर	रूरकेला	टाटा कं.	भारतीय स्टील कं.	मैसूर स्टील कं.	अन्य	योग
१९६८–६९	९०२.७	३८३.०	७३७.६	१०४८.२	५१२.४	७६.६	१२४१.१	४९०१.७
१९६९–७०	११३३.७	३९५.२	७५७.६	१००१.५	४५९.७	४०.३	१२५९.३	५०४७.५
१९७०–७१	१२७८.२	३६७.३	५९३.९	९७१.१	४६५.७	१८.१	१०३०.७	४७२५.०

स्थापित किया जा रहा है। प्रारम्भिक कार्यों जैसे भूमि अधिग्रहण एवं कारखाने की रूपरेखा आदि तैयार कर ली गई है।

हास्पेट इस्पात कारखाना—इसकी नींव प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने फरवरी १९७१ में रखी थी। यह कारखाना तुंगभद्रा नदी परियोजना के अन्तर्गत बने हुए जलाशय के दाहिनी किनारे पर स्थित हास्पेट नामक नगर में है। इस्पात कारखाने को
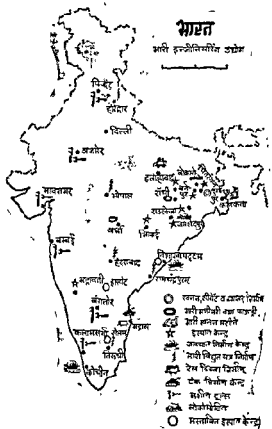
चित्र ४६

तुंगभद्रा परियोजना से जल विद्युत, बिल्लारी जिले की खानों से लोहा, मयश आदि प्राप्त होगी। मशीनों तथा इन्जीनियरिंग उद्योगों के लिए उपकरण बनाये जावेंगे।

विशाखापट्टम इस्पात कारखाना—हास्पेट कारखाने की नींव पड़ने के एक महीने पूर्व जनवरी १९७१ में प्रधानमंत्री ने इस योजना की आधारशिला रखी थी। विशाखापट्टम उत्तर में कलकत्ता तथा दक्षिण में मद्रास के बीच एक प्रसिद्ध एवं प्राकृतिक बन्दरगाह है। आन्ध्र प्रदेश में ही लोहे एवं कोयले के प्राप्त भण्डारों का उपयोग इस इस्पात कारखाने में किया जावेगा। चौथा इस्पात कारखाना विजयनगर में स्थापित किया जा रहा है।

तृतीय योजना काल में इस सम्पूर्ण उद्योग का उत्पादन लक्ष्य लगभग १०२ लाख टन रखा गया था। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु भिलाई, रूरकेला, दुर्गापुर तथा बोकारो की उत्पादन क्षमता को बढ़ाकर क्रमशः २५, १८, १६ तथा १० लाख टन कर दिया गया था। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के कारखानों की कुल उत्पादन सन् १९६६ में ६५ लाख टन इस्पात पिण्ड तथा २४ लाख टन निर्मित इस्पात थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के बाद विकास का कोई उल्लेखनीय कार्य इसलिए नहीं किया गया क्योंकि चौथी पंचवर्षीय योजना के स्थान पर एक वर्षीय तीन योजनाएँ चलती रही थीं। चौथी पंचवर्षीय योजना के अनुसार इस्पात की उत्पादन क्षमता १२० लाख टन कर दिया गया था।

लोहा एवं इस्पात उद्योग की कुछ समस्याएँ

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में सबसे अधिक स्थापित उद्योग होने के बावजूद भी इस उद्योग में मनोवाछित सफलताएँ नहीं प्राप्त हो पाई हैं। साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग तो अधिक कठिनाई एवं घाटे में चल रहे हैं। इनके कुछ कारण निम्न प्रकार हैं :

कोकिंग कोयले की कमी—लौह अयस्क को गलाने योग्य कोकिंग कोयले की कमी हमारे देश के इस्पात उद्योग के समक्ष सबसे बड़ी समस्या है। कोयले को धोकर प्रयोग करना अधिक मँहगी प्रक्रिया है। इस कमी की पूर्ति के लिए अच्छे किस्म के कोयले की तलाश एवं जल विद्युत का समुचित विकास अधिक अनुकूल होगा।

यातायात की कठिनाई—अच्छी परिवहन व्यवस्था के न होने के कारण इस उद्योग में काम आने वाले कच्चे मालों को एकत्रित करने फिर इस्पात उद्योगों में निर्मित सामग्रियों को बाजार तक पहुँचाने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। उपर्युक्त दोनों ही अवस्थाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए जल यातायात, अधिक रेल एवं सड़क मार्गों का निर्माण अधिक लाभदायक हो सकता है।

तकनीकी विशेषज्ञों की कमी—यह न केवल लोहे एवं इस्पात उद्योग के लिए वरन् अधिकांश आधुनिक उद्योगों के लिए एक समस्या है। उद्योगों की डिजाइन तैयार करना तथा संयंत्रों को चलाने आदि के लिए विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भर रहना पड़ता है।

श्रम अशान्ति—उद्योगिक विकास के लिए यह एक बड़ी समस्या है। आये दिन हड़ताल, तालाबन्दी, घेराव आदि से इस्पात उद्योग को भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। दीर्घकालीन समझौता, सामान्य रूप से नैतिक उत्थान एवं राष्ट्रीय भावना से ही इस कठिनाई पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में अप्रयुक्त क्षमता का आधिक्य—भारत सरकार ने इस उद्योग को आधारभूत उद्योग मानकर इसकी अधिकांश इकाइयों को सार्वजनिक क्षेत्र में कायम किया परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में लगाये गये लोहे एवं इस्पात उद्योगों की इतनी द्रुतगति से प्रगति नहीं हुई जितनी होने की उम्मीद की गई थी। इसके निम्न कारण हैं :

(१) सरकारी अफसरों का स्थानान्तरण तथा उनकी उद्योग के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण, अपनत्व की भावना की कमी, आदि के कारण यह उद्योग योजनानुसार प्रगति नहीं कर सका।

तालिका १०१

कम्पनी का नाम	स्थापना वर्ष	इकाइयों के स्थान	उत्पादन (000 टन)	
			१९५७	१९७०–७१
(१) अल्युमूनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया	१९३७	आसनसोल के निकट जे. के. नगर (प. बंगाल)	६.८०	१३.००
(२) इण्डियन अल्युमूनियम लि०	१९३८	१. मुरी (बिहार) २. अलवाये (केरल) ३. वेलूर (प० बंगाल) ४. हीराकुड (उड़ीसा)	४०.००	१४०.००
(३) हिन्दुस्तान अल्युमूनियम कोरपोरेशन	१९६०	रेनूकट (मिर्जापुर) पिपरी (उ. प्र.)	७२.००	१२०.००
(४) मद्रास अल्युमूनियम	१९६१	मेट्टूर (तमिलनाडु)	१२.५०	२५.००
(५) मेसर्स तेन्दूलकर इण्डस्ट्रीज	१९६१	कोयना (महाराष्ट्र)	१०.००	१२.००

(२) उत्साही सरकारी कर्मचारियों की कमी है। अधिकतर उनमें से वेतनभोगी है, जो सुख एवं आराम की वस्तुओं के संकलन और संचय में लगे हुए हैं।
(३) सरकारी अफसरों में व्यापारिक प्रवृत्ति की कमी है। उन्हें लाभ, हानि तथा बाजार की गतिविधियों की जानकारी कम होती है।
(४) श्रमिक भ्रमणशील नहीं होते हैं। उन्हें घर पर रहने की एक बीमारी होती है। इसलिए अधिक परिश्रम, लगन तथा उत्साह से कार्य नहीं कर पाते हैं।
(५) वित्तीय समस्यायें, विदेशी मुद्रा की कठिनाई, कोकिंग कोयले की सम्भावित कमी, परिवहन की कठिनाइयां, अन्य उद्योगों की भाँति यहाँ भी प्रगति के मार्ग में बाधक हैं।

अल्युमुनियम उद्योग

अल्युमुनियम अलौह धातुओं में एक प्रमुख स्थान रखता है और बाक्साइट नामक धातु से प्राप्त किया जाता है। बाक्साइट को कच्ची धातु को पिघला कर, उसे अति-विशुद्ध कर सफेद रंग का अलुमीना प्राप्त किया जाता है। इस उद्योग की स्थापना में शक्ति के स्रोतों—कोयला तथा विद्युत का विशेष हाथ होता है। क्योंकि २ टन अल्युमुनियम तैयार करने के लिए ५ टन बाक्साइट तथा २००० से २४०० कि. वाट विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ०.५० टन पैट्रोलियम, ०.५० टन कोक ०.३० चूना तथा ०.२२ टन कास्टिक सोडा की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप इन कारखानों को अधिकतर शक्ति-केन्द्रों पर ही स्थापित करना अधिक लाभदायक होता है।

इस उद्योग का विकास द्वितीय महायुद्ध के समय हुआ। विदेशों में इसके बढ़ते हुए उत्पादन तथा प्रयोग को देखकर सर्वप्रथम सन् १९३७ में अल्युमुनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया की स्थापना जे. के. नगर में की गई। जिसके बाद से इस उद्योग में काफी प्रगति हुई जिसको तालिका १०१ में अंकित किया गया है।

सन् १९५१ में सम्पूर्ण भारत में अल्युमूनियम के उपयोग की मात्रा केवल १२,००० टन थी जो बढ़कर १९६७ में १,२५००० टन तथा चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक ४,२०,००० टन हो गई। उपभोग की वृद्धि की ही तरह इसके उत्पादन में भी ऐतिहासिक प्रगति तो हुई है परन्तु अभी भारत को इसमें स्वावलंबन प्राप्त न होने के कारण अल्युमूनियम के लिए विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है। आयात पर खर्च किये जाने वाली धनराशि को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

कुल राष्ट्रीय उत्पादन तथा आयात मूल्य

तालिका १०२

वर्ष	उत्पादन (000 टनों)	आयात (करोड़ रुपया)
१९५१	३.५०	१.९०
१९५६	६.५०	—
१९६१	१९.००	७.७०

१	२	३
१९६६	७४.००	१४.३६
१९६७	९६.४०	१७.६०
१९६८	१२०.००	३.५०
१९६९	१२५.००	१५.०८
१९७४	२२०.०० अनुमानित	

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक अथवा उसके आगे आने वाले कुछ वर्षों तक भारत अल्युमूनियम के उत्पादन में आत्म निर्भर नहीं हो सकेगा। भारत इस धातु तथा धातु के बने सामानों को स. रा. अमेरिका, जमैका, कनाडा, नार्वे, फ्रांस तथा युगोस्लाविया से आयात करता है।

औद्योगिक इकाइयों का स्थानीयकरण

अल्युमूनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया—यह आसनसोल (पं. बंगाल) के जे. के. नगर में स्थित है। यहाँ एक ही स्थान पर अल्युमिना तथा अल्युमूनियम के पिंड तथा चादरें बनाई जाती हैं। यह स्वतन्त्र और एक ही यूनिट है। लोहारडागा से बाक्साइट तथा स्थानीय खानों से इस इकाई को कोयला प्राप्त होता है। इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता ६,००० टन है।

इंडियन अल्युमूनियम कम्पनी—बाक्साइट लोहारडागा (बिहार) (३२ कि. मि.) की खानों से तथा कोयला दामोदर घाटी से प्राप्त किया जाता है। धातु शोधनोपरान्त अल्युमिना अलवाये (केरल) (२४०० कि. मी.) भेजा जाता है। फिर वहाँ अल्युमूनियम के पिंड बनाये जाते हैं। इन पिण्डों को पुनः चादरों में बदलने के लिए अलवाये (केरल) से बेलूर (प. बंगाल) जो लगभग २५०० कि. मी. की दूरी पर स्थित है, भेजा जाता है। इसी कम्पनी की चौथी यूनिट हीराकुड में भी है, जो मुरी से अल्युमिना और स्थानीय शक्ति के उपयोग से अल्युमूनियम बनाती है इस इकाई की वर्तमान वार्षिक उत्पादन क्षमता ६५८५० टन की है।

हिन्दुस्तान अल्युमूनियम कारपोरेशन—यह मिर्जापुर (उ. प्र.) में सोन नदी की घाटी में पिपरी के पास रेनूकूट नामक स्थान पर स्थित है। कम्पनी सर्वसाधन सम्पन्न है। बिहार से बाक्साइट, रिहन्द से सबसे सस्ती विद्युत तथा विन्ध्याचल क्षेत्र से चूने का पत्थर, कच्चे माल के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। इसका वर्तमान उत्पादन क्षमता ७५,००० टन प्रतिवर्ष की है।

मद्रास अल्युमूनियम कम्पनी—तमिलनाडु में स्थित शिवराय पर्वतों से बाक्साइट और चूने का पत्थर एक साथ उपलब्ध होते हैं। इस उद्योग को चलाने के लिए मैट्टूर बाँध से विद्युत शक्ति प्राप्त की जाती है। इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता १४००० टन हैं।

कोरबा तथा कोयना—नामक स्थानों पर सार्वजनिक क्षेत्र में क्रमशः हंगरी और प. जर्मनी की सहायता से एक-एक उद्योग संस्थापित करने की योजना है। प्रथम चरण में

कोरबा की उत्पादन क्षमता १००,००० टन और कोयना की ५०, ०००टन प्रति वर्ष अल्युमूनियम की होगी। इनमें रोलिंग मिल्स तथा धातु शोधन संयंत्र आदि भी स्थापित किये जावेंगे।

उद्योग की कठिनाइयाँ

भारत में कच्चा माल विदेशों की अपेक्षा महंगा (४३०० रु० प्रति टन विदेशों में तथा १४,००० रु० प्रति टन भारत) मिलता है। भारतीय उद्योगों की वार्षिक क्षमता १५,००० से ६०,००० टन तक है जबकि प्रत्येक विदेशी कारखानें का वार्षिक उत्पादन १,५०,००० टन तथा उनके आसपास धातु शोधन की छोटी यूनिटों के होने के कारण उत्पादन व्यय भी अपेक्षाकृत कम होता है।

इसका उपयोग वायुयान निर्माण, मोटर निर्माण तथा भवन निर्माण आदि कार्यों में किया जाता है। चाय, सिगरेट व चाकलेट उद्योगों मे इसकी बहुत ही पतली झिल्लियाँ काम में लाई जाती हैं। कनाडा में इस धातु का प्रयोग नदियों के ऊपर पुल बनाने तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में भवन निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में भी किया जाता है।

उद्योग की कठिनाइयों के समाधान के उपाय

औद्योगिक इकाइयों को कच्चा माल सस्ती दरों पर उपलब्ध कराया जावे और छोटी-छोटी यूनिटों के स्थान पर बड़ी इकाइयाँ कायम की जाएँ ताकि उत्पादन की सभी प्रक्रियाएँ एक ही स्थान पर हो सकें।

भारत सरकार ने अल्युमूनियम उपयोग तथा डाकुमेन्टेशन केन्द्रों की स्थापना की बात सोच रही है। इस केन्द्र में अल्युमूनियम उद्योग की समस्याओं की जाँच तथा अनुसंधान को कार्यान्वित किए जाने पर विशेष बल दिया जावेगा। कोरबा (मध्यप्रदेश) में अल्युमूनियम अनुसंधान केन्द्र में अल्युमिना तथा अल्युमूनियम के विकास एवं उत्पादन अनुसंधान कार्य किए जावेंगे।

सीमेंट उद्योग

ऐतिहासिक परिचर्चा एवं उत्पादन

भारत का यह अपेक्षाकृत नया उद्योग है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों की शहरी सभ्यता में निर्मित मकानों तथा अशोक महान् द्वारा निर्मित सारनाथ तथा अन्य स्थानों पर स्थित स्तम्भों में सीमेन्ट अथवा उसी से मिलते जुलते पदार्थों का इस्तेमाल किया गया है। दिल्ली के पुराने किले, ग्रांड ट्रंक रोड के किनारे शेरशाह सूरी द्वारा बनवाये गये सरायों, डाकघरों, कब्रों तथा राजस्थान में निर्मित ऐतिहासिक किलों में निश्चित रूप से सीमेंट जैसे ही पदार्थों का इस्तेमाल किया गया है। उनका नाम विभिन्न कालों में कुछ भी रहा हो किन्तु सभ्यता के विकास, नये-नये मकानों, सार्वजनिक भवनों, सड़कों, बाँधों, हवाई पट्टियों तथा युद्धों की नवीन आवश्यकताओं के निरंतर बढ़ते रहने के कारण इस उद्योग का आधुनिक और वैज्ञानिक ढंग से विकास करना नितान्त आवश्यक हो गया था। आधुनिक ढंग का उद्योग सर्वप्रथम सन् १९०४ में पोर्ट लैंण्ड सीमेन्ट के नाम से तमिलनाडु में आरम्भ किया गया। प्रथम

महायुद्ध से इस उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला। फैक्टरियों की संख्या बढ़ कर ८ हो गई। उस समय से उनकी संख्या मे निरन्तर वृद्धि होती रही क्योंकि युद्ध के पश्चात् भवन-निर्माण, सड़क, पुल, बाँध, कारखानों, हवाई अड्डों का बड़ी जोरों से प्रयोग और निर्माण प्रारंभ हो गया और सबमें सीमेंट की आवश्यकता होती है। इस उद्योग मे १२५ करोड़ की पूँजी से ४० कारखानों में ६ लाख से अधिक श्रमिक दिन रात कार्यरत हैं। सन् १९१२-१३ में विशेष जोश-खरोश से एक साथ कई उद्योग जैसे इण्डियन सीमेंट कम्पनी, कटनी सीमेंट एवं बून्दी पोर्ट लैंड सीमेंट कम्पनी आदि आधुनिकतम कम्पनियाँ देश के विभिन्न भागों में स्थापित की गई। चित्र ४५ मे सीमेन्ट उद्योग के वितरण को दिखाया गया है।

प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ। उद्योग को संरक्षण मिला। फलस्वरूप सन् १९१९-२२ के बीच ६ नये कारखाने खोले गये। सन १९२३-२४ मे दो और नई कम्पनियों की स्थापना मद्रास तथा शाहाबाद (बिहार) मे की गई। सन् १९३६ में श्री रामकृष्ण डालमिया ने ५ करोड़ रुपये की अधिकृत पूँजी से डालमिया सीमेंट लिमिटेड की स्थापना की। सितम्बर सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया जो इस उद्योग के लिए दूसरा वरदान साबित हुआ। सन् १९४५ मे युद्धोपरान्त सीमेंट की माँग मे कमी तो महसूस की गई किन्तु सरकार ने बिक्री तथा वितरण पर से अपना नियंत्रण हटा लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने, नये-नये शहरो में नई-नई बस्तियाँ बनवाने, शरणार्थियों के लिए शिविरों आदि के निर्माण कार्यों के कारण सीमेंट की माँग अधिक बढ़ गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्दर उत्पादन ४.६० मिलियन टन, दूसरी पचवर्षीय योजना में ७.८ मि. टन तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्दर यह उत्पादन बढ़कर १२ मि. टन हो गया। हाल ही में योजना आयोग ने इस उद्योग में और उत्पादन वृद्धि की मात्रा प्रदान कर दी है। यदि भारतीय सीमेंट आयोग चाहे तो उत्पादन बढ़ा सकता है। क्योंकि सन् १९७४ के अन्त तक सीमेन्ट के वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य २१३.०५ लाख टन रखा गया है।

इस उद्योग की प्रगति के लिए संरक्षण, विकास तथा प्रोत्साहन आदि के बावजूद भी यहाँ प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष सीमेंट की खपत बहुत कम है। जबकि अन्य देश इस समय अपनी विकास और खपत की चरम सीमा पर पहुँचे हुये हैं। विश्व के कुछ देशों में होने वाली प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष सीमेन्ट की खपत को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष सीमेन्ट की खपत (किलोग्राम)

तालिका १०३

देश	खपत	देश	खपत
स्वीटजरलैंड	७१५	प. जर्मनी	५६३
बेल्जियम	४६३	सं. राज्य अमेरिका	३४५
फ्रांस	४५७	जापान	३६५
कनाडा	३६८	भारत	२२
यूनाइटेड किंगडम	३०५		

भारत सम्पूर्ण संसार का २% सीमेन्ट पैदा करता है। विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में भारत का यह उत्पादन बड़ा ही कम है। जबकि इस समय पूरे भारत में ५७ फैक्टरियाँ उत्पादनरत हैं।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है व्यापारिक ढंग पर यह उद्योग भारत में काफी नया है। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के काफी वर्षों बाद तक सीमेंट ५ लाख रुपये मूल्य के बराबर स्वीडन, सं. रा. अमेरिका, प. जर्मनी तथा पाकिस्तान जैसे देशों से आयात किया जाता था। परन्तु भारतीय उद्योग के योजनाबद्ध तथा वैज्ञानिक विकास की तेज गति के कारण अब सम्पूर्ण स्थिति बदल गई है और भारत नवोदित देशों जैसे पाकिस्तान, श्रीलंका, कम्बोडिया, वियतनाम आदि देशों को लगभग २.५ करोड़ रुपये की सीमेंट निर्यात करने लगा है।

सीमेन्ट उद्योग का स्थानीयकरण

सीमेंट बनाने में जिन वस्तुओं का प्रयोग होता है वे बहुत भारी और अपेक्षाकृत सस्ती होती हैं। चूना पत्थर तथा कोयला उनमें प्रधान हैं। इसलिए इनको ढोने और खुदाई की परेशानियों से बचने के लिए अधिकांश सीमेंट उद्योग चूना के पत्थरों के खानों के समीप स्थित हैं। वैसे तो उत्तम किस्म का चूना भारत के अनेक भागों में पाया जाता है परन्तु इसकी सबसे प्रसिद्ध पेटी विन्ध्याचल और कैमूर की लगातार शृंखला है जो पूर्व में विन्ध्यन कैमूर स्कार्प तक फैली है। सोन नदी इसकी सबसे पूर्वी सीमा बनाती है। इसी विस्तृत पेटी में उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार के लगभग सभी उद्योग स्थित हैं। भारतीय सीमेंट उद्योगों, जो बिहार में स्थित हैं, को छोड़कर कोयले के लिए कठिनाई उठानी पड़ती है। क्योंकि बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश के समय क्षेत्र ही कोयले के लिए प्रसिद्ध हैं। जिप्सम की कमी जोधपुर तथा बीकानेर से पूरी की जाती है। सौराष्ट्र सीमेंट उद्योग जामनगर से जिप्सम मगवाते हैं। वेबर के शब्दों में इस उद्योग में काम आने वाले सभी कच्चा माल भारी तथा भार खोने वाले पदार्थ होते हैं इसलिए कच्चे माल के प्राप्ति स्थान सीमेन्ट उद्योग को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

विभिन्न राज्यों में सीमेंट के कारखानों का वितरण तथा उनका उत्पादन

तालिका ४

राज्य	मिलों की संख्या	कुल उत्पादन (000) टन १९७०	केन्द्र
बिहार	७	२१६४.४	डालमिया नगर, जपला, खलारी, रोहतास चोवासा, सिंदरी तथा बनजारी।
आन्ध्र प्रदेश	६	१६५३.६	माचरेला, मांचेरियल, पनयाम, कृष्णा, विजयवाड़ा, रामगुन्डम तथा वुगनपल्ली।
गुजरात	६	२०१६.०	सिक्का, रानावाव, अहमदाबाद, द्वारिका, पोरबन्दर तथा सिवालिया।
तमिलनाडु	७	२६६७.०	मदूकराई, तलाई, डालमियापुरम्, अनगू

१	२	३	४
			बम, शकरीदुर्ग, तुलूकापट्टी तथा करूर ।
राजस्थान	५	१७४२.०	लाखेरी, सवाई माधोपुर, चित्तौडगढ़, उदयपुर तथा ब्यावर ।
कर्नाटक	६	१७०६.०	बागलकोट, भद्रावती, शाहाबाद, कुरकुन्टा वाडी तथा अमासन्द्रा ।
मध्य प्रदेश	६	२५६२.०	कटनी, बनमोर, कैमोर, सतना, मन्धार, भिलाई ।
पंजाब-हरियाना	२	४६३.०	सूरजपुर (पंजाब) डालमिया दादरी (हरियाना)
केरल	१	५०.००	कोट्टायम
उड़ीसा	२	—	राजगगपुर, बारागढ (हीराकुंड)
उत्तरप्रदेश	२	६८०.००	चुर्क, डाला
हिमाचलप्रदेश	१	८२.०	पोन्टा
आसाम	२	—	चेरापूंजी

सीमेन्ट बनाने की विधि

पहले चूना पत्थर के पाउडर को कुछ 'मिट्टी' तथा 'शेल' के साथ मिलाते हैं। फिर खूब गर्म करके सीमेंट बनाते हैं। मिश्रण में ३/४ केलशियम कारबोनेट, १/४ मिट्टी तथा थोड़ी सी शैलखरी मिलाते हैं। १ टन सीमेंट तैयार करने के लिए १.६ टन चूना पत्थर, ०.३० टन जिप्सम, ४% शैलखरी तथा ३०% कोयले की आवश्यकता पड़ती है। इन कच्चे मालों के अतिरिक्त शक्ति के साधन, बाजार की निकटता तथा परिवहन की सुविधाएँ भी होनी चाहिए। सीमेंट गीली तथा सूखी दोनों ही विधियों से बनाई जाती हैं।

चौथी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य ३ करोड़ मीट्रिक टन सीमेंट उत्पादन का था। सन् १९६५ से सीमेंट उद्योग निगम इस उद्योग के विकास, विस्तार तथा अन्य मामलों की देख-रेख करता है।

पंचवर्षीय योजनाओं में सीमेन्ट उद्योग की प्रगति

अन्य उद्योगों की भाँति सीमेन्ट उद्योग के विकासार्थ दोनों ही नीतियाँ—पुराने मिलों का विस्तार तथा नये कारखानों की स्थापना, अपनाई गई। इनके अन्तर्गत ११ कारखानों का विस्तार तथा ६ नये कारखानों की स्थापना का कार्य प्रथम पंचवर्षीय योजना में सम्पन्न किया गया। इस प्रकार उत्पादन २० लाख टन से बढ़कर ४५ लाख टन तथा कारखानों की संख्या २७ हो गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में पुन. ६ नये कारखानों की स्थापना की गई। इस प्रकार उत्पादन और कारखानों की संख्या के क्रमिक विकास को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

सीमेन्ट कारखानों की संख्या व उत्पादन

तालिका १०५

वर्ष	कारखानों की संख्या	उत्पादन (लाख टन)
१९५०-५१	२१	२७.००
१९५५-५६	२७	
१९६०-६१	३३	८०.००
१९६५-६६	३८	१०८.००
१९६६-६७	३८	१११.००
१९६९-७०	३९	१३८.००
१९७०-७१	४०	१४५.००
१९७२-७३	५०	१५५.००
१९७३-७४	५७	२१३.०० (लक्ष्य)

सीमेन्ट उद्योग की कठिनाइयाँ एवं समाधान

यह भी मारखोने वाले पदार्थों का उपयोग करता है इसलिए इसकी कठिनाइयाँ चीनी, एवं इस्पात उद्योगों से लगभग मिलती जुलती हैं। अब तक इसकी प्रगति असंतोषजनक रही है। इसके लिए निम्न मुख्य कारण उत्तरदायी हैं।

मशीनों एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव—देश का भारी मशीन निर्माण उद्योग यहाँ की माँगों को पूरा करने में असमर्थ रहा है। अब तक इसकी डिजाइन एवं मशीनों का आयात अधिक विदेशी मुद्रा देकर करना पड़ता है :

पूँजी की कमी—देश के उद्योगों में पूँजी एक बड़ी समस्या है जिसके प्रभाव से सीमेन्ट उद्योग भी अछूता नहीं है और वर्तमान घाटे के बजट में पर्याप्त धनराशि सीमेन्ट उद्योग के विकासार्थ व्यय नहीं किया जाता है।

क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना, सरकार की दोषपूर्ण नीति, यातायात की कठिनाइयाँ, उस पर अधिक खर्च, शक्ति संसाधनों का अभाव, विकास की मद दर, तथा पड़ोसी राष्ट्रों से मैत्री भावना का अभाव सीमेन्ट उद्योग के पिछड़पन के अन्य कारण हैं। चूँकि देश में सीमेन्ट का उत्पादन माँग की तुलना में बहुत कम होता है इसलिए देश की माँग के अनुकूल उत्पादन बढ़ाने के लिए पुरानी इकाइयों को प्रोत्साहन, विकास रिबेट वृद्धि, मशीनरी निर्माण, यातायात तथा विद्युत संसाधनों का विकास, कोयले की अनवरत पूर्ति, अतिरिक्त उत्पादन सहायता तथा मूल्य निर्धारण छूट जैसे उपायों को काम में लाया जा सकता है।

लाख उद्योग

भारत संसार में सबसे अधिक लाख पैदा करता है। रेशम के कीड़ों की भाँति लाख का भी एक कीड़ा होता है। यह कीड़ा खैर, अरहर, सीमू, कोरन, पीपल, बबूल, गूलर, बरगद तथा पलाश के वृक्षों की शाखाओं पर समुद्र तल से ३०० मीटर की ऊँचाई पर जहाँ का

तापमान १२° से. ग्रे. तथा औसत वार्षिक वर्षा १५० से. मी. से कम हो—अच्छी तरह पनपते हैं। प्रारंभिक मानसून महीनो जैसे जून, जुलाई, अक्टूबर में नये वृक्षों पर लाख के कीड़ो को फैलाया जाता है। इन कीड़ों की विष्ठा के रूप में लाल रसीला पदार्थ निकलता है। यही विष्ठा लाख उत्पादन में कच्चे माल का काम करती है। आधुनिक उद्योगों में इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। यह वर्षा के ४ महीनो में प्राप्त किया जाता है। हिन्दी महीनो के आधार पर इसका नामकरण भी किया जाता है। बैसाखी ६२%, कार्तिकी २३% जैष्ठी तथा अगहनी १५% लाख पाया जाता है। लाख उत्पादन पर भारत का एकाधिकार (६०%) था परन्तु अब कुछ वर्षों से विश्व के अन्य देश भी इसका उत्पादन करने लगे हैं जिसके कारण यह प्रतिशत अब घटकर केवल ५०-६०% ही रह गया है। इसका उत्पादन छोटी-छोटी फैक्ट्रियों मे होता है। इस समय देश में कुल मिलाकर ३५० फैक्ट्रियाँ हैं जिनमे से अधिकाश बिहार राज्य में स्थित हैं। देश के सम्पूर्ण उत्पादन का ५०% लाख छोटा नागपुर, संथाल परगना तथा गया जिलो (बिहार) मे पैदा किया जाता है। मुर्शिदाबाद, माल्दा, तथा बाकुरा, (प. बगाल) जबलपुर, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) खासी, जयंतिया तथा गारो पहाड़ियों (आसाम) के अलावा महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश में भी लाख पैदा किया जाता है। देश में राज्यानुसार औसत उत्पादन का अनुमान निम्न तालिका मे दिखाया गया है :

राज्यानुसार औसत उत्पादन (१९७०-७१)

तालिका १०६ (क्विटल)

बिहार	१,६८,७२७	उत्तर प्रदेश	१६,७०७
मध्य प्रदेश	६१,८८२	उड़ीसा	७,१३६
प. बंगाल	२८,२९२	गुजरात	७६८
महाराष्ट्र	६,१२१	अन्य	१,६०३

भारत मे औसत लाख उत्पादन (१९६५-७०) २८४५३६ क्विटल था। सन् १९७४ मे इसके उत्पादन का लक्ष्य ५२ हजार मी. टन रखा गया है। यह घुलनशील, विद्युत निरोधक तथा अनेकानेक उद्योगो जैसे ग्रामाफोन रीकार्ड, चपडी, मोमबत्ती, जवाहरात की जुड़ाई, विद्युत निरोधक वस्त्रो तथा रगीन पेन्सिलें बनाने आदि में किया जाता है। भारतीय लाख का अधिकाश भाग ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी, हांगकांग, इटली तथा स्वीडन के अलावा अनेक छोटे-छोटे देशों को निर्यात किया जाता है। भारतीय लाख का रूस धीरे-धीरे सबसे बडा ग्राहक बनता जा रहा है। भारतीय लाख निर्यात को निम्न तालिका मे दिखाया गया है :

लाख निर्यात व्यापार

तालिका १०७

देश	सेलाक एवं बुटनलाक		सेलाख	
	१९६८-६९	१९६९-७०	१९६८-६९	१९६९-७०
ब्रिटेन	१७०	१६.०	५.४	५.६

१	२	३	४	५
सं. रा. अमेरिका	१७.०	२१.०	१२.२	१४.२
रूस	२०.०	२६ ०	—	—
प. जर्मनी	३.५	३.३	२२.३	१६.१
ब्राजील	५.८	२.६	—	—
आस्ट्रेलिया	३.८	३.५	—	—
फ्रांस	४.६	३.२	—	—
अन्य देश	५१.७	४४.८	२.५	१.१
योग	१२४.५	१२५.०	४२.४	३७.१
मूल्य रुपयों में	४१३३१२३७	३६०६०६२०	७६७०८६४	७४७६३६६

लाख के उत्पादन, उपयोग तथा निर्यात को बढ़ावा देने हेतु सेलाख विशेषज्ञ विकास समिति का गठन किया गया है। कोआपरेटिव मारकेटिंग फेडरेशन तथा भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, राँची (बिहार) आदि निरन्तर कार्यरत हैं।

कागज उद्योग

भारत में लेखन एवं पठन का कार्य बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। ताम्र पत्र, भोज पत्र तथा शिलाओं पर उत्कीर्ण पौराणिक पुस्तकों का लेखन कार्य संपन्न किया गया है। सन् १७१६ तक का प्रयास छिटपुट तथा कुटीर उद्योगों के रूप में ही विकसित हो पाया था। वैज्ञानिक ढंग से कागज का निर्माण डा. विलियम कोर द्वारा मद्रास में सन् १७१६ में प्रारंभ किया गया। इस समय पूरे देश में कागज की ५६ मिलें हैं। निम्न तालिका से कागज के ऐतिहासिक विकास का पूरा पता चलता है।

हर किस्म के कागज का उत्पादन

तालिका १०८ (००० टन)

वर्ष	१९६२	१९६४	१९६६	१९६८	१९७०	चौथी पंचवर्षीय योजना
१. प्रिंटिंग तथा लिखन कागज	२३४.४	३२०.०५	३८१.२	३९३.००	४५४.८	६५०.००
२. लपेटने का कागज	७५.५	६५.०	१०३.४	१२७.५	१५६.२	२५०.०
३. विशेष किस्म का कागज	८.०	६.५	९.०	१६.५	१५.१६	१२०.०
४. कागज के बोर्ड आदि	९६.७	८०.५	६३.६	१०६.०८	१२८.८	—

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रथम दशक मे इस उद्योग मे बड़ी तेजी से प्रगति हुई शिक्षा का प्रसार, जनता के रहन-सहन के स्तर मे उत्थान, जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादन मे विकास इसके लिए प्रमुख कारण रहे हैं। कागज की मांग निरतर बढ़ती जा रही है। सन् १९४८ मे १५, १९५६ मे २४, १९६० मे २८ तथा अब (१९७०-७१) भारत में मिलो की सख्या ६३ है। रेयन स्तर के कागज निर्माण हेतु २ तथा कागज स्तर के लुगदी बनाने की २ अन्य फैक्टियाँ है। सन् १९७५ तक भारतीय कागज की माँग २ मिलियन टन हो जाने की सम्भावना है। इसके लिए तीन उद्योगों की और स्थापना की जाने की उम्मीद है। जिसके लिए आसाम, नागालैण्ड तथा केरल राज्यों का चयन किया गया है।

कागज उद्योग का क्रमिक विकास (१९५०-५१ के पश्चात्)

तालिका १०९ (००० टन)

वर्ष	कागज की मिलें	उत्पादन क्षमता	वास्तविक उत्पादन
१९५०-५१	१८	१५८	११६
१९५१-५६	२०	२१०	१९०
१९६०-६१	२६	४१०	३५०
१९६५-६६	—	६८०	५६०
१९६६-६७	५७	७११	५८०
१९६७-६८	६०	७३०	६२०
१९७०-७१	६३	१५८०	७५६
१९७३-७५ (लक्ष्य)	६६	२ मिलियन टन	८६०

कागज उद्योग का विकास कार्यक्रम

भारत सरकार ने १५ नये लाइसेन्स दिये है जिनसे सभी प्रकार का ३६७ हजार टन कागज प्रतिवर्ष पैदा किया जायेगा। इसके अतिरिक्त २५ छोटी इकाईयों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। १४ अन्य छोटी इकाइयो को अतिरिक्त लाइसेन्स देने की बात विचाराधीन है। कारखानो के तैयार हो जाने पर उत्पादन क्षमता ४७,००० टन प्रतिवर्ष होगी। भारत सरकार नागालैंड मे भी एक कागज उद्योग खोलने की बात सोच रही है। कागज उद्योग की सबसे बड़ी कमी यहाँ की कुछ मिलो का कभी-कभी बन्द हो जाना है। भारत में कागज के मामले में आत्म निर्भरता प्राप्त करने के लिए ७०० हजार टन प्रतिवर्ष क्षमता-

अखबारी कागज के उत्पादन के लिए पंजाब में एक कारखाना स्थापित करने की व्यवस्था की जा रही है जिसकी क्षमता ६० हजार टन प्रति वर्ष होगी। इस पर ६० करोड़ रुपये खर्च होंगे। भारत बहुत कम ८०४ हजार टन (१६७१–७२) पैदा करता है। जिसके कारण प्रतिव्यक्ति कागज का उपयोग विश्व के अनेक देशों की तुलना में बहुत कम है।

कागज का प्रति व्यक्ति उपयोग

तालिका ११०

देश	माप इकाई	उपयोग की मात्रा
सं. रा. अमेरिका	किलोग्राम	२३७.२५
कनाडा	किलोग्राम	१४०.६२
ब्रिटेन	पौंड	२६७
जर्मनी	पौंड	२२५
डेनमार्क	पौंड	१८०
आस्ट्रेलिया	किलोग्राम	५६.२
जापान	किलोग्राम	७४.००
रूस	पौंड	४६
चीन	पौंड	४.०
भारत	किलोग्राम	१.५

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में अखबारी कागज का उत्पादन नहीं होता था क्योंकि यह विशेष प्रकार का कागज होता है। मध्य-प्रदेश के नीपा नगर में सबसे पहले सन् १६४७ में राष्ट्रीय अखबारी कागज कारखाने की स्थापना निजी क्षेत्र में की गई और १६५५ में इसमें उत्पादन प्रारंभ हुआ। १६५८ में इसका पुनर्गठन किया गया और इस समय इसकी अधिकृत पूंजी ६ करोड़ बनाई गई। यहाँ सरकारी तौर पर अखबारी कागज के निर्माण की व्यवस्था की गई है। ३० हजार टन की प्रारंभिक कागज उत्पादन क्षमता को बढ़ा कर ७५ हजार टन प्रतिवर्ष किया

कागज उद्योग के विकास की अनुकूलताएँ

१. कच्चे माल की पर्याप्त एवं लगातार पूर्ति
२. रसायन पदार्थों की उपलब्धि
३. अधिक पूंजी
४. समाज का ऊँचा शैक्षणिक स्तर
५. नागरिकों की आर्थिक सम्पन्नता
६. सस्ता श्रमिक
७. जल की स्थायी पूर्ति
८. तकनीकी विकास

जावेगा। सन् १९७३-७४ तक इसकी उत्पादन क्षमता १ ६५ लाख टन कर दी जावेगी। कागज उत्पादन की देखरेख तथा प्रगति का अनुमान लगाने के लिए विकास बोर्ड का गठन किया गया है। इस बोर्ड ने भारत के उपयोग के लिए प्रतिवर्ष ८१० हजार टन कागज, ७५ हजार टन कागज के बोर्ड, ६० हजार टन अखबारी कागज तथा ३० हजार टन रेयन कागज के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। बोर्ड ने पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश में ४८ हजार टन कागज, तथा ३०० हजार टन अखबारी कागज के अतिरिक्त उत्पादन के लिए भी सिफारिश की है।

कागज का सर्वाधिक उत्पादन बगाल मे होता है। यहाँ की सबसे बड़ी मिल टीटागढ में स्थित है। शेष मिलें नौहारी, हुगली तथा कलकत्ता मे स्थित हैं। पहले वहाँ ९६० कि. मी. दूर छोटा नागपुर के पठार से सवाई घास मंगवाकर कागज बनाया जाता था परन्तु अब स्थानीय बाँस का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन की दृष्टि से मध्य प्रदेश दूसरे तथा उड़ीसा तीसरे स्थानो पर हैं। राज्यानुसार कागज की मिलों की सख्या तथा उत्पादन निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

कारखानों तथा उत्पादन का राज्यानुसार वितरण

तालिका १११

राज्य का नाम	मिलों की संख्या	उत्पादन क्षमता (लाख टन)
प० बगाल	११	१.२०
उत्तर प्रदेश	३	०.३४
बिहार	२	०.६३
हरियाणा	४	—
उडीसा	३	१.०२
पजाब	४	०.४६
गुजरात	७	०.१८
महाराष्ट्र	१३	०.७३
आंध्र	२	०.४३
कर्नाटक	५	०.७३
केरल	२	०.१३
तमिलनाडु	३	०.७६
मध्य प्रदेश	४	०.५७
योग	६३	६.६५

कच्चा माल एवं शक्ति के साधन

कागज उत्पादन के लिए बाँस, सवाई घास, लकड़ी की लुगदी, कपड़ो के चिथड़े, रद्दी कागज, जूट, रस्सी, गन्ना की खोई तथा धान की पुआल प्रमुख कच्चे माल हैं। अच्छे एवं अखबारी कागजो को बनाने के लिए विदेशो से लुगदी भी मगवाई जाती है। कच्चे माल की प्राप्ति की दृष्टि से भारत को निम्न क्षेत्रो में बाँटा जा सकता है :—

(१) तमिलनाडु, केरल, त्रिपुरा, अरुणाचल, बंगाल, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बाँस-पूर्ति-क्षेत्र कहे जा सकते हैं।

(२) उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, हरियाणा, घास (सवाई घास, मूंज, हाथी घास तथा भावर घास) क्षेत्र के नाम से जाने जाते हैं।

(३) यद्यपि लकड़ी काटने तथा यातायात की यहाँ बड़ी कठिनाई है, परन्तु हिमालय को लकड़ी क्षेत्र के नाम से पुकारते हैं। यहाँ स्प्रूस, देवदार तथा चीड़ वृक्ष कागज उत्पादन के लिए बड़े उपयोगी होते हैं।

कागज बनाने, उसको साफ करने, रंगने तथा मुलायम करने आदि के लिए चूना, कास्टिक सोडा, सोडा-एस, ब्लीचिंग पाउडर, गंधक, सोडियम सल्फेट तथा इसी प्रकार के बहुत से रासायनिक तथा अन्य वस्तुओं की जरूरत होती है। देश की ६३ मिलों में से अधिकांश में शक्ति के लिए अब बिजली पहुँचाने का कार्य विचाराधीन है।

अखबारी तथा अच्छे कागज हमें विदेशो से आयात करने पड़ते हैं परन्तु विकास के बहुत अच्छे अवसर हैं। योजना आयोग तथा विकास बोर्ड ने जितने लाइसेन्स दे रखे हैं, सभी के कार्यान्वित हो जाने के बाद देश न केवल आत्मनिर्भर हो, बल्कि निर्यात कर्ता देश बन सकता है। इस समय देश कागज का आयात तथा निर्यात दोनो ही करता है इस संतुलन को निम्न तालिका में दिखाया गया है :

कागज का व्यापार १९७१–७२ (००० रुपयों में)

तालिका ११२

कागज किस्म	निर्यात	आयात
अखबारी कागज	—	१७४,८३४
लेखन तथा प्रिंटिंग कागज	२३,७९१.००	१०,२९१
सिगरेट कागज	५४६.००	४,८८१.००
पैंकिंग पेपर	६६९.००	६०२.००

दियासलाई उद्योग

भारत में इसका बहुत प्राचीन समय से उपयोग होता चला आ रहा है। उस समय स्थानीय लकड़ियो का प्रयोग इस उद्योग मे किया जाता था। आधुनिक ढंग का सुसंगठित

दियासलाई उद्योग के लिए कच्चे माल
१. मुलायम लकड़ी की स्थायी पूर्ति
२. जल यातायात की सुविधा
३. कोयला
४. सस्ता एवं कुशल श्रम
५. पोटाशियम क्लोराइड फासफोरस रसायन

तथा वैज्ञानिक तरीकों से प्रारम्भ किया गया सबसे पहला कारखाना सन् १८९५ ई० में अहमदाबाद में प्रारम्भ किया गया। परन्तु किन्हीं कारणों से यह उद्योग चल नहीं पाया। इसलिए दियासलाइयों की मांग आयात से पूरी की जाती थी। १९२३-२४ में ४ कारखानें स्थापित किये गये। साथ ही अतिरिक्त आयातकर लगाकर भी इस उद्योग को भारत में लगाने के लिए विदेशी पूंजीपतियों को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रोत्साहन तथा संरक्षण से शीघ्र ही इस उद्योग ने देश की सम्पूर्ण मांग का ७५% दियासलाइयां देश में पैदा करना प्रारंभ कर दिया। कलकत्ता, मद्रास, बरेली, बम्बई, जबलपुर तथा हैदराबाद आदि स्थानों पर बड़े-बड़े उद्योग स्थापित किए गये जो चित्र ४५ में दिखाये गये हैं। 48

इसमें मुलायम लकड़ी तथा फासफोरस, पोटेशियम, क्लोराइड तथा पैराफीन जैसे रसायन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति हिमालय, पश्चिमी घाट तथा सुन्दर वनों से प्राप्त होने वाली लकड़ियों जैसे सेमल, सफार, पपीते से होती है। कागज तथा दियासलाई के उत्पादन में प० बंगाल का सबसे प्रमुख स्थान है। यहाँ सभी अनुकूल परिस्थितियाँ एक साथ उपलब्ध हैं। कलकत्ता सुप्रसिद्ध बन्दरगाह है, चौबीस परगना आवश्यक पदार्थों की दृष्टि से सबसे अनुकूल स्थिति में है। सुन्दर वन से वर्ष भर लगातार उपयुक्त लकड़ी के साथ सस्ते जल मार्गों की सुविधा भी है। रानीगंज, झरिया से कोयला, कलकत्ता से पोटेशियम क्लोराइड तथा फासफोरस जैसे रासायनिक पदार्थों और उत्तरप्रदेश व बिहार के घने बसे भूभागों से सस्ते श्रमिक आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। गुजरात तथा महाराष्ट्र के कारखानों में सेमल, सलाई एवं आम की लकड़ियों का उपयोग किया जाता है। दियासलाई बनाने के कारखाने तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र, आसाम, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में भी हैं। भारत इस उद्योग में आत्मनिर्भर है। उत्पादन के अनुसार दियासलाई कारखानों को ४ भागों में बाँटा जा सकता है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है :

श्रेणी	उत्पादन क्षमता
प्रथम श्रेणी	५ लाख संदूकें प्रतिवर्ष
द्वितीय श्रेणी	२ लाख संदूकें प्रतिवर्ष
तृतीय श्रेणी	५० हजार से २ लाख संदूकें प्रतिवर्ष
चतुर्थ श्रेणी	५० हजार संदूकें प्रतिवर्ष

हस्त शिल्प कागज उद्योग

देश का यह उद्योग भी काफी प्राचीन है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व से लिखने-पढ़ने की

प्रथा होने के कारण कागज को हाथ से कुटीर उद्योगों में बनाया जाता था। आज भी रद्दी कागज, जंगली लकड़ियों की छालें, चिथड़े, सन, जूट, मूंज, तथा रस्सियों आदि को सड़ा-गलाकर लुगदी बनाई जाती है और इसके पश्चात् मोटा तथा काफी खुरदरे किस्म का कलात्मक दीवार का कागज, सजावटी कागज, ड्राइंग कागज, फिल्टर कागज आदि लघु उद्योगों में बनाये जाते हैं। इसके लिए कच्चा माल जैसा ऊपर कहा गया है सम्पूर्ण भारत में प्राप्त होता है। आवश्यकता पड़ती है केवल उसको इकट्ठा करने की। इस उद्योग को चलाने तथा फटे चिथड़ों, रद्दी कागज आदि को इकट्ठा करने के लिए लोगों में इन वस्तुओं के महत्त्व को समझने के लिए जागरूकता उत्पन्न करने तथा कुशल एजेन्सियों की आवश्यकता है।

इस उद्योग में सन् १९५३ में ४ लाख रुपये की लागत से २० इकाइयाँ देश भर में कार्य कर रही थीं। इनका सम्मिलित उत्पादन २०० टन था जो बढ़कर सन् १९६८ में लागत मूल्य १० लाख रुपया, इकाइयों की संख्या १२० तथा उत्पादन बढ़कर २,००० टन हो गया था। इस उद्योग ने इस वर्ष लगभग ५००० श्रमिकों को रोजगार दिया था।

चमड़े का उद्योग

भारत एक धर्म प्रधान देश है, 'अहिंसा परमोधर्म.' के अन्तर्गत पशुओं का वध सर्वथा वर्जित है। भारत कृषि प्रधान भी है और कृषि कार्यों में बैलों और भैंसों का सीधा प्रयोग किया जाता है। यहाँ के पशुओं का देश की कृषि में बड़ा आर्थिक महत्त्व है। इस उद्योग के लिए जिन पशुओं के चमड़ों की आवश्यकता पड़ती है उनमें गायों और बैलों को छोड़कर सभी का चमड़ा उनके मरणोपरान्त कार्य में लाया जाता है। अनुमान किया जाता है कि प्रतिवर्ष २.५ करोड़ गाय-बैल, ६० लाख भैंस, ३ करोड़ बकरी, और १८ करोड़ भेड़ों के चमड़े प्राप्त होते हैं। अन्य औद्योगिक कच्चे मालों की तरह सम्पूर्ण चमड़ा प्रथम युद्ध के पहले विदेशों को भेज दिया जाता था। परन्तु औद्योगिक विकास के फलस्वरूप अब अपने देश में ही चमड़े के पकाने तथा सिझाने आदि का कार्य होने लगा है। हमारे देश में चमड़े को निम्न दो तरीकों से पकाते हैं।

नाम विधि	उत्पादन किस्म	औद्योगिक केन्द्र
(१) प्राचीन विधि	मोटा चमड़ा, जूतों के तल्ला बनाने का चमड़ा। बम्बई तथा मद्रास का अधपका चमड़ा।	कलकत्ता, बम्बई, पंजाब तथा स्थानीय चमार भी इस कार्य को करते हैं जो पूरे देश में फैले हुए हैं।
(२) नवीन-विधि	क्रोम चमड़ा, केस लेदर, रोलर, लैस, लेदर, सुइड लेदर स्कीन क्रोम आदि।	कानपुर, आगरा, कलकत्ता मद्रास।

इस समय पूरे भारत मे छोटी-बड़ी मिलाकर ४५ फैक्टरियाँ कार्य कर रही हैं। इनमें २५ लाख चमड़ा संयुक्त रूप से तैयार किया जाता है।

चमड़े को तैयार करने के सम्बन्ध मे निम्न शिक्षा संस्थाएँ देश में कार्य कर रही हैं :

(१) जालन्धर ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, जालन्धर

(२) लेदर टैक्नॉलाजी सेक्सन, (मद्रास विश्वविद्यालय)

(३) बंगाल ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता

चमड़े द्वारा मुख्यत. जूते बनाये जाते हैं। भारत के प्रत्येक भाग मे जो चमार देहातों मे चमड़ा सिझाता है वे कुटीर उद्योग के रूप मे अपने-अपने घरों मे जूते भी बनाते हैं। उनको देहाती साप्ताहिक बाजारो आदि मे बेचते हैं। आगरा जूते के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ इस प्रकार की लगभग २०० लघु फैक्टरियाँ हैं।

मशीनों द्वारा जूता बनाने के पूरे भारत में १० फैक्टरियाँ हैं। भारत को चमड़े के निर्यात से लगभग १८७.६५ करोड़ रुपये (१९७२-७३) की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त भारत अच्छे किस्म के चमड़े का आयात भी करता है। कच्चे चमड़े का लगभग ८% निर्यात इस उद्योग की खास विशेषता है।

ऊनी वस्त्र उद्योग

काश्मीर राज्य (भारत) अपने ऊनी शाल-दुशालों आदि के लिए बहुत प्राचीन काल से जगत प्रसिद्ध रहा है। इनका उत्पादन कुटीर उद्योगों मे किया जाता था। सबसे पहले ऊनी वस्त्र व्यवसाय को विकसित करने के लिए सन् १८७० ई० में उत्तरप्रदेश के वर्तमान सबसे बड़े शहर कानपुर मे लाल इमली नामक मिल, विदेशी पूँजी की सहायता से सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सस्थापित की गई थी। दूसरे और इसी किस्म के अन्य उद्योगों को सन् १८८२-८३ मे न्यू एजरटन ऊलेन मिल, धारीवाल तथा बंगलौर ऊलेन मिलो को प्रारम्भ किया गया। इसके बाद इसका लगातार और द्रुतगति से विकास हुआ और इस समय पूरे भारत मे ६२ ऊनी मिलें कार्य कर रही हैं। कच्ची ऊन की छटाई, धुलाई, सफाई, कताई तथा बुनाई के प्रमुख कार्यों मे लगे इस समय तकुओं तथा शक्ति चालित करघों की कुल सख्या क्रमश २,२६,६०८ तथा ३,२०० हैं जबकि यही सख्या सन् १९४७ में क्रमश १,६६,२३६ और २५०० ही थी। समस्त भारतीय मिलें तीन प्रकार की ऊन—वार्स्टेड, ऊनी तथा साड़ी सूत—बनाती हैं। भारत मे ऊनी कपड़ो की बहुत अधिक खपत है और प्राचीन काल से गलीचे, (कालीन) विदेशों को निर्यात भी होते रहे हैं परन्तु पहनने के साधारण कपड़े विदेशों से भी मंगाये जाते रहे हैं।

मिलों मे काम आने वाली ऊन ४ प्रकार की होती है.

साधारण भारतीय ऊन—मोटे और भारी सामान जैसे कालीन, गलीचे, दरियाँ, ओवरकोट तथा कम्बल आदि बनाने के काम में इसलिए प्रयोग मे लाई जाती है क्योंकि यह निम्न कोटि की होती है।

पहाड़ी ऊन—यह चूँकि ऊँचे पहाड़ो पर रहने वाली भेड़ो तथा बकरियों के बालों से बनती है इसलिए अधिक गर्म होती है और इसका प्रयोग फौजी जवानों के लिए ओवरकोट,

कम्बल तथा शाल आदि के कपड़े बनाये जाते हैं।

तीसरे प्रकार के ऊन में सूत भी मिलाया जाता है और मोटा कपड़ा बनाया जाता है।

मैरीनो ऊन—यह मेरीनो नामक भेड़ से प्राप्त की जाती है और उत्तम कोटि की भी होती है।

उद्योग का स्थानीयकरण

पंजाब, महाराष्ट्र तथा काश्मीर प्राचीन काल से ऊन उद्योग में प्रमुख रहे हैं और अपेक्षाकृत घने बसे होने के कारण प्रमुख केन्द्र इन्हीं राज्यों में पाये जाते हैं। उपर्युक्त राज्य भारत के सबसे प्रमुख बन्दरगाह बम्बई के पार्श्वदेश में स्थित हैं और ऊनी व्यवसाय के विकास के पूर्व विदेशों से जो भी ऊनी वस्त्र अथवा सामान मंगाया जाता था वह इसी बन्दरगाह से देश के आन्तरिक भागों में वितरित होता था। प्रारम्भ में बताये गये केन्द्रों के अलावा मिर्जापुर, श्रीनगर, अमृतसर, बंगलौर तथा बड़ौदा में ऊनी व्यवसाय के जाने-माने कारखाने हैं।

भारत के स्वतंत्र होने तथा नदी घाटी योजनाओं के सफलतापूर्वक चालू होने के पहले कानपुर तथा मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) की मिलों को बिहार तथा मध्यप्रदेश से कोयला आसानी से उपलब्ध होता था। भारत के अन्य राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक तथा काश्मीर की ऊनी बस्त्रोद्योगों को जल विद्युत प्राप्त होती थी। परन्तु अब दामोदर घाटी, रीहन्द तथा भाखड़ा-नांगल योजनाओं को मिलाकर एक ग्रिड बना देने के कारण कानपुर और मिर्जापुर की मिलों को भी जल विद्युत प्राप्त होने लगी है।

पंजाब और हरियाणा ऊनी होजरी उद्योग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और इन राज्यों की इकाइयों को मिलाकर पूरे देश की ६०% इकाइयाँ यहीं कार्य कर रही हैं। शेष में समूचा देश सम्मिलित है। कालीन निर्माण उद्योग के अन्तर्गत बेलबूटेदार कालीनें, दरियाँ, नक्काशीदार कालीनें बनाई जाती हैं। इस प्रकार के उत्पादन का लगभग ६२% निर्यात किया जाता है क्योंकि यह शीत खण्डों में मकानों के फर्शों पर बिछाने तथा दीवारों पर लटकाने आदि के काम आते हैं। चूंकि हमारे देश की जलवायु गर्म है इसलिए इन चीजों की बहुत आवश्यकता नहीं पड़ती। देश में इनके कम प्रयोग का दूसरा कारण यहाँ की गरीबी भी है और कालीन का बिछाना यहाँ विलासिता का कार्य समझा जाता है।

ऊनी कालीन बनाने के निम्न प्रमुख स्थान हैं :

(१) उत्तर प्रदेश : भदोही, मिर्जापुर, गोपीगंज, खमरिया, शाहजहाँपुर तथा आगरा

(२) राजस्थान : देवगढ़, जयपुर, गोविन्दगढ़ तथा बीकानेर

(३) हरियाणा : पानीपत

(४) आन्ध्र प्रदेश : एलरु, वारंगल

(५) बिहार : दाऊद नगर

(६) कर्नाटक : बंगलौर, मैसूर, बलारी

(७) मध्यप्रदेश : ग्वालियर

(८) पंजाब : अमृतसर

सूती वस्त्र व्यवसाय की ही भाँति यह उद्योग भी अभी तक स्वदेशी भेड़ों द्वारा प्राप्त ऊन पर आधारित रहा है जो गुण और मात्रा दोनो मे ही निम्न कोटि का होता है। अब इस उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए कई ऊन अनुसंधान केन्द्र भारतीय तथा राज्य सरकारों के द्वारा देश के विभिन्न भागों में स्थापित किए जा रहे हैं और इतना ही नही बल्कि भेड़ो की नस्ल सुधारने के लिए विदेशों से भेड़ें मँगाकर तथा उनको अनुकूल वातावरण प्रदान कर विकसित किया जा रहा है। इन अनुसंधान केन्द्रों में मैरीनो भेड़ों के लिए बनिहाल अनुसंधान केन्द्र तथा बीकानेरी भेड़ो के लिए हिसार प्रमुख केन्द्र हैं। दक्षिण के प्रायद्वीप पर मैरीनो तथा स्वदेशी भेड़ों को मिलाकर एक तीसरी नस्ल पैदा की जा रही है।

रसायन उद्योग

किसी देश के पूर्ण विकास और समुचित प्रगति के लिए इस उद्योग का विकसित होना नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विदेशो में अन्य उद्योग, वैज्ञानिक तथा सगठित ढंग से बहुत पहले प्रारम्भ किए गये थे उसी प्रकार यह उद्योग भी पाश्चात्य देशों में एक शताब्दी पुराना है। परन्तु भारत में इसका विकासारम्भ द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही माना जाता है।

इस उद्योग मे सामान्य नागरिकों के उपयोग की वस्तुएँ जैसे कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, कृत्रिम तेल, दवाइयाँ, प्लास्टिक, खिलौने, वस्त्र, काँच, साबुन, चमड़ा, रंग तथा वारनिस आदि बनाये जाते हैं और अन्य उद्योगों के लिए रसायन तथा रासायनिक पदार्थ भी बनाये जाते हैं। प्रयोगशालाओं मे प्रयोग मे लाये जाने वाले सारे रसायन इन्हीं उद्योगों के अंतर्गत आते हैं। निर्माण विधि, कच्चामाल तथा आर्थिक और प्रबन्ध व्यवस्था के आधार पर इन सामग्रियों को दो भागों मे बाँटा जा सकता है :—(१) भारी रसायन उद्योग, तथा (२) कुटीर रसायन उद्योग।

भारी रासायनिक वस्तु निर्माण उद्योग—इस उद्योग के अन्तर्गत कुछ तो अपेक्षाकृत विस्फोटक तथा कुछ सामान्य जनता के प्रयोग के लायक सामान बनाये जाते हैं। इस उद्योग मे शोरे का तेजाब, हाईड्रोक्लोरिक एसिड, गन्धक, तेजाब, सलफेट, सोडाएस, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरीन तथा रासायनिक उर्वरक आदि बनाये जाते हैं।

कुटीर रासायनिक उद्योग—भारी रासायनिक वस्तुओं की अपेक्षा इसमे उत्पन्न रसायन का अधिक उपयोग जनता करती है। इसमे दवाइयाँ, रंग, रोगन तथा फोटोग्राफी मे काम आने वाले रसायन तैयार किए जाते हैं।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि यह उद्योग अभी भारत में बड़ा नवीन है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सभी मिलों की सम्मिलित उत्पादन क्षमता २४० हजार मी. टन की थी जिसमे केवल २२१ हजार मी. टन ही रासायनिक पदार्थों का उत्पादन हो सका था। यह उत्पादन कितना कम है इसका अनुमान इस कथन से लगाया जा सकता है कि अमेरिका, ब्रिटेन तथा जर्मनी में एक कारखाना भारत के पूरे उत्पादन के बराबर रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करता है। चूंकि स्वावलम्बन तथा औद्योगीकरण आदि

अपनी नीति है इसलिए उनके बराबर उत्पादन के लिए बहुत परिश्रम, प्रौद्योगीकरण, पूंजी तथा कच्चे माल की आवश्यकता पड़ सकती है। इस उद्योग की कुछ सीमाएँ भी इसकी प्रगति के लिए बाधक हो रही हैं।

(१) यह उद्योग पिछड़ा, नवीन तथा स्वयं में कम आकर्षक है।

(२) सामग्रियों के निर्माण के लिए छोटे कारखानों, तदनुसार छोटे शहर, कम मजदूर, तथा कम जगह की जरूरत होती है फिर आवास, गरीब बस्तियों, हड़ताल, तालाबन्दी आदि के कारण भी विकास की कम उम्मीदें रहती है।

(३) चूंकि रासायनिक पदार्थ बहुत कीमती होते हैं इसलिए अधिक सावधानी और सुरक्षित रूप से रखने की आवश्यकता पड़ती है।

(४) देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत सरकार को बाहर से सामान मंगाना पड़ता है।

(५) इस उद्योग के अवसर अधिक हैं परन्तु वर्तमान समय मे कच्चे माल की कमी का अनुभव किया जा रहा है, इस उद्योग की सम्भावनाओं के लिए खोज, शोध और तकनीकी आविष्कार की आवश्यकता है।

(६) ऐसा देखा गया है कि युद्धों के समय ही इस उद्योग की प्रगति होती है। यह उद्योग युद्धकाल मे ही स्थापित किया गया था इसलिए विदेशों से सामग्री न आने के कारण कुछ रासायनिक पदार्थों का उत्पादन भारत में विद्युत प्रणाली से किया जाने लगा और इसका विकास उस समय बड़ी तेजी से हुआ। भारत मे इस उद्योग का विकास जितनी तेजी से हुआ उतनी तेजी से अन्य किसी उद्योग का विकास देश में सम्भवतः नहीं हुआ। पृष्ठ ३२६ पर मुद्रित तालिका मे इस उद्योग के क्रमिक विकास को दिखाया गया है।

इस समय मद्रास, सिन्दरी, नागपुर, सिकन्दराबाद, बर्नपुर, दुर्गापुर, अमृतसर, अहमदाबाद, दिल्ली तथा जमशेदपुर आदि केन्द्रों पर कुल मिलाकर ६१ कारखानें गंधक का तेजाब बनाते हैं जिनमें टाटा लौह और इस्पात उद्योग तथा बंगाल केमिकल्स सबसे प्रमुख उत्पादक हैं।

डालमियानगर, कर्नाटक, दिल्ली, सिसरा, बम्बई, पोरबन्दर, अहमदाबाद, हैदराबाद, कल्याण कास्टिक सोडा और सोडा-एश के केन्द्र पोरबन्दर, आगरा तथा डालमियानगर मे हैं। नीचे दी गई तालिका का अवलोकन करें।

मिलो की व्यक्तिगत उत्पादन-क्षमता

तालिका ११३

पदार्थ का नाम	कम्पनी का नाम	उत्पादन क्षमता (मी. टन)
गंधक का तेजाब (नये स्थापित)	१. पायनियर केमिकल्स इन्डस्ट्रीज, नागपुर	१६,५००
	२. श्री राम केमिकल्स (मद्रास)	११,५००

१	२	३
	३. पेरी एण्ड को० मद्रास	६,६००
	४. बिहार सरकार सुपर फासफेट कारखाना, सिन्दरी	८,२५०
	५. शाओ वालेस एण्ड कं० कलकत्ता	८,२५६
		५४,४०००
गधक का स्रोत (पुराने स्थापित)	१. फर्टीलाईजर्स एण्ड केमिकल्स (ट्रावनकोर)	५५,०००
	२. डी. सी. एम केमिकल वर्क्स (दिल्ली)	१६,५००
	३. इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० बर्नपुर	१६,५००
	४. टाटा आयरन एण्ड स्टील क० जमशेदपुर	१६,५००
	५. हैदराबाद केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर सिकन्दराबाद	६,६००
	६. बगाल केमिकल्स, कलकत्ता	८,२५०
	७. शंभूनाथ एण्ड सन्स, अमृतसर	६६०
		१,२३,६४०
	कुल योग : १,७८,०४०	
कास्टिक सोडा	रासायनिक तथा विद्युत विधि द्वारा	
	१. धागध्रा केमिकल्स क० (तुतुक्कुडी)	६०,०००
	२. जीवाजीराव काटन मिल्स प्लाट (पोरबन्दर)	२०,४००
	३. नेशनल रेयन क० कल्याण (महाराष्ट्र)	७,०००
	४. डी सी एम. केमिकल्स (दिल्ली)	३,६००
	५. रोहतास इन्डस्ट्रिज, डालमियानगर (बिहार)	३,६००
	६. ओरियन्ट पेपर मिल बृजराजनगर (उड़ीसा)	४३,२४०
	७. केलिको केमिकल्स बम्बई (महाराष्ट्र)	२,१६०
	८. मारी केमिकल्स लि० तुतुक्कुडी	१,६५०
	९. टाटा केमिकल्स, मीठापुर	१,३७४
		१,०६,१२४

गाजियाबाद, मिर्जापुर, गोवा तथा गोरखपुर जो बनकर १९५७ तक तैयार हो जाएगा जैसे ५ स्थानों पर बिल्कुल नये कारखाने खोलने की सरकार ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। आगे आने ४-५ वर्षों में खाद के सभी कारखानों की उत्पादन क्षमता ३७ लाख टन तथा वास्तविक उत्पादन ३० लाख टन प्र. वर्ष कर देने की भारत सरकार की योजना है: निम्न तालिका मे नेत्रजन खाद एवं अमोनिया फासफेट उत्पादन को दिखाया गया है।

नेत्रजन खाद एव अमोनिया फासफेट उत्पादन

तालिका ११५

वर्ष	नेत्रजन खाद (000) टन		अमोनिया फास्फेट खाद (000) टन	
	उत्पादन क्षमता	वास्तविक उत्पादन	उत्पादन क्षमता	वास्तविक उत्पादन
१९६५-६६	५८५	२३८	२३७	११६
१९६६-६७	६६५	३०६	२६६	१४६
१९६७-६८	६६५	३८७	२६६	१९९
१९६८-६९	१०२४	५५०	४२१	२२०
१९६९-७०	१७१६	७१६	६००	२२२
१९७३-७४ लक्ष्य	३७००	३०००	१८००	१५००

रेयन उद्योग

यह एक प्रकार का कृत्रिम रेशम है। इसका आविष्कार फ्रान्स मे सन् १८४२-४३ में किया गया था। इसका व्यावसायिक रूप फ्रान्स मे ही आविष्कार के लगभग ५० वर्षों बाद सन् १८९० से प्रारम्भ हो पाया जबकि भारत में द्वितीय महायुद्ध के बाद। इस समय पूरे देश मे रेयन उत्पन्न करने वाली मिलो को तालिका न० १२६ मे दिखाया गया है।

इस उद्योग के लिए कच्चे माल में जूट, लकड़ी, घासफूस, बांस, रूई, सन, फटे चिथड़े और रासायनिक पदार्थों में कास्टिक सोडा, सोडियम सल्फेट, सोडियम सलफाईड तथा शक्ति के साधनों मे कोयला, बिजली तथा जल की सभी सुविधाओं के साथ अन्य भौगोलिक परिस्थितियाँ जैसे घनी आबादी, जलवायु, यातायात के साधन तथा बाजार भी मौजूद थे। उन सभी भौगोलिक अनुकूलताओं के साथ ही साथ यह सुन्दर मजबूत तथा सस्ता होने के कारण बहुत लोकप्रिय हो गया। इस कारण भारत में यह उद्योग बड़ी तेजी से विकसित हुआ।

रेयन के धागे और विस्कोस स्टेपल रेशे का उत्पादन भारत मे क्रमशः २३५ किलोग्राम और २६१ लाख किलोग्राम (१९६१) था। वही उत्पादन बढ़कर सन् १९७३ में ३६९९१ हजार कि० ग्रा० व ६१८६८ हजार कि० ग्रा० हो गया। वार्षिक उत्पादन वृद्धि को तालिका १२० मे दिखाया गया है।

रेयन मिलें तथा उनका उत्पादन

तालिका १९६

क्र.	कम्पनी का नाम	स्थापना	राज्य व स्थान	उत्पादन क्षमता
१.	ट्रावनकोर रेयन लि०	१९५०	रेयनोपुरम (केरल)	४८ लाख किलोग्राम
२.	तिरुवाकुरम रेयन्स		अनन्तपुर (तमिलनाडु)	१६ लाख किलोग्राम
३.	नेशनल रेयन्स कारपोरेशन	१९५१	कल्याण (महाराष्ट्र)	३० लाख किलोग्राम
४.	सर सिल्क लि०	१९५४	सिरपुर (आन्ध्र)	१६ लाख किलोग्राम
५.	ग्वालियर सिल्क निर्माण क०	१९५४	नागदा (मध्यप्रदेश)	११ लाख किलोग्राम
६.	जे. के. कारपोरेशन		कानपुर (उत्तर प्रदेश)	१६ लाख किलोग्राम
७.	केशोराम सूती मिल्स		कलकत्ता	३२ लाख किलोग्राम
८.	साहू जैन		कलकत्ता	१६ लाख किलोग्राम
९.	एम. जी. वैद्य		कलकत्ता	३० लाख किलोग्राम
१०.	सेन्चुरी रेयन्स		बम्बई	३५ लाख किलोग्राम
११.	साउथ इन्डिया विस्कोज लि०		मैत्रुपालायम (तमिलनाडु)	—
१२.	इन्डियन रेयन्स		वैरावल (गुजरात)	—
१३.	बड़ौदा रेयन्स		बड़ौदा	
१४.	दिल्ली क्लाथ मिल्स		दिल्ली	

रेयन उत्पादन

तालिका ११७

वर्ष	उत्पादन (टन)
१९६५-६६	४६५००
१९६६-६७	५३०००
१९६७-६८	५८०००
१९७०-७१	६८१००
१९७१-७२	अनुपलब्ध

इस समय (१९७३) शक्ति चालित और हस्त चालित करघों की संख्या क्रमशः १०८००० और १,३०,००० थी। यह धागा इसकी प्रणाली से तैयार किया जाता है और विशेष रूप से पहनने वाले परिधान जैसे बनियान, टाइयाँ, चद्दरें, कमीजों के कपड़े तथा साड़ियाँ बनाई जाती हैं जिनको स्त्रियाँ बड़े चाव से पहनती हैं।

इस उद्योग में १,००,००० शक्ति चालित लूमस (Looms) तथा उत्पादन ६५० मिलियन मीटर है। इस समय इस उद्योग की उत्पादन क्षमता ६०,००० टन की है। परन्तु इतना उत्पादन नहीं होने के कारण हमें दूसरे देशों से माल मँगाने पर निर्भर रहना पड़ता है।

इन्जीनियरिंग उद्योग

इस उद्योग में बड़ी-बड़ी मशीनों के निर्माण के कारण न केवल अधिक मात्रा में धन की ही आवश्यकता होती है बल्कि इस उद्योग को अतिरिक्त औद्योगिक सुविधाएं जैसे यातायात की पूर्ण सुविधाएँ, तकनीकी ज्ञान की परिपक्व जानकारी, रेल किराये में सुविधाएँ, सरकार की उदारनीति, सस्ते दामों पर कोयले की उपलब्धि और चतुर श्रमिक आदि भी अन्य उद्योगों की अपेक्षा अधिक चाहिए।

भारत एक विकासशील राष्ट्र है इस कारण अभी अधिकांश उपकरणादि जापान, प. जर्मनी, फ्रांस, सं. रा. अमेरिका, इटली, कनाडा तथा रूस से मगाये जाते हैं। प्रतिवर्ष के मशीन-आयात-मूल्यों का अवलोकन निम्न तालिका से किया जा सकता है :

तालिका ११८ (क)

वर्ष	आयात (करोड़ रुपया)
१९५०-५१	१६.४२
१९६०-६१	१३०.००
१९६६-६७	४७२.३०
१९६७-६८	३७०.००
१९६९-७०	२७८.००
१९७१-७२	३५६.००
१९७२-७३	४०६.००

वैसे भारत मे बहुत प्राचीन काल से औद्योगिक जागृति रही है परन्तु वर्तमान किस्म की इंजीनियरिंग उद्योग के विकास का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति (१९४७) के बाद से किया गया। अब भारत मे रेल के डिब्बे, मशीनी औजार, बिजली के जैनेरेटरो, चीनी मिलों का संयत्र, मोटर कारें, ट्रैक्टर, स्कूटर तथा साइकिलो आदि का उत्पादन होने लगा है। पहली योजना के पूर्व यहाँ केवल ४ करोड़ रुपये के बराबर की मशीनें बनाई गई थी। परंतु ज्यो-ज्यों समय बीतता गया और स्वावलम्बन की भावना बढती गई इस उद्योग का काफी विकास हुआ। अब भारत से लाखों रुपये की मशीनें बाहर भी भेजी जाने लगी हैं। भारत का अधिकाश निर्यात बर्मा, मलाया, ईरान, केनिया, बगलादेश, सिंगापुर, ब्रिटेन तथा युगोस्लाविया को किया जाता है।

इंजीनियरिंग उद्योग का विकास

तालिका ११९

समय		उत्पादन (करोड़ रुपयों)	निर्यात (लाख रुपयों)
१—पहली पचवर्षीय योजना के पूर्व	१९५०-५१	४.००	५४.००
२—द्वितीय पचवर्षीय योजना	१९६०-६१	१००.००	३००.००
३—तृतीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति पर	१९६६-६७	८००.००	११००.००
४—चौथी पचवर्षीय योजना के अत तक	१९६८-६९	१६००-१७००	१३०० ००

निम्न तालिका मे कारखानो के नाम तथा उत्पादन सामग्रियों का संक्षेप मे विवरण प्रस्तुत किया गया है :

कम्पनी का नाम	निर्मित सामान
(१) स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग	पुल, खनिज तेल कूप, इस्पात के कारखानों के निर्माण की सामग्रियाँ।
(२) औद्योगिक प्लाट	इन्जिन, मोटर, जैनरेटर, वायुयान निर्माण।
(३) मशीनी औजार	लकडी व धातु काटने तथा पालिश करने के औजार निर्माण।
(४) हल्की निर्माण (लाइट स्ट्रक्चरल) के उद्योग	साइकिल, सिलाई की मशीनें तथा लालटेन निर्माण।
(५) बिजली के सामानों सम्बन्धी उद्योग	पखे, मोटर, बैटरियाँ, प्लग, ट्रान्सफार्मर बनाना।

१	२	३
(९)	हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कं. इसकी देश में कई इकाइयाँ कलकत्ता, बम्बई, बंगलौर में स्थापित हैं।	इसमें घड़ियाँ तथा अनेकानेक अन्य मशीनें बनाई जाती हैं। यह सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किया गया है।

इंजीनियरिंग उद्योग की इकाइयों को चित्र ४४ में दिखाया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में उद्योगों को स्थापित करने के लिए देश में ही संयन्त्रों का जो निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ उसे निम्न तालिका में दिखाया गया है :

भारत में औद्योगिक मशीनरी का उत्पादन

तालिका १२०

(करोड़ रुपया)

निर्मित मशीनों की किस्म	औद्योगिक इकाई	क्षमता	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६८-६९	१९७३
मशीन टूल्स	३०	५००				२०.००
चीनी मिल मशीनरी	१७	२१	४.४०	७.७०	११.८०	२०.००
कागज मिल मशीनरी	१४	७	—	—	११.७०	६.१८
सूती वस्त्र मिल मशीनरी	११	४०	८०.४०	११.६०	१३.८०	५१.००
सीमेन्ट मिल मशीनरी	६	२३	०.६०	४.९०	८.२०	६.३५
जूट मिल मशीनरी	४	५	—	—	—	८.३६
रबर मिल मशीनरी	५	१८			७०	१.००
रसायन उद्योग मशीनरी	६३	५६	१४.२०	—	१३.३१	३०.००
छपाई उद्योग मशीनरी	१६	३	—	—	१.००	१.२०

जलयान निर्माण उद्योग

नदियों और समुद्रों में मानव शक्ति तथा हवा की दिशा के अनुकूल नावें तथा जहाज़ किस्म की बड़ी-बड़ी नावों को चलाना बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारत का मसाले, वस्त्र तथा अन्न आदि का व्यापार बहुत प्राचीन काल से जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, चीन तथा अन्य देशों से होता आ रहा है। वास्कोडिगामा तथा कोलम्बस आदि ने भी स्थल-खण्डों की खोज इसी प्रकार की वायु से चलने वाली नावों से की थी। ऋग्वेद, संस्कृत ग्रन्थों पाली, तेलगू तथा अन्य साहित्यों में इस उद्योग की निश्चित प्रारम्भिक तिथियाँ तो नहीं बताई गई हैं किन्तु डा. राधा कुमुद मुखर्जी का कहना है कि भारत की सभ्यता अपनी चरम सीमा तक शक्ति के विकास के बल पर ही पहुँची थी। भारत का व्यापारिक सम्बन्ध एशिया से ही नहीं बल्कि यूरोप से भी था। मौर्य शासक चन्द्रगुप्त के पास बहुत ही शक्तिशाली

सेना थी जिसमें हजारों की संख्या में 'जलयान' तथा असंख्य नौकाएँ थीं। मार्कोपोलो ने भारतीय बड़े जलयानों को देखकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। शिवाजी के जल सेना-ध्यक्ष कान्होजी आंग्रे का नाम भारत की प्राचीन जलयान निर्माण उद्योग से सम्बन्धित है।

आधुनिक किस्म के जलयानों का निर्माण "सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी लि., की स्थापना के साथ श्री वालचन्द हीराचन्द ने सन् १९१९ में भारत के पूर्वी तट पर विशाखापट्टम
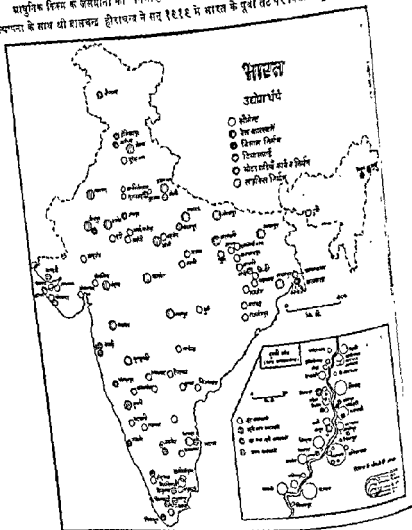
चित्र ४८

में प्रारम्भ किया था। देखें चित्र ४८। आर्थिक कठिनाइयों और विश्वव्यापी मन्दी के कारण इस उद्योग को बड़े घाटे का सामना करना पड़ा। सन् १९४० ई. में इस कम्पनी ने सर

एलकजेन्डर ग्रिव एण्ड पार्टनर्स नामक एक अन्य फर्म से तकनीकी और आर्थिक सहायता प्राप्त की और निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। आर्थिक स्थिति के निरंतर बिगड़ते रहने के कारण सन् १९५२ में केन्द्रीय सरकार ने उसको अपने संरक्षण में ले लिया और तब से 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड' कम्पनी इसका संचालन कर रही है। सबसे पहला जलयान १४ मार्च सन् १९४८ को जल में उतारा गया जिसकी भार-वहन-क्षमता ८००० मी. टन थी। 'हिन्दुस्तान शिपयार्ड' जलयान निर्माण-शाला २२ हैक्टर भूमि में फैली है जिसमें ५ बर्थ हैं और ३-४ जलयान एक साथ बनाये जा सकते हैं। यहां पर १२५०० (D.W.T.) भार वाले जहाज बनाये जाते हैं। प्रथम जलयान 'जलउषा' का निर्माण (१९४८) के पश्चात् अब तक ५० से भी अधिक जलयान तैयार कर पानी में उतारे जा चुके हैं।

देश की बढ़ती हुई आवश्यकता को ध्यान में रखकर केन्द्रीय सरकार ने एक दूसरा शिपयार्ड बनाने का आयोजन किया है। इसके सर्वेक्षण और उचित कार्यवाही के लिए सन् १९५७ में विशेषज्ञों का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार के निमंत्रण पर यहाँ आया था। इस प्रतिनिधि मण्डल ने जलयान निर्माण के लिए जिस आधारभूत भौगोलिक वातावरण की उपलब्धि पर जोर दिया था वे इस प्रकार हैं :

(१) जहाजी वातावरण के लिए समुद्र की गहराई अधिक और ज्वार-भाटे का क्षेत्र सीमित न हो।
(२) उत्तम जलमार्गों तथा थलमार्गों से कारखाना जुड़ा हुआ होना चाहिए।
(३) तूफान से सुरक्षित तथा पर्याप्त लम्बा-चौड़ा स्थान हो जिससे भविष्य में विकास के लिए जगह की कमी न पड़े।
(४) बन्दरगाह किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के समीप स्थित हो।
(५) बिजली, सड़क, रेलमार्ग, जलमार्ग का जाल बिछा होना चाहिए।
(६) आधुनिकतम सुविधाएँ, बैंकिंग, बीमा, अग्निशमन आदि की समुचित व्यवस्था हो।

उपर्युक्त मण्डल ने निम्न ५ स्थानों पर इस उद्योग को विकसित करने के लिए अनुमानित खर्च का विवरण इस प्रकार दिया है :

शिपयार्ड निर्माण का अनुमानित व्यय

तालिका १२१

स्थान	खर्च (करोड़ रुपये)
१—कोचीन, एर्नाकुलम (केरल)	१६.१६
२—काडला (गुजरात)	२०.३१
३—ट्राम्बे (महाराष्ट्र)	१७.३८
४—ज्ञानमामी (प. बंगाल)	२०.८८
५—ममगांव (महाराष्ट्र)	७.०४

नौसेना थी जिसमे हजारों की संख्या में 'जलयान' तथा असंख्य नौकाएँ थी। मार्कोपोलो ने भारतीय बड़े जलयानों को देखकर उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी। शिवाजी के जल सेनाध्यक्ष कान्होजी आग्रे का नाम भारत की प्राचीन जलयान निर्माण उद्योग से सम्बन्धित है।

आधुनिक किस्म के जलयानों का निर्माण "सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी लि., की स्थापना के साथ श्री बालचन्द्र हीराचन्द ने सन् १६१६ में भारत के पूर्वी तट पर विशाखापट्टम

चित्र ४८

में प्रारम्भ किया था। देखें चित्र ४८। आर्थिक कठिनाइयों और विश्वव्यापी मन्दी के कारण इस उद्योग को बड़े घाटे का सामना करना पड़ा। सन् १६४० ई. में इस कम्पनी ने सर

१	२	३	४
	२. फोर्ड मोटर क०	१९३०	
	३. प्रीमियर ग्रोटोमोबाइल्स	१९३४	डाज
	४. महिन्द्र एण्ड महिन्द्र लि०		जीप
	५. टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग क०		डिसोटा, प्लाउथाऊथ फिएट ११००
कलकत्ता (प. बंगाल)	१. हिन्दुस्तान मोटर्स लि०	१९४४	हिन्दुस्तान १४
	२. पेनिनसुला मोटर कारपोरेशन		स्टुडीबेकर
	३. फ्रेन्च मोटर क०		मारिसमाईनर
	४. देवार्स गैरेज एण्ड इंजीनियरिंग वर्क्स		
तमिलनाडु	१. स्टैन्डर्ड मोटर कं०	१९४९–५०	स्टैन्डर्ड वैनगार्ड
	२. एडीसन एण्ड क०		स्टैन्डर्ड ८
	३. ग्रशोक मोटर्स	१९५०	लीलैण्ड (डीजल)
गुडगाँव (हरियाणा)	१. मारुति लि०	निर्माणाधीन	

उपर्युक्त कम्पनियाँ ग्रधिकाधिक पुर्जों को विदेशों से मंगाकर मोटर उत्पादन करती थीं। इन कम्पनियों ने प्रारम्भ में सभी मोटर पुर्जों को देश में ही तैयार करने की योजना बनाई थी। दो कम्पनियाँ—हिन्दुस्तान मोटर्स (कलकत्ता) तथा प्रीमियर ग्रोटोमोबाइल्स (बम्बई) को इस लक्ष्य में सफलता मिली है। ग्रब मोटर के लगभग ८०% हिस्से जैसे इंजिन, गीयर बाक्स, पहियों के धुरे, लीफस्प्रिंग ग्रादि ग्रपने देश में ही बनने लगे हैं।

देश की ग्रौद्योगीकरण नीति के साथ-साथ मोटर गाड़ियों की संख्या बढ़ने लगी है। *परन्तु देश के नागरिकों की गरीबी, कारों ग्रादि का कम उत्पादन, देश का सामाजिक ग्रौर* धार्मिक गठन ग्रादि के कारण मोटर गाड़ियों का प्रचलन भारत जैसे देश में बहुत ही कम है। भारत में प्रति लाख व्यक्तियों पर मोटरगाड़ियों की ग्रौसत संख्या १६ है। जबकि सं. रा. ग्रमेरिका, *कनाडा, तथा ग्रास्ट्रेलिया में क्रमशः ३८८००,२६६०० तथा २४६००* है। ग्रमेरिका में प्रति तीन व्यक्तियों पर एक या इससे ग्रधिक मोटर गाड़ियाँ पड़ती हैं। भारत की पंचवर्षीय योजनाग्रों में इस उद्योग की प्रगति को निम्न तालिका में दिखाया गया है :

तालिका १२३

वस्तु	१९५५	१९६१	१९६६	१९७२	१९७३
१. मोटर	१४९२	२१९६०	२४५००	४००३९	४२४७२
२. जीप	१३३६	७०५६	११०००	१२५८६	११०७१

कोयले तथा लोहे के अभाव में ट्राम्बे (महाराष्ट्र) में इस उद्योग की स्थापना के लिए कठिनाइयाँ हैं। मद्रास के कृत्रिम बन्दरगाह की कठिनाइयों को छोड़कर अन्यथा सामग्री अन्य स्थानों से जलयानों द्वारा मँगाई जा सकती हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने कोचीन (एर्नाकुलम) (चित्र ४४) में देश का दूसरा जलयान निर्माण कारखाना खोलने का निर्णय कर लिया है जिस पर ३६ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। और यह जलयान निर्माण कारखाना जापान की मित्सुबिशी भारी उद्योग के सहयोग से ६६,००० D. W. T. क्षमता के नये जलयान निर्माण करने के साथ-साथ मरम्मत का भी कार्य सम्पन्न करेगा। राज्य सरकार ने ३० हैक्टर भूमि की व्यवस्था कर दी है।

चतुर्दिक प्रगति को देखते हुये देश के जलयान उद्योग की प्रगति अपेक्षाकृत संतोषजनक कही जा सकती है। इस समय हमारे देश में लगभग १०० से भी अधिक जलयान हैं फिर भी भारत के समुद्र तट क्षेत्र और आबादी को देखते हुये यह संख्या बहुत कम है। तटीय तथा सामुद्रिक व्यापार को ध्यान में रखते हुये यह प्रगति बड़ी संतोषप्रद नहीं कही जा सकती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाओं में जलयानों की संख्या में काफी वृद्धि की गई। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में और वृद्धि की काफी सम्भावनाएँ हैं। भारत के इस महत्वपूर्ण उद्योग में विदेशी सरकारों ने बड़ी सहायता प्रदान की है। जिनमें युगोस्लाविया, पोलैण्ड, जर्मन डिमोक्रेटिक रिपब्लिक तथा रुमानिया के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मोटर गाड़ी उद्योग

परिवहन और परिधान की सामग्रियाँ मनुष्य की सभ्यता के साथ-साथ चली हैं। मनुष्य ज्यों-ज्यों सुसभ्य होता जाता है वस्त्र, आभूषण तथा आवागमन में भी विकास होता है। आदिम अवस्था में मनुष्य अपने पैरों से चलता था। उस समय वह या तो वस्त्र धारण नहीं करता था अथवा बहुत कम वस्त्र उसके शरीर पर रहते थे। फिर पशुओं का इस्तेमाल किया और अब मनुष्य की सभ्यता का वह स्तर आ गया है जहाँ चन्द्रयान जैसी चीजें भी देखने को मिल रही हैं। इस वैज्ञानिक दौर तथा उन्नति की अवस्था में मोटरें मानव जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारत में सबसे पहले सन् १८९७-९८ में पहली मोटर गाड़ी आयात की गई थी। विदेशों से मोटरों के हिस्सों को मँगाकर उद्योग के रूप में मोटरों का कारखाना सबसे पहले यहाँ १९२६-२७ में प्रारंभ किया गया। चूंकि हिस्सों को विदेशों से मँगवाना पड़ता था इसलिए स्वाभाविक रूप से इस उद्योग का स्थानीयकरण कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में ही हो पाया। इस समय देशभर में १३ कम्पनियाँ (५ महाराष्ट्र, ३ तमिलनाडु, ४ कलकत्ता तथा १ हरियाणा) उद्योग में लगी हुई हैं जिनके स्थापना वर्ष, राज्य तथा उत्पादन किस्म आदि को निम्न तालिका में दिखाया गया है :

तालिका १२२

राज्य का नाम	फर्म का नाम	स्थापना वर्ष	गाड़ियाँ
महाराष्ट्र	१. जनरल मोटर्स लि०	१९२८	

उस समय हमारे देश में यह उद्योग बिल्कुल विकसित नहीं था। इस उद्योग के मामले में देश पूर्णतया विदेशों पर निर्भर था। इंजिनों की मरम्मत के लिए जमालपुर तथा अजमेर में सर्वप्रथम वर्कशाप खोले गये और पुन इन्हीं कारखानों मे निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया। १८८२-१६२३ के बीच लगभग २०० इंजिन तथा १०० बॉयलर्स बनाये गये। सन् १६४० तक अजमेर के कारखाने में ४५० इंजिन तथा ३५० बॉयलर्स बनाने के बाद सरकार की नीति के कारण यह कारखाना बन्द कर दिया गया। द्वितीय महायुद्धारंभ हुआ और फलस्वरूप आयात दुर्लभ हो जाने के कारण सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी। सन् १६२१ मे पेनिनसुलर लोकोमोटिव क० तथा सन् १६४५ मे टाटा इंजीनियरिंग और लोकोमोटिव वर्क्स स्थापित किये गये। किन्तु प्रथम बन्द हो गया। टाटा कम्पनी ने सन् १६६६ में ६३ इंजिन बनाये गये और अब तक निर्मित इंजिनों की सख्या लगभग २३०० तक पहुँच गई है। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद 'चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स' के नाम पर सन् १६४८ ई० मे १२० इंजिन तथा ५० बॉयलर बनाने के उद्देश्य से मिट्टी-जाम नामक स्थान पर एक उद्योग प्रारम्भ किया गया परन्तु अब इसकी उत्पादन क्षमता इंजिन और बॉयलर दोनों मे दुगनी हो गई है। जनवरी १६७२ तक इस कारखाने से लगभग २३५१ बड़ी लाइन के इंजिन बन चुके हैं। सन् १६६१ से इस कारखाने मे विद्युत से चलने वाले इंजिन भी बनने लगे हैं जिनकी अब तक की कुल सख्या ४०० (एसी डीसी) तक पहुँच चुकी है। इस उद्योग को बहुत सी प्राप्त अतिरिक्त सुविधाओं में से कतिपय उल्लेखनीय हैं।

(१) शक्ति के साधनों की सुलभता—दामोदर घाटी परियोजना की विद्युत इस केन्द्र को बड़ी सुलभता से प्राप्त है।

(२) प. बगाल का कोयला क्षेत्र इस स्थान से १२० कि. मी. से भी कम दूरी पर स्थित है।

(३) इस प्रतिष्ठान केन्द्र पर इन्डिया से पेट्रोल सुगमता से मँगाया जाता है।

(४) यह औद्योगिक इकाई टाटा और भारतीय लोहे और इस्पात कारखानों के बिल्कुल समीप है।

(५) विदेशों से कुछ ऐसे पुर्जों को, जो यहाँ पर तैयार नही हो पाते, कलकत्ता के बन्दरगाह से, केवल २२५ कि. मी. दूर है सुगमता पूर्वक आयात किया जाता है।

(६) भारत के अधिकांश भागों से मजदूर इस औद्योगिक पेटी मे कार्य करने आते हैं इसलिए यहाँ मजदूरों की प्राप्ति की कोई समस्या नहीं है। इस समय इस उद्योग मे १०,००० से भी अधिक मजदूर कार्य कर रहे हैं।

वाराणसी का डीजल कारखाना

डीजल इंजिन बनाने का एक कारखाना वाराणसी (उ. प्र.) में अमेरिका के सहयोग से स्थापित किया गया है जिस कारखाने से प्रथम इंजिन ३ जनवरी सन् १६६४ को रेल की पटरी पर विधिवत् उतारा गया। अब तक (मार्च १६७३) इस कारखाने से ६२६ हर तरह

१	२	३	४	५	६
३. स्टेशन वैगन	७६५	—	—	३७४६६	४२३६८
४. ट्रक (पेट्रोल डीजल)	६४५६	१६५१२	३४०००	८००००	१०४०००
५. बस (पेट्रोल डीजल)	३०३६	६०८४	—	—	
६. मोटर साइकिल तथा	९४०	२००१६	५००००	१५०००	१,५०,९०३
स्कूटर	—	—	—	—	
७. तीन पहिए की गाडी	५२८	१२२७	१८६४	१८८४	१०३०००(लक्ष्य)
८. ट्रैक्टर	—	—	—	१८३०१	२३४१७

चीन तथा पाकिस्तान के साथ युद्ध और उसमे अधिकाधिक मात्रा में जीपों तथा ट्रकों के प्रयोग के कारण इनका उत्पादन लक्ष्य से अधिक हुआ। स्कूटर, आटोरिक्शा, मोटर-साइकिल का उत्पादन सतोषप्रद रहा। जनता मोटर कार उत्पादन योजना' के अन्तर्गत मध्यम वर्ग की जनता के लिए कम मूल्य की कारों के उत्पादन की दिशा मे काफी चर्चा चल रही थी। इस लक्ष्य को ध्यान मे रखकर सरकार ने मारुति कार उत्पादन को लाइसेन्स प्रदान किया है। यह हमारे देश मे मोटर उद्योग की १३वीं इकाई है। इन सभी १२ इकाइयों ने उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है जिससे मोटरगाडियों की सख्या मे शीघ्रता से वृद्धि हो रही है, जिसको निम्न तालिका मे अकित किया गया है :

मोटर गाड़ियों की वृद्धि (०००)

तालिका १२४

	१९५०-५१	५५-५६	६०-६१	६५-६६	६६-६७	६७-६८	७२-७४
व्यापारिक गाडियाँ	८.६	९ ९	२८.४	२५.३	३५.६	३८.०	८५.०
सवारी मोटर	७ ९	१५.४	२६ ६	३५ ४	३१.६	५४.०	६५ ०

भारत मे बनी गाडियाँ गुण और सख्या दोनों मे कम तथा कीमत मे अधिक होती हैं क्योंकि उन पर ४०% से ५०% सरकारी टैक्स होता है। अभी मोटर गाड़ियों का उत्पादन भारत मे अन्य देशों की प्रमुख कम्पनियों की तुलना मे बहुत कम है क्योंकि देश में इंजीनियरिंग उद्योग की कमी के साथ-साथ पूंजी, श्रम, तथा प्रबन्ध आदि की समुचित जानकारी नहीं है।

रेल इंजिन उद्योग

ब्रिटिश सरकार ने अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल इस उद्योग को विकसित किया था। सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम मे देश के सभी भागों में उपद्रव होने के कारण सेनाओं को रसद सामग्री तथा लड़ाई की अनेकानेक वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने मे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेजों ने देश के प्रत्येक भाग को आपस मे जोड़ने का कार्य प्रारम्भ किया था।

१९४० में वालचन्द हीराचन्द तथा उस समय की मैसूर सरकार ने मिलकर 'हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट कम्पनी' की बंगलोर मे स्थापना की। एक वर्ष बाद केन्द्रीय सरकार ने उसमें एक हिस्सा खरीदा था। फिर दूसरे वर्ष ही वालचन्द तथा हीराचन्द से पूरी कम्पनी को खरीद लिया और १ अक्टूबर १९६४ से यह कम्पनी भारत सरकार की देखरेख में 'हिन्दुस्तान एयरोनाटिक्स लि०' के नाम से कार्य कर रही है। इसमें सन् १९४१ से ही वायुयान निर्माण का कार्य प्रारम्भ है और अब तक निर्मित विमानों की संख्या २५० से भी अधिक हो चुकी है। इसमें नेंपावर जैट लड़ाकू विमान, ट्रेनर्स डी, हैवी लैण्ड तथा सुपरसोनिक किस्म के विमान बनाये जा रहे हैं। मिग फैक्टरियों की स्थापना की गई। 'हाल' (Hal) के माध्यम से नेट वायुयानों का निर्माण कार्य सम्पन्न किया गया। अनेक प्रकार के अन्य हेलीकाप्टर तथा प्रशिक्षण वायुयानों जैसे 'कृषक' तथा "किरण" का भी निर्माण किया गया है।

बंगलौर में वायुयान उद्योग स्थापित होने के निम्न कारण हैं।

(१) मलवाय से अल्युम्यूनियम की सुविधाजनक उपलब्धि।

(२) भद्रावती (कर्नाटक) का लोहे और इस्पात कारखाने से लोहे की प्राप्ति।

(३) दक्षिणी कर्नाटक में "आधुनिक कोयले" (जल-विद्युत) को पूरी तरह से विकसित किया गया है।

(४) बंगलौर में भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी है जिससे सदैव तकनीकी सहयोग प्राप्त होता रहता है।

(५) यह सम्पूर्ण प्रदेश पहले अंग्रेजों के प्रभाव मे आया था इसलिए जानकारी आदि तथा विदेशी सवर्गो की बिल्कुल कमी नहीं थी।

भारतीय वायुसेना के संरक्षण और देखरेख में कानपुर (उ. प्र.) में एक एयर क्राफ्ट निर्माण संस्थान प्रारम्भ किया गया है। जिसमें सैनिक वायुयान बनाये जाते हैं। देश की सुरक्षा की वृहद योजना के अन्तर्गत हैदराबाद, कोरापुट तथा नासिक में मिग वायुयान के विभिन्न हिस्सों को बनाने के लिए फैक्टरियाँ खोली जा रही हैं।

साइकिल व्यवसाय

साइकिल भारतीय गरीबों की कार है। इसका भी सर्वप्रथम दर्शन भारत में सन् १८९१ मे हुआ था। द्वितीय महायुद्ध तथा उसके आसपास से ही इस उद्योग का विकास प्रारम्भ हो गया था। इस उद्योग की स्थापना सर्वप्रथम कलकत्ता मे, मैसर्स इंडिया मैन्यू-फैक्चरिंग कम्पनी के नाम से सन् १९३०–३१ में प्रारंभ की गई। इसके ४–५ वर्षों बाद दो और कम्पनियों में साइकिल के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया।

(१) हिन्दुस्तान साइकिल मैन्यूफैक्चरिंग एण्ड इण्डस्ट्रीयल कारपोरेशन (पटना)

(२) हिन्द साइकिल लि० (बम्बई) नामक इन दो कम्पनियों की स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की गई। इसके पश्चात् इस उद्योग की काफी प्रगति हुई। इस समय पूरे भारत में २७ बड़ी तथा ४६० छोटी इकाइयाँ साइकिल तथा उसके कलपुर्जे बना रही हैं। बड़ी इकाइयों का वितरण प० बंगाल (७), दिल्ली (५), पंजाब-हरियाणा (४), गुजरात (२), उत्तर प्रदेश (३), महाराष्ट्र (३), केरल (१) तथा तमिलनाडु (२) है। चित्र ४८

के डीजल इंजिन बनाये जा चुके हैं।

रेल डिब्बों का कारखाना

रेलों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। उसके बाद से रेल के डिब्बों की एक महान् निर्माणशाला की बात केन्द्रीय सरकार के दिमाग मे थी। सन् १९४८ मे इस योजना पर ७.३५ करोड़ रुपयों की लागत से सार्वजनिक क्षेत्र मे तमिलनाडु के पैराम्बूर नामक स्थान पर, जो मद्रास शहर से केवल ४० कि. मी. पश्चिम मे है, कायम किया गया है। सन् १९५५ में फरनीचर रहित डिब्बा बनाने तथा १९५७ मे डिब्बों को सुसज्जित करने का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब तक (१९७३) यहाँ ९३७४ की संख्या मे डिब्बे बनाये गये जिनमें से कुछ का निर्यात भी किया गया है। हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट (बगलौर) मे भी रेल के डिब्बों के निर्माण का कार्य किया जाता है। इनके अतिरिक्त मैसर्स जेसोप एण्ड क० मीटरगेज के २२७ तथा भारत अर्थमूवर्स लि० बड़ी लाइन के लगभग २७५ डिब्बों का प्रतिवर्ष निर्माण कर रहे हैं। रेल इंजिनो की मरम्मत और कल पुर्जों के परिवर्तन आदि का काम देश के कई शहरों बम्बई, लिलुआ, बर्नपुर, भाँसी, अजमेर, खड़गपुर तथा जमालपुर मे वर्कशाप स्थापित करके किया जाता है। कलकत्ता के एक उपनगर मे सिगनल और स्लीपर तैयार करने का कारखाना खोला गया है। वाष्प चलित इंजिनों की संख्या को निम्नलिखित तालिका मे दिखाया गया है।

तालिका १२५

वर्ष	इंजिनो की संख्या	प्रति इंजिन व्यय (लाख रुपया)
१९५०-५१	२७	७.१३
१९५५-५६	१७९	४.५
१९६०-६१	२९५	४.१०
१९६५-६६	११७५	४.०८
१९६८-६९	२२५४	४.००
१९७१-७२	६५४३	—
१९७२-७३	९१७०	—

वायुयान उद्योग

लंका से राम के अयोध्या पहुँचने में द्रुतगामी वायुयान की कल्पना के आधार पर यह कहा जाता है कि सम्भवतः विमान निर्माण तकनीकी का ज्ञान प्राचीन काल मे था। अपुष्ट तथ्यों के हवाले से कहा जा सकता है कि इस विषय पर एक 'विमान शास्त्र' नामक प्राचीनतम पुस्तक भी मिली है। परन्तु इसके आधुनिक आविष्कार, प्रचार तथा प्रसार का गौरव अमेरिका के राइट बन्धुओं को ही है। आधुनिक किस्म के वायुयान निर्माण का श्री गणेश ही कहना चाहिए पहले यहाँ वर्कशाप के रूप में हवाई जहाजों की मरम्मत आदि का कार्य एयर सर्विसेज आफ इण्डिया मे इण्डियन नेशनल ऐयरवेज ने प्रारम्भ किया। सन्

के अन्य भागों में बनी हुई मशीनों की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि पूरा देश (कुछ विशिष्ट भाग को छोड़कर) जूट उत्पादन योग्य नहीं है। मशीनों तथा कच्चे जूट को उत्पादन क्षेत्र से दूर ले जाकर उद्योग को विकसित करना बुद्धिमानी की बात नहीं है। इसलिए कलकत्ता में तीन—ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स, टेक्सटाईल मशीनरी कारपोरेशन तथा लेमन जूट मशीनरी कं० की स्थापना की जा रही है। इनकी प्रतिवर्ष मशीनों की उत्पादन क्षमता क्रमशः २४०, ३०० और १२० मशीनों की है।

चीनी उद्योग की मशीनें—गन्ने के रस निकालने, रस को साफ करने तथा रस को सुखाने के लिए मशीनों की आवश्यकता होती है। इसलिए चीनी मिलों में काम आने वाली मशीनों तथा कल-पुर्जों का निर्माण निम्न स्थानों पर ७ मिलों में हो रहा है :
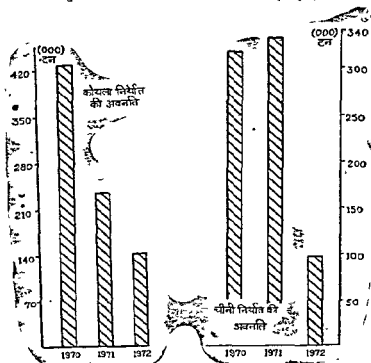
चित्र ४६

(i) बेरी ब्रदर्स (प. बंगाल)
(ii) सारन इन्जीनियरिंग क०, सारन (बिहार)
(iii) रिचार्ड एण्ड कुडास (बम्बई) महाराष्ट्र
(iv) आर्थर बटलर एण्ड क०, मुजफ्फरपुर (बिहार)
(v) पोर्ट इन्जीनियरिंग वर्क्स, कलकत्ता (प. बंगाल)
(vi) भारतीय इन्जीनियरिंग निगम, अम्बाला (हरियाणा)
(vii) त्रिवेणी इन्जीनियरिंग वर्क्स, नैनी (उत्तर प्रदेश)

भारत इस समय अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईरान, बर्मा, श्रीलंका, नाइजीरिया, थाईदेशों तथा पूर्वी अफ्रीका के देशों, आदि को साइकिलों का निर्यात करता है। साइकिलों का वार्षिक उत्पादन इस प्रकार रहा है।

साइकिलों का उत्पादन

तालिका १२६

वर्ष	साइकिलो की संख्या
१९५०-५१	९९,०००
१९६०-६१	१०.७ लाख
१९६५-६६	१५.७४ ,,
१९६६-६७	१७.१९ ,,
१९६८-६९	१९.०० ,,
१९७२-७३	२५.०० ,,
१९७४ (लक्ष्य)	३२.०० ,,

औद्योगिक मशीन निर्माण उद्योग

सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही इस उद्योग को देश में प्रारम्भ किया गया। इसके पहले सभी प्रकार के उद्योगों (जूट, सूती वस्त्र, चीनी, चाय) को चलाने के लिए मशीनें विदेशों से मँगाई जाती थीं। भारत के बन्दरगाह प्रदेशों को सबसे पहले औद्योगिक दृष्टि से सुसम्पन्न होने का यह एक प्रमुख कारण था। मशीनों को बन्दरगाहों पर उतारने के बाद यातायात के खर्च से बचने के लिए सरकार तथा उद्योगपति दोनों ने ही सबसे पहले उद्योगों के लिए बन्दरगाह प्रदेशों का चयन किया। तत्पश्चात् देश की जागरूकता, प्रादेशिकता तथा सरकारी नीति ने देश के अन्दर प्रदेश को भी औद्योगिक दृष्टि से काफी विकसित तथा सुसम्पन्न बनाना प्रारम्भ किया। औद्योगिक मशीनरी निर्माण उद्योग का क्षेत्र इस समय देश में बड़ा विस्तृत है क्योंकि इसके अन्दर निम्न मशीनों के निर्माण की बातें संलग्न हैं :

(१) जूट उद्योग की मशीनें
(२) चीनी उद्योग की मशीनें
(३) सूती वस्त्र उद्योग की मशीनें
(४) कृषि यन्त्रों की मशीनें
(५) चाय उद्योग की मशीनें
(६) सीमेन्ट उद्योग की मशीनें
(७) कागज उद्योग की मशीनें
(८) अन्य मशीनें

जूट उद्योग की मशीनें—इसके लिए कलकत्ता सबसे बड़ा केन्द्र बन चुका है। देश

मशीनों एवं औजार का उत्पादन तथा आयात मूल्य

तालिका १२७

(लाख रुपयों में)

वर्ष	इकाई	उत्पादन मूल्य	आयात मूल्य
१६५०	१७	३०	२४६
१६५६	१७	८०	८३७
१६६१	२८	७००	२०,३४
१६७२	—	१०,५००	३७६०
१६७३	१२३	१५२७०	४०६०

औद्योगिक मशीन निर्माण उद्योग के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश मशीन-निर्माण-केन्द्र कलकत्ता अथवा बम्बई मे स्थित हैं। यह मनुष्य की विवशता पर प्रकृति की विजय है क्योकि यही दो केन्द्र इसके लिए- भौगोलिक व प्राकृतिक सभी दृष्टियों से उत्तम थे। इस उद्योग के केन्द्रीयकरण के कुछ और प्रमुख कारण निम्न हैं :—

(१) ये दोनों केन्द्र (कलकत्ता व बम्बई) भारतीय औद्योगिक क्रान्ति तथा उसके पूर्व से कुटीर उद्योगों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। यहाँ एक औद्योगिक वातावरण पहले से विद्यमान था।

(२) प्रारम्भ से ही इन क्षेत्रों को शक्ति संसाधन उपलब्ध थे उदाहरणार्थ कलकत्ता रानीगंज तथा झरिया के कोयले की पेटी के पास स्थित है और बम्बई के पास देश में सबसे पहले टाटा विद्युत केन्द्र विकसित किया गया।

(३) प्रारम्भ मे इन मिलों को स्थापना के लिए भी मशीनें विदेशों से मंगानी पड़ी थीं इसलिए बन्दरगाह की उत्तम सुविधा यहाँ प्राप्त थी।

(४) अधिकांश विदेशी चाहे वह प्रशासक रहा हो चाहे पूँजीपति पहले समुद्र के किनारे ही आया और वहीं बसने की व्यवस्था की।

(५) दोनों ही बन्दरगाहो का पार्श्व प्रदेश बहुत धनी, घना बसा, यातायात की सुविधाओं से सुसम्पन्न तथा प्रशिक्षित है।

(६) मशीन निर्माण मे इस्पात की भी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती थी। भारत की सभी—जमशेदपुर, दुर्गापुर, भिलाई, रूरकेला, बर्नपुर आदि—इस्पात मिलें (भद्रावती को छोड़कर) कलकत्ता के बिल्कुल पास स्थित हैं और इस्पात का प्रयोग आसानी से यहां किया जा सकता था। बम्बई आयात करने तथा भारतीय मिलों से भी आसानी से मँगाने की स्थिति मे है।

(७) कलकत्ता तथा बम्बई के पार्श्व प्रदेश कृषिजन्य कच्चे माल के लिए जगत प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ यदि कलकत्ता के पार्श्व प्रदेश में चाय तथा जूट ऐसी वस्तुएँ हैं तो बम्बई के पार्श्व प्रदेश में कपास की जगत प्रसिद्ध खेती होती है।

(८) भारत के इन दोनो सबसे बड़े शहरों मे लगभग सबसे अधिक बैंकिंग तथा बीमा आदि की सुविधाएँ प्राप्त हैं।

सूती वस्त्र बनाने की मशीनों का निर्माण—इस उद्योग के सबसे महत्वपूर्ण पुर्जे तकुए, रिंग बार तथा फ्लेइस हैं जिनके निर्माण के लिए पूरे देश मे ११ कारखानों के नाम निम्न प्रकार से हैं। इनमे से ५ केवल बम्बई में हैं।

(i) नेशनल मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स, बम्बई
(ii) लक्ष्मी रतन इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई
(iii) मानिकलाल मैन्यूफैक्चरर्स कं० बम्बई
(iv) कैलिको इण्डस्ट्रियल इन्जीनियर्स, बम्बई
(v) वसन्त इन्डस्ट्रीयल एण्ड इन्जीनियरिंग वर्क्स, बम्बई
(vi) टैक्स मैको कलकत्ता
(vii) मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स कारपोरेशन, कलकत्ता
(viii) टैक्स मैको, ग्वालियर
(ix) टैक्ट टूल्स, कोयम्बटूर
(x) कपूर इन्जीनियरिंग लि० सतारा (महाराष्ट्र)
(ix) दी मैसूर मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स (बंगलौर)

कृषि औजार तथा मशीन निर्माण उद्योग—भारत कृषि प्रधान देश है। इसलिए इसको विकसित तथा यान्त्रिक करने के लिए कृषि यन्त्र उद्योग की निरन्तर वृद्धि हो रही है। महान फाउण्ड्री लि०, हिमाचल प्रदेश मे सरकारी क्षेत्र मे तथा टाटा एग्रीको कम्पनी भारत का सबसे बड़ा कृषि यन्त्र के कारखाना है। इनके अतिरिक्त देश मे ६५ कारखाने हैं। १० हजार ट्रैक्टर प्रतिवर्ष बनाने का भारत सरकार का लक्ष्य है। मुख्य केन्द्र कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, अमृतसर तथा बटाला हैं। कृषि मे काम आने वाले ट्रैक्टर निर्माण के लिए सन् १९७३ में कोई लाइसेन्स नहीं दिया गया था। इस समय प्रतिवर्ष उत्पादन क्षमता १,७७००० ट्रैक्टर की है। ट्रैक्टरों का उत्पादन सन् १९७२ में १८३०१ से बढ़कर सन् १९७३ मे २३८९७ अथवा ३०% अधिक हो गया था। सरकारी क्षेत्र मे स्थापित पंजाब ट्रैक्टर्स लि० स्वदेशी तकनीकी से स्वराज नामक ट्रैक्टर बनाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त शक्तिचालित हलों, कटाई यन्त्रों, मिट्टी टालने के पेचों, सड़क कूटने के रोलर, आदि के उत्पादन की फैक्टरियाँ स्थापित की जा रही हैं। इसके साथ ही साथ पुरानी इकाईयों को अपनी उत्पादन क्षमता को भी बढ़ाने की सरकारी अनुमति प्रदान कर दी गई है। इस प्रकार आने वाले कुछ वर्षों मे बढ़े हुए उत्पादन से देश की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

चाय उद्योग मशीनों का निर्माण—इन मशीनों को बनाने के लिए दो उद्योग कलकत्ता मे—मैसर्स ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग वर्क्स तथा मैसर्स मार्शल एण्ड सन्स के नाम से—स्थित हैं।

भारत अभी भी विदेशों से विभिन्न प्रकार की मशीनें आयात करता है जिसका आयात मूल्य आगे की तालिका मे दिखाया गया है :

इसके मुख्य एवं प्रारम्भिक कारण प्राकृतिक तथा भौगोलिक होते हैं और तत्पश्चात् इन कारणों की प्रतिक्रिया स्वरूप सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और सुरक्षात्मक कारण कार्य करने लगते हैं।

इस प्रकार भारत के कुछ भाग, प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुके हैं और कुछ उस प्रक्रिया में हैं। औद्योगिक प्रदेशों की निम्न विशेषताएँ होती हैं।

(१) शहरी जनसंख्या की वृद्धि तथा ग्रामीण जनसंख्या का ह्रास।

(२) बड़े पैमाने पर बैंक, बीमा तथा रोजगार की सुविधाएं।

(३) बड़े एवं लघु उद्योगों में आपसी निर्भरता की वृद्धि।

(४) ऐसे औद्योगिक सश्लिष्टों में प्रवेश के पूर्व गगनचुम्बी एवं धूम्रापूर्ण चिमनियां तथा सन्निकट आने पर विस्तृत रेलयार्ड, रेलें, मोटर गाड़ियाँ, सर्वत्र कारखानें एवं श्रमिक आवास आदि दिखाई पड़ने लगते हैं।

(५) परिवहन एवं यातायात की भरपूर व्यवस्था तथा विस्तार।

(६) श्रमिकों की दृष्टि से बड़ा बाजार।

(७) कारखानों से नगरों का घनिष्ठ संबंध।

(८) कारखानों की प्रसिद्धि से नगरों का विकास।

(६) कृषि कार्य गौण।

औद्योगिक प्रदेशों का सीमांकन

औद्योगिक प्रदेशों की सीमा निर्धारण में विविध आधारों और मापकों को काम में लिया जाता है। इनमें से कुछ की तरफ निम्न पंक्तियों में संकेत किया जाता है।

श्रमिकों की संख्या—यह मापक सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे औद्योगिक प्रदेश विशेष की कार्यशील श्रमिकों, उनके आश्रितों, कृषि जनित एवं अन्यथा उद्योग-धंधों में लगे हुए व्यक्तियों के बीच स्पष्ट अनुपात, औद्योगिकरण की मात्रा और स्तर आदि निर्धारित होता है।

ऊर्जा एवं स्वचालन की मात्रा—प्रत्येक उद्योगों में शक्ति का उपयोग किया जाता है। जिस प्रदेश में जितनी ही शक्ति का उपयोग होगा वहां औद्योगिकरण भी उसी के अनुसार अधिक एवं तीव्र होगा। इससे श्रमिकों की कठिनाइयां दूर होती है परन्तु इसके प्रतिकूल स्वचालन बढ़ने की स्थिति में श्रमिकों की संख्या न्यूनतम और बेरोजगारी की समस्या अधिकतम हो सकती है।

कारखानों की संख्या—उद्योगों की संख्या सर्वमान्य तथा सबसे साधारण मापक है। इसकी संख्या, उत्पादन किस्म एवं मात्रा तथा यंत्रीकरण के स्तर आदि की सहज ही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। किसी भी प्रशासकीय इकाई में कारखानों की संख्या एवं उत्पादन विविधता से उस इकाई विशेष के औद्योगिकरण के घनत्व का परिचय मिलता है।

(९) भारत के सभी अन्य बड़े शहरों तथा विश्व के सभी भागों से इन दोनों शहरों का सबसे अच्छा यातायात एवं सचार सम्बन्ध हैं और ये शहर बड़े प्राचीन काल से सामुद्रिक व्यापार के केन्द्र रहे हैं।

(१०) कलकत्ता के निकट दामोदर तथा, कोसी नदी बहुउद्देशीय योजनाओं से जल-विद्युत प्राप्त होती है। साथ ही साथ गंगा तथा अन्य नदियो के जल भण्डार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। बम्बई के निकट टाटा विद्युत तथा निकट मे कोयना नदी घाटी बहुउद्देशीय योजनाएँ कार्य कर रही हैं।

(११) अधिक उद्योगो की स्थापना के कारण एक उद्योग के उप-पदार्थों का प्रयोग दूसरे मे, तथा दूसरे का तीसरे में होता रहता है। इसलिए उन वस्तुओं को ढोने अथवा इकट्ठा करने आदि की असुविधाएँ स्वय हल हो जाती हैं।

इतनी प्रगति होने के बावजूद भी अभी भारत इस उद्योग में आत्मनिर्भर नहीं हुआ है जबकि इतने बड़े देश को छोटे-छोटे देशो के लिए मशीनो का निर्माण और निर्यात करना चाहिए। अपने अपेक्षित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए निम्न उपाय लिए जा सकते हैं।

आत्मनिर्भर होने तथा भविष्य मे विकास के लिए सुझाव :

(१) वैज्ञानिक तथा तकनीकी खोज करने की आवश्यकता है।

(२) निर्माण क्षेत्र में अनुसधान की जरूरत।

(३) कुशल कारीगरों का प्रशिक्षण।

(४) आवश्यक सामग्री तथा पूंजी को एकत्रित करना।

(५) सरकारी आयोजन, निर्माण व मांग मे सामजस्य।

औद्योगिक प्रदेश

परिभाषा एव विशेषताएँ

अलग-अलग क्षेत्रों मे अलग-अलग प्रकार के उद्योगो का केन्द्रित होना स्थानीयकरण कहलाता है। भौगोलिक दृष्टि से इसे प्राय औद्योगिक प्रदेश की सज्ञा दी जाती है।

भारत स्वय कृषि प्रधान और विदेशों को कच्चा माल भेजने वाला प्रमुख देश होते हुए भी पिछले लगभग ७ दशको मे अपने औद्योगिक विकास की ओर काफी अग्रसर हुआ है।

उपर्युक्त पृष्ठों पर दिए गये तथ्यों से पता चलता है कि भारत मे उद्योगों का वितरण एक-सा (Uniform) नहीं है। कुछ विशेष देशो अथवा प्रदेशो ने अपना उद्योग इतना विस्तृत एव बहुमुखी कर लिया है कि हम उन्हें औद्योगिक क्षेत्र के रूप मे सहज ही मान्यता प्रदान करने लगते हैं। औद्योगिक क्षेत्र की संज्ञा हम उस इलाके को देते हैं जहाँ एक या अधिक उद्योग केन्द्रित हों, जिनके पदार्थों एव उप-पदार्थों पर निर्भर रहकर फिर अन्य उद्योग इसके इर्द-गिर्द केन्द्रित होने लगें और क्षेत्र औद्योगिक रूप से इतने विकसित हों कि उनका प्रभाव आसपास के क्षेत्रों से भिन्न, एक स्वतत्र आर्थिक इकाई के रूप मे बन जाय और जिसके लिए अलग से परिवहन, बैंकिंग, बीमा, तकनीकी तथा वैज्ञानिक सुविधाओं की गारन्टी के लिए सरकार बाध्य हो जाय।

उद्योग के लिये कच्चा जूट समीपस्थ क्षेत्रों में उपलब्ध हो जाता है। अन्य उद्योगों जैसे कागज, चमड़ा, इस्पात, रसायन तथा सूती वस्त्र व्यवसाय के लिये भी कच्चे माल की लगभग स्थानीय व्यवस्था आसानी से हो जाती है।

शक्ति संसाधन—कलकत्ता के पृष्ठ प्रदेश मे शक्ति उपयोग के ऐतिहासिक समय से ही कोयला बड़ी मात्रा एवं सुलभता से प्राप्त होता रहा है। विद्युत् उत्पादन के अनुकूल सबसे अधिक नदी घाटी परियोजनाएँ भी इस प्रदेश के पृष्ठ प्रदेश मे स्थित हैं। देश के किसी भी अन्य औद्योगिक प्रदेश मे इस प्रकार की सुविधाएँ नहीं उपलब्ध हैं। कोयले का उपयोग तापशक्ति उत्पादन के अतिरिक्त अनेक अन्य प्रकार से भी किया जाता है।

श्रमिक आपूर्ति—कलकत्ता का पृष्ठ प्रदेश (गंगा की घाटी) देश में सबसे घना बसा हुआ है। यहां से इस औद्योगिक प्रदेश के लिये सस्ते एव प्रवीण श्रमिक सदैव उपलब्ध होते रहे हैं। इस कारण कलकत्ता तथा मुर्शिदाबाद आदि केन्द्रो पर बहुत प्राचीन काल से सूती-वस्त्र उद्योग विकास की अपनी चरमसीमा पर पहुच चुका था।

बाजार—कलकत्ता तथा उसका पृष्ठ प्रदेश अत्यधिक घना बसा होने के कारण निर्मित वस्तुओं के लिए स्वय मे एक बहुत बड़ा बाजार का काम करता है।

आर्थिक सुविधाएं—अंग्रेजों के पैर सबसे पहले कलकत्ता मे जमने के कारण यहाँ पर सबसे अधिक बैंक, बीमा तथा शेयर बाजारों की उत्तम सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं।

पश्चिमी तटीय औद्योगिक प्रदेश

यह औद्योगिक प्रदेश पश्चिमी तट के सहारे एवं बम्बई के पृष्ठ प्रदेश मे बसा हुआ है। इस प्रदेश में इन्जीनियरिंग, प्रिन्टिंग, शीशा, सीमेन्ट, सूती-वस्त्र तथा विद्युत् उद्योग मे काम आने वाली मशीनों का निर्माण किया जाता है। इस प्रदेश मे व्यापारिक मोटर वाहनों का सबसे अधिक निर्माण किया जाता है। इस प्रदेश मे बम्बई तथा अहमदाबाद दो सबसे बड़े औद्योगिक केन्द्रों के अतिरिक्त पूना, सूरत तथा शोलापुर अन्य महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र हैं। कलकत्ता की भांति इस प्रदेश मे बम्बई (५९७०५७५) सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। इस प्रदेश मे जल-विद्युत्-शक्ति का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। सूती एवं मानवकृत रेशों के उद्योग का बम्बई सबसे बड़ा केन्द्र है। इसके अतिरिक्त बिजली तथा भारी इन्जीनियरिंग, मशीनी औजार, तेल-शोधन, रसायन, रंगाई, दवाइयो, छपाई, सिनेमा, फरनीचर-निर्माण आदि का भी बम्बई प्रमुख केन्द्र है। नासिक तथा सूरत मे हवाई जहाज निर्माण के उद्योग स्थापित किये गये हैं। महाराष्ट्र एवं गुजरात के समुद्रतट पर ट्राम्बे तथा कोयली में तैलशोधन और जहाजरानी कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। बम्बई देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह है। यहां से देश का लगभग ४६% व्यापार किया जाता है। देश की अधिकांश सूती-वस्त्र मिलें अहमदाबाद, बड़ोदा, सूरत, नासिक पूना, शोलापुर तथा कोल्हापुर मे स्थित हैं। नासिक एक बड़ा शहर है यहाँ पर वायुयान, वायुयान के इंजिन, सूती-वस्त्र, छपाई आदि की फैक्टरियां हैं। इनके अतिरिक्त इस प्रदेश में अनेक अनुसंधान संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं। (देखें—चित्र.५०)

भारत के औद्योगिक प्रदेश

पूर्वी प्रदेश

हुगली कलकत्ता औद्योगिक क्षेत्र—चित्र संख्या ५० को देखने से स्पष्ट होगा कि इस औद्योगिक प्रदेश में कलकत्ता (७०३१३८२) तथा जमशेदपुर (४५६१४६) दो सबसे प्रमुख केन्द्र हैं। जल परिवहन के योग्य हुगली नदी पर स्थित तथा इस प्रदेश का सबसे बृहत्तर केन्द्र कलकत्ता पश्चिम बंगाल की राजधानी, परिवहन केन्द्र, विश्व के सबसे प्रमुख बन्दरगाहों तथा व्यावसायिक केन्द्रों में से एक है। यहाँ पर जूट, कागज, कपास, इस्पात, भारी इन्जीनियरिंग, धातु रसायन, वस्त्र, जूता, उर्वरक तथा रेलों के इंजिन आदि बनाने के उद्योग विशेष उल्लेखनीय हैं। अधिकांश उद्योग हुगली नदी के दोनों किनारों पर स्थित हैं क्योंकि स्वयं हुगली नदी कलकत्ता तथा बन्दरगाह के बीच सबसे उपयोगी परिवहन का साधन है। इस औद्योगिक प्रदेश में दुर्गापुर, चितरंजन, आसनसोल, कुल्टी, सिंदरी तथा राँची आदि सम्मिलित हैं। इस प्रदेश में देश का सबसे अधिक कोयला, खनिज भण्डार, उपजाऊ भूमि एवं जनसंख्या स्थित हैं। इतने घने औद्योगिकरण के निम्न भौगोलिक कारण हैं।

चित्र ५०

परिवहन व्यवस्था—देश के अन्य भागों की तुलना में इस औद्योगिक प्रदेश में आवागमन की सबसे अधिक सुविधायें हैं। इससे उद्योग में काम आने वाली मशीनों के आयात तथा निर्मित मालों को विदेशी बाजारों में भेजने की सबसे अधिक सुविधाएँ हैं। कलकत्ता बन्दरगाह के पृष्ठ प्रदेश में रेल तथा सड़क मार्गों का जाल बिछा हुआ है। इसलिए खनिज, श्रमिक तथा शक्ति संसाधनों की उपलब्धि आसानी से होती रहती है।

कच्चे माल की निकटता—कलकत्ता मुख्य रूप से जूट उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। इस

इस प्रदेश के प्रसिद्ध नगर क्रमशः लाख, सिल्क की साड़ियों तथा अफीम के लिये बहुत प्राचीनकाल से प्रसिद्ध रहे हैं। उपर्युक्त तीनों ही नगर अत्यन्त प्राचीनकाल में गंगा नदी पत्तन थे। रीहाण्ड नदी परियोजना के बन जाने के फलस्वरूप दक्षिणी मिर्जापुर जिले की सोनघाटी में ओबरा, पीपरी, रेनूकूट तथा चुर्क आदि नये नगर विकसित हो रहे हैं जहाँ पर सीमेन्ट, अल्युमूनियम, कागज आदि के उद्योग एवं कोयला, सोना एवं अनेकानेक खनिजों की खोज की जा रही है। राजस्थान का कोटा औद्योगिक प्रदेश भी निर्माणाधीन है।

मलाबार कृषि एवं वनाधारित औद्योगिक प्रदेश

इस औद्योगिक प्रदेश में अलवाय प्रधान केन्द्र है। इस प्रदेश में भारतीय अल्युमूनियम क०, उर्वरक कं० तथा केमिकल्स ट्रावनकोर विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रदेश में रबर, नारियल तेल, चाय, कहवा की सुप्रसिद्ध फैक्टरियों के अलावा चावल कूटने, वस्त्र-निर्माण, रसायन एवं उर्वरक उद्योग भी स्थापित किये गये हैं।

दार्जिलिंग कृषि एवं वनाधारित औद्योगिक प्रदेश

जलपाईगुड़ी तथा दार्जिलिंग इस औद्योगिक प्रदेश के सबसे प्रसिद्ध नगर हैं। चाय उद्योग सबसे प्रसिद्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कर चुका है। इन शहरों के अतिरिक्त बीरपुरा, हनुमारा, मनीपुर, चौपारा तथा बनाहट आदि अन्य प्रसिद्ध नगर हैं जहाँ कृषि एवं वनों से कच्चा माल प्राप्त करके उद्योग धंधे चलाये जाते हैं। इन औद्योगिक प्रदेशों के अतिरिक्त देश के अनेक परन्तु आपस में बिखरे हुए क्षेत्रों में अब बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण किया जा रहा है।

स्थानीयकरण से लाभ

उद्योगों के स्थानीयकरण से होने वाले कतिपय लाभ निम्न प्रकार हैं।

अवशिष्ट पदार्थों का सदुपयोग—बड़े पैमाने पर चल रहे उद्योगों से अनेक अवशिष्ट पदार्थ जैसे चीनी से खोई एवं शीरा तथा सूती-वस्त्र उद्योग से डस्ट काटन (Dust cotton) आदि प्राप्त होते हैं जिनसे क्रमशः कागज, स्प्रिट एवं कपड़े बनाये जाते हैं।

पूंजी सम्बन्धी सुविधाएँ—स्थानीयकरण के कारण बीमा, बैंकिंग, साख, तथा शेयरों को बेचने और खरीदने का माध्यम बना रहता है। फलस्वरूप किसी भी बड़ी-छोटी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को कम ब्याज पर पूंजी प्राप्त हो जाती है।

कौटम्बिक आश्रितों को रोजगार व्यवस्था—इस प्रकार के औद्योगिक केन्द्रों में अवकाश प्राप्त, वृद्ध पत्नी तथा बच्चों आदि को भी अनुकूल काम मिल जाता है जिससे परिवार के आर्थिक संतुलन बिगड़ने के स्थान पर उसको समुचित आर्थिक-सहायता प्राप्त होती रहती है।

नवीनतम अनुसंधानों के प्रति चेतना—स्थानीयकरण के कारण व्यापारियों में एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रहती है और नवीनतम उपकरणों को प्राप्त करने के लिये सदैव जागरूक रहते हैं। सामुहिक हितों की प्राप्ति हेतु शोध तथा सामुहिक बाधाओं को दूर करने के प्रयत्न सदैव होते रहते हैं।

दक्षिणी औद्योगिक प्रदेश

भद्रावती, बंगलोर, जलहली तथा कोयम्बटूर, मदुराई कोलार, कनकपुरी, चनापटनम इस औद्योगिक प्रदेश के प्रमुख नगर हैं। खनिज भण्डारों तथा जल-विद्युत् ने इस औद्योगिक प्रदेश का सृजन किया है। लौह प्रयस बाबाबूदन की पहाड़ियों से प्राप्त करके लकड़ी के कोयले तथा जल-विद्युत् की सहायता से इस प्रदेश में भद्रावती इस्पात उद्योग को चलाया जा रहा है। यह सम्पूर्ण प्रदेश आटा, चावल, सूती-वस्त्र, व्यवसाय तथा फल प्रोसेसिंग उद्योगों के लिये प्रसिद्ध है। इस प्रदेश में खनन कार्यों में आने वाली मशीनें, रोलिंग मिलें, मशीनी औजार, शीशा तथा वैज्ञानिक यन्त्र बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इस औद्योगिक प्रदेश में सिंचाई पम्पसेट, सीमेन्ट, सूतीवस्त्र, प्लास्टिक बटन, चीनी, साबुन, मोटर गाड़ियाँ, स्वर्ण खनन, रेशम उद्योगों की प्रधानता है।

उत्तर-पश्चिमी औद्योगिक प्रदेश

इस प्रदेश में अमृतसर तथा अम्बाला कृषि मशीनों और जालन्धर जूतों, खाद्य सामग्रियों तथा लुधियाना सूती एवं ऊनी वस्त्रों के निर्माण के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं।

दिल्ली-मेरठ कृषि औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश अपेक्षाकृत विस्तृत परन्तु खनिज सम्पत्ति से रहित है। इसके बावजूद भी इस क्षेत्र में शहरीकरण की गति बड़ी तेज है। देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजधानी (दिल्ली) के चारों तरफ औद्योगिक विकास बड़ी तेजी से हुआ है। इस प्रदेश में विकसित उद्योग धंधों में प्लास्टिक, बनावटी धागा, वस्त्र-निर्माण, विद्युत् यन्त्र तथा हलकी इन्जीनियरिंग के सामान मुख्य रूप से बनाये जाते हैं। वस्त्र-निर्माण तथा जूता (शाहदरा) हलकी एवं मेकेनिकल इन्जीनियरिंग (गुडगाँव) ट्रैक्टर एवं कृषि यन्त्रों के लिये फरीदाबाद तथा दिल्ली-मेरठ मार्ग पर अनेक छोटे-छोटे नगर हलके उद्योगों के लिये विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

नागपुर-वर्धा औद्योगिक प्रदेश

इस प्रदेश में कोयला, बाक्साइट तथा मैंगनीज की खानें पाई जाती हैं। देश की परम्परागत खनन कार्यों में कोयला तथा मैंगनीज की खुदाई के अतिरिक्त इस्पात एवं रासायनिक उद्योग अधिक विकसित हो पाये हैं।

मद्रास-पैराम्बूर औद्योगिक प्रदेश

इस प्रदेश में जल-शक्ति एवं ताप-विद्युत् का बहुत अधिक उपयोग किया जाता है। इस प्रदेश के उद्योग धंधों में वनस्पति तेल, पेन्ट, शीशा, वस्त्र, वैज्ञानिक उपकरण तथा रेल के डिब्बों के निर्माण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मिर्जापुर-वाराणसी तथा रोहाण्ड औद्योगिक प्रदेश

यह सम्पूर्ण औद्योगिक प्रदेश अभी निर्माणाधीन है। मिर्जापुर वाराणसी तथा गाजीपुर

नैतिक पतन—स्थानीयकरण की प्रवृत्ति के कारण शहरों की अत्यधिक वृद्धि होती है। बड़े-बड़े शहरों की अनेक खराबियाँ पैदा होने लगती हैं। आवास, यातायात, खाद्य पदार्थ, मिलावट तथा सुरक्षा आदि की समस्याओं के कारण नगरवासियों का नैतिक पतन होने लगता है। अपराध वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। नगर दुर्घटनाओं एवं अपराधों के केन्द्र बन जाते हैं।

स्थानीयकरण की हानियाँ

१. असंतुलित वितरण
२. एकाधिकार की मनोवृत्ति
३. नैतिक पतन
४. वर्ग-संघर्ष
५. अस्वास्थ्यवर्धक वातावरण
६. संकटकालीन कठिनाइयाँ
७. गंदी-बस्तियों का फैलाव

वर्ग-संघर्ष—यदि एक तरफ उद्योगपतियों की संख्या बढ़ती है तो दूसरी तरफ श्रमिकों की। अपने-अपने हितों की सुरक्षार्थ जरा-सी भी मनोमालिन्य से मालिक-मजदूर में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। तालाबन्दी तथा हड़तालें प्रारम्भ हो जाती हैं।

अस्वास्थ्य-वर्धक वातावरण—स्थानीयकरण के कारण धरातल गंदा, वायुमण्डल दूषित एवं विषाक्त हो जाता है। एक पर मनुष्य चलता-फिरता है और दूसरे में श्वास लेता है। इन परिस्थितियों में सर्वसाधारण का स्वास्थ्य क्षीण होने लगता है। मलेरिया, तपेदिक, पीलीया, चेचक तथा आकस्मिक महामारियों का प्रकोप होने लगता है। सम्पूर्ण शहर में गदी-बस्तियों का फैलाव होने लगता है और इस समय यह समस्या विश्वव्यापी बन गई है।

औद्योगिक नीति

(शासक व शासन-प्रणाली, विकास व पतन की सीमा, मूल्यांकन ऐतिहासिक घटनाओं के सन्दर्भ में)

भारत वैदिककाल से औद्योगिक और विकसित रहा है। उस समय आज के पश्चिमी राष्ट्र, जिनको अब विकसित देश के नाम से संबोधित किया जाता है, उतने विकसित नहीं थे और अधिकांश सामग्रियों का भारत से आयात करते थे। ऋग्वेद, अथर्ववेद, रामायण, महाभारत तथा कौटिल्य साहित्यों में वर्णित कथाओं की सत्यता अब बढ़ती जा रही है। हेरीडोट्स, मेगस्थनीज, फाह्यान, ह्वेनसांग, मार्कोपोलो, अबुलफजल, इब्नबतूता, वासकोडीगामा आदि *अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त पर्यटकों, नीतिज्ञों तथा व्यवसाइयों के लेखों तथा संग्रहों* से भारत के उद्योग प्रधान होने की बात की पुष्टि होती है। मुगलों के शासनकाल में भारत में आर्थिक सुख-समृद्धि, राजनैतिक स्थिरता, कला, संगीत, शिल्प, साहित्य और व्यवसाय का भी समुचित विकास हुआ था। अकबर और शाहजहाँ के शासनकाल से स्वर्णयुग के नाम से विख्यात हैं। आगरा, फतहपुर-सीकरी, अहमदाबाद, दिल्ली, वाराणसी, अलीगढ़ तथा भागलपुर आदि केन्द्रों पर बहुत बड़े-बड़े भवनों में कारखानें चलते थे। कहीं जरी का काम तो कहीं रेशमी-वस्त्र और कहीं लड़ाई का साज सामान व अस्त्र-शस्त्र बनाने के

पूरक उद्योगों की स्थापना—कोई भी औद्योगिक उत्पादन एक स्थान अथवा एक कारखाने में उत्पन्न होकर उपभोक्ताओं तक सीधा नहीं पहुँचता है। किसी भी एक प्रधान वस्तु की सफलतार्थ अनेक सहायक वस्तुओं को पूरक उद्योगों के माध्यम से एकत्रित करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप साबुन उद्योग के लिये पैकिंग पेटियाँ, लपटने के लिए कागज, चाय उद्योग वाले क्षेत्रों में चाय पैक करने के डिब्बे बनाने, सूती-वस्त्र उद्योग प्रदेश में करघा, तौवा तथा शीशा आदि बनाने के उद्योग स्वाभाविक रूप से विकसित होने लगते हैं।

स्थानीयकरण के कतिपय लाभ

१. अवशिष्ट पदार्थों का आर्थिक उपयोग
२. पूंजी सम्बन्धी सुविधाएँ
३. आश्रितों को रोजगार
४. अनुसंधानों के प्रति चेतना
५. पूरक उद्योगों की स्थापना
६. कुशल श्रमिकों की उपलब्धि
७. केन्द्रों की ख्याति
८. व्यापारियों में सहयोग स्वस्थ प्रतिस्पर्धा।

कुशल श्रमिकों की उपलब्धि—एक ही प्रकार का कार्य करते रहने से न केवल व्यावसायिक प्रशिक्षण पैतृक बन जाता है बल्कि आसपास के श्रमिक भी उद्योग विशेष से सम्बन्धित कार्यों में पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण के लिये बिहार के अभ्रक पेटी में कार्य करने हेतु आसपास के श्रमिक अधिक सिद्धहस्त साबित होते हैं।

स्थान विशेष की ख्याति—इस वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में वस्तुओं की बिक्री पूर्व अर्जित ख्याति पर होती है। उदाहरण के लिये अलीगढ़ के ताले, *बनारसी साड़ी तथा* कानपुर के जूते, आदि।

स्थानीयकरण के कारण व्यापारियों में सहयोग, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा तथा व्यावसायिक प्रक्रिया की भी सम्भावनाएँ सबसे अधिक होती हैं।

स्थानीयकरण की हानियाँ

लाभ एवं हानि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई भी व्यवस्था दोषमुक्त नहीं है। इसलिए अनेक अच्छे लाभों के बावजूद स्थानीयकरण से निम्न हानियाँ भी सम्भावित हैं।

उद्योगों का असंतुलित वितरण—औद्योगिकरण की यह मूलभूत बुराई है। एक ही राष्ट्र का एक भाग अति-विकसित एवं दूसरा विकास की किरणों से अछूता रह जाता है। एक में रोजगार की प्रचुरता, व्यवसाय के अवसर, परिवहन, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सबंधी शुभ अवसर प्राप्त होते हैं और दूसरे में रोजगार की न्यूनता, पिछड़ापन तथा व्यवसाय, यातायात एवं अन्य सुविधाओं का अभाव रहता है नागरिकों में असंतोष का वातावरण व्याप्त होने लगता है।

एकाधिकार की मनोवृत्ति—उद्योगपति अपने हित विशेष की सुरक्षा हेतु संगठन बना लेते हैं। साधारण उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों का मनोनुकूल शोषण करने लगते हैं। कम मजदूरी, अधिक काम तथा ऊँचे मूल्यों पर वस्तुएँ उपलब्ध होने लगने के कारण हड़ताल, तालाबन्दी तथा इसी प्रकार के अन्यान्य अशान्ति-मूलक कार्य भी प्रारम्भ हो जाते हैं।

के लिये मजबूर हो गई। हरेक उद्योग के लिये नये लाइसेन्सेज प्रदान किये गये। भारत ने सूतीवस्त्र, जूट, कागज, चमड़ा, तथा तेल आदि युद्धग्रस्त मित्र-राष्ट्रों को निर्यात करने लगा। टाटा आयरन एण्ड स्टील क० की स्थापना तो हो चुकी थी परन्तु विकास युद्धोपरान्त ही बड़ी तेज़ी से सम्भव हो सका। औद्योगिक विकास और प्रगति को निरन्तर बढ़ावा देने के लिये 'औद्योगिक कमीशन' तथा 'इण्डियन एम्यूनीशन बोर्ड' की स्थापना क्रमश: १६१६ और १६१७ में की गई। इसके बाद 'फालोग्रप प्रोग्राम' के अन्दर हरेक राज्यों में 'औद्योगिक बोर्डों' का गठन किया गया।

युद्ध के बाद फिर से अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी का समय आया। लोगों की क्रय-शक्ति क्षीण पड़ गई, माँग में भारी कमी आई, और फलस्वरूप विश्वव्यापी उत्पादन कम हुआ। परन्तु भारतीय उद्योगों को मदद देने के उद्देश्य से पहले की 'घातक स्वतन्त्र व्यापार नीति' का अन्त किया गया। भारतीय राजकोष आयोग (Fiscal Commission of India) की स्थापना हुई। हरेक उद्योग पर विदेशी संरक्षण नीति लागू की गई। इससे भारतीय उद्योगों को सराहनीय प्रोत्साहन मिला। इसी समय सीमेन्ट, वनस्पति तेल, साबुन, इन्जीनियरिंग, दियासलाई, जूता निर्माण आदि उद्योगों को भी संरक्षण प्रदान किया गया। भारत के एक सुपुत्र कुशल इन्जीनियर, प्रशासक, राजनीतिज्ञ तथा उद्योगपति डा० एम० विश्वेश्वरैया ने सन् १६३४ में 'भारत की आयोजित अर्थ-व्यवस्था' नामक अपनी पुस्तक के माध्यम से आर्थिक जीवन के क्रमबद्ध तथा योजना-बद्ध विकास की दलील पेश की। सन् १६३७ में राज्यों में कांग्रेसी सत्तारूढ़ हुए तथा १६३८ में राष्ट्रीय नियोजन समिति 'National Planning Committee' का गठन किया गया।

सन् १६३६ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय भारत की औद्योगिक स्थिति बड़ी सुदृढ़ हो चुकी थी। इसलिए जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है यह युद्ध भारतीय उद्योगों के लिये वरदान सिद्ध हुआ। सैनिक सामग्रियों की माँग में वृद्धि होने और आयात बन्द हो जाने के फलस्वरूप जलयान, वायुयान तथा आटोमोबाईल उद्योगों की स्थापना की गई। सार्जेन्ट समिति, रोजर्स मिशन, पूर्वी वर्ग कौंसिल, बम्बई योजना, लोक योजना, श्रीमन्न-नारायण योजना, गांधीवादी योजना आदि देश के समक्ष रखे गये। जिनसे उस समय भारत के औद्योगीकरण में काफी सहायता मिली थी।

सन् १६४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ, नई नीतियाँ बनाई गईं। योजनाओं में देश के औद्योगिक विकास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया क्योंकि—

(१) उन्नत व सुन्दर जीवन-स्तर में वृद्धि के लिये राष्ट्रीय और व्यक्तिगत आय में वृद्धि की आवश्यकता थी।

(२) व्यवसाय व रोजगार में नवयुवकों को रोजगार दिलाना था।

(३) आत्म-निर्भरता प्राप्त करना था।

(४) विदेशों में निर्मित वस्तुओं के आयात को कम करना और देश में निर्मित वस्तुओं का निर्यात करना देश के हित में समझा गया।

(५) श्रम-शक्ति का सदुपयोग उद्योगों में ही किया जा सकता था।

भारत की वर्तमान सरकार दोनों ही क्षेत्रों (व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक) में औद्योगिक

लिये इस्पात उद्योग विकास की चरम सीमा पर थे।

मुगल साम्राज्य काल में ही १६ वीं शताब्दी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापार की दृष्टि से भारत में आई। उस समय मुगल साम्राज्य पतन के मार्ग पर अग्रसर हो चुका था। देश-व्यापी विद्रोह, फूट तथा राजनैतिक दुर्व्यवस्था का अंग्रेजों ने समुचित लाभ उठाकर अपना साम्राज्य स्थापित किया और अपनी घातक तथा स्वार्थपूर्ण नीतियों के अन्तर्गत स्वतंत्र व्यापार की नीति घोषित की। इस विशाल देश को बाजार बनाया, भारतीय सामान की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया, स्वदेशी सामानों के प्रयोग को कानूनी अभियोग करार किया, कुशल कारीगरों के हाथ कटवाये, परिणाम यह हुआ कि सब कुछ छोड़कर भारतवासियों को विवश होकर कृषि की तरफ उन्मुख होना पड़ा। शोषण को स्वीकार किया, भारत इंग्लैण्ड को कच्चा-माल भेजने की मण्डी बन गया, कम दामों पर इंग्लैण्ड-निर्मित सामान भारत के बाजारों में भर गया। अंग्रेजों के इन सब कुप्रयत्नों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि इंग्लैण्ड के व्यापार और उद्योग विकसित हों और औद्योगिक क्रान्ति के ऐतिहासिक समय में भी भारत हर प्रकार के विकास से परे रह कर शोषित होता रहे। अंग्रेजों ने परिवहन के साधनों—रेल, सड़क, डाक-तार तथा संचार आदि का भी विकास किया ताकि इतने बड़े देश पर सुगमतापूर्वक शासन किया जा सके और बाहरी माल को देश के कोने-कोने में बेचा जा सके।

अंग्रेजों की उपर्युक्त नीतियों से देश को निम्न लाभ भी हुए हैं :

सबसे पहले सदियों से चलती आ रही प्राचीनता और रूढ़िवादिता के स्थान पर देश में आधुनिकता के छिटपुट लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे, कृषि के ढंग परिवर्तित तथा विकसित हुए। कहवा, रबर तथा चाय जैसी मुद्रादायिनी फसलों के बड़े-बड़े फार्म स्थापित हुए, कृषकों के अंधेरे कमरों में अब तक बंद कृषि खुली सड़कों और बाजारों में आई, खनन कार्य का विस्तार हुआ, सूती, ऊनी, रेशमी कपड़ों तथा जूट के आधुनिकतम कारखाने प्रारम्भ किये गये। अन्तर्राष्ट्रीय गृह युद्धों (उदाहरण के लिए सन् १८६१-६५ का अमरीकी गृहयुद्ध) से भारतीय अर्थव्यवस्था चमक उठी। स्वेज नहर मार्ग के १८६९ में खुल जाने से मशीनों के आयात में सबसे बड़ी सुविधा मिली। इस नहर के खुलने के केवल ७ वर्षों बाद सन् १८७६ में 'लाल इमली' नामक कारखाना ऊनी वस्त्रोत्पादन के लिये कानपुर (उत्तर प्रदेश) में खोला गया। इन्हीं समयों में असंख्य अन्यान्य उद्योग सारे देश में खुले। प्रतिकूल इसके कुछेक उद्योग तो सरकारी संगठन, अनुभव, संरक्षण तथा प्रबन्ध और पूँजी के अभाव में बन्द भी हो गये।

सन् १८५७ के बाद देश में दूसरी बार फिर से राजनैतिक जागरूकता आई और सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। राष्ट्रीय जागरण और बढ़ा। स्वदेशी आन्दोलन, 'खादी पहनो' आन्दोलन प्रारम्भ हुए। तत्कालीन अंग्रेजी सरकार की विरोधी नीतियों के प्रतिकूल भी देश में उद्योग धन्धों का निरन्तर प्रसार होता रहा।

प्रथम महायुद्ध से भारतीय उद्योगों की नींव और सुदृढ़ हुई। क्योंकि उन दिनों जहाजों की अत्यधिक कमी तथा आवागमन की कठिनाइयों के कारण आयात के बन्द हो जाने के फलस्वरूप अंग्रेजी सरकार ने भारत में ही औद्योगिक विकास के अनुकूल, वातावरण बनाने

अध्याय १०

परिवहन एवं संचार साधन

भारत मे अच्छी सडको के महत्त्व को बहुत प्राचीनकाल से समझा जाता रहा है। फाह्यान तथा हुएनसाग जैसे विदेशी यात्रियों ने, जो ५वीं तथा ६ठी शताब्दियों में देश की यात्रा पर आये थे, यहाँ की सडकों की बडी प्रशसा की है। मौर्य-साम्राज्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति में यहाँ की सडको का भी महान् योगदान था। उस समय की सबसे लम्बी तथा सर्वोपयोगी सड़क 'उत्तर पथ' के नाम से प्रसिद्ध थी, जो पूर्व मे पटना से पश्चिम में पेशावर तक थी और इसका सबध हिन्दुकुश के पार भूमध्य सागरीय देशों, मध्य एशिया तथा पूर्व में चीन तक था। शेरशाह सूरी भारत का सबसे बडा सड़क परिष्कृत कर्त्ता था। लार्ड डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य को निश्चित रूपरेखा तथा स्थायित्व प्रदान करने के पश्चात् साम्राज्य के प्रत्येक भाग को सडकों, रेलों एव अन्यान्य सम्भव परिवहन साधनों से जोड़ने के अभिप्राय से सन् १८५५ में सार्वजनिक निर्माण विभाग (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट) की स्थापना की थी। इस कार्यक्रम की अस्थायी एव आशातीत सफलता के फलस्वरूप ब्रिटिश शासनाध्यक्षों को नाना-प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं व्यापारिक लाभ भी होने लगे थे। परन्तु कुछ वर्षोपरान्त आर्थिक एव राजनैतिक कठिनाइयों, केन्द्रीय सरकार का उपेक्षात्मक रवैया तथा रेल मार्गों के विकास आदि के कारण सड़क परिवहन कुछ समय के लिये स्थानीय महत्त्व तथा रेलो के लिये भक्षन मग के सिवाय और कुछ नहीं रह गया था। सड़क परिवहन के इस गिरावट को ध्यान मे रखकर सन् १९१९ में इस विभाग को केन्द्रीय सरकार के हाथों से निकालकर राज्य सरकारों को सौंप ही नही दिया गया बल्कि जयकर समिति तथा नागपुर योजना का गठन कर इसके विकास हेतु उपाय सुझाने के लिये भी कहा गया।

सन् १९१४ मे तात्कालीक भारतीय सड़कों की कुल लम्बाई २,७३,००० किलोमीटर थी। उस समय देश मे बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान, बगलादेश तथा नेपाल आदि सभी सम्मिलित थे परन्तु विचारणीय बात यह है कि भारत में सन् १९००–१९४७ के बीच जितनी (१,१२,००० किलोमीटर) सड़कों का निर्माण किया गया उतनी सड़कों का निर्माण सयुक्त-राज्य अमेरिका मे केवल १.५० वर्षों मे ही किया गया था। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार पक्की तथा कच्ची सड़कों की सम्मिलित लम्बाई १२८७००० किलोमीटर है।

सड़क निर्माण की प्रगति

तालिका १२८ ००० कि. मी.

सड़क किस्म	१९४७	१९५१	१९६१	१९६६	१९७०	१९७१
पक्की सड़क	१४६	१५७	२६३	३४३	३९८	४०७

उन्नति के पक्ष मे है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही साथ औद्योगिक सकट का भी सामना देश को करना पड़ा। पूर्वी बंगाल जूट-उत्पादक तथा पंजाब के कपास-उत्पादक क्षेत्र क्रमशः बगला देश एवं पाकिस्तान मे चले गये। इसके कारण तात्कालिक आर्थिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई। दोनों (सूती और जूट) ही किस्म की अनेक मिलों को कच्चे माल के अभाव में बन्द करना पड़ा। शरणार्थियो, राष्ट्रीय एकता, आर्थिक स्वतन्त्रता, सुरक्षा तथा देश एवं नागरिको की सम्पन्नता की समस्याएँ सरकार के सामने आई। इन समस्याओं को देखते हुए भारत सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के अन्तर्गत स्वीकार किया कि :

(१) विभिन्न प्राकृतिक ससाधन-स्रोतों का विस्तार किया जाय।

(२) देशवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाया जाय।

(३) उत्पादन वृद्धि मे योग देने वाले सयंत्रों तथा उपकरणों के निर्माण पर विशेष बल दिया जाय।

(४) निर्यात की जाने वाली वस्तुओ का उत्पादन बढाया जाय।

भारत सरकार की उपर्युक्त नीति के अन्तर्गत समस्त उद्योगो को विकसित किये जाने के लिये योजनाएँ एव सहायता की व्यवस्थाएँ की जा रही हैं।

◘ ◘ ◘

में केवल ३६३ किलोमीटर का ही अन्तर है (पाठक ज्ञानवर्धन हेतु दोनों ही प्रसंगों को देख सकते हैं) इस पूरी लम्बाई के बीच न केवल २३० किलोमीटर अप्राप्त कड़ी, और १० बड़े पुलों के निर्माण का कार्य बाकी था बल्कि ३००० कमजोर, सकरे तथा क्षतिग्रस्त पुलों को बदलना एवं १५,००० किलोमीटर सड़क को दोहरे यातायात के योग्य बनाने का भी कार्य चल रहा है। इनका प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार करती है और इनका सैनिक महत्त्व होता है। सभी प्रकार की सड़कों के वितरण को चित्र ५१ में दिखाया गया है और राष्ट्रीय राज-मार्गों के नाम, प्रमुख शहर तथा सम्पूर्ण लम्बाई (२८८१६ कि.मी.) को तालिका १२६ में दिखाया गया है।

राजकीय राजपथ—इनका प्रबन्ध तथा निर्माण राज्य सरकारें अपनी सीमाओं के अन्तर्गत करती हैं। इस प्रकार की सड़कें राज्य व्यापार में बड़ी सहायक, राष्ट्रीय सड़कों से मिलती तथा राज्य के भीतरी अधिकांश शहरों से गुजरती हैं।

जिला परिषदों द्वारा निर्मित सड़कें—इस प्रकार की सड़कों का निर्माण एवं प्रबन्ध जिला स्तर की प्रशासन इकाइयों (Local Self Governments) द्वारा किया जाता है। इनको पुनः दो उप-विभागों में—बड़ी जिला सड़कें (Major Distt. Roads.) तथा छोटी जिला सड़कों (Minor Distt. Roads) में विभाजित किया जा सकता है।
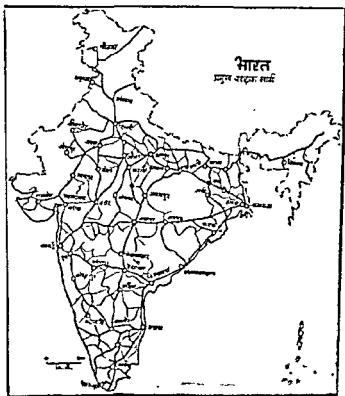
चित्र ५१

१	२	३	४	५	६	७
कच्ची सड़क	२१२	२४३	४६४	७२१	८७७	८८०
योग	३८८	४००	७२७	१०६४	१२७५	१२८७

इस समय (१९७१) भारत मे प्रति १०० वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल मे ३६.२ किलोमीटर लम्बी सड़कें हैं तथा प्रत्येक एक लाख व्यक्तियों पर सड़कों की लम्बाई केवल २३५ किलोमीटर आती है। सड़कों की वर्तमान उपयोगिता, आबादी के घनत्व एवं आर्थिक विकास के स्तर आदि को ध्यान में रखकर भारतीय सड़कों को निम्न वर्गों मे बाँटा गया है :

भारतीय सड़कों के प्रकार

१. अन्तर्राष्ट्रीय सड़क
२. एक्सप्रेस सड़क
३. राष्ट्रीय राजपथ
४. राजकीय राजपथ
५. जिला परिषद् की सड़कें
६. गाँव की सड़कें
७. श्रमदान मार्ग
८. सीमावर्ती राजपथ
९. विश्व की सबसे ऊँची सड़क

अन्तर्राष्ट्रीय राज-मार्ग—इन मार्गों द्वारा मिलाये गये स्थानों के आधार पर इन्हें पुनः दो उप-वर्गों में विभाजित किया जाता है :

(i) दो देशो की राजधानियों को मिलाने वाली सड़कें।

(ii) दो देशो के प्रमुख नगरों एवं बन्दरगाहों को मिलाने वाली सड़कें।

प्रथम उपवर्ग मे दिल्ली-लाहौर, दिल्ली-मांडले (आगरा-कलकत्ता-गोलघाट तथा इम्फाल होता हुआ) तथा बरही-काठमाण्डू सड़कें सम्मिलित की जाती हैं।

दूसरे उपवर्ग मे आगरा-ग्वालियर, हैदराबाद-बंगलौर-धनुष कोडि (आगे श्री लंका) तथा दिल्ली-मुल्तान सड़कें सम्मिलित हैं। इस प्रकार यदि देखा जाय तो सभी अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग उत्तर-भारत के बीचोंबीच पूर्व-पश्चिम स्थित ग्रेट-इण्डियन ट्रंक रोड मे मिलती हैं।

एक्सप्रेस सड़कें—तीव्र गमनागमन के लिये पूरे भारत में ५ एक्सप्रेस मार्गों का निर्माण किया गया है। जिसमे से दो मार्ग—पूर्वी एवं पश्चिमी मार्गों के नाम से, बम्बई में स्थित हैं। तीसरी सड़क कलकत्ता तथा दमदम हवाई हड्डे, चौथी सूकीनाडा खदानों से पाराद्वीप बन्दरगाह के बीच बनी है। पाँचवी एक्सप्रेस सड़क दुर्गापुर एवं कलकत्ता के बीच बनाई जा रही है।

भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग—टाईम्स ऑफ इण्डिया द्वारा तैयार किये गये डाईरेक्टरी तथा ईयर बुक १९७२ मे पृष्ठ संख्या ३३४ पर दिये गये विवरण के अनुसार इस कोटि मे रखी गई सड़कों की संख्या २१ तथा कुल लम्बाई २३,७८० किलोमीटर है। जबकि इण्डिया १९७२ के पृष्ठ ४३८ पर दिये गये तालिका नं० ११४ के अनुसार ऐसी सड़कों की संख्या ५० बताई गई है। परन्तु संख्या मे इतनी भिन्नता होने के बावजूद बताई गई लम्बाई

१	२	३	४
२४.	दिल्ली-लखनऊ	४३६.३४	दिल्ली, बरेली, लखनऊ।
२५.	लखनऊ-शिवपुर	३०६.३७	लखनऊ, कानपुर, झाँसी, शिवपुरी।
२६.	गोरखपुर-वाराणसी	२०३.००	गोरखपुर, गजीपुर, वाराणसी।
१०.	मोहानिया-बख्तियारपुर	२०८.४०	मोहानिया, पटना, बख्तियार पुर।
११.	बरही-पान्डु	११६६.७५	बरही, बख्तियारपुर, मोकामा, पुनिया, पान्डु।
१२.	गोविन्दपुर-जमशेदपुर	१६५.००	गोविन्दपुर, धनबाद, पुलिया, जमशेदपुर।
१४.	बरहामपुर-कलकत्ता	४१६.६२	बरहामपुर, बरमात, कलकत्ता।
१७.	गोहाटी-शंखोवाघाट	६६६.४५	गोहाटी, जोरहाट, करमगांव, शंखोवाघाट।
१८.	मकुम-लेखापानी	५४.१०	मकुम, लेदो, लेखापानी।
४२.	सम्बलपुर-कटक	२५३.६६	सम्बलपुर, आंगुल, कटक।
४३.	रायपुर-विजयानगरम	५५३.८०	रायपुर, विजयानगरम।
४६.	मदुराई-धनुषकोडि	१८१.०४	मदुराई, धनुषकोडि।
५०.	नासिक-पूना	१६६.१५	नासिक पूना।

तालिका १२९

राष्ट्रीय मार्ग नं०	सड़क का नाम	लम्बाई किलो मीटर	प्रमुख शहर
१.	दिल्ली-अमृतसर	४६६.२०	दिल्ली-अम्बाला, जालन्धर-अमृतसर ।
१. अ	जलन्धर-उरी	६५२.७४	जलन्धर-माधोपुर-जम्मू-बनिहाल-श्रीनगर-बारामुला-उरी ।
२.	ग्रेट इण्डियन ट्रंकरोड	१३८७.००	दिल्ली-मथुरा-आगरा-कानपुर-इलाहाबाद-वाराणसी-बरही-कलकत्ता ।
३.	आगरा-बम्बई	११२२.०६	आगरा-ग्वालियर, शिवपुरी, इन्दौर, नासिक, थाना, बम्बई ।
४.	पूना-मद्रास रोड	१२०७.२०	पूना-बेलगाँव-हुबली-बंगलौर-रानीपेट-मद्रास ।
५.	कटक-मद्रास	१४५७.६२	कटक-भुवनेश्वर-विशाखापट्टनम विजयवाडा-मद्रास ।
६.	नागपुर-कलकत्ता	१५७८.३२	नागपुर-रायपुर-सम्भलपुर-कलकत्ता ।
७.	मानगाँव-कन्याकुमारी	२३२४.६३	मानगाँव, रीवाँ, जबलपुर, नागपुर, हैदराबाद, बंगलौर, कन्याकुमारी ।
८.	दिल्ली-बम्बई	१३६५.२६	दिल्ली-जयपुर-अजमेर, उदयपुर-अहमदाबाद, बड़ोदा, बम्बई ।
९.	पूना-विजयवाड़ा	७७८.३६	पूना, शोलापुर, हैदराबाद, विजयवाड़ा ।
१०.	दिल्ली-फाजिल्का	३८२.४१	पाकिस्तान सीमा तक ।
११.	आगरा-बीकानेर	५४७.५१	आगरा-भरतपुर-जयपुर-बीकानेर ।
१२.	जबलपुर-बयोरा	४००.५१	जबलपुर, भोपाल, बयोरा ।
१३.	शोलापुर-चित्रदुर्ग	४१६.४२	शोलापुर, चित्रदुर्ग ।
२२.	अम्बाला-सिपकीला (तिब्बत सीमा तक)	४४६.५८	अम्बाला, कालका, शिमला, रामपुर, सिपकीला ।

दशवर्षीय योजना की सिफारिश की थी जिसकी प्रमुख बातें इस प्रकार हैं। सभी प्रकार की सड़कों का संतुलित विकास हो, प्रत्येक गाँव पक्की सड़कों से अधिक से अधिक ३ कि. मी. ही दूर रहें, पुरानी सड़कों की देशव्यापी मरम्मत की जाय, नई सड़कों का निर्माण किया जाय, सड़कों का वर्गीकरण किया जाय तथा सड़क अनुसंधान, सड़क-निर्माण आदि पर उस समय ४४८ करोड़ रुपये खर्च करके ६ लाख किलोमीटर लम्बी सड़कों का निर्माण कराया जाय आदि।

मार्च सन् १९४७ के अन्त तक २. १२ लाख मोटर गाड़ियाँ भारतीय सड़कों पर चलती थीं। इसकी संख्या ३१ मार्च १९७१ को बढ़कर १८.२१ लाख हो गई। सड़क परिवहन प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये अन्तर्राज्यीय परिवहन समितियों का गठन किया गया है। पुन. इनमें समन्वय स्थापित करने के लिये केन्द्रीय सरकार ने परिवहन विकास काउन्सिल का गठन किया है। राज्यों के सड़क परिवहन अंडरटेकिंग्स का एक महासंघ भी है। इसके अतिरिक्त परिवहन टैक्स जाँच-समिति, सर्वे-समूह एवं सड़क सुरक्षा अध्ययन दलों का भी निर्माण किया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में सड़क निर्माण कार्यक्रमों के लिए १५६ करोड़ रुपये की व्यवस्था थी। जिसमें ३८, ७४० किलोमीटर पक्की, ७०, ६३० किलोमीटर कच्ची सड़कों का निर्माण एवं १६, ००० किलोमीटर लम्बी सड़कों के मरम्मत का कार्य सम्पन्न कराया गया था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में इस धन राशि को बढ़ाकर २७६ करोड़ रुपये कर दिया गया परिणामस्वरूप सड़कों की लम्बाई ६,७८,८१२ किलो मीटर (२३०८८३ किलोमीटर पक्की तथा ४४७९२९ किलोमीटर कच्ची) हो गई।

तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में इन सरकारी तथा गैर-सरकारी समितियों की देख-रेख में सड़क निर्माण के लिये सन् १९६१ में एक लम्बी अवधि की बीस वर्षीय योजना बनाई गई। चूंकि यह योजना १९६१ से १९८१ तक चलेगी इसलिए ४, ०३, ८४८ किलोमीटर लम्बी सड़क बनाई जावेगी। इस योजना के अन्दर विकसित प्रदेशों के प्रत्येक गाँवों को पक्की एवं विकासशील अथवा अविकसित प्रदेशों के प्रत्येक गाँवों को कच्ची सड़कों से जोड़ने का कार्यक्रम बनाया गया है। इस प्रकार सन् १९८१ तक प्रत्येक गाँव किसी न किसी प्रकार की सड़क से जुड़ जावेंगे और उन पर यातायात तथा सवारियों का आना-जाना आदि सम्भव हो पावेगा।

सड़क परिवहन की कतिपय विशेषताएँ

विश्व के समस्त उपलब्ध परिवहन संसाधनों में यह सबसे अधिक प्राकृतिक एवं मानवानुकूल है क्योंकि न केवल मनुष्य बल्कि उसके भारवाहक जानवर भी अनादि काल से पगडंडियों, मेड़ों, कच्चे रास्तों तथा सड़कों पर चलने एवं माल ढोने के अभ्यस्त हैं। इनका निर्माण अनेकानेक प्रकार की स्थलाकृतियों में सम्भव होता है। सड़कों से सामान भेजने अथवा मँगाने में अपेक्षाकृत कम कठिनाइयाँ होती हैं। सड़कों पर निजी परिवहन सम्भव होता है जिसमें पैदल से लेकर स्वचालित गाड़ियों तक का उपयोग किया जाता है। भारत

गाँव की सड़कें—गाँवों को प्रधान सड़कों से मिलाने वाली सड़कें इस वर्ग में सम्मिलित की जाती हैं। इस प्रकार की अधिकांश सड़कें कच्ची तथा सूखे मौसमों में ही उपयोग के लायक रहती हैं। इस प्रकार की सड़कें गाँवों को आपस में एक-दूसरे से मिलाती हैं। कभी-कभी इस प्रकार की सड़कें राजमार्गों एवं जिला परिषद् की सड़कों से भी गाँवों को मिलाती हैं।

श्रमदान मार्ग—इस प्रकार की सड़कों का प्रादुर्भाव भारतीय स्वतन्त्रता वर्ष (१९४७) के बाद हुआ है। अधिक से अधिक गाँवों को मुख्य अथवा उप-मार्गों से मिलाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत इस प्रकार की सड़कों का निर्माण जनजागरण के फलस्वरूप बिना किसी प्रकार की सरकारी आर्थिक सहायता के हुआ है। इनकी लम्बाई का तर्कसंगत लेखा-जोखा नहीं रखा गया है और न ही ऐसी सड़कें पक्की हैं। प्रत्येक वर्ष मानसून महीनोंपरान्त इन सड़कों की मरम्मत करनी आवश्यक हो जाती है।

सीमावर्ती सड़कें—ऐसी सड़कों का वर्गीकरण सन् १९६० में हुआ जब इसी वर्ष सीमावर्ती सड़क विकास बोर्ड का गठन किया गया था। इस बोर्ड की देखरेख में सामरिक महत्व के प्रदेशों जैसे—उत्तरी सीमावर्ती, उत्तर-पूर्वी एवं पश्चिमोत्तर सीमावर्ती भारत में परिवहन की सुविधाओं को इकट्ठा करने तथा आर्थिक विकास आदि की दृष्टि से सड़कों के निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। इस योजना के अन्तर्गत ७,४६० किलोमीटर नई सड़कों का निर्माण तथा ५,१६० किलोमीटर लम्बी सड़कों का जीर्णोद्धार का कार्य सम्मिलित है। इसके अलावा इस बोर्ड ने भारत के अलग-थलग पड़े प्रदेशों में नगरों, विद्यालयों तथा पोस्ट आफिसों आदि के निर्माण का भी कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। इस बोर्ड का सम्पूर्ण कार्य केन्द्रीय सरकार की देखरेख में और उसी के द्वारा दिये गये आर्थिक सहायता से सम्पन्न किया जाता है।

विश्व की सबसे ऊँची सड़क—हिमाचल प्रदेश के मनाली से काश्मीर में लेह के मध्य निर्मित सड़क की औसत ऊँचाई ४, २६७ मीटर है। यह सड़क विश्व के चार सबसे ऊँचे दर्रों में से होकर गुजरती है और विश्व में सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित है।

सड़क निर्माण का योजनाबद्ध कार्यक्रम

ब्रिटिश प्रशासन काल में सड़कों के निर्माण एव विकास पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया था। सैनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय सड़कों की मरम्मत के साथ-साथ नवीनतम सड़कों का निर्माण भी कराया गया। युद्धकाल में सड़कों की भारी कमी को देखते हुए सन् १९४३ में नागपुर में सड़क विशेषज्ञों की एक राष्ट्रीय स्तर का सम्मेलन बुलाया गया। इसे नागपुर योजना के नाम से पुकारा जाता है। सड़क विकास एवं निर्माण हेतु इसने

सड़क परिवहन विकास

१. प्रारम्भिक (अंग्रेजों के पूर्व)
२. नागपुर योजना
३. पंचवर्षीय योजना
४. बीस वर्षीय योजना
५. चौथी पंचवर्षीय योजना
६. लक्ष्य

१	२	३
सं. रा. अमेरिका	६४.००	३०२२
भारत	३६.२	२३५

रेल परिवहन

संक्षिप्त इतिहास

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के स्थायित्व के पश्चात् सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनैतिक लाभों को प्राप्त करने और साम्राज्य के प्रत्येक भाग को आपस में जोड़ने के दृष्टिकोण से लार्ड डलहोजी ने रेलो के निर्माण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया था। रेलों के निर्माण का शुभारम्भ १६ अप्रैल, सन् १८५३ को किया गया। उसी वर्ष बम्बई तथा थाना के बीच ३२ किलोमीटर लम्बी प्रथम भारतीय रेलमार्ग बनाये जाने का कार्य शुरू हुआ था। एक वर्ष पश्चात् सन् १८५४ मे दूसरी रेल हावडा-हुगली के बीच ३७ किलोमीटर पर चलाई गई। तत्पश्चात रेलो के निर्माण का सिलसिला अपेक्षाकृत तेज गति एवं लगन से चलने लगा और १८५६ में रायपुरम्-अरकाट, १८५९ मे इलाहाबाद-कानपुर १८६२-६६ में हावडा दिल्ली तथा १८६७ मे इलाहबाद से जबलपुर के बीच रेल मार्गो का निर्माण हुआ (चित्र ५२ इन्सेट)। द्वितीय महायुद्ध के समय भारत मे सात (७) रेल व्यवस्थाएँ (Rail Systems) काम कर रही थीं जिनमें से अधिकाश का निर्माण वेस्टेड इन्टरेस्ट अथवा राजा महाराजाओं ने अपनी सुविधाओ को बढाने तथा साम्राज्य की नींव और मजबूत करने के लिए करवाया था। राजे महाराजाओ द्वारा अपने साम्राज्य सीमा के भीतर बनवाई गई रेल मार्गो में निजाम स्टेट, सिन्धिया स्टेट, धौलपुर स्टेट तथा जोधपुर-बीकानेर स्टेट, तथा जयपुर स्टेट रेलें विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतीय रेलमार्गों के विकास को नीचे तालिका बद्ध किया गया है।

तालिका १३१

वर्ष	१८५३	१८५४	१९००	१९५२	१९६०	१९७२
रेल मार्गों की लम्बाई (कि. मी.)	३२	६६	३९६९६	५४५९२	५६६६३	६००६७

वर्तमान स्थिति

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार इस समय ४३३३ करोड़ रुपयों की लागत से चल रहा भारतीय रेलतंत्र एशिया में सबसे बड़ा (६००६७ किलोमीटर) तथा विश्व में इसका स्थान चौथा है। सरकारी क्षेत्र में यह दूसरा सबसे बड़ा व्यवसाय है। भारतीय रेलों में सब मिलाकर १३.९ लाख कर्मचारी काम कर रहे हैं। इसमें ११,३०० रेल इंजिन

जैसे कृषि प्रदान देशों में कृषि के विकास तथा उत्पादन वृद्धि में सड़कों ने बड़ा योगदान दिया है। इनसे कल-पुर्जे तथा उर्वरक आदि कृषकों तक, फिर कृषि उपज मण्डियों, फैक्टरियों तथा बन्दरगाहों तक सुविधापूर्वक पहुँचाया जाता है। सड़कों का सार्थक प्रभाव उद्योगों एवं जनसख्या के विकेन्द्रीकरण तथा नाना प्रकार के खनिज भण्डारों के शोषण एवं उपयोग पर भी देखा गया है। भारतीय सड़क परिवहन के समक्ष कतिपय असुविधाएँ भी हैं उनमें सड़कों का सकरा, क्षतिग्रस्त एवं अधिक दूरी तक कच्चा होना, मानसून के दिनों में वर्षा तथा नदियों द्वारा कट जाना, रेल-मार्गों के समानान्तर चलना तथा परिवहन कीमती होना आदि हैं। सड़क परिवहन को सस्ता तथा उन्नतिशील बनाने के लिए उपर्युक्त असुविधाओं को दूर करके इसे नये एवं वैज्ञानिक तरीकों से सुसंगठित करना होगा।

सड़क परिवहन की विशेषताएँ

१. सुविधाजनक एवं प्राकृतिक
२. कठिनाई मुक्त परिवहन
३. व्यक्तिगत उपयोग सम्भव
४. निर्माण खर्च कम
५. कृषि के अनुकूल
६. जनसख्या विकेन्द्रीकरण में सहायक
७. बस्तियों के विकास में सहायक
८. लम्बी दूरी असुविधाजनक
९. असुरक्षा
१०. रेल-मार्ग के समानान्तर चलना

सड़क यातायात की वर्तमान स्थिति

सडक यातायात एवं देश की भू-आर्थिक परिस्थितियों को देखते हुए सड़क यातायात को और अधिक वैज्ञानिक, तकनीकी ज्ञान से युक्त, सुलभ एवं सुगम बनाने पर अधिक जोर देना चाहिए। इस परिवहन में लगे हुए कर्मचारियों के वेतन, काम के घटों, क्षतिपूर्ति एव अवकाश आदि से सम्बन्धित प्राचीन नियमो के स्थान पर प्रगतिशील एवं समयानुसार नियम बनाये जाने चाहिए। रेल एव सडक परिवहनो के बीच चल रही कटु प्रतिस्पर्धा के स्थान पर स्वस्थ समन्वय एव दोनों को एक दूसरे का पूरक होना चाहिए। देश की आवश्यकताओ के अनुसार सड़क यातायात का समुचित विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के २५ वर्षों बाद तक नही हो पाया है। निम्न तालिका मे विभिन्न देशो की सड़क सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रमुख देशों में सड़कों का वितरण एवं घनत्व

तालिका १३० (किलोमीटर)

देश	प्रति १०० व. कि. मी.	प्रति १००००० जन-संख्या पर सड़क लम्बाई
जापान	२६८.००	१००१
फ्रांस	२६१.००	२८६५
ब्रिटेन*	१४३.००	६३५

प्रारम्भ किया गया था। सन् १९५७ तक केवल बम्बई-मद्रास तथा इनके आसपास की रेलो को ही इस योजना से लाभ पहुँच पाया था। परन्तु अब मार्च सन् १९७० तक ३५५३ किलोमीटर लम्बी भारतीय रेल मार्गों का विद्युतिकरण कार्य सम्पन्न हो चुका है। विद्युतिकरण की गति अपेक्षाकृत तीव्र होने तथा प्रारम्भ किये गये कार्यों के पूरा हो जाने के फलस्वरूप निकट भविष्य में (१९७३–७४) विद्युतिकरण बढ़कर ५२६० किलोमीटर हो जावेगा।

डीजलाइजेशन—३१ मार्च, १९७० तक लगभग २३,६०० किलोमीटर भारतीय रेल मार्ग पर डीजलाइजेशन का कार्य पूरा हो चुका था। वाराणसी (उत्तर-प्रदेश) के डीजल लोकोमोटिव से १९७० मे ५४ बड़ी लाईन एवं २४ छोटी लाईन के डीजल इंजिन बनाये गये थे।

आधुनिक सिगनलिंग—सन् १९६९–७० के बीच सिगनलिंग के आधुनिककरण, विकास एव टेलीकम्यूनिकेशन के लिए १३ करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। अनेक स्थानों पर माईक्रोवेव दिशा सूचक यन्त्र तथा बहुस्रोत संचार साधनों की भी व्यवस्था की गई है। अन्तर यार्ड (Inter yard) संचार सुविधाओं के लिए भी अनेक स्थानो पर बड़ी संख्या मे टेलीप्रिन्टर लगाये गये है। सन् १९७० की समाप्ति तक भारतीय रेलों मे १४८४३ किलोमीटर तक बहुस्रोत माईक्रोवेव सम्बन्ध तथा ४६४२ किलोमीटर लम्बे मार्ग पर टेलीप्रिन्टर चैनेल लगाएँ जा चुके थे।

पुल निर्माण कार्य—इस समय भारतीय रेल पुलो की संख्या १०४२११ है जिनमें से ८४२० बड़े तथा शेष मध्यम एवं लघु हैं। प्राचीन पुलों के स्थान पर नयों का निर्माण अथवा उनका समुचित जीर्णोद्धार के कार्य को रेल विभाग ने जोरों से शुरू किया है।

यात्री सुविधाएँ—अधिकांश रेलवे स्टेशनो पर यात्रियो की सुविधाओं के लिए विश्राम-गृहों, पीने के लिए पानी घरों, तथा ठहरने आदि के लिए सुरक्षित स्थानों के निर्माण की व्यवस्थाएँ की जा रही हैं। इन सुविधाओं से यात्रियो को लाभान्वित करने के लिए प्रतिवर्ष ४०० करोड रुपये खर्च किये जावेंगे।

कर्मचारी कल्याण योजनाएँ—इस समय भारतीय रेल कर्मचारियों की कुल संख्या १३,६१,५४२ है जिनकी सुविधाओं के लिए रेल विभाग प्रति वर्ष लगभग १५ से २५ करोड रुपये खर्च करता है। प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कर्मचारियो के रहने के लिए लगभग १, ६८, ५०० मकान बनवाए गये थे। इनके अलावा सन् १९६६–६७ में १०,१८६, १९६७–६८ मे ६,३२० तथा १९६८–६९ में ६२६५ अतिरिक्त मकान बनाये गये थे। सन् १९७० के अन्त तक ९७ अस्पताल, ५४७ स्वास्थ्य केन्द्र निर्मित हो चुके थे। जिनमें १०, ००० बिस्तर थे। रेल विभाग द्वारा ७४९ विद्यालय चलाये गये हैं जिनमे १३ छात्रावास, चल पुस्तकालय तथा वजीफो की व्यवस्था भी की गई है। ७०० क्रीड़ास्थल तथा अनेकानेक अवकाश केन्द्र भी विकसित किये गये हैं।

भारतीय रेल मार्गों का निर्माण ब्रिटिश साम्राज्य काल में प्रारम्भ किया गया था इसलिए उनका निर्माण भी अधिकतर प्राइवेट कम्पनियों ने कराया था। परन्तु अब (१९७०) १४५४ किलोमीटर लम्बी रेल लाइन को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण रेलमार्ग को

(Locomotives) ३५५०० सवारी डिब्बे, ३.८४ लाख माल डिब्बे गतिशील हैं। १०,६०० रेलगाड़ियाँ प्रतिदिन ७०६० रेल्वे स्टेशनों के बीच चलती हैं। विश्व की सबसे अधिक भीड़ के रूप मे लगभग ६६ लाख पेसिन्जर भारतीय रेलो मे यात्रा करते हैं। इस भीड को औसत ४६०० व्यक्ति प्रति मिनट और यदि सभी सवारी गाड़ियों मे समस्त डिब्बों को जोड़ दिया जाय तो उसकी लम्बाई २०० किलोमीटर से भी अधिक हो सकती है। चित्र ५२ में भारतीय रेल विस्तार को दिखाया गया है।
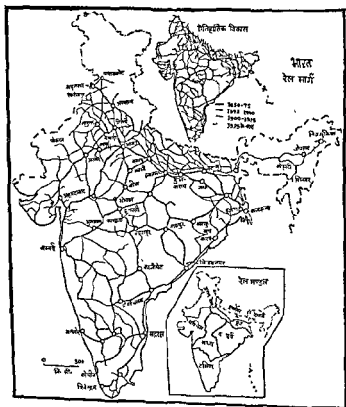
चित्र ५२

पहली अप्रैल सन् १९६९ से प्रारम्भ होने वाली चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारतीय रेलो को विकास कार्यों के लिए लगभग ७५० करोड़ रुपया निश्चित किया गया था। इसके साथ ही साथ ५२५ करोड़ रुपया रेल विभाग ह्रास संचित कोष (डेप्रिसिएशन रिजर्व फण्ड) से खर्च करके विकास कार्यों के लिए निश्चित रकम को १२७५ करोड़ कर दिया था। इस धनराशि से पूरे किये जा रहे कतिपय विकास कार्यों की तरफ नीचे संकेत किया जाता है।

रेलों का विद्युतिकरण—रेलों के विद्युतिकरण का कार्य सर्वप्रथम सन् १९२५ में

भारतीय रेल मार्गों का मण्डलीय विभाजन

तालिका १३३

क्र. सं.	रेल मार्गों का नाम	उद्घाटन तिथि प्राचीन रेल मार्ग जो विलय किये गये	केन्द्रीय कार्यालय	लम्बाई किलोमीटर नवीनतम १९७०	सम्पूर्ण योग किलोमीटर
१.	दक्षिण रेल मार्ग	१४, अप्रैल, ५१ मद्रास एव दक्षिणी मराठा रे, दक्षिणी पूर्वी रेल्वे तथा मैसूर रेल्वे मार्ग	मद्रास	ब. ला. २३३५ मी. ला. ४९५७ छो. ला. १५३	७४४५
२.	मध्य रेल मार्ग	५, नवम्बर, ५१ ग्रेट इण्डियन पेनिन सुलर रेल मार्ग, निजाम, सिन्धिया तथा धौलपुर स्टेट रेल मार्ग	बम्बई	ब. ला. ४५८९ मी. ला. ३८२ छो. ला. ७९४	६७६५
३.	पश्चिमी रेल मार्ग	५, नवम्बर, ५१ बम्बई, बड़ौदा तथा सेन्ट्रल इण्डिया रेल मार्ग, सौराष्ट्र कच्छ, राजस्थान तथा जयपुर रेल मार्ग	बम्बई	ब. ला. २८६३ मी. ला. ६०७९ छो. ला. १२०२	१०१४४
४.	उत्तरी रेल मार्ग	१४, अप्रैल, ५२ पूर्वी पंजाब रेल मार्ग, जोधपुर, बीकानेर स्टेट रेल मार्ग	दिल्ली	ब. ला. ६९२६ मी. ला. ३४३३ छो. ला. २५९	१०६१८

सरकार ने अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया है। भारत जैसे विशाल देश के लिए ६०,००० किलोमीटर रेल लाइन बहुत अपर्याप्त है। विश्व के अनेक देशों की तुलना में यह न केवल क्षेत्रफल की दृष्टि से बल्कि जनसंख्या के अनुपात मे भी बहुत कम है। जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है।

रेल मार्ग का घनत्व

तालिका १३२

प्रमुख देश	रेल लाइन की कुल लम्बाई (कि॰ मी॰)	प्रति किलोमीटर लम्बी रेल मार्ग पर जनसंख्या (व्यक्ति)	प्रति १०० वर्ग किलोमीटर पर रेल लाइन की लम्बाई (किलोमीटर)
सं. राज्य अमेरिका	३८,३१,२६४	३६	४.१०
ब्रिटेन	३२,१२८	१३६५	१२.५०
बेल्जियम	१०,३५२	७४१	३५.२०
जर्मनी	६,७६,७५४	६७८	१२.५०
भारत	५६,५५१	६५६२	१.८०

भारतीय रेलों का मण्डलीकरण

भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात यहाँ की केन्द्रीय सरकार ने रेल मार्गों का राष्ट्रीयकरण किया और अगस्त १९४६ तक के ३७ रेल तन्त्रों (Rail Systems) को मिलाकर उनको नव (९) मण्डलों में पुनः विभाजित किया है। प्रत्येक रेल मडल के क्षेत्र एवं विस्तार को (चित्र ५२ इन्सेट) में दिखाया गया है और नीचे की तालिका में मण्डल निर्माण की तारीख, रेल मार्ग का विस्तार आदि को दिखाया गया है।

दक्षिण रेल मार्ग—जैसाकि ऊपर कहा गया है स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व कार्यशील ५७ रेलतन्त्रों को मिलाकर ९ रेलमण्डलों का गठन किया गया है। इस प्रकार इस मण्डल मे भूतपूर्व दक्षिणी मराठा, दक्षिणी इण्डियन तथा भूतपूर्व मद्रास रेल मार्गों को मिलाया गया है। आन्ध्र तथा महाराष्ट्र के दक्षिणी भाग, तमिलनाडु तथा केरल के ६११० किलोमीटर पर इस रेल मार्ग का विस्तार है।

मध्य रेल मार्ग—इस मण्डल का गठन भूतपूर्व ग्रेट इण्डियन पेनीनसुला, निजाम, धौलपुर तथा ग्वालियर स्टेट रेल मार्गों को विलीन करके किया गया है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र, राज्यों को इस रेल मार्ग की सेवाएँ उपलब्ध हैं। बम्बई बन्दरगाह देश के अन्य भागों से इसी रेल मार्ग के माध्यम से जुड़ा हुआ है।

पश्चिमी रेल मार्ग—इस रेल मण्डल का निर्माण भूतपूर्व बम्बई बड़ौदा तथा सौराष्ट्र रेलवे, उदयपुर और जोधपुर स्टेट रेल मार्गों को मिलाकर किया गया है। पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, कच्छ प्रदेशों को इस मण्डल से लाभ पहुँचता है।

उत्तरी रेल मार्ग—यह रेल मार्ग उत्तर के विशाल मैदान के बीचोबीच दिल्ली मुगलसराय तथा सहारनपुर मुगलसराय के मध्य स्थित है। इनके अलावा सम्पूर्ण ईस्ट बंगाल रेल मार्ग, जोधपुर, बीकानेर स्टेट रेल मार्ग तथा बम्बई-बड़ौदा का आंशिक भाग इसमें सम्मिलित है। देश के सबसे उपजाऊ एवं घने बसे प्रदेशों को इस मार्ग की सेवाएँ उपलब्ध हैं। चूँकि इस मार्ग से भारत व काश्मीर सम्बन्धित है इसलिए इसका सामरिक महत्व भी है।

उत्तर पूर्वी रेल मार्ग—अवध-तिरहुत तथा ईस्ट इण्डियन रेल मार्गों की कुछ शाखाओं को इसमें मिलाया गया है। प. बंगाल, बिहार एवं उत्तर-प्रदेश के उत्तरी भागों में इससे परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मुख्य रूप से मीटर लाइन है।

पूर्वी रेल मार्ग—भूतपूर्व ईस्ट इण्डियन रेल मार्ग का अर्ध भाग (मुगलसराय के पश्चिम) उत्तर रेलवे तथा शेष आधा भाग (मुगलसराय के पूर्व) पूर्वी रेल मार्ग में सम्मिलित किया गया है।

दक्षिण-पूर्वी रेल मार्ग—पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व रेल मार्ग पहले एक ही प्रशासन के अन्तर्गत थे परन्तु बाद में इनको अलग-अलग कर दिया गया। इसका सीधा सम्बन्ध भारत के दो बड़े बन्दरगाहों—विशाखापट्टनम तथा कलकत्ता से है। वाल्टेयर से खड़गपुर, वाल्टेयर से रायपुर, कटनी से रायपुर, खड़गपुर से दमोदपुर के रेल मार्ग इसी मण्डल में सम्मिलित हैं।

उत्तर-पूर्वी सीमान्त रेल मार्ग—यह पूर्ण रूप से अविभाजित आसाम राज्य में केन्द्रीत है। इसका सामरिक महत्व अधिक है। इस रेल मार्ग पर चाय तथा खनिज तेल मुख्य रूप से ढोए जाते हैं।

दक्षिण-मध्य रेल मार्ग—आन्ध्र राज्य के रेल मार्गों को सम्मिलित करके इस रेल मण्डल का सृजन किया गया था। इसमें मध्य तथा दक्षिण रेल मार्गों की लाइनें सम्मिलित की गई हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतीय रेलें देश के आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से बहुत अपर्याप्त हैं। इन पर सबसे अधिक भीड़ चलती है। इनका मुख्य धन्धा सवारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाना है। परन्तु यात्रियों के अतिरिक्त बहुत से कच्चे तथा पक्के माल और औद्योगिक सामग्रियों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान को लाते ले जाते हैं। भारतीय रेलमार्गों पर ढोए जाने वाले प्रमुख १८ पदार्थों की मात्रा को निम्न तालिका में दिखाया गया है:

भारतीय रेल मार्गों पर गतिशील प्रमुख व्यापार पदार्थ

तालिका १३४

(००० टन)

सामान	१९५५-५६	१९६०-६१	१९६५-६६	१९६८-६९	१९६९-७०	१९७१-७२
१. कोयला	३५८८८	५०३९६	६६७४१	६८६३८	७०९७९	६५०७०
२. सीमेन्ट	४०२२	६४४८	८६४९	९३९७	१०६९९	११२३७

१	२	३	४	५	६
५.	उत्तर-पूर्वी रेल मार्ग	१४, अप्रैल, ५२ अवध तिरहुत रेल मार्ग बम्बई, बड़ौदा सेन्ट्रल इण्डिया रेल मार्ग (आंशिक)	गोरखपुर	ब. ला. ५२ मी. ला. ४६१३	४६६५
६.	पूर्वी रेल मार्ग	१, अगस्त, ५५ ईस्ट इण्डिया रेल मार्ग (आंशिक)	कलकत्ता	ब. ला. ४०१३ मी. ला. १३१	४१४४
७.	दक्षिण-पूर्वी रेल मार्ग	१, अगस्त, ५५ बंगाल-नागपुर रेल मार्ग	कलकत्ता	ब. ला. ५२३१ मी ला. १४७६	७७१०
८.	उत्तर-पूर्वी-सीमावर्ती रेल मार्ग	१५, जनवरी, ५८ आसाम रेल मार्ग	मालीगाँव पांडु गोहाटी	ब ला. ६४५ मी. ला २६०० छो ला. ८८	३६३३
९.	दक्षिण-मध्य रेल मार्ग	२, अक्टूबर, ६६ दक्षिणी एवं मध्य रेल मार्ग (आंशिक)	सिकन्दराबाद	ब. ला. २६०७ मी. ला. ३१८३ छो. ला. ३७०	६१६०
					६१,५७४

गैर सरकारी रेल मार्ग

रेलों के राष्ट्रीयकरण के बावजूद ३१ मार्च, सन् १९७२ को लगभग २०७ किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइन अब भी गैर सरकारी क्षेत्र में कार्य कर रही थीं। सभी ६ रेलें मीटर लाइन, एक दूसरे से अलग-थलग तथा देश के विभिन्न भागों में स्थित हैं। इनमे से तीन रेल ऐजेन्सियो ने सन् १९७०-७१ मे २४६ किलोमीटर लम्बी रेल लाइन पर परिवहन सेवाएँ बन्द कर दी थी। इन रेल मार्गों के नाम तथा कोष्ठक मे किलोमीटर मे लम्बाई इस प्रकार है : आरा-ससाराम (१०४.८६) डेहरी-रोहतास (६६.७५) फतवा—इस्लामपुर (४३.४५) हावड़ा—अमता (७०.३१) हावड़ा—शिखाला (२७.१६) शाहदरा—सहारनपुर (१४८.८७)।

भारतीय रेलों की समस्याएँ

विकासशील देश होने के नाते भारत अब भी अनेक मामलों मे विदेशों पर निर्भर है जिसकी पूर्ति आयात से की जाती है। आयात की जाने वाली वस्तुओ में विशेष प्रकार के इजिन, पुर्जे तथा तकनीकी विशेषज्ञ सम्मिलित हैं। जैसाकि ऊपर सकेत किया जा चुका है कि देश के विस्तार एवं जनसख्या के घनत्व को देखते हुए रेल मार्गों की हमारे देश में भारी कमी है। २५० वर्ग किलोमीटर पर लगभग ४ किलोमीटर तथा एक लाख जनसख्या पर १८ किलोमीटर लम्बा रेलमार्ग का औसत आता है।

रेल मार्गों की इतनी कमी होने के बावजूद भारतीय रेलें दिनचर्या, योजनाओं एवं नीति सम्बन्धी कठिनाइयो से मुक्त नहीं है। इन कठिनाइयों की तरफ संक्षेप मे नीचे सकेत किया जाता है।

टिकट रहित यात्राएँ—टिकट रहित यात्रा करने वाले यात्रियों की इस मनोवृत्ति के कारण रेल विभाग को प्रतिवर्ष लगभग २५-३० करोड रुपयों की हानि उठानी पड़ती है। यह समस्या दो प्रकार की है (i) स्थानीय एव (ii) लम्बी यात्राएँ स्थानीय यात्राएँ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कुछ बड़े-बड़े शहरों के आसपास सम्पन्न किये जाते हैं। इनमे उस वर्ग के लोग सम्मिलित होते हैं जिनको नित्यप्रति शहरों का आना एवं वापसी आवश्यक होती है। लम्बी यात्राओं में रेल कर्मचारी एवं यात्री दोनो की मिलीभगत होती है। यात्री बिना टिकट लिये यात्रा करता है तथा रेलकर्मचारी वास्तविक किराया अथवा उसका कुछ प्रतिशत लेकर छोड देता है। रेलकर्मचारी भी कभी-कभी स्वयं तथा परिवार के सदस्यो के साथ यात्राएँ करते हैं।

भारतीय रेलों की समस्याएँ

१. टिकट रहित यात्रा
२. चोरियां
३. न्यूनतम सुविधाओं का अभाव
४. दुर्व्यवहार
५. दुर्घटनाएँ
६. जलवायु सम्बन्धी समस्याएँ
७. रेलों को देर से चलने की समस्या
८. रेल सड़क प्रतिस्पर्धा
९. ईंधन की समस्या

१	२	३	४	५	६	७	८
३.	लोहा इस्पात	३७१३	७५८८	१००७७	९६५२	९९८०	९२३५
४.	मेटलिक मयम (मेगनीज मयस नहीं)	४४४३	१११४०	१८६२३	२१९१६	२१९३९	२२४६७
५.	मैगनीज मयस	१४००	१२३०	१४९७	१२६८	१४३१	१३९७
६.	खाद्य सामग्री	९१८७	१२६५९	१४५१४	१५८४९	१५१००	१५५०२
७.	कच्चा जूट	५२०	६४४	७६३	६७७	७६६	८३५
८.	चाय	२६२	२५०	२०३	२६०	२७२	२८०
९.	कागज	२६०	४४२	६७०	७९५	८५५	९३१
१०.	जूट मशीनरी	२९४	२६३	२७५	२७८	३००	४२८
११.	कच्चा कपास	७५१	५३६	४८५	४७३	४४३	४७३
१२.	सूती वस्त्र	५५७	३८०	३०८	२६९	२३५	१८५
१३.	तिलहन	१७९४	११९७	१४७०	१३६०	११७२	१११६
१४.	गन्ना	३४६३	३२३७	२७१७	१७९२	२००५	१९०९
१५.	चीनी	१३५७	१४८८	१५४३	७७५	९८६	१२६९
१६.	नमक	१८८७	१९८१	२५६९	२७२८	२४६१	२७२३
१७.	रासायनिक पदार्थ	८०३	१३९४	२४५२	४९७१	४६४५	५२३७
१८.	खनिज तेल	३३२३	४७००	७४५२	७८८२	८७९८	१००६३

निर्माणाधीन नई रेल लाइनें

सन् १९६९-७० के बीच १२८१८ किलोमीटर रेल लाइन का उद्घाटन किया गया तथा ९०१.७५ किलोमीटर रेल लाईन निर्माणाधीन थी। इन सफलताओं के अतिरिक्त इसी वर्ष २७७५.७७ किलोमीटर की लम्बाई में नई रेल लाइन/ट्रैक/पुनर्स्थापन के लिए सर्वेक्षण का कार्य भी चल रहा था। पूना-मीराज और मीराज-कोल्हापुर के बीच क्रमश: ३२६.३४ तथा २७९.१९ किलोमीटर मी. गेज लाइन को बडी लाइन में बदलने का भी कार्यक्रम सम्पन्न किया गया। भारतीय रेल विकास के लिए एक १५ वर्षीय परियोजना बनाई गई है जिसके अन्तर्गत १७५० मिलियन रुपये की लागत से ३००० किलोमीटर लम्बी मीटर गेज लाइन को बडी लाइन में बदलने का कार्यक्रम है। अप्रैल १९७१ तथा मार्च १९७४ के बीच रेल विभाग ने रेलों के आधुनिकीकरण के निमित्त ७३०० मिलियन रुपये खर्च करने का प्रस्ताव किया है। इस धनराशि तथा ३ वर्ष के समय में ७०० इंजिन, ५७० ई. एम. यू. एम, ३० रेल कारें, ४००० अन्य सवारी गाड़ियाँ, २१,००० माल डिब्बे परिवहन की अतिरिक्त सुविधाओं के लिये तैयार किये जावेंगे। इसके अलावा १५ वर्षीय योजना के अन्दर नई रेल लाइनें, विद्युतीकरण, विशेष गोदाम, कर्मचारियों तथा यात्रियों की सुविधाओं की व्यवस्था की जावेगी।

डीजल का प्रभाव तथा जल विद्युत अविकसित है।

सड़क प्रतिस्पर्धा—यहाँ की अधिकांश सड़कें तथा रेल मार्ग आपस में समानान्तर बनाई गई हैं। माल ढोने, गमनागमन तथा अन्यान्य सुविधाओं के लिए इनमें जबरदस्त होड़ रहती है। इस समस्या के समाधान के उपायों को खोज निकालने के लिए समय-समय पर अनेक समितियों का गठन किया गया।

भारतीय रेलों के योजनाबद्ध एवं विस्तृत जाल के कारण कृषि से व्यापारिक फसलो, खानो से कच्चा माल, उद्योगो से निर्मित सामग्रियों को जरूरत मन्द स्थानों को पहुँचाने में बड़ी मदद मिलती है। नगरों के विकास उद्योगों के केन्द्रीयकरण, समुद्र पत्तनों के समुचित विकास एवं पृष्ठ भूमि से उनके सम्बन्धों में भारतीय रेलों ने बड़ा योगदान दिया है। कुल मिलाकर वर्तमान समय मे प्रत्येक विस्तृत एवं आर्थिक कार्यक्रमों में रेलों की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहायता अनिवार्य हो गई है।

रेल प्रशासन

रेल विभाग के समुचित देखरेख एवं प्रशासनिक ढाँचे को सुचारू रूप से चलाने के लिए तात्कालिक भारतीय सरकार ने कैबिनेट स्तर के एक मंत्री के सरक्षण में सन् १९०५ मे ही रेल बोर्ड की स्थापना की थी। रेल मत्रालय का मुख्य सचिव इस बोर्ड का पदेन अध्यक्ष होता है। आर्थिक मामलों का कमिश्नर तथा रेल मंत्रालय के तीन अन्य सचिव उसके पदेन सदस्य होते हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया है भारतीय रेल व्यवस्था को ९ मण्डलों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक में एक जनरल मैनेजर होता है जो रेल प्रचालन, पोषण तथा आर्थिक मामलो में रेलवे बोर्ड के प्रति उत्तरदायी रहता है।

रेल मत्रालय की देखरेख में ४ बड़े प्रशिक्षण केन्द्र (१) रेल स्टाफ कॉलेज (बड़ौदा), (२) इण्डियन रेलवे इस्टियूट आफ एडवास टैक्नालाजी (पूना) (३) इण्डियन इस्टियूट आफ इजिनियरिंग एण्ड टेली कम्यूनिकेशन (सिकन्दराबाद) तथा (४) इण्डियन रेलवे इस्टिट्यूट आफ मेकेनिकल एण्ड इलेक्ट्रीकल इन्जिनियरिंग (जमालपुर) भी कार्य कर रहे हैं। इन स्थानों पर भारतीय एवं विदेशी रेल अफसरो को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

जल परिवहन

जल मार्ग

विश्व की अधिकांश सुप्रसिद्ध नदियाँ, जिनमें अनादि काल से मानवता का सृजन एवं पोषण होता रहा है, यातायात के लिए भी समान रूप से उपयोगी रही हैं। इनमें गंगा, यमुना, मिसीसीपी, मिसौरी, वाल्गा, सेन्ट लारेन्स, नील, ह्वागहो, राईन, डेन्यूब आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उत्तरी-अमेरिका महाद्वीप के मध्य, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के सीमावर्ती प्रदेशों मे स्थित विश्व की सबसे बड़ी झीलें इस समय नहरों एवं नदियों के माध्यम से अन्ध महासागर से मिला दी गई हैं। विश्व के समस्त उपलब्ध परिवहन संसाधनों मे जल परिवहन सबसे सस्ता पड़ता है।

आधुनिक परिवहन संसाधनों के विकास के पूर्व से भारत में जल यातायात में नावों

चोरियाँ—यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है फलस्वरूप भारतीय रेलों के समक्ष यह एक बड़ी समस्या है। ट्रान्सिप केन्द्रों बड़े-बड़े जक्सनों, यार्डों तथा माल गोदामों में प्रतिदिन लाखों करोड़ों रुपयों की चोरियाँ होती हैं। इतना ही नहीं बल्कि चलती हुई माल गाड़ियों से सामान चुरा लिया जाता है। अधिकांश चोरियों की, रेलवे कर्मचारियों, रेल पुलिस तथा चौकीदारों को जानकारी रहती है। इसका निदान सामान्य नैतिक जागरण एवं कर्तव्य परायणता से ही सकता है।

न्यूनतम सुविधाओं का अभाव—जैसाकि ऊपर सकेत दिया जा चुका है कि विश्व की तुलना में भारतीय रेलों में सबसे अधिक यात्राएँ होती है। रेल डिब्बों में प्रकाश, पखो तथा शौचालयों आदि की भारी कमी रहने के साथ-साथ उनकी समुचित सफाई भी नहीं हो पाती है। प्लेटफार्मों पर इससे भी अधिक दुर्दशा होती है। जहाँ पेयजल, विश्राम गृहों, कैन्टिनों तथा बैठने की जगहों की, विशेषरूप से तृतीय श्रेणी जिसमें अधिक भीड़ यात्रा करती है, भारी कमी रहती है। गदगी के ढेर इनके स्थानापन्न होते हैं। न्यूनतम सुविधाओं के अभाव से भी नैतिक पतन को बढ़ावा मिलता है।

यात्रियो के साथ दुर्व्यवहार—जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कभी-कभी रेल कर्मचारियो के प्रोत्साहन पर भी लम्बी एव टिकिट रहित यात्राएँ, चोरियाँ तथा इसी प्रकार के अन्यान्य अनैतिक एव रेल विभाग के लिए अलाभदायक कार्य सम्पन्न होते है। इन परिस्थितियों में रेल पुलिस, चौकीदार तथा अन्यान्य टिकट जाँच कर्मचारी आदि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये परिस्थितियो का शोषण करने मे मनमाना व्यवहार करते हैं।

दुर्घटनाओं की समस्याएँ—भारतीय रेलो मे होने वाली दुर्घटनाओं के कारण रेल सम्पत्ति को भारी क्षति होने के साथ-साथ सामान्य एव निर्दोष नागरिक भी अपने जानमाल से हाथ धोते हैं। इन दुर्घटनाओं के लिये विभिन्न प्रकार के लोग जिनमे कर्मचारी, नागरिक एवं राजनीतिज्ञ आदि सम्मिलित है, विभिन्न स्तरो पर जिम्मेदार होते है, इसलिए रेल विभाग को राष्ट्रीय सम्पत्ति मानकर यदि सभी लोग अपने-अपने स्थान पर क्षमतानुकूल सहयोग करें तो रेल यात्राएँ आनन्दप्रद एव सुनिश्चित हो सकती हैं।

असंभावित मौसम—भारतीय मानसून अनिश्चित एवं अनुमान के परे होता है। अत्यधिक वृष्टि से कभी-कभी रेल पटरियां जलमग्न, खंडित एव बहकर लापता हो जाती हैं। इस कारण भी रेल विभाग को काफी नुकसान का सामना करना पड़ता है तथा भारी धनजन की हानि भी होती है।

रेलों के देर से चलने की समस्या—प्रमाद, साधन विहिनता, तथा गंदगी के वातावरण में गाड़ियो के देर से चलने के कारण नागरिकों की परेशानियाँ अत्यधिक बढ़ जाती हैं। कर्मचारियों की लापरवाही एवं आये दिन निवास के निकटतम दूरी पर रेल को रोकने की प्रवृत्ति से अत्याधिक चेन पुलिग होती है जिससे सामान्य यात्री रेल यात्रा से ऊब जाते हैं।

ईंधन की कमी की समस्या—देश को अधिकाश रेलो का सचालन कोयले से किया जाता है। न केवल देश मे बल्कि विश्व मे कोयले के भण्डारों की मात्रा सीमित है। कोयले के अभाव मे कई बार रेल सेवाओं को बन्द करना पड़ता है। इसके साथ ही साथ देश में

नदी परिवहन

उत्तरी भारत की नदियाँ

गंगा नदी—अंग्रेजों के आने के पूर्व गंगानदी के मुहाने से कानपुर तक नावों तथा छोटे-छोटे स्टीमरों में व्यापार होता था। भागलपुर, पटना, गाजीपुर, वाराणसी, चुनार, मिर्जापुर, इलाहाबाद, कानपुर आदि प्राचीनकाल में सुप्रसिद्ध नदी पत्तन थे। कपास, नील, अफीम, बाँस, लकड़ी, बालू एवं पत्थर का मुख्य व्यापार करते थे। कलकत्ता से इलाहाबाद तक गंगा को गमनागमन योग्य बनाये जाने की योजना विचाराधीन है।

जल यातायात प्रकार

१. नदी परिवहन
२. नहर परिवहन
३. भील परिवहन
४. समुद्र तटवर्ती परिवहन
५. सुदूर समुद्री परिवहन

यमुना नदी—इस समय यमुना नदी पर अनेक स्थानों पर बाँध बनाकर इसके यातायात के महत्व को कम कर दिया गया है जबकि एक शताब्दी पूर्व इस नदी में आगरा तक बड़ी-बड़ी नावें चलती थी।

ब्रह्मपुत्र नदी—आसाम एवं पश्चिमी बंगाल में इस नदी के परिवहन से लाभ पहुँचता है। जूट, कोयला, चाय तथा लकड़ी ढोई जाती है। आसाम में डिब्रूगढ़ तक नावें तथा छोटे-छोटे स्टीमर चलते हैं।

दक्षिणी भारत की नदियाँ

दक्षिणी भारत की नदियों में महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी में नावें चलाई जाती हैं। पठारी क्षेत्र होने के कारण नदी जल सतह एकसार नहीं रहता है इसलिए अधिकतर नावें नदियों के मुहानों में चलती हैं। स्टीमर चलाये जाने की सम्भावनाएँ नगण्य हैं। यहाँ की नदियों से निकाली गई गोदावरी नहर, कृष्णा नहर, पश्चिम तटीय नहर आदि परिवहन कार्य के लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं।

भारत में नदी घाटी बहुउद्देशीय परियोजनाओं के अन्तर्गत नहरों को यातायात के योग्य बनाने का कार्यक्रम है। इन परियोजनाओं के अधीन दामोदर, महानदी, रेणु, गोदावरी, ताप्ती तथा रामगंगा नदियों से निकाली गई नहरें विशेष उल्लेखनीय हैं।

नहर परिवहन

इस प्रकार के यातायात का विदेशों के प्रतिकूल हमारे देश में कम ही विकास हो पाया है। लेकिन कुछ नहरों का उपयोग यातायात कार्यों के लिए किया जाता है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

नहरों का नाम	लम्बाई (किलोमीटर)	लाभान्वित राज्य
बकिंघम नहर	४१३.००	तमिलनाडु के कुड्डालोर एवं आन्ध्र का काकीनाडा

का आर्थिक उपयोग होता रहा है। इस समय भी लगभग ५० हजार किलोमीटर लम्बे जल मार्गों पर जिनमे सदैव जल रहता है, नावें चलाई जाती हैं। परन्तु आर्थिक रूप से उपयोग में आने वाले वास्तविक जलमार्गों की लम्बाई १४,१५० किलोमीटर ही है जिसमे ३५०० किलोमीटर मार्ग पर स्टीमर चलाये जाते हैं। भारतीय जलमार्ग मे गगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी तथा कृष्णा आदि नदियाँ, इनकी सहायक नदियाँ तथा नहरें सम्मिलित हैं। परिवहन एव जहाजरानी मत्रालय के अन्तर्गत सन् १९५९ मे आन्तरिक जल परिवहन निदेशालय का गठन तथा जल यातायात के फैलाव से सम्बन्धित तकनीकी परीक्षण के लिए किया गया था। सन् १९६७ मे केन्द्रीय आन्तरिक जल परिवहन निगम लि० की भी स्थापना हुई जिसका कार्य क्षेत्र आसाम एव पश्चिमी बगाल तक सीमित रखा गया था।

आन्तरिक जल परिवहन की भौगोलिक कठिनाइयाँ

विश्व के समस्त उपलब्ध परिवहन साधनो मे यह सबसे सस्ता पड़ता है। परन्तु इसकी सफलता अन्य समाधनो की तुलना मे कम देखी गई है। इसके निम्न कारण हैं:—

(१) इस परिवहन की उपलब्धि एव सेवाएँ उन क्षेत्रों में अधिक सभव हो पाती है जहाँ इनकी आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होता है।

(२) नदियों मे पूरे वर्ष एकमार जल प्रवाह नहीं रहना और जल की गहराई भी मौसमानुसार बदलती रहती है। जल सतह के कम होने पर यातायात बन्द तथा अधिक होने पर प्रारम्भ होता है।

(३) नदियों मे बालू प्रदेश के बन जाने से भी यातायात के मार्ग मे भारी रुकावटें आती हैं। झरने एव नदियों की अन्य अनियमितताएँ जैसे तटबन्ध तोड़ना, बाढ़ का आना तथा मार्ग बदलने आदि से यातायात मे रुकावटें आ जाती हैं।

(४) जल परिवहन की सबसे अधिक सफलता मैदानों मे सम्भव है। ऊँची नीची जमीन, पठारी तथा पर्वतीय प्रदेश इसके मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं।

(५) यह परिवहन बड़ा सुस्त तथा वीरान प्रदेशो से गुजरने के कारण लूट पाट का डर बना रहता है।

(६) निचले प्रभागो की नदियों के मुहानों पर रेत और मिट्टी के जमने से तथा ऊँचे प्रभागों की नदियों मे बर्फ के जमने से यातायात मे भारी रुकावटें आती हैं।

(७) वाष्पचालित इजिनो के आविष्कार के पूर्व यातायात को हवाओं की प्राकृतिक दिशाओं के अनुकूल चलना पड़ता था।

(८) परिवहन के अत्यन्त सुस्त होने के कारण कुछ खास किस्म के पदार्थों जैसे साग सब्जी, फल तथा दूध जैसे शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं के लिए सर्वथा अनुपयोगी होता है। इसके प्रतिकूल सामान्य रूप से किसी भी परिस्थिति में खराब न होने वाले पदार्थों जैसे कोयला तथा लोहा आदि के लिए सबसे लाभप्रद होता है। भारतीय जल परिवहन को निम्न प्रकारों मे रखा जा सकता है।

संख्या में वृद्धि करना था बल्कि उनके भारवाहन क्षमता को बढ़ाने की योजनाएँ थी। जहाज मरम्मत तथा निर्माण आदि इस योजना के अन्य पहलू थे।

कोचीन शिपयार्ड—जापान की सहायता से कोचीन में देश का दूसरा शिपयार्ड बनाया जा रहा है। यहाँ पर जहाज निर्माण तथा मरम्मत का काम एक साथ किया जावेगा। जहाज निर्माण का ठेका १ अक्टूबर, १९७० से पाँच वर्षों का है। जमीन अधिग्रहण, मिट्टी एवं जमीन सर्वेक्षण का कार्य पूरा हो चुका है तथा जल एवं विद्युत पूर्ति, निर्दिष्ट सड़कें, भूमि उद्धार, दिक्परिवर्तन तथा राष्ट्रीय सडक मार्गों के निर्माण का कार्य चल रहा है।

इण्डियन नेशनल शिपओनर असोसिएशन—इसकी स्थापना सन् १९३० मे की गई थी। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय जहाजों के लाभों को संरक्षण प्रदान करना, जहाज निर्माण, मरम्मत तथा अन्यान्य छोटे-मोटे उद्देश्यों की पूर्ति था।

अन्य जहाजरानी कम्पनियाँ—देश में लगभग ३३ प्राइवेट जहाजरानी कम्पनियाँ हैं जिनमें से सिन्धिया स्टीम नेविगेशन क०, इण्डिया स्टीमशीप, ग्रेट इस्टर्न शिपिंग कं० और साउथ इण्डिया शिपिंग कारपोरेशन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनसे किए गये व्यापार को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

भारत में जहाजरानी की प्रगति

तालिका १३५

(लाख जी० आर० टी०)

व्यापार विधि	१९५०-५१	५५-५६	६०-६१	६५-६६	६८-६९	१९७०	७३-७४
तटवर्ती व्यापार	२१.१७	२.४०	३.१३	३.२३	३.३०	३.०७	४.००
सुदूर समुद्र परिवहन	१.७४	२.४०	५.४४	१२.१७	१८.१०	२०.२२	३१.००
कुल योग	३.९१	४.८०	८.५७	१५.४०	२१.४०	२३.२९	३५.००

जल यातायात की समस्याएँ

प्रतिस्पर्धा—चूंकि भारत की समस्त आर्थिक व्यवस्था विकासशील है इसलिए यहाँ के प्रत्येक आर्थिक कार्यों को विदेशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। हमारे देश की जहाजरानी इस कथन का अपवाद नहीं है। जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन हमारे यहाँ आयात किये जाने वाले व्यापार का ६०% तथा निर्यात का अधिकांश भाग लाते ले जाते हैं।

यात्री जहाजों की कमी—देश के पास न केवल मालवाहक जलयानों की कमी बल्कि है

१	२	३
उड़ीसा तटवर्ती	२७२.००	उड़ीसा का तटवर्ती मैदान
कुर्नूल नहर	११७.००	आन्ध्र राज्य
मिदनापुर नहर	४५६.००	पश्चिमी बंगाल
पूर्वी नहर	१३४०.००	पश्चिमी बंगाल
पश्चिमी तटीय नहर	४८०.००	केरल
सोन नहर	३२६.००	बिहार

झील परिवहन

विदेशों में बड़ी-बड़ी झीलों का उपयोग जल परिवहन के लिए किया जाता है परन्तु हमारे देश मे इस प्रकार की झीलों का अभाव है और आर्थिक दृष्टि से विकसित क्षेत्रों में झीलों का थोड़ा-सा उपयोग चलती-फिरती कृषि एवं पर्यटन कार्यों में ही किया जाता है।

भारतीय समुद्री मार्ग

भारत में जहाजरानी का अतीत बड़ा उज्ज्वल रहा है। भारतीय व्यापारी यहाँ के कलाकौशल की वस्तुएँ को दूर-दूर देशो में बेचते रहे हैं। भारत का अधिकांश प्राचीन व्यापार समुद्री मार्गों से ही होता था। यहाँ के व्यापारियों के उपनिवेश (Trade Colonis) भी विदेशों में थे। सन् १९२०-३० के बीच भारतीय जहाजरानी को वैज्ञानिक एवं आधुनिक तकनीकी साधनों से सगठित करने के प्रयास प्रारम्भ किये गये थे। सन् १९२३ में इण्डियन मरकेन्टाइल मेराईन कमेटी का गठन किया गया। तत्पश्चात् सन् १९२७ मे बम्बई के डफरिन से प्रशिक्षण जहाज की भी व्यवस्था की गई। सन् १९३५ में मोर समिति ने भी ८५% तटीय व्यापार को भारतीय जहाजरानी के माध्यम से करने की सिफारिश की थी।

१ अप्रैल, १९७३ को समाप्त हुए वर्ष में भारत के पास मालवाहक जहाजो की संख्या २६० थी। जिनमें से २.३१ लाख जी. आर. टी. क्षमता वाले ५६ जहाज तटवर्ती तथा २२.०४ लाख जी. आर. टी. क्षमता वाले २०१ जहाज विदेशी व्यापार मे संलग्न थे। इस समय कुल सरकारी एवं गैर सरकारी कम्पनियों को मिलाकर ३७ भारतीय जहाजरानी कम्पनियाँ हैं। सन् १९६१ के पहले भारत मे पूर्वी तथा पश्चिमी जहाजरानी निगमों में निम्न कम्पनियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं :

मुगल लाइन लि० बम्बई—इससे सवारियों तथा माल ढोने का काम किया जाता था। मक्का एवं मदीना जाने वाले हज यात्रियों को मुगल लाइन्स से ही ले जाया जाता था।

हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि० विशाखापट्नम—केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित यह देश की प्रमुख जहाजरानी कम्पनी है। सन् १९६९ में ७.९६ करोड़ रुपये की लागत से इसके सर्वांगीण विकास की एक परियोजना बनाई गई थी। इसके अन्तर्गत न केवल जहाजों की

भारतीय बन्दरगाहों का वितरण

तालिका १३६

राज्य का नाम	बड़े बन्दरगाहों के नाम	मध्यम बन्दरगाहों के नाम एवं संख्या	लघु बन्दरगाहों की राज्यानुसार संख्या
तमिलनाडु	मद्रास	कुडालोर, नागपटनिम, तुतीकोरन (३)	७
महाराष्ट्र	बम्बई	रतनगिरी, रेडी (२)	४७
गुजरात	कान्डला	ओखा, पोरबन्दर, भावनगर, नवलखी, बेदी, वेरावल, बरुच, माण्डवी, सिक्का, सूरत (१०)	४०
केरल	कोचीन	अल्लेपी, कोजीकोडे (२)	६
उड़ीसा	पाराद्वीप	—	
आन्ध्र-प्रदेश	विशाखापट्टम	मसूलीपट्टम, काकीनाडा (२)	५
पश्चिम-बंगाल	कलकत्ता		१५
गोवा	मारमगवा		
कर्नाटक (मैसूर)	मंगलोर	करवार, मंगलोर (२)	१६
पाण्डुचेरी	—	—	१
अण्डमान निकोबार	—	—	

राष्ट्रीय हारवर बोर्ड

केन्द्रीय सरकार ने उपर्युक्त बड़े बन्दरगाहों के विकास, प्रबन्ध उन पर उद्योग-धन्धों के प्रभाव, व्यापार, जहाजरानी तथा रेलमार्गों आदि के सम्बन्ध में सामान्य नीतियों पर सरकार को उचित सलाह देने के लिए राष्ट्रीय हारवर बोर्ड का गठन किया है।

भारतीय बन्दरगाहों को सुचारू रूप से कार्य करने तथा उनकी क्षमता को बनाये रखने के लिए २९३ प्रकाश-स्तम्भ, ६ प्रकाश वाहिका, १५६ लाईट व्यासेज, २३६ अन-लाईटेड व्यासेज, २३३ बीकन प्रकाश, १० कुहरासूचक ७ रेडियो बीकन, २ पत्तन राडार, २६६ लैण्डमार्क तथा ७१६ अन्य चिह्न बनाये गये हैं। इनके अलावा अनेक अन्य बन्दरगाहों जैसे—फालसदेवी प्वाइन्ट, मद्रास, तूतीकोरन, बेपोर, कृष्णापट्टम, गोपनाथ, पाण्डुचेरी, तथा पेरियार आदि स्थानों पर अतिरिक्त प्रकाश स्तम्भ; *केपकेमोरिन, मंगलोर तथा त्रिवेन्द्रम बन्दरगाहों पर प्रकाशित यंत्रों* तथा केपकेमोरिन और त्रिवेन्द्रम मे कुहरासूचक यन्त्रो के लगाने की योजनाएँ चल रही हैं। केन्द्रीय सरकार ने अब तक २५ प्रकाश-स्तम्भों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इनमे से ६ खम्भात की खाड़ी, १३ अण्डमान द्वीप समूह और ६ कच्छ की खाड़ी में लगाये जा रहे हैं।

पत्तन एवं पोताश्रय (Port and Harbour)

देश के समुद्री व्यापार तथा आयात निर्यात को उचित दिशादायक नाभि बिन्दु (नोडल प्वायन्ट) को दो हिस्सों में विकसित किया जाता है। प्रथम का नाम पत्तन तथा द्वितीय का नाम पोताश्रय होता है। पत्तन के हिस्से में जलयान सामान एवं यात्रियों आदि को उतारते तथा चढ़ाते हैं। इनकी तुलना स्थल के रेलवे प्लेटफार्मों से किया जा सकता है। पोताश्रय

यात्री जहाजों की भी भारी कमी है। इसके कारण यात्रियों की सुविधार्थ देश को विदेशी कम्पनियों को अदायगी करनी पड़ती है।

विदेशी विनिमय का अभाव—देश में मशीनरी, खाद्यान्न एवं खनिज तेल मँगाने के कारण इसके विकासार्थ विदेशी मुद्रा की भारी कमी का अनुभव किया जाता है।

भारतीय जल यातायात की समस्याएँ

१. प्रतिस्पर्धा
२. यात्री जहाजों की कमी
३. विदेशी विनिमय का अभाव
४. टैंकरों की कमी
५. भारवाहन क्षमता की कमी
६. स्वेज नहर पर एकाधिकार
७. गोदी कर्मचारियों की हड़ताल
८. भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन
९. संचालन व्यय
१०. राष्ट्रीयकरण
११. तकनीकी न्यूनता

खनिज तेलवाहक जलयानों का अभाव—इस समय भारत के पास केवल ४ टैंकर हैं। तेल की माँग की पूर्ति अधिकतर आयात करके की जाती है। इसलिए तेल अन्वेषण तथा टैंकरों की संख्या वृद्धि दोनों ही देश के हित में हैं।

देश के जहाजों की कम क्षमता—देश के जहाज न केवल संख्या में कम हैं बल्कि उनकी भारवाहन क्षमता भी विदेशी जहाजों की तुलना में बहुत कम है। जिससे देश को प्रतिवर्ष लगभग २०० करोड़ रुपये से अधिक का व्यय भाड़े के रूप में करना पड़ता है।

स्वेज नहर पर एकाधिकार तथा उसके बन्द होने के कारण भी देश के जहाजरानी व्यवसाय को काफी क्षति का सामना करना पड़ा है। गोदी कर्मचारियों की हड़ताल, रुपये का अवमूल्यन, राष्ट्रीयकरण, तकनीकी ज्ञान की कमी तथा संचालन व्यय आदि अन्य अनेक समस्याएँ हैं जिनके कारण भारतीय जहाजरानी व्यवसाय को अधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

प्रशिक्षण संस्थान

सामुद्रिक परिवहन एवं जहाजरानी को सफलतापूर्वक चलाने के लिए देश के प्रसिद्ध बन्दरगाहों पर प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की गई है। उदाहरणार्थ शिप ट्रेनिंग डफरिन (बम्बई), मेराईन इन्जीनियरिंग कालेज (कलकत्ता) तथा लाल बहादुर शास्त्री नाउटिकल एण्ड इन्जिनियरिंग कॉलेज (बम्बई) से प्रशिक्षित नवयुवक भारतीय जहाजरानी व्यवसाय में प्रवेश कर रहे हैं।

इस समय देश में आठ बड़े, २१ मध्यम एवं १४४ लघु पत्तन हैं तूतीकोरन (तमिलनाडु) तथा मंगलोर (महाराष्ट्र) को ९वें एवं १०वें बड़े पत्तनों के रूप में विकसित किया जा रहा है। बड़े बन्दरगाहों का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित पोर्ट ट्रस्ट के माध्यम से होता है। मध्यम एवं लघु बन्दरगाहों की प्रशासनिक व्यवस्था सम्बन्धित राज्य सरकारों के हाथों में रहती है। सभी तीनों प्रकार के बन्दरगाहों की स्थिति एवं संख्या आगे की तालिका में दिखाई गई है।

पाता है। नव-निर्मित कांडला बन्दरगाह इस दृष्टि से अन्य पोताश्रयों की तुलना में सबसे अधिक लाभान्वित है।

मिट्टी जमाव का न होना—नदियों के मुहानों पर स्थित पोताश्रयों में प्रतिवर्ष मिट्टी जमाव की समस्या रहती है। कलकत्ता बन्दरगाह इसका एक उदाहरण है। १६वीं शताब्दी में, जब ईस्ट इण्डिया क० की स्थापना की गई थी, कलकत्ता बगाल की खाड़ी के तट पर स्थित था परन्तु अब वह तट से लगभग ४० किलोमीटर उत्तर में स्थित है। नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी जमाव का यह परिणाम है। रेगीस्तानी क्षेत्रों के समीप स्थित पोताश्रयों को वायु जमाव की कठिनाइयाँ रहती हैं। दोनों ही किस्मों के बन्दरगाहों की वार्षिक सफाई आवश्यक होती है।

जलवायु सम्बन्धी

समुद्र का वर्ष भर खुला रहना—समुद्रों के जमने की समस्या ऊँचे अक्षाशों में रहती है जब शीतऋतु में समुद्र बर्फ के रूप में बदल जाता है जलयानों का आना-जाना बन्द हो जाता है और व्यापार आदि स्थगित हो जाते हैं। निम्न अक्षाशों में स्थित होने के कारण भारत के बन्दरगाहों के समक्ष ऐसी समस्या कभी नहीं आती है।

प्रवाहित हिमखण्डों से मुक्ति—यह भी स्थिति केवल ऊँचे अक्षाशों में स्थित बन्दरगाहों के समक्ष आती है। भारतीय बन्दरगाहों के समक्ष ऐसी समस्या का प्रश्न ही नहीं उठता है।

जलधाराओं (उच्च अक्षाशों में गर्म एवं निम्न अक्षाशों में शीतल) के चलने से भी जलवायु सम्बन्धी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आर्थिक विकास सम्बन्धी

पृष्ठ प्रदेश का धनी होना—चूँकि बन्दरगाह मुख्य रूप से आयात-निर्यात का कार्य करते हैं इसलिए उनके पृष्ठ प्रदेशों में निर्यात योग्य उत्पादन एवं आयात की जाने वाली सामग्रियों के सेवन करने योग्य धनी जनसख्या होनी चाहिये। इस दृष्टि से कलकत्ता एवं बम्बई दो सबसे अधिक लाभान्वित बन्दरगाह हैं जहाँ से क्रमश चाय एवं जूट तथा कपास एवं सूती-वस्त्र निर्यात किये जाते हैं और दोनों ही देश के प्रथम औद्योगिक-केन्द्र हैं इसलिए खनिज तेल, बिजली के सामान तथा मशीनरी आदि आयात की जाती है। दोनों ही बन्दरगाहों के पृष्ठ प्रदेश देश में सबसे धनी एवं घने बसे हैं।

यातायात संसाधनों का विकास—कलकत्ता एवं बम्बई पुन. प्रथम स्थान पर हैं और दोनों ही बन्दरगाह अपने-अपने पृष्ठ प्रदेशों से सड़क, रेल एवं वायुमार्गों से अच्छी तरह से जुड़े हुए हैं।

बन्दरगाहों का वर्गीकरण

जैसाकि ऊपर कह आये हैं बन्दरगाहों का मुख्य कार्य आयात-निर्यात करना है परन्तु इन प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त भी उनका उपयोग होता है इसलिए उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर उनको आगे दिये गये ६ वर्गों में बाँटा जा सकता है :

उस हिस्से को कहते हैं जहाँ जलयानों की मरम्मत, कार्यशाला, ईंधन सुविधा, स्टोरगृह तथा रेलयार्ड की भांति माल उतारने एवं वितरण की व्यवस्थाएँ रहती हैं। यह हिस्सा आँधी तूफानों तथा तेज लहरों के सीधे प्रकोप से सुरक्षित रखा जाता है। इन पोताश्रयों को तट भू-आकृति के आधार पर दो-प्राकृतिक एवं कृत्रिम—वर्गों में रखा जाता है।

प्राकृतिक बन्दरगाह—तट भू-आकृति के अत्यधिक कटे-फटे होने की स्थिति में प्राकृतिक बन्दरगाह पाये जाते हैं। खुले समुद्रों के मौसम सम्बन्धी कठिनाइयों से मुक्त सुरक्षित खाड़ियों में इस प्रकार के बन्दरगाह स्थित होते हैं। इनके विकास में कम व्यय तथा अधिक सुरक्षा रहती है।

कृत्रिम बन्दरगाह—इस प्रकार के बन्दरगाह उस तट पर स्थित होते हैं जो भू-आकृति की दृष्टि से सपाट होते हैं। समुद्रों से इनका सीधा सम्बन्ध होता है। समुद्रों की मौसम सम्बन्धी (तूफान, आँधी, ऊँची लहरें) कठिनाइयों से बचने के लिए समुद्रों में कृत्रिम दीवारें खड़ी की जाती हैं। इनके निर्माण कार्यों में अधिकतम खर्च के प्रतिकूल न्यूनतम सुरक्षा रहती है।

प्राकृतिक बन्दरगाहों के लक्षण—जैसाकि पहले कहा जा चुका है प्राकृतिक बन्दरगाहों के विकास कार्यों में अपेक्षाकृत कम व्यय और अधिक सुरक्षा रहती है। इनके विकास एवं प्रगति के निम्न कारक उत्तरदायी होते हैं।

स्थलाकृति सम्बन्धी

सामुद्रिक गहराई—बन्दरगाहों के विकास के लिए समुद्रों की गहराई एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि समुद्रों में बड़े-बड़े जलयान आते एवं ठहरते हैं। कम गहरे समुद्रों की स्थिति में जलयानों को तट से दूर समुद्रों में ही ठहरना पड़ता है और सामानों के उतारने एवं चढ़ाने में अनेक बार की परेशानियाँ रहती हैं। बम्बई बन्दरगाह इससे लाभान्वित है।

तट भू-आकृति का कटा फटा होना—तट रेखा अधिक कटी-फटी होनी चाहिए। समुद्र का पानी भूखण्ड के आन्तरिक भाग में काफी दूर तक फैला होना चाहिए। प्राकृतिक खाड़ियाँ अधिक लाभदायक होती हैं। इस सुविधा के होने के कारण विशाखापट्टम पोताश्रय आँधी-तूफान तथा तेज लहरों से सुरक्षित रहता है।

बन्दरगाह के कारक
१. सामुद्रिक गहराई
२. भू-आकृति का कटा फटा
३ पर्याप्त रिक्त स्थान
४. मिट्टी न जमा होना
५. वर्ष भर बर्फ अभाव से मुक्त
६. प्रवाहित हिमखण्ड मुक्त
७ जलधाराओं का चलना
८. पृष्ठ प्रदेश का धनी होना
९. यातायात संसाधनों का विकास

पर्याप्त रिक्त-स्थान की उपलब्धि—पोताश्रय के विकासादि के लिए तथा लँगर डाक एवं जेटी की व्यवस्था के लिए पर्याप्त रिक्त-स्थान होना चाहिए। रिक्त-स्थान होने से आवश्यकता एवं समयानुसार पोताश्रय क्षेत्र का विस्तार सम्भव हो

लम्बाई १५२ मीटर तथा चौड़ाई ३७ मीटर है। इस बन्दरगाह को और आधुनिक बनाने के लिए यू. एच. एफ. रेडियो टेलीफोन तथा ८०५ किलोमीटर दूर तक प्रभावकारी तटीय बेतार के तार की सेवाएँ भी उपलब्ध हैं। यहाँ स्वतन्त्र व्यापार प्रदेश (Freetrade Zone) का निर्माण किया गया है। इस बन्दरगाह के माध्यम से आयात की जाने वाली वस्तुओं में खनिज एवं वनस्पति तेल, खाद्यान, उर्वरक, पोटाश, सल्फर तथा मशीनरी के सामान हैं। काण्डला बन्दरगाह नमक, हड्डी का सामान, चाय, चावल तथा इन्जीनियरिंग की वस्तुओं का निर्यात करता है। इस बन्दरगाह के वार्षिक व्यापार विकास को निम्न तालिका में दिखाया गया है

व्यापार

तालिका १३७ (लाख टन)

वर्ष	आयात	निर्यात
१९५५-५६	२.००	१.००
१९६०-६१	१२.००	३.००
१९६५-६६	२३.५०	१.७०
१९६८-६९	१७.००	३.३०
१९७१-७२	१८.००	२.००

बम्बई

बम्बई बन्दरगाह पाइलाट प्वाइन्ट बन्दरगाह से वाडला के मध्य ७६१ हैक्टर भूमि पर फैला हुआ है। सम्पूर्ण डाक का क्षेत्रफल २८३ हैक्टर है। मीयट वेथर तथा हुस दो सूखे डाकों के अतिरिक्त अन्य अनेक बन्दरगाह भी हैं जिनका फैलाव १२ किलोमीटर तक है। जलयानों के मरम्मत का कार्य हुगेस तथा मेरबन्दर डाकों पर किया जाता है। पश्चिमी तट के निकट एक द्वीप पर स्थित इस बन्दरगाह की अपनी स्वयं की रेल व्यवस्था है जिसकी सेवाएँ न केवल डाकों तक ही सीमित है बल्कि ऊँचे पश्चिमी घाट पर्वतों के बीच स्थित थालघाट, भोरघाट तथा पालघाट दर्रों के माध्यम से देश के भीतरी भागों को भी प्राप्त हुआ है। यहाँ नदियों के मुहाने के न होने, तथा अतीतकाल में भजन क्रिया के कारण समुद्र बहुत गहरा है। यह शहर महाराष्ट्र प्रदेश की राजधानी तथा बहुत बड़ा सास्कृत केन्द्र है। भारत के द्वार के नाम से प्रसिद्ध इस बन्दरगाह के पृष्ठ प्रदेश में कपास उत्पादन, ऊनी, सूती वस्त्र व्यवसाय, सिनेमा उद्योग, इन्जीनियरिंग, मोटर, रसायन आदि उद्योग-धंधों का समुचित विकास हुआ है। यह पाश्चात्य देशों के लिए भारत का सबसे नजदीक का बन्दरगाह है। यहाँ से ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र, खालें व चमड़ा, मैगनीज, अभ्रक, तिलहन, लकड़ी, कपास तथा मशीनें आदि विदेशों को निर्यात की जाती हैं। बदले में खनिज तेल, खाद्यान्न, मशीनें, वस्त्र, कपास, लोहा इस्पात तथा रासायनिक पदार्थों का आयात भी किया

(१) इस प्रकार के बन्दरगाह छोटे-छोटे जलयानों को आश्रय प्रदान करते तथा तट के साथ ही व्यापार करते हैं।

(२) मछुवा बन्दरगाह मछलियों के पकड़ने के लिए होते हैं तथा यहाँ के मुख्य नागरिक मछुए होते हैं।

बन्दरगाहों के प्रकार

१. तटीय व्यापार बन्दरगाह
२. मछुवा बन्दरगाह
३. सैनिक बन्दरगाह
४. स्थानीय बन्दरगाह
५. अस्थायी बन्दरगाह
६. स्वतंत्र व्यापार बन्दरगाह
७. उतारना चढ़ाना बन्दरगाह
८. ईंधन सुविधा बन्दरगाह
९. स्थानान्तरण बन्दरगाह

(३) जैसाकि नाम से ज्ञात हो रहा है ऐसे बन्दरगाहों का अधिक उपयोग सैनिक कार्यों मे किया जाता है।

(४) इनसे स्थानीय प्रायात-निर्यात किये जाते हैं और ऐसे तट पर स्थित होते हैं जो पर्वतीय होता है। पृष्ठ प्रदेशों में सुगमता से यातायात के ससाधनों को विकसित नहीं किया जा सकता है। पश्चिमी घाट इसका उदाहरण है।

(५) आँधी-तूफानो से अस्थायी सुरक्षा प्रदान करते हैं।

(६) इस प्रकार के बन्दरगाह किसी अविकसित पृष्ठ प्रदेश के विकासार्थ राजनैतिक दृष्टिकोण से विकसित किये जाते हैं। देश मे कौडला इस प्रकार का बन्दरगाह है।

(७) यहाँ माल का उतारना, चढ़ाना, छटनी, पुन. पैकिंग आदि किये जाते हैं।

(८) गुजरने वाले जलयानो को ईंधन प्रदान करते हैं।

(९) इस प्रकार के बन्दरगाह रेलवे जक्शन की तरह कार्य करते हैं।

भारत के प्रमुख बन्दरगाह

काण्डला

भारत के पश्चिमी तट पर सम्भवत. कराँची के पाकिस्तान मे चले जाने के कारण से उत्पन्न कमी को पूरा करने के लिए काण्डला बन्दरगाह का विकास किया जा रहा है। इसके पृष्ठभूमि में पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भाग आते हैं। इस बन्दरगाह मे आधुनिकतम किस्म के सयंत्रो के लगाने की व्यवस्था है। ४ बड़े जलयानों को एक साथ प्रवेश प्राप्त हो सकता है। तीन एक मंजिली सक्रमण आश्रयों का निर्माण किया गया है। जिसके बीच पुल भी निर्मित हैं। उनमें से प्रत्येक १३७ मीटर लम्बे और ४३ मीटर चौड़े हैं। बड़ी, छोटी एवं दुहरी रेल-मार्गों तथा सडक-मार्गों से भी बन्दरगाह को इसके पृष्ठ प्रदेश से जोड़ा जा रहा है। २१ आधुनिकतम किस्म के विद्युत् क्रेन हैं जिनकी क्षमता ३, ६ तथा १० टन भार उठाने की है। इस बन्दरगाह की एक और विशेषता यह है कि यहाँ खुले हुए स्थान हैं। ४ दो मंजिले गोदाम बनाये गये हैं जिनकी

ऊपर छाया और शेष छायारहित हैं। यहाँ पर चार ऐसे बर्थ हैं जिनमें से तीन का उपयोग तैल और एक लोह अयस के लिए किया जाता है। इनमें आवश्यक एवं अच्छी यांत्रिक तथा गोदाम सुविधाएँ उपलब्ध है। सभी बर्थों पर आवश्यक संख्या में चलशील क्रेन, फार्क लिफ्ट्स, प्लेटफार्म पर चलने वाले ट्रक ट्रैक्टर तथा ट्रेलर गाड़ियाँ हैं। १५ गोदामों में से ५ खनिज तेल गोदाम हैं। बन्दरगाह अपने पृष्ठभूमि से रेल एवं सड़क मार्गों से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इस बन्दरगाह के पृष्ठभूमि में खनिज पदार्थों की अत्यधिक कमी होने के कारण औद्योगिक विकास नहीं हो पाया है। यहाँ के उद्योगों में सिगरेट, दियासलाई, सीमेंट, तेल, तथा चमड़ा उद्योग ही अब तक प्रारम्भ किये जा सके हैं। इस पत्तन के माध्यम से देश में कोयला, खाद्यान्न, खनिज तेल, उर्वरक, फास्फेट, सल्फेट, मशीनरी के सामान, हार्डवेयर, लोहा एवं इस्पात, कपास तथा अनेक प्रकार की मेटल धातुएँ मँगाई जाती हैं। उपरक्ष से लोह अयस, चमड़ा, मूंग तेल, तम्बाकू, अभ्रक, कहवा तथा चाय विदेशों को भेजे जाते हैं।

विशाखापट्टम

ऐसे जलयान जिनकी लम्बाई १९५ मीटर तथा १०.५ मी. की गहराई तक चलने हैं इस बन्दरगाह में प्रवेश कर सकते हैं। यहाँ पर ६ स्थायी लदान बर्थ (Wharf) तथा २ अन्य लदान बर्थ हैं। इसका उपयोग मुख्यतः लोह अयस तथा मैगनीज निर्यात के लिए किया जाता है। इनके अतिरिक्त २ खनिज तेल, १ उर्वरक, ३ जेट तथा ४ पूर बर्थ भी हैं। इन पर चलनशील विद्युत क्रेन, संक्रमण छाया तथा रेल-मार्ग बने हुए हैं। चौथी पंचवर्षीय योजना में ३७० मिलियन रुपये की लागत से एक बाह्य पत्तन का भी निर्माण कराया गया है। जिसमें अयस ढोने वाले जहाज ही कार्य कर सकते हैं। अयस के लिए ८०,००० वर्गमीटर क्षेत्र खुला हुआ है जिस पर एक साथ ३००,००० टन अयस इकट्ठा किया जा सकता है। इसके अलावा पिग आयरन, चट्टानी फास्फेट तथा सल्फर को इकट्ठा करने के लिए एक अन्य क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल ३६,००० वर्गमीटर है।

पारादीप

१८ अप्रैल सन् १९६६ में इसको बड़े बन्दरगाह का दर्जा प्राप्त हुआ था। उड़ीसा राज्य का यह एक मात्र बन्दरगाह है जिसकी प्रगति लोह अयस के निर्यात के कारण है।

कलकत्ता

'भारत द्वार' बम्बई बन्दरगाह स्वेज तथा केप मार्गों के द्वारा पाश्चात्य देशों तथा दूसरी तरफ कलकत्ता सिंगापुर एवं आस्ट्रेलिया मार्गों के देशों के व्यापार के लिए सबसे अनुकूल है। यहाँ भारत की महान् नदियों गंगा एवं ब्रह्मपुत्र का सबसे बड़ा मुहाना होने के कारण जहाजों को समुद्र पत्तन तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती है। इसके बावजूद भी यह बन्दरगाह भारत के लिए सबसे अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त करता है। यहाँ पर खिदिरपुर एवं किंग जार्ज दो डेक (Deck) हैं। तीसरे का निर्माण हल्दिया में किया गया है जिस पर भारी मालवाहक जलयान रुका करते हैं। इस बन्दरगाह में शुष्क डेक हैं। कलकत्ता के रर्टेम

जाता है। इस बन्दरगाह से वार्षिक आयात-निर्यात की मात्रा को निम्न तालिका में दिखाया गया है :—

व्यापार

तालिका १३८

(लाख टन)

वर्ष	निर्यात	आयात
१९५५–५६	३६००	६८ ००
१९६०–६१	४० ००	१०८.००
१९६५–६६	५१ ००	१२६.००
१९६८–६९	४३.००	१२१ ००
१९७१–७२	१२६.००	३६.००

मारमगुवा

यह भी भारत के प्रमुख बन्दरगाहों में से एक है। अयस एवं अन्य साधारण निर्यातों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। सन् १९७०–७१ में यहाँ से ११ मिलियन टन का व्यापार किया गया था। इसमें से ६.५ मि. टन लौह अयस १.० मि. टन मैंगनीज, ३६,००० टन बाक्साइट तथा अन्य खनिज पदार्थ निर्यात किए गये थे। आयात की जाने वाली वस्तुओं में खनिज तेल, तथा उर्वरक प्रमुख हैं। पंजिम से दक्षिण तथा करवार से उत्तर गोआ में स्थित यह एक प्राकृतिक बन्दरगाह है। अच्छे मौसमों में ५० तथा मानसून के समय १५ जलयान ठहराये जा सकते हैं। रेल तथा सड़क मार्गों के द्वारा यह बन्दरगाह देश के भीतरी भागों से अच्छी तरह जुड़ा हुआ है। इसके विकास के लिए २४० मिलियन रुपये खर्च से एक सर्वांगीण विकास योजना बनाई गई है।

कोचीन

गहरे जल परिवहन के अनुकूल यह बन्दरगाह खराब मौसमों में भी जलयानों को ठहरने के लिए सुरक्षित स्थान प्रदान करता है। यह बम्बई से लगभग ६३० किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। यह बन्दरगाह दक्षिण रेल्वे के बड़ी एवं मीटर रेल-मार्गों द्वारा देश के अन्य भागों से जुड़ा हुआ है। बन्दरगाह के भीतर १२ स्टीमबर्थ, २ कोयला के बर्थ, ४ माल लदान बर्थ लगाये गये हैं। इस बन्दरगाह के पृष्ठभूमि में कहवा, चाय, नारियल, एवं रबर की बागानी खेती की जाती है। खाद्य-सामग्री, चावल, गेहूँ, पेट्रोल, कोयला, कपड़ा लोहे के सामान आयात और नारियल की जटा, चाय, कहवा, रबर, काजू इलायची, गर्म मसाले, काली मिर्च आदि चीजें इस बन्दरगाह के माध्यम से निर्यात की जाती हैं। यहाँ जलयान-निर्माण एवं मरम्मत का कार्य भी किया जाता है।

मद्रास

पूर्वीतट पर स्थित मद्रास बन्दरगाह पर इस समय १८ जहाज बर्थ हैं। जिनमें से १० के

१	२	३
महाराष्ट्र	नूयीखाडी	१०.७५
गुजरात	पोरबन्दर	६६.२०

वायु परिवहन

चित्र संख्या ५३ मे भारतीय वायु मार्ग को दिखाया गया है। हमारे प्राचीन साहित्यों मे विमानों सम्बन्धी प्रसंग बार-बार आते हैं। रामायण तो वैज्ञानिक चिंतन की पराकाष्ठा ही है। *परन्तु हमारे देश मे आधुनिक किस्म के वायुयानों का प्रचलन सन् १९२० से माना*
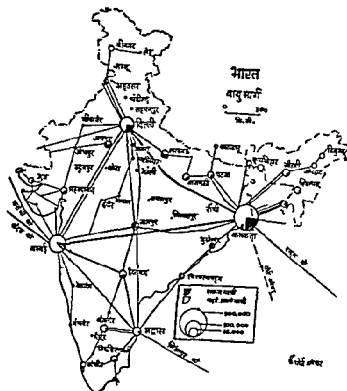
चित्र ५३

जाता है। जब करांची (पाकिस्तान) से बम्बई तक की उड़ानों को स्वीकृति प्रदान की गई थी। सन् १९२५ में इम्पीरियल एयरवेज कम्पनी द्वारा इंगलैण्ड तथा भारत के बीच तथा १९३३ मे लाहौर-करांची (पाकिस्तान) के बीच वायुयान चलने लगे थे। अन्य उद्योगों की ही भांति द्वितीय महायुद्ध के समय देश मे वायु परिवहन का भी पर्याप्त विकास हुआ।

बैंक में ६ जेटी हैं जिनमें से पांच समुद्रों में जाने वाले जलयानों को उपलब्ध होते हैं। कलकत्ता से लगभग २३ किलोमीटर दूर तेल गोदाम हैं। खिदिरपुर में ६ कोयले की बर्थ हैं। सौगरशेड, हल्दिया, काल्पी, रायपुर तथा बजबज में जलयानों के ठहरने की व्यवस्था है। देश के सबसे अधिक चाय एवं जूट उत्पादक प्रदेश इसी बन्दरगाह की पृष्ठभूमि में स्थित हैं। भारत के बन्दरगाहों की तुलना में इसकी पृष्ठभूमि सबसे विस्तृत, घनी बसी, घनी तथा औद्योगिक दृष्टि से विकसित है। इस बन्दरगाह की पृष्ठभूमि में उत्तर-प्रदेश की औद्योगिक राजधानी कानपुर तक सबसे अधिक उपजाऊ भूमि, शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या, रेल तथा सड़क मार्गों की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसी के अन्तर्गत भारत की खनिज पेटी भी स्थित है। कलकत्ता पश्चिमी बंगाल की राजधानी है। इस बन्दरगाह के द्वारा गेहूँ, चावल, मशीनें, इन्जीनियरिंग का सामान, खनिज तेल तथा मशीनरी, नमक, टिन प्लेट, सोडा, टिम्बर, उर्वरक, ईंट, रसायन, रेलवे के काम में आने वाली सामग्रियों का आयात तथा बदले में जूट, चाय, कोयला, लोहा, इस्पात मैंगनीज, अभ्रक, चमड़ा तथा लाख निर्यात किया जाता है।

नये बन्दरगाहों का विकास

चौथी पंच-वर्षीय योजना में भारत के तटीय व्यापार को बढ़ावा देने तथा विदेशी व्यापार की मदद के लिए कुछ नये बन्दरगाहों के विकास कार्यक्रम को प्रारम्भ किया गया है। भारत के वर्तमान बन्दरगाहों पर खनिज तेल, उर्वरक, तथा खनिज लोहा के उतारने चढ़ाने के काम में वृद्धि होने की सम्भावना है। इसलिए चौथी पंच-वर्षीय योजना में बड़े बन्दरगाहों के विकास कार्य के अन्तर्गत सभी बन्दरगाहों के सामान्य विकास के अतिरिक्त मंगलोर तथा तूतीकोरन बन्दरगाहों का निर्माण तथा हल्दिया की आधुनिक डाक-व्यवस्था को पूरा करना था। कलकत्ता बन्दरगाह की सामान्य कार्यप्रणाली को बनाये रखने के लिए एक केन्द्रीय कीचड़-मिट्टी निकास संगठन भी स्थापित किया गया है। यह छोटे बन्दरगाहों की देखभाल करने के साथ-साथ अण्डमान निकोबार तथा लक्षद्वीपों को भी बन्दरगाह की समुचित सुविधाएँ प्रदान कराने हेतु प्रयास करेगा। जिस पर लगभग १३० करोड़ रुपये खर्च होने की सम्भावना है। राज्य एवं बन्दरगाहानुसार खर्च निचली तालिका में प्रस्तुत किया गया है :

बन्दरगाहानुसार स्थिति एवं व्यय

तालिका १३६

राज्य	बन्दरगाह का नाम	व्यय (मिलियन रुपया)
उड़ीसा	गोपालपुर	४.००
आन्ध्र	कटिनाड़ा	१०.००
केरल	बेपोर	१०.००
तमिलनाडु	कुडालोर	८.००
कर्नाटक	कारवार	७५.००

संचार साधन

इस अध्याय मे अब तक मनुष्यों के परिवहन अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के साधनों की बातें की गई हैं। परन्तु संचार का वास्तविक अर्थ किसी प्रकार के समाचार को मौखिक, शब्दो अथवा लिखित रूप से व्यक्त करने से होता है। इस प्रकार के वास्तविक संचार साधन के अनेक माध्यम होते हैं।

विकास का संक्षिप्त इतिहास

(१) पहले दो मनुष्यों के बीच संदेशवाहक सीधा आया जाया करता था? पशु-पक्षियों को भी संदेशवाहक के रूप में काम मे लाया जाता था। इतना ही नहीं बल्कि हमारे साहित्य मे मेघ, पवन तथा इसी प्रकार के अनेकानेक प्राकृतिक कारकों से भी संदेशवाहन का काम लिये जाने की बातें कही गई हैं।

(२) इसके बाद मैलपत्रों की बारी आई जिसमे व्यक्ति विशेष अथवा सरकार को पत्र सौंप कर परिवहन के माध्यम से पत्र पहुँचाये जाने लगे।

(३) १८३२ में सैमुअल एफ. बी. मोर्सने अधिक द्रुतगामी संदेशवाहन विधि टेलीग्राफ का आविष्कार किया। सन् १८७६ मे अलेकजेण्डर बेल ने टेलीफोन की खोज की जिसमे दूरस्थ स्थानों पर स्थित व्यक्तियों मे सीधी बातचीत होने लगी। सन् १९५५ मे उत्तरी अटलांटिक महासागर के आरपार प्रथम ट्रान्सअटलांटिक केबुल की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था से संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इग्लैण्ड अथवा यूरोप महाद्वीप के अन्य देशों के लोगो में सीधी बातचीत प्रारम्भ हुई। सन् १८९६ में मारकोनी ने बेतार के तार अथवा रेडियो संचार साधन का आविष्कार किया और ऐसे स्थानो से लोगो ने बातचीत प्रारम्भ की जहां न तो टेलीग्राफ और न ही टेलीफोन लगाना सम्भव था। टेलीविजन तथा वायर फोटो संचार साधन संचार विकास की शृंखला में एक और महत्वपूर्ण कदम है।

ऊपर कहे गये संचार साधनों मे से भारत मे संदेशवाहक एवं मेल (Mail) सेवाओं को छोड़कर अन्य साधनो का उपयोग बहुत ही सीमित क्षेत्रो एवं कार्यों मे किया जाता है। विश्व के अलग-अलग पडे हुए देशों मे रहने वाले लोगों को विकसित संचार साधनों-टेप-रिकार्डों, टेलीविजन तथा रेडियो आदि के माध्यम से विश्व की समस्त घटनाओं के सम्बन्ध मे प्रशिक्षित किया जा सकता है। संचार साधनो से विश्व के विभिन्न देशो टुन्ड्रा, टैगा, कांगो बेसिन तथा रेगिस्तान आदि मे रहने वाले लोग एक दूसरे को आसानी एवं शीघ्रता से समझते हैं तथा आपस में एक दूसरे के नजदीक आ सकते हैं। इस समय विश्व बन्धुत्व को बढ़ाने, भेदभाव दूर करने तथा सभी लोगो को एक दूसरे की भू-सामाजिक तथा अन्यान्य परिस्थितियों को समझाने के लिए इस प्रकार के संचार साधन सबसे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

भारत मे सर्वप्रथम लार्ड क्लाइव ने अपने आफिस के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए सन् १७६६ में आधुनिक किस्म के पोस्ट आफिसो की स्थापना की थी। सन् १८३७

अब वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण करके इण्डियन एयर लाइन्स तथा एयर इण्डिया के नामो से पहला निगम देश के भीतरी और समीपस्थ देशो तथा दूसरा निगम विदेशी को विमान यात्राओ की व्यवस्था करता है। इनके अतिरिक्त दिसम्बर १९७० तक १० वायु परिवहन कम्पनियाँ भी थी। पूरे देश मे चार किस्मों के ८५ हवाई अड्डे हैं।

(१) अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे	४
(२) बड़े हवाई अड्डे	११
(३) मध्यम हवाई अड्डे	३८
(४) छोटे हवाई अड्डे	३२

सन् १९७० से (कलकत्ता, बम्बई, मद्रास एवं दिल्ली) अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डो के विकास के लिए वृहद् कार्यक्रम प्रारम्भ किए गये हैं। उपर्युक्त हवाई अड्डों के अतिरिक्त तिरुपति तथा कालिकट मे भी नये हवाई अड्डे बनाये गये हैं।

प्रशिक्षण केन्द्र—पूरे देश मे वायुयान सम्बन्धित प्रशिक्षण देने के लिए दो सरकारी केन्द्र एक इलाहाबाद : सिविल एविएशन ट्रेनिंग क० इलाहाबाद तथा सरकारी ग्लाईडिंग केन्द्र पूना हैं।

फ्लाईंग क्लब—भारत मे इस समय २५ फ्लाइंग क्लब विमान उड़ान प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। सरकार से इनको आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। ऐसे केन्द्र हैदराबाद, गौहाटी, पटना, बम्बई तथा दिल्ली आदि मे हैं।

ग्लाइडिंग क्लब—आंशिक रूप से सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त १३ इस प्रकार के केन्द्र पूरे देश में प्रशिक्षण कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार के केन्द्र दिल्ली, जयपुर, कानपुर, पिलानी, पटियाला तथा पटना आदि स्थानो पर हैं।

शोध एवं विकास केन्द्र—दिल्ली के सफदरजंग केन्द्र पर वायुयानो सम्बन्धित डिजाइन, मौसम निपुणता तथा उत्पादन ट्रेनिंग आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है।

वायु परिवहन का विकास क्षेत्र—वायु परिवहन के लिए भारत सरकार के पास अफगानिस्तान बंगलादेश, आस्ट्रेलिया, बेल्जीयम, श्रीलंका तथा फ्रांस जैसे लगभग ३० राष्ट्रों से समझौता हो चुका है।

मौसम विज्ञान अध्ययन केन्द्र—मौसम विज्ञान सम्बन्धित अध्ययन के प्रधान कार्यालय दिल्ली तथा पूना मे हैं। इस पूरे कार्यालय को ५ मण्डलीय कार्यालयों—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नागपुर तथा दिल्ली मे बाँट दिया गया है। इन कार्यालयों से प्राप्त मौसम सम्बन्धित समस्त सूचनाएँ न केवल भारत मे वितरित की जाती है बल्कि विश्व के अन्य देशों से भी आदान-प्रदान किया जाता है। पूरे देश मे ४८० सतही, ३१६ हाइड्रोमेटिओरोलाजिकल, ५४ पाइलाट बेलून, १८ रेडियो सोण्ड, २० रेडियो विण्ड, १० तूफान सूचक राडार, २४ विकिरण, १८ भूकम्प सूचक तथा १ चक्रवात सूचक राडार जैसी वेधशालाएँ कार्य कर रही हैं। इनसे न केवल वायुयानो को ही मौसम सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं बल्कि अन्य विभागों को भी इनसे मदद मिलती है।

विकास नहीं हो पाया है। इसलिए इन संसाधनों के विकास एवं प्रसार की देश में न केवल सबसे अधिक गुंजाइश है बल्कि देश के विकास के लिए आवश्यक भी।

भविष्य—संचार प्रणाली को दिनोंदिन स्वचालित बनाने की योजनाएँ हैं। सन् १९७४ तक देश में २५,०० टेलीप्रिन्टर तथा ४.५ मिलियन टेलीग्राफ चैनेल मार्ग बनाये जाने की संभावना है। सन् १९८२ में देश में टेलीफोनों की संख्या २.५ मिलियन हो जावेगी।

□□□

से इसकी सेवाएँ सामान्य जनता को भी सुलभ हो रही हैं। डाक टिकिटों की प्रथम किस्त सन् १८५२ में सिन्ध में प्रकाशित की गई। भारत में पहली टेलीग्राम लाइन कलकत्ता तथा डायमड हारबर के बीच सन् १८५१ मे बिछाई गई थी। ३१ मार्च, सन् १९७३ में पूरे देश मे लगभग १५४६० टेलीग्राफ आफिस, ४२,५५००० कि. मी. टेलीग्राफ चैनेल, और ११५६५१ पोस्ट आफिस है जिनमे से १०५०८४ पोस्ट आफिस गाँवों और शेष शहरों मे थे। २७,६३ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल तथा ४१२० व्यक्तियों मे एक पोस्ट आफिस कार्य कर रहा है। ३१ मार्च, १९७२ को इस विभाग मे ६.०५ लाख कर्मचारी कार्य कर रहे थे। प्रशासनिक सुविधाओं तथा कार्यक्षमता को बढाने की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत के सचार तंत्र को १५ क्षेत्रीय ईकाइयों में विभाजित कर दिया गया है। पोस्ट आफिसों के अतिरिक्त ३१ मार्च, सन् १९७३ को इस विभाग मे २०३५८ टेलीप्रिन्टर्स, ४४ टेलेक्स, १५.२० लाख टेलीफोन तथा ४४४१ टेलीफोन एक्सचेंज कार्य कर रहे थे। ३२०००० और टेलीफोन लगाये जाने के आवेदन तथा योजनाएँ बन गई थी।

माइक्रोवेव रेडियो रीले सिस्टम—भारत मे अब तक केवल ३६०० कलोमीटर लम्बी सेवाएँ प्राप्त हैं तथा १०,२०० किलोमीटर कोऐक्सीयल सेवाएँ भी उपलब्ध हैं।

विदेशी संचार सेवाएँ—भारत मे इसके ४ केन्द्र कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा दिल्ली मे हैं। इन केन्द्रों से विदेशों मे सीधा बेतार का तार, टेलीग्राफ, सीधा रेडियों फोन सेटेलाइट कनेक्शन सीधा रेडियो फोटो सेवाएँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय टेलेक्स सेवाएँ सुलभ हैं।

प्रसारण सेवाएँ—भारत में प्रसारण सेवाएँ सन् १९२७ से प्रारम्भ हुई हैं।

टेलीविजन—परीक्षण के रूप मे टेलीविजन सेवाएँ सन् १९५९ में दिल्ली मे प्रारम्भ की गई। बम्बई मे दूसरा केन्द्र अभी हाल ही मे प्रारम्भ किया गया है। इस समय देश मे दिल्ली, बम्बई, पूना, जम्मू-काश्मीर तथा अमृतसर जैसे ५ केन्द्रों पर टेलीविजन प्रसारण कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ तथा कानपुर मे टेलीविजन सेवाएँ प्रारम्भ होने वाली हैं। टेलीविजन के सेटों के उत्पादन वृद्धि को निम्न रेखा-चित्र के माध्यम से दिखाया गया है।

चित्र २४

देश की जनसख्या तथा क्षेत्रफल को देखते हुए कहा जा सकता है कि पोस्ट आफिस तथा टेलीग्राफ के अलावा द्रुतगति तथा आधुनिकतम साधनो का तो हमारे देश में बिल्कुल
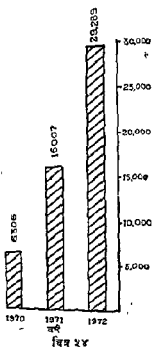
खाद्य सामग्रियों, वस्त्र तथा इमारती सामग्रियों की प्रतीक्षा करते और मँगवाते हैं और बदले में अपने यहाँ फैक्टरियों में तैयार अथवा खनिज पदार्थों का निर्यात करते हैं।

राजनैतिक प्रभाव—राजनैतिक उपलब्धियों के लिए भी एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ व्यापार होता है। कोई भी राष्ट्र अपने यहाँ उद्योग धन्धों को विकसित करने के लिए विदेशी सामानों पर अतिरिक्त टैक्स लगा सकता है तथा सामान का आयात बिल्कुल बन्द भी कर सकता है। फलस्वरूप जनता को अपने देश की निर्मित वस्तुओं के उपयोग के लिए प्रेरित किया जाता है। राष्ट्र-प्रेम, स्वावलबन की नीति तथा स्वदेशी की भावनाओं से व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। विश्व के तेल भण्डारों को अपने आर्थिक तथा राजनैतिक प्रभाव क्षेत्र में बनाये रखने के लिए विश्व में एक भिन्न किस्म की राजनैतिक होड़ लगी हुई हैं।

व्यापार का महत्त्व

व्यापार से न केवल हम अपने यहाँ प्राप्त सामग्री को प्राप्त करते हैं बल्कि इससे सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा आदि का भी आदान-प्रदान होता है। दो विभिन्न मतों के लोग आपस में नज़दीक आते हैं। परस्पर निर्भरता, विश्वास तथा सौहार्द की भावनाएँ बढ़ती हैं। देश के अतिरिक्त उत्पादन के नष्ट होने के स्थान पर उसका कमी वाले क्षेत्रों में लाभदायक उपयोग होता है। उपभोग की विभिन्नता और मात्रा दोनों में वृद्धि होती है। जीवन-स्तर ऊपर उठाता है। बाजारों का विस्तार होता है। व्यापार से विश्व बन्धुत्व को भी बढ़ावा मिल सकता है।

व्यापार को दो (देशी व्यापार तथा विदेशी व्यापार) वर्गों में बाँटा जा सकता है। देश की विशालता, जलवायु-वैभिन्य तथा विविध प्राकृतिक ससाधनों के कारण देश में आन्तरिक व्यापार किया जाता है। आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार की तुलना में अनेक गुना अधिक होने पर भी इसका आँकड़ा आसानी से तथा सही नहीं उपलब्ध होता है।

भारत ने अपने अविकसित ससाधनों से सन् १६६२ में लगभग १५७५.४७ करोड़ रुपयों का विदेशी व्यापार किया था। विदेशी व्यापार की दृष्टि से विश्व में भारत का ५ वाँ स्थान है। परन्तु चाय तथा जूट जैसी कतिपय वस्तुओं का यदि अलग से विवेचन किया जाय तो देश का विश्व व्यापार में प्रथम और दक्षिण एशिया में वस्त्र निर्यात के लिए प्रमुख स्थान आता है। जैसाकि ऊपर कहा गया है भारत का विदेशी व्यापार बहुत प्राचीन होते हुए भी इस सम्बन्ध में आँकड़ों को इकट्ठा करने का प्रचलन केवल १८७० से प्रारम्भ हुआ है। सन् १६०० से लेकर अब तक के, ७० वर्षों के, भारतीय विदेशी व्यापार का ५ चरणों में अध्ययन किया जा सकता है।

(१) सन् १६००–१६१४ प्रथम विश्व युद्ध का समय
(२) दो महायुद्धों के बीच का समय
(३) द्वितीय विश्व युद्ध का समय
(४) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का समय
(५) देश विभाजनोपरान्त

अध्याय ११

व्यापार

प्राचीन काल मे महासागर एव पर्वत राष्ट्रो के बीच दो प्रमुख अवरोध समझे जाते थे। कालान्तर मे द्रुतगामी एव वाष्प-चलित जलयानों तथा वायुयानो के आविष्कार से उपर्युक्त रुकावटो पर पूरी तरह विजय प्राप्त कर ली गई है। फलस्वरूप विश्व महाद्वीपों के बीच कुछ घटो अथवा दिनों की दूरियाँ रह गई हैं। रेडियो, टेलीविजन एव रेडियो टेलीफोन आदि की सहायता से जिस प्रकार विश्ववासी एक दूसरे के अधिक समीप आ रहे हैं उसी तरह आसान एवं द्रुतगामी परिवहन साधनों ने दो राष्ट्रों के बीच व्यापार को भी प्रोत्साहित किया है।

व्यापार का कारण

विश्व व्यापार के अनेक कारण एवं आधार हैं। जिनमे से उत्पादन विविधता, सांस्कृतिक विभिन्नता, जनसख्या का असमान वितरण, राजनैतिक प्रभाव एव अभिलाषाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

उत्पादन विविधता—राष्ट्रो के बीच किन कारणों से व्यापार होता है? राष्ट्रीय व्यापार व्यक्तिगत व्यापार (के कारणों) से बिल्कुल मिलता-जुलता है। जिस प्रकार हम अपने अतिरिक्त टिकटों के बदले ऐसे टिकटों को लेना चाहते हैं जो हमारे पास नहीं होते अथवा जिनको हम प्राप्त करना चाहते हैं। उसी प्रकार राष्ट्र भी आपस मे अपने अतिरिक्त उत्पादनों (Surplus) की अदला-बदली करते हैं। उदाहरण के लिए भारत जूट, चाय, कालीन तथा अभ्रक आदि विश्व बाजार मे बेचता है और बदले मे विदेशी मुद्रा, उधार, मशीनरी, खाद्यान्न तथा खनिज तेल आदि जिसकी अपने देश मे कमी है, प्राप्त करता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे किसी देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है और देशवासी अपने कृषि एव अन्यान्य उत्पादनों के बदले में उन पदार्थों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं, जो वहाँ पैदा नहीं होते हैं।

सास्कृतिक विभिन्नता—विश्व में अनेक प्रकार की संस्कृतियाँ पाई जाती हैं। इसलिए विश्व के विभिन्न भागों में रहने वालो के विकास स्तर, रहन-सहन के तौर तरीके और आवश्यकताएँ एवं अभिलाषाएँ एक समान नहीं हैं। आदिम सस्कृति मे रहने वाले लोग अपने सास्कृतिक, सारस्वत, वैज्ञानिक तथा आर्थिक स्तरों को उठाने के लिए अपने उत्पादनों को विश्व बाजार मे भेजकर आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।

जनसंख्या का असमान-वितरण—घने बसे देश के लोग कम घने बसे देश के लोगों से

१. दुश्मन देशों से होने वाला व्यापार समाप्त हो गया। २. जलयानों की कमी पड़ने के कारण माल का निर्यात नहीं हो पाया। ३. विदेशी भुगतान की आमद या तो कम हो गई या उसमें बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई थी। परन्तु इन कठिनाइयों के बावजूद भी भारत के निर्माण उद्योग (*Manufacturing Industries*) को काफी प्रोत्साहन मिला और फलस्वरूप इन्हीं वर्षों में लोहा-इस्पात, सूती वस्त्र व्यवसाय, जूट तथा चमड़ा आदि उद्योगों की स्थापना की गई। युद्ध एवं देशों की आपसी कटुता समाप्त होने के बाद भारतीय निर्यात को पुनः वही स्थान प्राप्त हो गया। उन दिनों यदि परिवहन की कठिनाई, विदेशी भुगतान की अनिश्चितता एवं यूरोप के देशों का इस युद्ध में पदार्पण न हुआ होता तो भारतीय निर्यात के लिए सबसे अनुकूल स्थिति बनी रहती। फिर भी भारतीय व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात मूल्य की स्थिति पहले से अच्छी हो गई थी। जो निम्न तालिका से स्पष्ट होता है :

तालिका १४१

(मूल्य करोड़ रुपये)

वर्ष	सामग्रियों का निर्यात	आयात	लाभ योग
१९१४–१५	४३.७०	१८.५	२५.२
१९१५–१६	६५.४०	१०.५	५४.९
१९१६–१७	६५.५०	२०	६३.५
१९१७–१८	६२.१०	२२.७	६६.२

दो विश्वयुद्धों के बीच का समय—व्यापारिक अवपात (Depression of Thirties) एवं पुनः प्राप्ति : सन् १९२९–३४ के बीच सारे संसार में व्यापारिक अवपात का समय था परन्तु भारत के व्यापार पर इसका सबसे बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि कृषि-जन्य पदार्थों की कीमतें विश्व बाजार में बड़ी तेजी से गिर गईं। भारतीय रेशेदार पदार्थों की माँग कम हो गई। इस देश की खरीद शक्ति घट गई, देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन के कारण विदेशी सामानों का तिरस्कार किया गया और फलस्वरूप देश में निर्मित सामानों का अच्छे ढंग से निर्यात भी नहीं हो पाया। व्यापारिक गिरावट की यह स्थिति सन् १९३२ तक भयंकर रूप धारण किए रही। सन् १९३२ से इसमें कुछ सुधार के लक्षण नजर आने लगे थे क्योंकि सन् १९३२ के निर्यात मूल्य में जो १३२ करोड़ रुपये था, काफी वृद्धि हुई और वह बढ़कर सन् १९३७ में १९६ करोड़ रुपये हो गया था। जब भारत व्यापारिक अवपात से गुजर रहा था और व्यापार में पूरी तरह से सुधार नहीं हो पाया था कि द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय सन् १९३८–३९ में भारत का ट्रेड बैलेन्स १५१ करोड़ रुपये का था।

द्वितीय विश्व-युद्ध का समय—प्रथम विश्वयुद्ध ने भारत में औद्योगीकरण को जन्म दिया और द्वितीय महायुद्ध ने इसको पाला-पोसा और बड़ा किया। कच्चे-माल के आयात के जो लक्षण उस समय दिखाई देने लगे थे उन्होंने व्यावहारिक रूप धारण कर लिया। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध से भारतीय व्यापार को आशातीत सफलता मिली। जिसको आगे की तालिका में दिखाया गया है :

भारतीय विदेशी व्यापार के प्रमुख लक्षण तथा सुझाव

द्वितीय युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व तक भारतीय विदेशी व्यापार को अंग्रेजों ने उपनिवेश किस्म का बना रखा था। उन दिनों ब्रिटिश सरकार तथा उसके उपनिवेशों की आपसी आवश्यकतानुसार कृषकों से उत्पादन करने के लिए कहा जाता, दबाव दिया जाता तथा कभी-कभी कतिपय वस्तुओं का उत्पादन अनिवार्य बना दिया जाता था। इसलिए भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कच्चा माल और आयात की जानेवाली सामग्रियों में तैयार माल हुआ करते थे। उद्योगों के देश में क्रमशः बढ़ने एवं युद्धारम्भ के कारण धीरे-धीरे परिवर्तन नजर आने लगा और देश विभाजन के समय तक व्यापार का सुझाव बिल्कुल उल्टा हो गया। फलस्वरूप निर्यात में पक्का और आयात की जाने वाली सामग्रियों में कच्चे मालों के प्रतिशत में आशातीत वृद्धि हो गई। भारतीय विदेशी व्यापार में खाद्यान्न का आयात अधिक होता है। भारत सन् १९३७ के पूर्व १९२७-२८ से २·८ मिलियन टन खाद्यान्न का निर्यात करता था। उस समय बर्मा भी भारत का ही अंग था। बर्मा के अलग होने के तुरन्त बाद सन् १९३८ में ७५ लाख टन खाद्यान्न भारत को विदेशों से मंगाना पड़ा था। सन् १९४७ में पुनः देश के विभाजन से खाद्यान्न तथा कच्चे मालों के सम्बन्ध में भारत की निर्भरता और भी बढ़ गई। क्योंकि सन् १९४७ के पूर्व अविभाजित भारत में न केवल अपने उद्योगों के लिए कच्चा जूट, कच्चा कपास, ऊन, चमड़ा पैदा होता था बल्कि उसका कुछ भाग विदेशों को भी भेजा जाता था। परन्तु अब भारत एक तरफ से उपर्युक्त पदार्थों का स्थायी ग्राहक बन गया दिखाई पड़ रहा है।

सन् १९०० से १९१४ के मध्यकालीन व्यापार—इस शताब्दी के आरम्भ से ही कीमतों में चढ़ाव होने लगा था। इसलिए तत्कालीन सरकार ने यहाँ के कच्चे सामानों को विदेशों में खूब भेजा। उन दिनों भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में गेहूँ, चावल, चाय, कपास, जूट, तिलहन, अफीम, नील, चमड़ा और आयात की वस्तुओं में सूती वस्त्र, लोहा एवं शीशा निर्मित पदार्थ तथा रेलवे में काम आने वाली चीजें सम्मिलित थीं। अधिकांश निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की अदायगी स्वर्णमुद्राओं में की जाती थी। इसलिए उन दिनों भारत विश्व में सबसे अधिक स्वर्ण अर्जित करने वाले देशों में से एक था। देखिए निम्न तालिका :

बचत करोड़ रुपयों में

तालिका १४०

वर्ष	सामग्रियों का निर्यात मूल्य	आयात मूल्य	लाभ
१८९९-०४	३९.४०	१४.४०	२५.००
१९०४-०९	४२.३०	२६.३०	१६.००
१९०९-१४	७१.००	३८.९०	३२.१०

प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय व्यापार पर अस्थायी रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था—

आयात हिस्सा (प्रतिशत)

तालिका १४३

	१९३७–३८	१९४६–४७	१९४८–४९
खाद्यान्न	१४.००	२८.५०	२२.८०
कच्चा कपास	५.६०	७.७०	६.८०
कच्चा जूट	०.००	०.००	१०.००

सन् १९४८–४९ के आयात मूल्यों को देखकर देश के विभाजन के दुष्परिणाम का थोड़ा बहुत आभास लगाया जा सकता है। इस वर्ष (६७० करोड़ रुपये) आयात की रकम में से १५१ करोड़ खाद्यान्न, ७१ करोड़ कच्चे जूट तथा ६५ करोड़ रुपये कच्चे कपास के लिए देना पड़ा था। इसके परिणामस्वरूप १९४८–४९ में १२७ करोड़ तथा १९४९–५० में ७६ करोड़ रुपये का *प्रतिकूल व्यापारिक सन्तुलन (Abverse Balance of Trade)* विद्यमान रहा। इन सबकी पृष्ठभूमि में सन् १९४९ में भारतीय रुपये का अवमूल्यन किया गया था। इससे भारत के अन्तर्राष्ट्रीय एकाउन्ट में सुधारात्मक लक्षण दिखाई देने लगे। देश के विभाजन के बाद पहली बार सन् १९५०–५१ में भारत का व्यापारिक सतुलन (Trade Balance) ४०.२७ करोड़ रुपये हो पाया था। अवमूल्यन के साथ-साथ भारतीय जूट, खाद्य एव वनस्पति तेल, अभ्रक, चमड़ा आदि की माँगों में संतोषजनक वृद्धि होने लगी थी। इस कारण भारत का सम्पूर्ण निर्यात मूल्य सन् १९४९–५० में ४८५.३२ करोड़ से बढ़कर १९५०–५१ में ६०६.८४ करोड़ रुपये हो गया था। अवमूल्यन तथा भारतीय वस्तुओं की विश्व बाज़ार में नये सिरे से बढ़ती हुई माँगों के साथ-साथ कोरिया युद्ध ने भी भारतीय व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। भारतीय सामानों का मूल्य अपेक्षाकृत कम था इसलिए युद्ध में इसकी खूब माँग बढ़ी। भारत सरकार द्वारा नियुक्त निर्यात-वृद्धि परिषद् ने भी *समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावों से भारतीय व्यापार को लाभान्वित* किया है।

आयात

भारत के आयात का मूल्य सन् १९५२–५३ में ६३२.६५ करोड़ रुपये से बढ़कर अप्रैल-दिसम्बर १९७२ में बढ़कर १२१६.०१ करोड़ हो गया। इस पूरी रकम में से केवल खाद्यान्न (गेहूँ व चावल) का मूल्य १५३.१० करोड़ से बढ़कर २५२.५८ करोड़ रुपये हो गया था। भारत ने सन् १९७० में १६५८.७५ करोड़ रुपयों के बराबर मूल्य के सामान का आयात किया था जो पिछले वर्ष की तुलना में २% कम था। इस कमी का प्रधान कारण भारत के विकास के लिए अत्यधिक मशीनरी तथा खाद्यान्न की ज़रूरत तथा मन्द निर्यात है। खाद्यान्न का आयात बड़ा अनिश्चित है। मौसम के अच्छे होने से उत्पादन बढ़ जाता है और आयात कम हो जाता है परन्तु खराब मौसम के कारण उत्पादन कम और आयात बढ़ जाता है। सन् १९६७ में फसलों के अच्छे उत्पादन तथा सरकारी नीति के कारण खाद्यान्न

भारतीय व्यापार (प्रतिशत)

तालिका १४२

वर्ष	खाद्य एवं तम्बाकू	कच्चा-माल	पक्का-माल
आयात १९३८–३९	१५.८	२१.८	६०.६
१९४६–४७	१३.२	२६.४	५८.५
निर्यात १९३८–३९	२३.३	४५.१०	३०.०
१९४६–४७	२०.७	३१.०	४८.१

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारत मे कच्चे-माल का आयात तथा पक्के-माल का निर्यात मात्रा एवं अनुपात दोनो मे ही बढ रहा था। सूती-वस्त्र, जूट सामग्री, ऊनी-वस्त्र, रसायन, दवाइयाँ, मशीन कटलरी, हार्डवेयर, चमड़ा, रबर एवं शीशा निर्मित सामग्रियाँ पूरी तरह से भारत मे ही बनने लगी थी। इस अवधि के व्यापार की सबसे बडी विशेषता यह थी कि पहले भारत का मुख्य व्यापार कामनवेल्थ देशों से ही होता था परन्तु युद्ध के समय से यह व्यापार सयुक्त राज्य अमेरिका एव रूस से भी होने लगा था। समय बीतने के साथ-साथ भारत तथा सयुक्त राज्य अमेरिका का व्यापार इतना बढ़ गया कि सयुक्त राज्य अमेरिका से किए जाने वाले व्यापार की मात्रा एव दशाओ पर भारतीय व्यापार का भविष्य निर्भर हो गया।

द्वितीय युद्ध के पश्चात् व्यापारिक स्थिति—द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् देश में स्वाधीनता आन्दोलन और व्यापक एव जोरदार होता गया। स्वदेशी वस्तुओं की माँग बढ गई और विदेशी सामग्रियो का जबरदस्त तिरस्कार किया गया। कामनवेल्थ देशों-विशेष रूप से ब्रिटेन से—व्यापारिक सम्बन्ध बिगडने लगे। देश के उद्योग धधों को काफी सहारा मिला, परन्तु कच्चे-माल के आयात मे एक बार पुन. रुकावटें आने लगीं यह अवधि बहुत कम वर्षों तक ही रह पाई तब तक अगस्त १९४७ मे भारत स्वाधीनता-सग्राम मे विजय प्राप्त होने तथा साथ ही साथ देश के दो राष्ट्रों—भारत एव पाक मे विभाजित होने से व्यापारिक ढाँचे में आमूल परिवर्तन हो गया।

देश-विभाजन के पश्चात् व्यापारिक स्थिति—१५ अगस्त, १९४७ मे भारत को स्वाधीनता मिलने के साथ-साथ देश का विभाजन तथा २ वर्षों बाद सितम्बर १९४९ में भारतीय रुपये का अवमूल्यन दो प्रधान घटनाएँ हुईं। जिससे भारत के व्यापार पर दूरगामी प्रभाव पड़े। देश के विभाजन से न केवल कच्चे मालों के उत्पादन का आधार सकीर्ण हो गया बल्कि भारत की कच्चे-माल एव खाद्यान्न दोनो में ही निर्भरता और अनिश्चितता बहुत बढ गई। सूती-वस्त्र व्यवसाय तथा जूट उद्योग सदैव के लिए आयात किये गये कच्चे-माल पर निर्भर रहने लगे। वस्तु स्थिति स्पष्ट करने के लिए आगे की तालिका मे तीन वस्तुओ—खाद्यान्न, कच्चा कपास एव कच्चे जूट के आयात निर्भरता एव तीव्रता को दिखाने का प्रयास किया गया है:

निर्यात

सन् १९५०-५१ मे भारतीय निर्यात का मूल्य १५४.०२ करोड रुपये था। जूट निर्मित सामग्रियों का मूल्य सन् १९५१ मे ११३.९५ करोड से बढ़कर २६३.२९ करोड रुपये तथा चाय का मूल्य ७९.८७ मे बढ़कर १५६.३१ करोड रुपये हो गया था। कुल मिलाकर सन् १९७२ के भारतीय व्यापार मे १८१२.०२ करोड का आयात तथा १६०६.६१ करोड़ रुपयो का निर्यात रहा। प्रमुख वस्तुओं के निर्यात मूल्यों को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

प्रमुख वस्तुओं का निर्यात मूल्य

तालिका १४५

(करोड रुपये)

	१९५०-५१	१९५२-५३	१९६४-६५	१९६५-६६	१९६७-६८	१९७१-७२
जूट निर्मित सामग्री	११३.९५	१२९.०५	१६७.२३	१८१.६२	२३३.५३	२६३.२९
चाय	७९.८७	८०.३०	१२४.६५	११४.८४	१०८.२२	१५६.३१
कपास निर्मित वस्तुएं	१३६.७१	६६.३२	९२.६६	९०.३६	१००.४६	१००.०४
कच्ची कपास	१७.३५	२८.९४	१०.५८	१०.३९	१४.७५	१६.६४
चमड़ा आदि	२५.७७	२०.३२	३६.२१	३७.६६	६१.६६	६०.१४
ऊन तथा निर्मित वस्तुएं	७.८६	८.४१	१३.०२	१०.९१	१५.१०	१२.७१
चीनी	०.१६	४ २६	१८.२१	११.९१	१६.४४	३०.८६
कोयला	३.३०	७.६६	४.३६	२.८६	१.८३	१.०७
अन्य निर्यात की गई वस्तुओ को मिलाकर योग			८१३.१५	८०१.६५	११९२.८२	१६०६.११

भारत के सम्पूर्ण विदेशी व्यापार (आयात, निर्यात तथा पुनः निर्यात) का मूल्य सन् १९६९-७० मे २९९५.८८ करोड रुपये तथा १९७२-७३ मे ३२८६.१२ करोड़ रुपये के बराबर था। जिनको आगे की तालिका मे दिखाया गया है।

के आयात में २४% की कमी हुई थी परन्तु चालू वर्ष में (१९७२–७३) में खाद्यान्न का आयात पुनः बढ़ रहा है। कृषि के विकास के लिए उर्वरक में भी आत्मनिर्भरता होने की दिशा में अनेक कदम उठाये जा रहे हैं। इसलिए देश मे उर्वरक के उत्पादन मे १९७०-७१ मे ३४% की आयात मूल्यों मे कमी हुई है। मशीनो के आयात मे भी कमी का रुख दिखाई पड रहा है। सन् १९६९ की जनवरी-नवम्बर की अपेक्षा सन् १९७० के इन्हीं महीनों में आयात मे १०% की कटौती की गई। इसके प्रतिकूल लोहा एव इस्पात, कच्चा कपास, खनिज तेल, ताँबा, जिंक, साइन्टिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट, दवाइयाँ, कच्चा ऊन तथा अल्युमूनियम आदि के आयात मूल्यों मे भारी वृद्धि भी हुई है। जो क्रमश. ३८९२, २१.४७, १९.४०, १४.२७, १०.६४, ६.६२, ४.२८ २.५७, ०.६८ करोड रुपये थे। आयात की जाने वाली वस्तुओं तथा उन पर व्यय की राशि को निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

सन् १९५०-५१ मे आयात की गई मशीनरी का मूल्य दूसरे स्थान पर (९३.०० करोड रुपये) था जो अब प्रथम स्थान पर (२३६.२१ करोड) हो गया है। कपास एवं खनिज तेल के मूल्यो मे भारी वृद्धि हुई है। जो सन् १९५१-५२ के मूल्यों—७६,६७ एवं १७.८७ करोड रुपयो—से बढ़कर क्रमश ८२.७८ तथा ९६.३२ करोड रुपये हो गये हैं। आयात की जाने वाली सामग्रियों के मूल्यों, दशा एव बाजार की देखरेख के लिये भारतीय सरकार ने स्टेट ट्रेडिंग कोरपोरेशन तथा मिनरल एण्ड मेटल ट्रेडिंग कारपोरेशन आदि जैसी समितियो का गठन किया है।

प्रमुख वस्तुओं का आयात

तालिका १४४ (करोड रुपये)

	१९५०-५१	१९५२ ५३	१९६४-६५	१९६५-६६	१९६७-६८	१९७१-७२
लोह एव इस्पात	१९.००	२३.७१	१०४.९६	९८.००	१०६.२९	२३७.५७
पैट्रोल तथा निर्मित सामग्री	१७.८७	२५.१८	६८.२६	६८.२२	७४.८३	१४७.४७
कच्चा कपास	१००.७६	८७.८७	५८.०९	४६.२१	८३.०१	११३.३९
कागज तथा कागज सामग्री	९.६२	११.७२	१२.९८	१३.२१	१७.११	३४.१०
रसायन, दवाइयाँ आदि	१९.३७	२४.८७	३४.०४	३५.८६	७७.३७	९८.४०
विद्युत् सामग्री	९.६६	१३.८१	११.२२	८७.८०	८५.६४	१०१.८६
खाद्यान्न	८०.४१	१५३.१०	२८२.१९	३१६.६३	४३३.२३	१०२.६०
अन्य आयात वस्तुओं को मिलाकर						
योग—			११४६.०३	१४०८.५३	२००७.६१	१८१२.०२

प्रथिम तथा कम ब्याज पर रुपये की छूट, उत्पादन का गुण एवं मात्रा दोनों बढ़ाने तथा विदेशी सामानों पर अतिरिक्त टैक्स लगाने के प्रयत्नों को अपनाया जा रहा है। निर्यात व्यापार को प्राथमिकता सैक्टर में रखा गया है। देश में बनी वस्तुओं के सफल निर्यात के लिए सरकार ने बोर्ड ऑफ ट्रेड (१९६२), एक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल, फैडरेशन ऑफ इन्डियन एक्सपोर्ट आरगनाईजेशन, विश्व कमोडिटी बोर्ड, डाइरेक्टरेट ऑफ इन्जीड्डिसन जैसी २० विभिन्न समितियों तथा बोर्डों का गठन करके निर्यात का कार्यभार उनको सौंप दिया गया है।

कुछ प्रमुख वस्तुओं का निर्यात

पटसन निर्मित वस्तुएं—भारत की जूट निर्मित सामग्रियों की माँग विश्व में धीरे-धीरे कम होती जा रही है। इसके मुख्य कारण निम्न हैं।

(१) विकसित देशों ने जूट की प्रतिस्पर्धा में बनावटी पूरक वस्तुओं की खोज कर ली है।

(२) पूर्वी पाकिस्तान (बंगला देश) से कच्चे जूट के आयात में समय-समय पर राजनैतिक सम्बन्ध खराब होने के कारण कठिनाइयाँ उपस्थित होती रही जिससे विश्व बाजार मे जूट निर्मित वस्तुओ की पूर्ति सदैव अस्थायी बनी रही।

(३) भारतीय मिलों तथा बन्दरगाहों आदि मे हड़ताल, तालाबन्दी आदि होती रही हैं।

(४) विश्व बाजार मे जूट की कीमतें भी अपेक्षाकृत कम हैं।

भारत-बंगला व्यापार संधि से दूसरे कारण पर विजय पायी जा सकती है। सन् १९६९ की तुलना मे सन् १९७०–७१ मे निर्यात मूल्य मे ११.६% की कमी अंकित की गयी। भारत बंगला देश से अगले ६ महीनों मे ६००,०० बेल्स कच्चा जूट आयात करेगा। इस दिशा मे दूरगामी समझौतों की चर्चा एवं प्रयास चल रहे हैं। भारत को प्रतिवर्ष ७ मिलियन बैल्स कच्चे जूट की आवश्यकता पड़ती है।

चाय—सन् १९७०–७१ में चाय निर्यात मे संतोषजनक वृद्धि हुई थी। इसका मूल्य १९६९–७० मे १२४.५० करोड़ रुपये से बढ़कर १४७.१४ करोड़ रुपये हो गया था। चाय के निर्यात को भविष्य में और प्रोत्साहित करने के लिये चाय का निर्यात बोर्ड (Tea Export promotion board) का गठन किया गया है जिसकी देखरेख मे चाय उत्पादन प्रगति तथा निर्यात आदि को बढ़ावा देने के लिये समय-समय पर मिलकर प्रयास किये जा रहे हैं।

कहवा—सन् १९७१ मे कहवे का सम्पूर्ण निर्यात ११० हज़ार टन था जिसकी कीमत २३.२५ करोड़ रुपये थी। परन्तु गत वर्ष (७२–७३) मे कहवे का निर्यात ९०.०० हज़ार टन हो रह गया था। इस तरह गत वर्षों के घाटे की पूर्ति की पूरी आशा की जाती है।

सूती-वस्त्र निर्यात—सूती-वस्त्र के निर्यात से भी भारत सरकार को संतोषजनक लाभ हुआ है क्योंकि कपास निर्मित समस्त वस्तुओं के निर्यात में सन् १९६९ के १२६.१२ करोड़

भारत का विदेशी व्यापार

तालिका १४६

(करोड़ रुपये)

वर्ष	आयात	निर्यात पुनः निर्यात को मिलाकर	विदेशी व्यापार कुल मूल्य	
१९५०-५१	६५०.२१	६००.६४	१२५०.८५	४९.५७
१९५५-५६	६:८.८४	५९६.३२	१२७५.१६	८२.५२
१९६०-६१	११३९.६९	६६०.२२	१७९९.९१	४७९.४७
१९६५-६६	१४०८.५३	८०५.६४	२२१४.१७	६०२.८९
१९६६-६७*	२०७८.३६	११५६.५६	३२३४.९२	९२१.८०
१९६७-६८	२००७.६१	११९८.६९	३२०६.३०	८०८.९२
१९६८-६९	१९०८.६३	१३५७.८७	३२६६.५०	५५०.७६
१९६९-७०	१५८२.६७	१४१३.२१	२९९५.८८	१६९.४६
१९७०-७१	१६३४.२०	१५३५.१६	३१६९.३६	९९.०४
१९७२-७३ (अप्रैल—फरवरी)	१५८२.८३	१७०३.२९	३२८६.१२	१२०.४६

१. तालिका इण्डिया १९७४ पर आधारित है।

* १९६६-६७ तथा इसके पश्चात् के आँकड़े रुपया अवमूल्यन के रूप में दिये गये हैं।

सन् १९७० में जूट-निर्मित वस्तुओं के निर्यात का मूल्य सन् १९६९ की तुलना में १५% कम अर्थात् १८४.३७ करोड़ रुपये था। इसी प्रकार कुछ अन्य वस्तुओं के निर्यात मूल्यों में भारी कमी आई है। उदाहरण के लिए चमड़ा तथा चमड़ा निर्मित वस्तुओं, मूल्यवान पत्थरों, तम्बाकू, लोहा तथा इस्पात स्क्रैप के मूल्यों में क्रमशः १०.४८, ६.७५, १.७५ करोड़ रुपये तथा ६५ लाख रुपये कम प्राप्त हुए। मछली, कच्चा ऊन, तथा खाद्य तेलों में गिरावट के प्रतिकूल लौह अयस, चाय, इन्जीनियरिंग सामग्रियाँ मसाले, चीनी, कच्चा जूट, सूती धागे, रबर तथा अभ्रक आदि में क्रमशः ३०.१६ करोड़, २६.६० करोड़, २६.५१ करोड़, १२.२२ करोड़, ७ ८७ करोड़, ४,०७ करोड़, ४.०२ करोड़, २.४२ करोड़, तथा १६० करोड़ रुपयों की वृद्धि अंकित की गई है।

निर्यात वृद्धि के लिये किये गये कतिपय प्रयत्न

भारत अपने निर्यात को बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए निर्यातकर्त्ताओं को आर्थिक-सहायता के अलावा विविध प्रोत्साहन, जैसे—निर्यात जोखिम बीमा, निर्यात ऋण, व्यापार शुल्क में छूट, विदेशी विनिमय, परिवहन सुविधाएँ, प्रशिक्षण, मारकेट-रीसर्च, तकनीकी सेवाओं को अच्छा बनाने, उधार

भारतीय सामग्रियों के प्रमुख ग्राहक देश

तालिका १४७

(करोड़ रुपया)

देश	१९५०-५१	१९६३-६४	१९६४-६५	१९६६-६७	१९६८-६९	१९६९-७०	१९७१-७२
संयुक्त राज्य अमेरिका	११५.८८	१२६.५३	१४६,४२	२११.६६	२३४ ३६	२३७ ६७	२६३.०८
जापान	१०.२७	५८.७८	९०.८३	१०७.४४	१५८.३३	१७६.३६	१८२.२६
रूस	१ ३८	५१.६५	७७.८६	१२३.४०	१४८.३१	१७६.३७	२०८.७०
ब्रिटेन	१३१.८२	१६२ ६७	१६६ ३९	२०२.३९	२०१.५१	१६५.०७	१६८.७०
कनाडा	११ ७६	२१.१७	१७.४४	३० ६७	३१ ७०	२६.३३	३६.४१
फ्रांस	९.०१	१०.८३	११.८७	१८.३६	२०.०५	२१.७२	२४.२१
सिंगापुर	३०.३८	१७.३५	७.८७	९ ३५	१३.४४	१५.८४	१७.३०
केनिया	६.४१	५ ०३	५.२९	७.३१	८.१२	७.७५	७.८६
पाकिस्तान	१३.५६	७.१७	९.७०	० ०१	०.०१	नगण्य	—
इण्डोनेशिया	०.४२	२.४०	१.८०	१ ०७	५.५५	४.०४	३.१०
चेकोस्लोवाकिया	१०.०८	१६.१६	१५ ९२	२८ ५७	३१.७७	३०.०९	३०.४९
संयुक्त अरब गणराज्य	५ ८७	१२ ५४	१४.२४	२५ ००	२१.८२	३४.६३	२३.०७
जर्मनी	—	१९ ७६	१७.५७	२६ ०३	२६.५०	२९.८९	३७.१०
श्री लंका	१९ ६८	१९.१५	१४.३८	१८ ५०	२३.३६	२५.६५	२१.२४
इटली	२५ ००	११ २५	९ ९२	१५ ४८	१८.०६	१२ ६४	२४.२२
(अन्य देशों को मिलाकर) योग		७८९.२८	८१३.१५	११५६.५३	१३५७.८७	१४१३.२१	१६०६.६१

रुपये के स्थान पर भारत सरकार को १६७० में १४५.५ करोड रुपये प्राप्त हुए थे। इसके निर्यात को और अधिक सम्बल प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने कच्चे कपास का अधिक आयात, मिलों में कपास का न्यायिक वितरण तथा कपास की कीमतों को स्थिर रखने के साथ-साथ सूती-वस्त्र निर्यात वृद्धि परिषद् का भी गठन किया है। जो इसके उत्पादन प्रगति, माँग एवं निर्यात के मामलों में सरकार को समयोचित राय प्रदान करती है।

इन्जीनियरिंग के सामान—ऐसी वस्तुओं के उत्पादन एवं निर्यात को बढ़ावा देने के लिए इन्जिनियरिंग निर्यात वृद्धि परिषद् का गठन किया गया है। सन् १६७० में इस प्रकार की वस्तुओं के निर्यात मूल्य में सन् १६६६ की तुलना में ३२% की वृद्धि हुई थी।

निर्यात व्यापार की दशा

भारत का प्रमुख व्यापार कामनवेल्थ देशों से अधिक होता था। परन्तु सन् १६५३ में इन देशों से ३७० करोड रुपयों का ही व्यापार हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि ग्रेट-ब्रिटेन ने सन् १६५१ में १८७.८१ करोड रुपयों का व्यापार किया था जो सन् १६५३ में घटकर १२२ करोड रुपये ही रह गया था। व्यापार की इस कटौती के बावजूद भी ग्रेट ब्रिटेन भारत की वस्तुओं का चौथा सबसे बडा ग्राहक है। श्रीलंका, बर्मा, तथा सिंगापुर के साथ निर्यात व्यापार में भी वृद्धि हुई है।

सन् १६६८–६६ तक ग्रेट ब्रिटेन (१४.८%) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (१७.२%) भारतीय सामानों के सबसे बड़े ग्राहक थे। परन्तु सन् १६६६–७० में इन देशों ने क्रमशः केवल ११.७% तथा १६.८% की ही खरीद की थी इसलिए रूस तथा जापान भारतीय सामानों के प्रमुख ग्राहक के रूप में सामने आये। जापान द्वितीय (१२.७%) तथा रूस तृतीय (१२.५%) स्थानों पर रहे। ग्रेटन ब्रिटेन का स्थान चौथा हो गया परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका से इतनी खरीद की जाती थी कि इस वर्ष खरीद कम करने पर भी प्रथम स्थान पर रहा। इस प्रकार प्राथमिकता के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, रूस तथा ग्रेट ब्रिटेन के अन्दर आते हैं। भारत के सामानों के प्रमुख ग्राहकों को तालिका १४६ में दिखाया गया है।

कुछ प्रमुख वस्तुओं का आयात

खनिज तेल—स्वतन्त्रता प्राप्ति के २६ वर्षों बाद तक भारत खनिज तेल में आत्म-निर्भर नहीं हो पाया है। यह देश की बहुत बड़ी असफलता मानी जा सकती है। इसलिए देश की आवश्यकताओं की पूर्ति आयात के माध्यम से की जा रही है। सन् १६६५–६६ में देश में लगभग ३५ करोड रुपयों का खनिज तेल (बर्मा, ईराक, ईरान, सऊदी अरब, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस तथा इण्डोनेशिया से) तथा ३३ करोड रुपयों का पेट्रोल एवं पेट्रोल पदार्थों का (फ्रांस, रूमानिया, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका से) आयात किया गया जो सन् १६६६–७० में बढ़कर क्रमशः ६६ करोड, एवं ४१ करोड रुपयों के बराबर हो गया था। अरब-इजराईल युद्ध के कारण इस समय खनिज तेल एवं पेट्रोल के आयात की परि-स्थितियाँ बहुत जटिल हो गई हैं।

भारत को निर्यात करने वाले प्रमुख देश

तालिका १४८

(करोड़ रुपया)

देश	१९५०–५१	१९६३–६४	१९६४–६५	१९६६–६७	१९६८–६९	१९६९–७०	१९७१–७२
संयुक्त राज्य अमेरिका	११९.१६	४४९.९७	५१०.४८	७८२.११	५७२.३९	४५९.९६	४१६.५२
रूस	०.२२	६८.४६	७८.७८	११३.८०	१९१.७०	१७०.४०	८१.५६
ग्रेट ब्रिटेन	१३५.३१	१७१.४६	१६३.६५	१६५.४७	१२७.५०	१००.३८	२१६.८६
कनाडा	२१.९०	२३.९७	२६.५२	९२.१९	९८.६१	७३.८९	११२.८१
जापान	१०.११	६५.८७	७८.१९	१०७.४०	११५.३९	६६.८२	१६१.५७
ईरान	३७.१०	४७.९९	२९.०२	३०.४९	८६.३७	८३.४३	१२६.३६
बेल्जियम	९.२२	७.९८	८.७९	२४.२८	११.३५	८.०९	३४.३१
स्वीटजरलैंड	७.६०	१२.०७	११.८६	१८.०६	१५.१२	११.०२	७.८३
पाकिस्तान	४.६४	९.३५	१६.५८	१.३६	०.०१	नगण्य	—
केनिया	१८.५२	३.४१	७.४३	५.८९	१.७१	४.५३	१७.६९
बर्मा	१८.८०	८.४५	१०.३०	४०.२३	१६.५१	२०.१५	५.८७
सूडान	७.४९	८.५२	९.००	१७.३७	२१.५०	२७.२२	२५.३२
योग (अन्य सब देशों को मिलाकर)		१२२२.८५	१३४९.०३	२०७८.३६	१९०८.६१	१५६७.४९	१८१२.०२

खाद्यान्न—देश के सर्वांगीण विकास कार्यों में खाद्यान्न का प्रायात एक अन्य काला पक्ष है। देश की जनसंख्या मे बराबर वृद्धि तथा मानसून की अनिश्चितता के कारण खाद्यान्न (गेहूँ, चावल) का प्रायात अवश्यभावी हो जाता है। खाद्यान्नों के उत्पादन की वर्तमान प्रवृत्ति को देख कर देश के निर्यात करने की स्थिति मे पहुँचने की आशाएँ बंध रही हैं। अन्यथा सन् १९६७-६८, १९६८-६९ तथा १९६९-७० मे क्रमश ५१८, ३३७ तथा ३६१ करोड़ रुपयो का खाद्यान्न (गेहूँ) सं. रा. अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेन्टाईना तथा रूस से (चावल) बर्मा, थाईलैण्ड एवं संयुक्त अरब गणराज्य से, मंगाया गया था।

मशीनें एवं मशीन उपकरण—स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश को अपने बहुमुखी विकास एवं औद्योगीकरण के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनों के प्रायात मे अधिक वृद्धि करनी पड़ी है। प्रायात की गई मशीनो मे सूती वस्त्र उद्योग, सीमेन्ट, जूट, कृषि तथा खनिज उद्योग की मशीनें सम्मिलित हैं। परिवहन मशीनो मे वायुयान, जलयान एवं रेलों के उपकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी खरीद मे सन् १९६९-७० में लगभग ५० करोड रुपये व्यय हुए थे।

प्रायात की गई अन्य वस्तुओं मे रासायनिक उर्वरक, अखबारी कागज, ऊन, रबर, खाद्य एवं अखाद्य तेल, रासायनिक पदार्थ, कपास, अलौह धातुएँ तथा इस्पात (विशेष किस्म) सम्मिलित हैं।

आगे दी गई तालिका से भारतीय व्यापार की एक और बात स्पष्ट होती है वह यह कि जिस प्रकार वर्षों से संयुक्त राज्य अमेरिका भारतीय वस्तुओं का प्रमुख खरीददार है उसी प्रकार वह हमारे देश को सबसे अधिक मूल्य का निर्यात भी करता है। इसका प्रधान कारण भारत का संयुक्त राज्य अमेरिका से खाद्यान्न अनेकानेक प्रकार की सहायता, तकनीकी विशेषज्ञ तथा वैज्ञानिक मदद का प्रायात करना है। इसके पश्चात् भारत को निर्यात करने वाले देशों मे रूस, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा तथा अन्य देशों का नाम आता है। संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत के राजनैतिक सम्बन्ध बहुत अधिक अच्छे न होने के कारण रूस, ईरान, कनाडा से इस समय भारत के प्रायात की मात्रा बढ़ रही है।

संयुक्त राज्य अमेरिका—जैसाकि ऊपर संकेत दिया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका भारतीय सामग्रियों का न केवल सबसे बड़ा खरीददार ही है बल्कि निर्यातकर्त्ता भी है। भारत अमेरिका से मुख्यत खाद्यान्न, मशीनें तथा उनके पुर्जे, रासायनिक पदार्थ, अच्छे किस्म की कच्ची कपास तथा खनिज तेल मँगवाता है। इनके बदले मे भारत संयुक्त राज्य अमेरिका को जूट निर्मित सामान, अभ्रक, काली मिर्च, काजू, मैंगनीज तथा चाय मिलाकर समस्त निर्यात का ६०% निर्यात करता है (देखें तालिका १४८)। अमेरिका में भारतीय दस्तकारी के सामानों की भी माँग बढ़ रही है जिनमें जेवरात तथा वस्त्र छपाई के काम सम्मिलित हैं।

सोवियत रूस—रूस भारत का दूसरा सबसे बड़ा ग्राहक है। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् से ही भारत-रूस के बीच व्यापारिक तथा राजनैतिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं। रूस को हम ऊन, मसाले, इलायची, काजू, तम्बाकू, जूट निर्मित सामान, कहवा तथा अभ्रक आदि मिलाकर सबसे अधिक किस्म की चीजें निर्यात करते हैं, और बदले में गेहूँ,

यूनान, मलाया, सुमात्रा ग्रादि देशों और द्विपों से इसके व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन हैं। 'सोने की चिड़िया' कहलाने में भारत की व्यापारिक समृद्धि एक कारण रहा था। भारत सभ्यता एवं व्यापार दोनों की जननी रही है। भारत की व्यापारिक प्रगति के निम्नलिखित कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

भारत का विशाल कृषि मैदान—भारत प्राचीन काल से कृषि प्रधान देश रहा है। यहाँ की कृषि पूरे वर्ष बर्फपात से मुक्त रहती है। वर्ष में दो अथवा तीन फसलें पैदा की जाती हैं। फसल उत्पादन की तथा तुषाररहित दिनों की संख्याएँ बहुत अधिक हैं। यहाँ के विशाल मैदान में तिलहन, चाय, कपास, जूट तथा अफीम का उत्पादन अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है जिसकी अभी भी विश्व बाजार में बड़ी माँग है। दक्षिणी भारत काजू, कहवा, रबर तथा गरम मसालों का उत्पादक प्रदेश है जिनका उपयोग मुख्य रूप से व्यापार के लिए किया जाता है।

भारत की विशाल खनिज सम्पदा—भारत खनिज की दृष्टि से न केवल महत्त्वपूर्ण देश है बल्कि कतिपय खनिज पदार्थों के लिए विश्व में एकमात्र उत्पादक देश है। अभ्रक, मैंगनीज, कोयला तथा लोहा इस देश के प्रमुख खनिज हैं। जिनका उपयोग देश की सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था के लिए तथा साथ-साथ निर्यात के काम के लिए भी किया जाता है।

औद्योगीकरण—द्वितीय महायुद्ध के बाद से देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा है। इसलिए अब भारत अफ्रीका, पूर्वीद्वीप समूह तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों को पक्का माल भेजने वाले देशों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर रहा है। यहाँ के निर्यात गति तथा पक्की सामग्रियों के गुण को देखकर नवोदित राष्ट्र अपनी आवश्यकतानुकूल सामग्रियों का यहाँ से आयात करने के लिए आगे आ रहे हैं।

अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियाँ—भारत पूर्वी गोलार्द्ध में स्थित है। पश्चिम में यूरोपीय तथा अफ्रीकी देशों, पूर्व की तरफ चीन, जापान तथा अमेरिका को जाने वाले जलयानों को सामान्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। इसके मध्य से कर्क रेखा गुजरती है इसलिए देश की स्थिति उच्च अक्षांशों में न होने के कारण सभी समुद्री बन्दरगाह पूरे वर्ष बर्फाच्छादन से मुक्त और व्यापार के अनुकूल बने रहते हैं। यहाँ की नदियाँ, नहर, रेल तथा सड़क मार्ग भी पूरे वर्ष बर्फाच्छादन से मुक्त व्यापार के लायक बने रहते हैं। वर्ष भर तापमान ऊँचा रहता है।

तट-रेखा—भारत के तट रेखा की लम्बाई ५६८६ किलोमीटर है। भारतीय तटरेखा कम कटीफटी, अपर्याप्त मानसून हवाओं, चक्रवातों एवं कभी-कभी तूफानों की चपेट से प्रभावित रहने के कारण अधिक अच्छे बन्दरगाह नहीं हैं। प्राकृतिक पोताश्रयों की कमी की स्थिति में भारत तथा राज्य सरकारों ने समुद्रपत्तनों के विकास का कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। समुद्र पत्तनों तथा उनके पृष्ठ भूमि के बीच रेल, सड़क तथा वायुमार्गों के विकास कार्य एवं खनिज तथा कृषि व्यापारिक वस्तुओं के उत्पादन के कार्यक्रम को बहुत प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

बो, रंग, रसायन, खनिज तेल, कागज, ट्रैक्टर आदि वस्तुएँ मँगवाते हैं। इनकी भी संख्या सबसे अधिक है।

जापान—द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान की वस्तुएँ—कपड़ा, बाइसिकल, सिलाई मशीनें आदि बड़ी सस्ती थीं और भारत में उनकी बड़ी माँग थी। जापान के साथ होने वाले भारत के व्यापार का भविष्य अब भी काफी उज्ज्वल है। जापान हमारे देश के खनिज अन्वेषण एवं अनुसंधान तथा विकास अभियानों के लिए भी धन तथा तकनीकी सहायता प्रदान कर रहा है। जापान हमारे देश से लोहा, अभ्रक, नमक, तम्बाकू, चाय, मसाले, चीनी, रूई, मैंगनीज आदि वस्तुएँ खरीदता है और बदले में विद्युत् मशीनरी, जहाज, रसायन, रंग, कागज आदि भारत में बेचता है।

इस समय जापान भारत के सामानों का दूसरा सबसे बड़ा खरीददार तथा छठवां निर्यातकर्ता देश है।

ग्रेट-ब्रिटेन—सन् १९४७ के पूर्व भारत का अधिकांश व्यापार उपनिवेश किस्म का था और देश को कच्चा माल के भण्डार के रूप में विकसित किया गया था। ग्रेट-ब्रिटेन हमारे देश से मुख्यतः कच्चा माल खरीदता था और बदले में पक्का माल भेजता था परन्तु अब राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आने के कारण भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न देश की भाँति चाय, जूट निर्मित सामान, मैंगनीज, तबाकू, चमड़ा, तेल आदि निर्यात करता है और बदले में कपड़ा, मशीनरी, रसायन, दवाइयाँ, बिजली के सामान, विशेष किस्म का इस्पात आदि खरीदता है।

कनाडा—भारत तथा कनाडा दोनों ही इस समय कृषि प्रधान देश हैं। कनाडा का उच्च अक्षांशीय प्रदेश जाड़े में बर्फ के नीचे तथा भारत का बहुत बड़ा भाग शुष्क एवं रेगिस्तानी है। इसलिए दोनों ही देश अपने-अपने यहाँ औद्योगिकीकरण में लगे हुए हैं। कनाडा भारत से सूती वस्त्र, चाय, जूट का सामान, मसाले, अभ्रक, मैंगनीज आदि मँगाता है और बदले में गेहूँ, कागज, रेल के सामान, रासायनिक पदार्थ, मोटरगाड़ियाँ आदि बेचता है।

बर्मा—बर्मा भारत का पड़ोसी राज्य है। भारत से इसके अलग होने के बाद से अब तक भारत में खाद्यान्न का आयात किया जाता है। भारत से बर्मा साइकिलें, सूती वस्त्र, सिलाई मशीनें, जूट के बोरे, रबर का सामान, चाय, कोयला तथा कहवा आदि खरीदता है और बदले में चावल, खनिज तेल तथा मकान बनाने की लकड़ी की बिक्री करता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय व्यापार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन-जिन देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध है लगभग सभी देशों को भारत से चाय का निर्यात तथा खाद्यान्न का आयात किया जाता है। इसके अलावा अन्य व्यापारिक वस्तुओं का चयन एवं आदान प्रदान देश की आवश्यकताओं के अनुरूप तथा बातचीत से तय किया जाता है।

विश्व व्यापार के अनुकूल भारत की प्राकृतिक सुविधाएँ

भारत अत्यन्त प्राचीन काल से विश्व व्यापार में बहुत अग्रणी रहा है। चीन, फारस,

कृषि उत्पादनों की अधिकता है। जिनमें कपास, जूट, तिलहन, गन्ना, तम्बाखू के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारत में उद्योग विदेशों की तुलना में अभी कम विकसित हुए हैं। इसलिए देश के अन्दर पक्के माल की अपेक्षा खनिज अयस की ढुलाई अधिक होती है। आयात की जाने वाली वस्तुओं में भी खाद्यान्न की प्राथमिकता होने से गेहूँ तथा चावल बन्दरगाहों से देश के अन्दरुनी भागों में अधिक भेजा जाता है।

देशी व्यापार असंतुलित तथा अव्यवस्थित है। रेलभाड़ा, नीति, सड़क-सुरक्षा, सरकारी प्रोत्साहन, द्रुतगामी परिवहन तथा बैंक एवं सरकारी सुविधाओं में आपस में तालमेल नहीं है। जैसाकि ऊपर कहा गया है देश की विशालता को देखते हुए सड़क तथा रेल मार्गों की भारी कमी भी है। भारत के देशी व्यापार को उन्नत करने और उसे अधिक लाभदायक ढंग से चलाने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, उद्योग धंधों का अधिकतम विकास, परिवहन ससाधनों का सम्पूर्ण देश में फैलाव विकास एवं सुधार तथा देश भर में बैंकिंग तथा सहकारी सुविधाएँ प्रदान करना नितान्त आवश्यक है।

□□□

देशी व्यापार

जैसाकि हम पहले भी कह आएँ हैं विदेशी व्यापार की तुलना में देशी व्यापार एक तरफ तो कई गुना अधिक होता है और दूसरी तरफ इसके आँकड़े आसानी से और अधिक सही नहीं प्राप्त हो पाते हैं। विविध आधार मानकर देशी व्यापार को अनेक वर्गों-जैसे स्थानीय, अतर राज्यीय, तटीय व्यापार आदि—मे बाँटा जा सकता है। देश के अन्दर किये जाने वाले व्यापार को निम्न साधनो की सहायता से पूरा किया जाता है :

(१) रेल परिवहन
(२) सड़क परिवहन
(३) नदी परिवहन
(४) नहर परिवहन
(५) तटीय जलयान परिवहन
(६) वायुयान परिवहन

इस पुस्तक के परिवहन नामक अध्याय में यातायात के इन साधनो का अच्छी तरह वर्णन किया गया है। परिवहन के उपर्युक्त साधन विभिन्न राज्यों, शहरों, बन्दरगाहो तथा गाँवो को आपस मे नजदीक लाते तथा उत्पादन वैभिन्नता को कम करते हैं। भारत के सभी राज्य अपने विशेष उत्पादन, दस्तकारी, कृषि तथा खनिज सम्पदाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए उत्तर-प्रदेश मे गन्ना; बगाल मे जूट; आसाम में चाय, बम्बई मे कपास सबसे अधिक पैदा किये जाते है। फीरोजाबाद, बनारस, अलीगढ क्रमशः चूड़ियो, साड़ियों तथा तालो के लिए प्रसिद्ध हैं। बिहार मे कोयला, अभ्रक तथा चीनी; उड़ीसा मे लोहा; कर्नाटक में सोना; राजस्थान मे जिप्सम, ताँबा, संगमरमर, नमक तथा पन्ना अधिक पैदा किए जाते हैं। देशी व्यापार से सभी वस्तुएँ देश के विभिन्न भागो मे रहने वाले नागरिको को उनके उपभोग के लिए उपलब्ध कराई जाती हैं। देश के अन्दर किया जाने वाला व्यापार विदेशी व्यापार का पोषक होता है और सम्बल भी प्रदान करता है क्योंकि देशी व्यापार के माध्यम से ही बाहर से आयात की गई वस्तुओं को एक तरफ देश के विभिन्न भागो मे पहुँचाई जाती हैं और दूसरी तरफ देश के विभिन्न भागों से निर्यात की जाने वाली चीजो को बन्दरगाहो पर इकट्ठा किया जाता है।

देशी व्यापार की प्रमुख विशेषताएँ

इसको दो प्रमुख उप-विभागो—स्थलीय व्यापार एवं तटीय व्यापार में विभाजित किया जाता है। स्थलीय व्यापार के विकास तथा उसे सुचारु रूप से चलाने की प्रबन्ध व्यवस्था के लिए उसे २६ ट्रेड ब्लाक्स (Trade Blocks) और तटीय व्यापार की प्रगति के लिए १२ मेराइन ब्लाक्स में विभाजित किया गया है।

भारत का आन्तरिक व्यापार उन केन्द्रों तक ही सीमित है जो बहुत प्राचीन काल से देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, शिक्षा तथा प्रशासनिक कार्यों के केन्द्र रहे हैं। इनमे बनारस, पटना, दिल्ली, आगरा, अजमेर तथा कलकत्ता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

देश अति-प्राचीन काल से कृषि प्रधान रहा है इसलिए देश के आन्तरिक व्यापार में

जनगणना

भारत की जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े अधिकाश भारतीय जनगणना (Indian Censeis) से प्राप्त होते हैं। बहुत प्राचीन (रामायण एव महाभारत) काल में भी इस देश में सेनाओं तथा छोटे-छोटे राज्यों की जनसंख्या सम्बन्धित आँकड़ों को रखने की प्रथा थी। अशोक तथा अकबर आदि बादशाहों ने भी जनगणना के काम को बहुत छोटे पैमाने पर करवाया था। परन्तु आधुनिक ढग की वैज्ञानिक जनगणना का कार्य सबसे पहले सन् १८८१ मे प्रारम्भ किया गया था। उसके बाद से प्रत्येक १०वें वर्ष यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न कराया जाता है। पहले के जनगणना वर्षो में पहली मार्च की सुबह की जनसंख्या को दिखाया गया है। परन्तु सन् १९७१ के मध्यावधि चुनाव के कारण इसे पहली अप्रैल कर दिया गया।

जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर

सन १९०१ में भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या केवल २३८ मिलियन थी जबकि उस समय वर्तमान बर्मा, पाकिस्तान, श्री लंका, बंगलादेश एव नेपाल भारत में ही सम्मिलित थे। उपर्युक्त देशों के अलग हो जाने के पश्चात् भी सन् १९७१ की पहली अप्रैल के दिन २८३, २५२, २१४ पुरुषों और २६४११५७१२ महिलाओं को मिलाकर भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या ५४७३६७९२६ हो गई थी। यह जनसंख्या विश्व की १५% है। यह जनसंख्या (१५%) केवल २.४ प्रतिशत भूभाग पर निवास करती है। जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक तीव्रता एव तुलनात्मक अध्ययन इन देशों की जनसंख्या को जोड़कर किया जा सकता है। प्राकृतिक आपदाओं तथा महामारियों आदि के कारण सन् १९११-२१ के गणनादशक में जनसंख्या मे ०.३१% की कमी हुई थी अन्यथा भारत की जनसंख्या में सदैव ही वृद्धि अंकित की गयी है जिसके लिए निम्न कारक अधिक उत्तरदायी हैं तथा इस अभिव्यक्ति की पुष्टि निम्न तालिका से स्पष्ट होती है।

तालिका १४९

वर्ष	योग	वृद्धि का प्रतिशत
१९०१	२३८३९६३२७	—
१९११	२५२०९३३९०	५.७५
१९२१	२५१३२१२१३	०.३१
१९३१	२७८९७७२३८	११.००
१९४१	३१८६६०५८०	१४.२२
१९५१	३६११०८८०९०	१३.३१
१९६१	४३९२३४७७१	२१.५१
१९७१	५४७३६७९२६	२४.६६

जन्म एवं मृत्यु दरों के अनुपात में परिवर्तन—भारत में जनसख्या की वर्तमान वृद्धि

अध्याय १२

जनसंख्या एवं मानव अधिवास

किसी देश की जनसंख्या परिवर्ती कारकों (Variables)—जन्म दर, मृत्युदर, उत्प्रवासन (Emigration), आप्रवासन (Immigration) पर निर्भर रहती है। प्रत्येक राष्ट्र की अनुमानित जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रखकर वारेन एस. थाम्पसन ने सारे विश्व को तीन विभिन्न जनसंख्या प्रदेशों में विभाजित किया है।

(१) प्रथम वर्ग में उन देशों की गणना की जाती है जहाँ जन्म एवं मृत्यु दरों पर नियन्त्रण किया गया है। परन्तु इसके बावजूद भी मृत्यु दर की अपेक्षा जन्मदर तेजी से कम हो रही है। ऐसे देशों में जनसंख्या के घटने की अधिक संभावनाएँ हो सकती हैं। इस वर्ग में ब्रिटेन, फ्रांस, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, बैल्जीयम, आस्ट्रिया, हंगरी, स्वीटजरलैण्ड तथा इटली आदि राष्ट्र सम्मिलित किए गये हैं।

(२) दूसरे वर्ग के देशों में भी जन्म तथा मृत्यु दरों में गिरावट आई है परन्तु प्रथम वर्ग के प्रतिकूल इन देशों में जन्मदर की अपेक्षा मृत्युदर तेजी से कम हो रही है। यहाँ जनसंख्या के बढ़ने की सभी सम्भावनाएँ हैं। रूस, जापान, स्पेन, पुर्तगाल, ग्रीस, बलगारिया, ब्राजील, यूरावे जैसे राष्ट्र इस वर्ग में सम्मिलित किए गये हैं।

(३) तीसरे वर्ग के देशों में जन्म तथा मृत्यु दर दोनों ही ऊँचे हैं। इसमें एशिया का अधिकांश भाग, मध्यपूर्व तथा अफ्रीका के देश हैं। इन देशों में जन्म दर सबसे अधिक है। आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों के ऊपर उठने, शिक्षा के प्रचार, दवाइयों की व्यवस्था तथा पौष्टिक भोजन आदि के कारण मृत्युदर में भारी कमी आई है। इन देशों में जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति बन गई है। भारत इसी वर्ग में सम्मिलित एक राष्ट्र है।

जब से देश में नियोजित विकास कार्यक्रम आरम्भ किए गये हैं उस समय से कृषि उत्पादन दुगुना, औद्योगिक विकास १५०% तथा शिक्षा सुविधाओं में ३००% की वृद्धि अंकित की गई है। इसके प्रतिकूल राष्ट्रीय आय में ६०% तथा व्यक्तिगत आय में और भी कम (केवल ३०%) की वृद्धि हो पाई है। इसके कारणों में से जनसंख्या की वृद्धि एक प्रमुख कारण है। देश में खाद्य समस्या, आवास समस्या, रोजगार समस्या, शहरों की समस्या, सफाई एवं स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। वर्तमान अध्याय में भारतीय जनसंख्या के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जावेगा।

(४२.१२%) का तीसरा स्थान था। जहाँ तक राज्यों का सम्बन्ध है नागालैण्ड (४०%) में सबसे अधिक वृद्धि हुई है इसके बाद आसाम (३४%) एवं हरियाणा (३१%) जम्मू तथा कश्मीर (३०%), मध्य प्रदेश (२६%) तथा राजस्थान (२८%) के स्थान आते हैं। राज्यानुसार *जनगणना से सम्बन्धित सूचना आगे दी गई तालिका १४६ में दी गई है :*

सन् १९५१ के पूर्व उन राज्यों की जनसंख्या में वृद्धि तेज एवं लगातार हुई थी जहाँ पर प्रसिद्ध बन्दरगाह थे अथवा जहाँ की जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत कम था। जनसंख्या वृद्धि की दर उन राज्यों में मन्द थी जो देश के भीतरी भाग में स्थित हैं। परन्तु बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के कारण मध्यप्रदेश इसका अपवाद है। उत्तरी भारत के राज्य प० बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब सबसे घने बसे राज्य हैं। पश्चिमी घाट तथा तटवर्ती क्षेत्रों में भी जनसंख्या की वृद्धि (बम्बई ५०%) तथा केरल (२५%) रही है। *भारत पाकिस्तान विभाजन के पश्चात् पंजाब में ०.५% मीन डेसेनियल की गिरावट* और इसके प्रतिकूल पं० बंगाल एवं आसाम में क्रमश १२.७ तथा १७.४% की जन-वृद्धि हुई थी।

जनसंख्या का उम्रानुसार वितरण—किसी देश की आर्थिक भविष्यवाणी और योजनाओं के लिए जनसंख्या प्रक्षेप (Population Projection) का होना नितान्त आवश्यक है। श्रम शक्ति, उपभोग की मात्रा, शिक्षा का प्रसार तथा पेन्शन आदि परियोजनाओं के कार्यान्वित के लिए भविष्य की अनुमानित कुल जनसंख्या, उम्र के अनुसार उसका वर्गीकरण, परिवारों की संख्या, क्षेत्रीय वितरण तथा शिक्षा स्तर आदि की आवश्यकता पड़ती है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण देश में १५ वर्ष से कम उम्र के लोगों की संख्या अधिक (४१%) है और केवल ११% लोगों की उम्र ५० वर्ष अथवा इससे अधिक है। जनसंख्या के उम्रवार वितरण के अध्ययन से १४ वर्ष की उम्र वालों की संख्या जानने तथा उनको शैक्षणिक सुविधाओं के देने के लिए योजना बनाने में भारी मदद मिलती है। कार्य करने योग्य उम्र के लोगों की संख्या की भी जानकारी होती है और उसी के अनुसार राष्ट्र अपने भावी नागरिकों को रोजगार की व्यवस्था करता है। इसके अलावा इस प्रकार के अध्ययन से अवकाश प्राप्त लोगों की संख्यानुसार पेन्शन तथा बुढ़ापे में जीविकोपार्जन के लिए आर्थिक सहायता की भी व्यवस्था की जा सकती है।

यौन अनुपात—भारत की जनगणना को देखने से ऐसा लगता है कि यहाँ सदैव से स्त्रियों की *अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक रही है। अनेक कारणों में से सम्भवतः यह भी एक कारण रहा होगा कि भारतीय समाज सदैव से पुरुष प्रधान रहा है। सन् १९६१ में यौन* अनुपात ९४१/१००० से घटकर १९७१ में प्रति १००० पुरुषों पर केवल ९३२ स्त्रियाँ रह गई हैं। निम्न तालिका में दशानुसार यौन अनुपात को दिखाया गया है।

प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या

तालिका १५०

जनगणना दशक	१९०१	१९११	१९२१	१९३१	१९४१	१९५१	१९६१	१९७१
स्त्रियों की संख्या	९७२	९६४	९५५	९५०	९४५	९४६	९४१	९३२

अध्याय १२

जनसंख्या एवं मानव अधिवास

किसी देश की जनसख्या परिवर्ती कारकों (Variables)—जन्म दर, मृत्युदर, उत्प्रवासन (Emigration), आप्रवासन (Immigration) पर निर्भर रहती है। प्रत्येक राष्ट्र की अनुमानित जनसख्या वृद्धि को ध्यान मे रखकर वारेन एस. थाम्पसन ने सारे विश्व को तीन विभिन्न जनसख्या प्रदेशो मे विभाजित किया है।

(१) प्रथम वर्ग मे उन देशों की गणना की जाती है जहाँ जन्म एवं मृत्यु दरों पर नियंत्रण किया गया है। परन्तु इसके बावजूद भी मृत्यु दर की अपेक्षा जन्मदर तेजी से कम हो रही है। ऐसे देशों मे जनसख्या के घटने की अधिक संभावनाऐं हो सकती हैं। इस वर्ग मे ब्रिटेन, फ्रांस, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, बेल्जीयम, आस्ट्रिया, हंगरी, स्वीटजरलैण्ड तथा इटली आदि राष्ट्र सम्मिलित किए गये हैं।

(२) दूसरे वर्ग के देशो मे भी जन्म तथा मृत्यु दरो में गिरावट आई हैं परन्तु प्रथम वर्ग के प्रतिकूल इन देशों मे जन्मदर की अपेक्षा मृत्युदर तेजी से कम हो रही है। यहां जनसंख्या के बढने की सभी सम्भावनाएं हैं। रूस, जापान, स्पेन, पुर्तगाल, ग्रीस, बलगारिया, ब्राजील, यूरावे जैसे राष्ट्र इस वर्ग मे सम्मिलित किए गये हैं।

(३) तीसरे वर्ग के देशों मे जन्म तथा मृत्यु दर दोनों ही ऊँचे हैं। इसमे एशिया का अधिकांश भाग, मध्यपूर्व तथा अफ्रीका के देश हैं। इन देशों मे जन्म दर सबसे अधिक है। आर्थिक एव सामाजिक स्तरो के ऊपर उठने, शिक्षा के प्रचार, दवाइयों की व्यवस्था तथा पौस्टिक भोजन आदि के कारण मृत्युदर में भारी कमी आई है। इन देशो मे जनसख्या की विस्फोटक स्थिति बन गई है। भारत इसी वर्ग मे सम्मिलित एक राष्ट्र है।

जब से देश मे नियोजित विकास कार्यक्रम आरम्भ किए गये हैं उस समय से कृषि उत्पादन दुगुना, औद्योगिक विकास १५०% तथा शिक्षा सुविधाओ मे ३००% की वृद्धि अंकित की गई है। इसके प्रतिकूल राष्ट्रीय आय मे ६०% तथा व्यक्तिगत आय मे और भी कम (केवल ३०%) की वृद्धि हो पाई है। इसके कारणों मे से जनसख्या की वृद्धि एक प्रमुख कारण है। देश मे खाद्य समस्या, आवास समस्या, रोजगार समस्या, शहरो की समस्या, सफाई एवं स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। वर्तमान अध्याय मे भारतीय जनसख्या के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जावेगा।

(५२.१२%) का तीसरा स्थान था। जहाँ तक राज्यों का सम्बन्ध है नागालैंड (४०%) में सबसे अधिक वृद्धि हुई है इसके बाद आसाम (३४%) एवं हरियाणा (३१%) जम्मू तथा कश्मीर (३०%), मध्य प्रदेश (२६%) तथा राजस्थान (२८%) के स्थान आते हैं। राज्यानुसार जनगणना से सम्बन्धित सूचना आगे दी गई तालिका १४६ में दी गई है :

सन् १६५१ के पूर्व उन राज्यों की जनसंख्या में वृद्धि तेज एवं लगातार हुई थी जहाँ पर प्रसिद्ध बन्दरगाह थे अथवा जहाँ की जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत कम था। जनसंख्या वृद्धि की दर उन राज्यों में मन्द थी जो देश के भीतरी भाग में स्थित हैं। परन्तु बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के कारण मध्यप्रदेश इसका अपवाद है। उत्तरी भारत के राज्य पं० बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब सबसे घने बसे राज्य हैं। पश्चिमी घाट तथा तटवर्ती क्षेत्रों में भी जनसंख्या की वृद्धि (बम्बई ५०%) तथा केरल (२५%) रही है। भारत पाकिस्तान विभाजन के पश्चात् पंजाब में ०.४% मीन डेकेनियल की गिरावट और इसके प्रतिकूल पं० बंगाल एवं आसाम में क्रमशः १२.७ तथा १७.४% की जन-वृद्धि हुई थी।

जनसंख्या का उम्रानुसार विवरण—किसी देश की आर्थिक भविष्यवाणी और योजनाओं के लिए जनसंख्या प्रक्षेप (Population Projection) का होना नितान्त आवश्यक है। श्रम शक्ति, उपभोग की मात्रा, शिक्षा का प्रसार तथा पेन्शन आदि परियोजनाओं के कार्यान्वय के लिए भविष्य की अनुमानित कुल जनसंख्या, उम्र के अनुसार उसका वर्गीकरण, परिवारों की संख्या, क्षेत्रीय वितरण तथा शिक्षा स्तर आदि की आवश्यकता पड़ती है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण देश में १५ वर्ष से कम उम्र के लोगों की संख्या अधिक (४१%) है और केवल ११% लोगों की उम्र ५० वर्ष अथवा इससे अधिक है। जनसंख्या के उम्रवार वितरण के अध्ययन से १४ वर्ष की उम्र वालों की संख्या जानने तथा उनको शैक्षणिक सुविधाओं के देने के लिए योजना बनाने में भारी मदद मिलती है। कार्य करने योग्य उम्र के लोगों की संख्या की भी जानकारी होती है और उसी के अनुसार राष्ट्र अपने भावी नागरिकों को रोजगार की व्यवस्था करता है। इसके अलावा इस प्रकार के अध्ययन से अवकाश प्राप्त लोगों की संख्यानुसार पेन्शन तथा बुढ़ापे में जीविकोपार्जन के लिए आर्थिक सहायता की भी व्यवस्था की जा सकती है।

यौन अनुपात—भारत की जनगणना को देखने से ऐसा लगता है कि यहाँ सदैव से स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक रही है। अनेक कारणों में से सम्भवतः यह भी एक कारण रहा होगा कि भारतीय समाज सदैव से पुरुष प्रधान रहा है। सन् १६६१ में यौन अनुपात ६४१/१००० से घटकर १६७१ में प्रति १००० पुरुषों पर केवल ६३२ स्त्रियाँ रह गई हैं। निम्न तालिका में वर्षानुसार यौन अनुपात को दिखाया गया है।

प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या

तालिका १५०

जनगणना दशक	१६०१	१६११	१६२१	१६३१	१६४१	१६५१	१६६१	१६७१
स्त्रियों की संख्या	६७२	६६४	६५५	६५०	६४५	६४६	६४१	६३२

जन्म-दर की वृद्धि से कम और मृत्युदर में भारी गिरावट के कारण अधिक हुई है। एक वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार विगत ७० वर्षों के गणना दशकों में जन्म दर ४१ तथा मृत्युदर २१ प्रति हजार थी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि यह मृत्युदर सन् १९८० तक केवल १० प्रति हजार रह जावेगी। इसलिए भारत की जनसंख्या वृद्धि का प्रधान मापक केवल जन्मदर ही रह जावेगा।

भारतीय महिलाओं की उत्पादकता—भारतीय महिलाओं की उत्पादकता विश्व के अन्य भागों की तुलना में अधिक है। अपनी उत्पादक उम्र (Productive Age) में प्रत्येक दम्पत्ति ६ या ७ बच्चे पैदा करते हैं। यदि विधवाओं तथा परित्यक्ताओं आदि सभी स्त्रियों पर एक साथ विचार किया जाय तो यह औसत ४-५ तक आता है। आंकड़ों से इस बात की पुष्टि होती है कि जो स्त्रियाँ १०वीं अथवा इससे अधिक कक्षा तक पढ़ी हैं और अधिक उम्र होने पर शादियाँ की हैं उनकी उत्पादकता अशिक्षित एवं कम उम्र में विवाह होने वाली स्त्रियों की तुलना में कम होती है।

जनसंख्या वृद्धि के कारक

१. मृत्युदरों में परिवर्तन
२. स्त्रियों की उत्पादकता
३. शरणार्थियों का आगमन
४. औसत आयुवृद्धि
५. अशिक्षा, अज्ञान एवं निर्धनता
६. प्रवासी भारतीयों की वापसी

शरणार्थियों का आगमन—स्वतंत्रता प्राप्ति (१९४७) के साथ देश के पुनः विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान का निर्माण हुआ। पाकिस्तान देश में पड़ने वाले हिन्दुओं ने लाखों की संख्या में भारत आने प्रारम्भ हो गये। देश के इस विभाजन से हमारे यहाँ की जनसंख्या में बहुत अधिक एवं असंतुलित वृद्धि हो गयी थी।

औसत आयु वृद्धि—आधुनिक दवाइयों, वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार से नागरिकों की औसत आयु में वृद्धि हुई है जिससे वह अधिक दिनों तक जीवित रहने लगा है और जनसंख्या वृद्धि में अपना योगदान देता है।

अशिक्षा, अज्ञान एवं निर्धनता—इन सामाजिक बुराइयों के कारण भी देश की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। भारतीय समाज में पुत्र लाभ की आकांक्षा, वैवाहिक जीवन की अनिवार्यता, मनोरंजन अभाव, गर्भ निरोध की अपर्याप्त जानकारी का बोलबाला है। इन सब का अलग-अलग तथा संयुक्त परिणाम संतानोत्पत्ति ही होता है।

प्रवासी भारतीयों की वापसी भी जनसंख्या वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। हमारे देश से बर्मा, श्री लंका, नेपाल आदि सभी देश राजनैतिक कारणों से अलग होते गये। अब देश की आन्तरिक राजनीति एवं राष्ट्रीय कट्टरपंथी कारणों से न केवल उपर्युक्त देशों से बल्कि और भी अनेकानेक देशों से भारतीय मूल के लोग स्वदेश भेजे जा रहे हैं। इस तरह देश की जन्म संख्या में अनायास ही वृद्धि होती जा रही है।

जनसंख्या का राज्यानुसार वितरण—सन् १९६१-७१ के १० वर्षों के वृद्धि की तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक वृद्धि केन्द्र शासित चण्डीगढ़ (११४.५४%) तथा अण्डमान और निकोबार (८१.११%) में हुई है। इसके बाद दिल्ली

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१६. तमिलनाडु	१३००६६	३३६८७	४११०३	३१६	तमिल	२२.०१	९७९	३०.२८	३९.३९	३०.२८
१७. उत्तर प्रदेश	२९४४१३	७३९२६	८८३६५	३००	हिन्दी	१९.८२	८८३	१४.००	२१.६४	१४.००
१८. प० बंगाल	८७८५३	३४९२६	४४४४०	५०७	बंगाली	२७.२४	८९२	२४.५९	३३.०५	२४.५९
१९. अण्डमान निकोबार	८२९३	६४	११५	१४	तमिल, अंग्रेजी, हिन्दी	८१.११	६४४	२२.७८	४३.४८	२२.७८
२०. चंडीगढ़	११४	१२०	२५७	२२५४	पंजाबी, हिन्दी	११४.३६	७४९	६०.६७	६१.२४	६०.६७
२१. दादरा, नागर हवेली	४९१	५८	७४	१५१	कोन्कण	२७.६५	१००७	अप्राप्य	१४.८६	अप्राप्य
२२. दिल्ली	१४८५	२६५६	४०४४	२७२३	हिन्दी, पंजाबी	५२.१२	८०२	८९.७५	५६.६५	८९.७५
२३. गोआ, दमन, द्यू	३८१३	६२७	८५७	२२५	मराठी कोन्कनी गुजराती	३६.७८	९८९	२६.३०	४४.५३	२६.३०
२४. लक्षद्वीप समूह	३२	२४	३२	९९४	मलयालम	३१.९०	९८०	अप्राप्य	४३.४४	अप्राप्य
२५. मणिपुर	२२३५६	७८०	१०७०	४८	मनीपुरी	३७.१२	९८४	१३.०२	३२.८०	१३.०२
२६. मेघालय	२२४८९	७४५	९८३	४४	खासीगारो, जयन्तिया	३२.०२	९५२	१३.०२	२८.४३	१३.०२
२७. अरुणाचल	८३५७८	३३७	४४५	अप्राप्य	असमिया, अंग्रेजी	३२.१४	९०८	३.१२	९.३४	३.१२
२८. पांडीचेरी	४८०	३६९	४७१	९८२	तमिल, फ्रेन्च	२७ ७१	९९०	४२.०६	४३.२६	४२.०६
२९. त्रिपुरा	१०४७७	११४२	१५५७	१४९	बंगाली, मनीपुरी	३६.३२	९४०	७.८२	३०.८७	७.८२

तालिका १५१

राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	जनसंख्या १९६१ (000 में)	जनसंख्या १९७१	घनत्व प्र. व. कि. मी.	भाषाएँ	डेमोग्राफिक वृद्धि	योन अनुपात	शहरी जन-संख्या *% (१९७१)	शिक्षित १९७१ %	वृद्धि दर (% में)
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१. आन्ध्र	२७६७५४	३५९८३	४३३९५	१५७	तेलगू, उर्दू	२०.६०	९७७	१९.३५	२४.५६	१९.३५
२. आसाम	९९६१०	११११२८	१४९५२	१५०	असमियाँ, बंगाली	३४.३७	९०१	८.३९	२८.८१	८.३९
३. बिहार	१७३८७६	४६४५६	५६३३२	३२४	हिन्दी	२१.२६	९५६	१०.०४	१९.७९	१०.०४
४. गुजरात	१९५९८४	२०६३३	२६६८७	१३६	गुजराती	२९.३४	९३६	२०.१३	३५.७२	२८.१३
५. हरियाणा	४४२२२	७५९०	९९७९	२२५	हिन्दी	३१.३६	८७५	१७.७८	२६.६९	१७.७८
६. हिमाचल प्रदेश	५५६७३	२८१२	३४२४	६२	हिन्दी, पहाड़ी	२१.७६	९७४	७.०६	३१.३२	७.०६
७. जम्मू काश्मीर	२२२२३६	३५६१	४६१५	अप्राप्य	डोगरी, कश्मिरी, उर्दू	२९.६०	८८२	१८.२६	१८.३०	१८.२६
८. केरल	३८८६४	१६९०४	२१२८०	५४८	मलयालम	२५.८९	१०१९	१६.२८	६०.१६	१६.२८
९. मध्य प्रदेश	४४२८४१	३२३७२	४१६५१	९४	हिन्दी	२८.६६	९४३	१६.२६	२२.१२	१६.२६
१०. महाराष्ट्र	३०७७६२	३९५५४	५०३३५	१६४	मराठी	२७.२६	२३२	३१.२०	३९.०८	३१.२०
११. कर्नाटक	१९१७७३	२३५८७	२९२६३	१५३	कन्नड	२४.०७	९५९	२४.३१	३१.५४	२४.३१
१२. नागालैण्ड	१६५२७	३६९	५१६	३१	कोहमा	३९.६४	८७२	९.९१	२७.३३	९.९१
१३. उड़ीसा	१५५८४२	१७५४९	२१९३५	१४१	उड़ीया	२४.९९	९८९	८.२७	२६.१२	८.२७
१४. पंजाब	५०३६२	१११३५	१३४७३	२६८	पंजाबी	२१.००	८७३	२३.८०	३३.३९	२३.८०
१५. राजस्थान	३४२२१४	२११५६	२५७२४	७५	हिन्दी, राजस्थानी	२७.६३	९१४	१७.६१	१८.७९	१७.६१

यौन अनुपात एवं धर्मानुसार जनसंख्या का विवरण आदि

तालिका १५३

वर्ष	घनत्व प्र. व. मील	यौन अनुपात	धर्मानुसार जनसंख्या %				प्रति परिवार	विवाह की उम्र	
			हिंदू	मुसलमान	ईसाई	सिक्ख	सदस्य संख्या	पुरुष	स्त्री
१८९१	१८४	९५८	७२.३०	२०.००	०.८०	०.७०	५.४३	१९.६०	१२.५०
१९०१	१६७	९७२	७०.४०	२१.२०	०.९९	०.७५	५.२७	२०.००	१३.१०
१९११	१७५	९६४	६९.४०	२१.३०	१.२०	०.९६	४.९५	२०.३०	१३.२०
१९२१	१७७	९५५	६८.६०	२१.७०	१.५०	१.००	४.८९	२०.७०	१३.७०
१९३१	१९५	९५०	६८.२०	२२.२०	१.८०	१.२०	४.९५	१८.६०	१२.७०
१९४१	२४५	९४५	६५.९०	२३.८०	१.६०	१.५०	५.१२	१९.९०	१४.७०
१९५१	३०२	९४६	८५.००	९९.९०	२.३०	१.७०	४.९०	१९.९०	१५.६०
१९६१	३५८	९४१	८३.५०	१०.७०	२.४०	१.८०	५.१६	२१.६०	१५.८
१९७१	४७१	९३२							

उपर्युक्त तालिका को देखने से यह ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में व्याप्त अनेकानेक बुराइयों के कारण यहाँ पर स्त्रियों की मृत्युदर पुरुषों की मृत्युदर की अपेक्षा अधिक रही है। सम्भवत. इसीलिए ऐसी भिन्नता अब तक कायम है। तालिका से यह भी ज्ञात होता है कि जब से नियमित रूप से जनगणना का कार्य सम्पन्न कराया जा रहा है स्त्रियों की संख्या मे निरन्तर गिरावट आई है। भारत में स्त्रियों के अनुकूल केरल, दादरा तथा नागर हवेली को छोड़कर समस्त भारत में पुरुषों की संख्या वृद्धि के अनुकूल है। उत्तर प्रदेश, दिल्ली, जम्मू, काश्मीर, पं. बंगाल, हरियाणा तथा पंजाब आदि राज्यों में यह अनुपात ९००/१००० से भी कम है। तालिका १५१ को देखकर कहा जा सकता है कि जब से भारत मे जनगणना का काम प्रारम्भ किया गया है तभी से लेकर अब तक स्त्रियों की संख्या में भारी कमी हुई है।

साक्षरता एवं धर्म अनुपात—सन् १८६१ मे भारत की केवल ८% जनसंख्या साक्षर थी। परन्तु अब यह प्रतिशत बढ़कर १९७१ में २९ हो गया है। इस संदर्भ में भी स्त्रियाँ (१८%) पुरुषों (४०%) से पीछे है। पुरुषों की शादी करने की उम्र भी स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती हैं। यदि शहरों और गाँवों का पुन: एक तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो ग्रामीण स्त्रियाँ एव पुरुष दोनों ही अपने शहरी बहन भाइयों की तुलना मे कम साक्षर हैं। सन् १९६१ मे भारत के १६५२ विभिन्न मातृभाषाएँ थी। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में ८४% हिन्दू, ११% मुसलमान तथा शेष में अन्य धर्मावलम्बी रहते थे। देश विभाजन दशक (१९४१-५१) मे भारत में हिन्दुओं की संख्या ६५% से बढ़कर ८५% हो गई थी और इसके विपरीत मुसलमानों की संख्या २४% से घटकर १०% रह गई थी।

क्रियाशील जनसंख्या—सन् १९२१ में ३५७ मिलियन जनसंख्या में से ३४९ मिलियन कृषि कार्यों मे लगे हुए थे। इसमे से ९९% अर्थात् २४० मि. लोग गाँवों में रहते थे ५०% अकृषि कार्यों (NonAgricultural) से अपनी जीविकोपार्जन करते थे। अकृषित वर्ग को पुन. तीन उप-वर्गों—आत्म निर्भर, आश्रित तथा कमाऊ आश्रितो में विभाजित किया गया था। आत्म निर्भर श्रमिकों में से ३ मि. वस्त्र एवं चमड़े के व्यवसाय ४.२ मिलियन व्यापार तथा ०.२ मि. सड़क परिवहन मे लगे हुए थे। परन्तु सन् १९७१ के जनगणना के अनुसार ३४% जनसंख्या क्रियाशील रही है जिनमें ५३% पुरुष एव १३% औरतें सम्मिलित थीं। क्रियाशील जनसंख्या (Working Population) का प्रतिशत शहरों की तुलना मे गाँवों मे ऊँचा है।

प्रतिशत १९७१

तालिका १५२

	क्रियाशील जनसंख्या		प्रतिशत	खेतीहर मजदूर कृषक	खेतीहर मजदूर	अन्य
	पुरुष	स्त्री				
ग्रामीण	५३.५५	१४.५५	३४.५३	५१.००	३१.००	१९.००
शहरी	४८.६२	७.३७	२९.५६	५.००	६.००	८९.००

प्राकृतिक कारण

जलवायु—जनसंख्या के अधिक घनत्व के लिए प्रधान कारकों में जलवायु प्रमुख है कनाडा के उत्तरी तथा पश्चिमी समुद्र तटों पर, फ्लोरिडा, दक्षिणी कैलिफोर्निया तथा भूमध्यसागरीय तट प्रदेशों की कल्पना करिए। यहाँ लोग सूर्य की धूप, सुहावनी शीत तथा सुन्दर दृश्य एवं सागरीय तटों का आनन्द लेने तथा स्वीटजरलैण्ड, वेरमाउन्ट, न्यू हैम्पशायर विसकान्सिन तथा मिनीसोटा मे जाड़े के खेलों में दिलचस्पी होने के कारण लोग इकट्ठा होते हैं।

प्राकृतिक कारण

(i) जलवायु
(ii) जलपूर्ति
(iii) मिट्टी
(iv) खनिज सम्पत्ति
(v) स्थलाकृति

प्रथम वर्ग के लोग जाड़े की ऋतु तथा दूसरे प्रकार के लोग ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ के साथ खिसक जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में भारत का उत्तरी भाग काश्मीर, नैनीताल तथा अनेक प्रदेश लोगों के आकर्षण के मुख्य केन्द्र बन जाते हैं। मध्य अक्षांशों के देशों में सदैव अनुकूल तापमान रहने के कारण उत्तर-पश्चिम यूरोप, उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिणी-पूर्व कनाडा, भारत, चीन, तथा जापान आदि देश सबसे घने बसे हैं।

जल—जल भी एक अन्य प्रमुख कारक है जो कतिपय प्रदेशों में घने मानव अधिवास को आकर्षित करता है। पीने के अलावा इसका सबसे अधिक उपयोग रासायनिक उद्योगों, जल-विद्युत उत्पादन (दामोदर घाटी योजना, हीराकुण्ड भाखरा आदि), परिवहन (ग्रेट लेक्स, गंगा, मिसीसीपी, डेन्यूब नदियाँ) कुहाकरकट को तिरोहित करने, तैरने एवं मनोरंजन तथा सिंचाई आदि के काम आता है।

मिट्टी—अच्छी जलवायु और पर्याप्त एवं उपयोगी जल की मात्रा की भाँति उपजाऊ मिट्टियाँ भी मनुष्यों को बसने के लिए आकर्षित करती हैं। वर्तमान तकनीकी एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के युग में मिट्टियों का प्रभाव कम होना सम्भव है। परन्तु अच्छी एवं उपजाऊ मिट्टियाँ अब भी आकर्षण के स्थल बनी हुई हैं।

स्थलाकृति—स्थलाकृतियों में पर्वतों, पठारों तथा मैदानों की विशेष चर्चा की जाती है। पाठक जानते हैं कि उपर्युक्त ससाधनों से परिपूर्ण मैदानों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है।

खनिज सम्पत्ति—जिस तरह खनिज भण्डारों से किसी राष्ट्र की राजनैतिक शक्ति बढ़ती है उसी तरह खनिज ससाधन से जनसंख्या के घनत्व को भी सबल मिलता है क्योंकि राष्ट्र के उद्योग इसकी उपलब्धि पर निर्भर रहते हैं भारत की खनिज पेटी (बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश तथा पं. बंगाल के संगम-स्थल) में जनसंख्या की वृद्धि का यह एक प्रमुख कारण है।

सांस्कृतिक कारण—जैसाकि हम पहले कह आये हैं भारत के उन राज्यों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के योग्य बन्दरगाह स्थित हैं। इन बन्दरगाहों

सन् १९७१ की क्रियाशील जनसंख्या की तुलना किसी अन्य विगत जनगणना वर्ष से नहीं की जा सकती है क्योंकि सन् १९६१ में ४३% जनसंख्या क्रियाशील मानी गई थी जिसमें घर की स्त्रियों तथा छात्रों आदि को भी सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार क्रियाशील जनसंख्या के आँकड़े को बहुत बढ़ाकर बताया गया था जबकि इनका नगण्य योगदान होता है। सन् १९७१ में दिए गये क्रियाशील जनसंख्या में लगभग ४३% कृषक, २६% खेतीहर मजदूर, तथा ३१% अन्य उद्योग धंधों में लगे हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत क्रमशः ५१, ३१, तथा १६ है।

जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या के घनत्व का तात्पर्य देश/प्रदेश अथवा किसी भूखण्ड पर प्रति वर्ग किलोमीटर/वर्ग मील में मानव अधिवास की संख्या से होता है। विश्व की लगभग ३७१० मिलियन जनसंख्या बड़ी ही असमान रूप से बसी हुई है। विश्व की लगभग एक तिहाई से भी अधिक जनसंख्या केवल तीन देशों भारत, चीन, जापान में पाई जाती है। अन्य राष्ट्रों में फ्रांस (८३) चीन (७१) रूस (१०) तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (१३) में व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर पर निवास करते हैं। यूरोप महाद्वीप की जनसंख्या अन्य तीन महाद्वीपों-उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका एवं अफ्रीका के बराबर है। प्रादेशिक स्तर पर जनसंख्या के घनत्व का अध्ययन करने से और भी आकर्षक विषमताएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए नेवादा में व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर रहता है जबकि न्यूयार्क राज्य में ३६०, न्यूयार्क के ही मैनहट्टन द्वीप में १५,०००,००० व्यक्ति, आर्कटिक टुण्ड्रा, सहारा रेगिस्तान तिब्बत के पठार तथा अमेजन नदी की घाटी में केवल १.५ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. रहते हैं। भारत में भी घनत्व सर्वत्र एक-सा न होकर विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की जनसंख्या का घनत्व बड़ा असमान है। उदाहरण के लिए राज्यों में सबसे अधिक घनत्व केरल (५४८) तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में दिल्ली सबसे घना (२७२३) बसा है। दूसरे स्थानों पर क्रमशः बिहार (३२४) तथा चण्डीगढ़ (२२५४) है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र में इस जनसंख्या का घनत्व केवल ४ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। क्या कारण है कि कतिपय क्षेत्रों में अत्यधिक लोग बसे हुए हैं और साथ ही कुछ प्रदेश जन-शून्य हैं। पूर्व लिखित अध्यायों के अध्ययन से आप इसका उत्तर आसानी से ढूँढ निकाल सकते हैं। आप जानते हैं कि वातावरण, जलवायु, मिट्टी तथा उच्चावच्च मानव अधिवास पर बहुत प्रभाव डालते हैं और जनसंख्या का घनत्व इनसंसाधनों का प्रदेश विशेष में रहने वाले लोगों के उद्योग-धंधों पर पड़ने वाले किस्म प्रभाव (अनुकूल अथवा प्रतिकूल) से निर्धारित होता है। मध्य अक्षांशीय देशों में जनसंख्या की विस्फोट स्थिति बन रही है। मध्य अक्षांशों की जलवायु मनुष्यों को आराम तलब बना रही है तथा अपनी खुशहाली के लिए मनुष्य को अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। सबसे अधिक जन जमाव विश्व के उन हिस्सों में है जहाँ की जमीन समतल है। जनसंख्या घनत्व के असमान होने के निम्न दो प्रमुख कारण हैं। (i) प्राकृतिक (ii) सांस्कृतिक। इनको भी पुनः उप-विभागों में रखा जा सकता है :—

ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का अनुपात (प्रतिशत)

तालिका १५३

वर्ष	ग्रामीण	शहरी
१८८१	९१.०	९.००
१९२१	८८.८	११.२
१९३१	८८.००	१२.००
१९४१	८६.१०	१३.९०
१९५१	८२.७०	१७.३०
१९६१	८२.००	१८.००
१९७१	८०.५०	१९.५०

उपर्युक्त तालिका को देखने से नगरीकरण की क्रमिक परन्तु बहुत ही मंद गति का आभास होता है। शहरों की जनसंख्या जो १९३१ में १२.००% थी विगत ५ जनगणना दशकों में बढ़कर २०% ही हो पाई है। इसके प्रतिकूल संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १७९० में शहरी आबादी केवल ५% तथा ग्रामीण जनसंख्या ९५% थी विश्व के इसी भाग में सन् १८४० में शहरी जनसंख्या १०%, सन् १९०० में ४०% तथा १९६१ में सम्पूर्ण जनसंख्या का तीन-चौथाई से भी अधिक जनसंख्या शहरी है। देखिए निम्न तालिका।

शहरी जनसंख्या (प्रतिशत)

तालिका १५४

	१७९०	१८४०	१९००	१९६१
शहरी	५	१०	४०	७५
ग्रामीण	९५	९०	६०	२५

शहरी जनसंख्या में सामान्य वृद्धि के प्रमुख कारणों में से शहरों में निरन्तर एवं तीव्र गति से बढ़ती हुई मानवानुकूल सुविधाएँ हैं। विश्व के सभी शहरों की भाँति भारतीय नगरों में भी शिक्षा, मनोरंजन, रोजगार संसाधन, जल एवं प्रकाश की सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इनका अपना एक विशेष आकर्षण है जिसके कारण शहरी जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके प्रतिकूल शहरों की वर्तमान एवं संभावित कठिनाइयों के प्रति भी जनमानस सतर्क है। इस कारण लोगों के मन में शहरों में बसने के प्रति एक द्विचकिचाहट के वातावरण का भी आभास मिलता है। शहर की अनेकानेक कठिनाइयों के अलावा भविष्य में और भी शहरीकरण की सम्भावनाएँ हैं। पहले शहर छोटे थे अब शहर बड़े हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या गाँवों में रहती है परन्तु शहरी जनसंख्या में द्रुतगति से अभिवृद्धि हो रही है। सन् १८८१ में यहाँ की केवल ९% जनसंख्या शहरों में रहती थी जो अब १९७१ में बढ़कर २०% हो गई है:

पर निर्यात तथा आयात के अलावा नाना प्रकार के व्यापारिक प्रतिष्ठान केन्द्रित हो जाते हैं जिनमें काम करने के लिये बन्दरगाहों के पृष्ठभूमि से बडी संख्या में लोग यहाँ इकट्ठा होने लगते हैं। कलकत्ता, बम्बई तथा इसी प्रकार के अन्य शहरों से इस कथन की पुष्टि होती है।

उद्योग धंधे—चूँकि उद्योग धंधे जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध कराते हैं इसलिए इस प्रकार के क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि होना नितान्त आवश्यक हो जाता है। मजदूर दूर-दूर से वहाँ इकट्ठा होने लगते हैं तथा आबादी बढ जाती है। इनके अतिरिक्त सारस्वत केन्द्र, धर्मस्थान, परिवहन साधन तथा राजनैतिक केन्द्रों ने भी जनसंख्या की अभिवृद्धि में काफी योगदान देते रहे हैं।

चूँकि भारत एक कृषि-प्रधान देश है और वर्षा कृषि के लिये निर्णायक कारक होती है इसलिए देश में जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ जनसंख्या भी कम घनी बसी है। इस कथन को यह कहकर और स्पष्ट किया जा सकता है कि भारत में जनसंख्या का घनत्व वर्षा के न्यून परिमाण के साथ घटता जाता है। भारत के विशाल मैदान में ज्यों-ज्यों आप पूर्व से पश्चिम की तरफ जावेंगे जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है। आसाम इस कथन का अपवाद है क्योंकि यहाँ का उच्चावच विस्तृत वन प्रदेश तथा असुरक्षा, वर्षा के प्रभाव को नकारात्मक बना देते हैं। यहाँ उतनी सफलता-पूर्वक कृषि नही की जाती जितनी मैदानों मे की जा रही है। दक्षिण भारत मे जन-संख्या पुन: कम घनी बसी है। पश्चिमी तट प्रदेश में कतिपय चुने हुए और छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़कर अधिकाश प्रदेश मे परिवहन के साधन तथा खेती योग्य भूमि की कमी है। इसमे और विस्तार मे जाने से पश्चिमी घाट की तुलना मे पूर्वी घाट विस्तृत, उपजाऊ तथा परिवहन मार्गों की सुविधाओं तथा जलोढ मिट्टी से परिपूर्ण होने के कारण अधिक घना बसा है। भारत के पर्वतीय एव शुष्क प्रदेश हमेशा से नकारात्मक क्षेत्र रहे हैं इसलिए इन क्षेत्रों मे जनसंख्या कम घनी बसी है।

ग्राम एवं शहर

कौन-सी बस्ती शहर है और कौन-सी नहीं। इस पर समय-समय पर अनेक परिभाषाएँ तथा तर्क प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। आधार एव परिभाषाएँ चूँकि बदलती रही है इसलिए शहरों की संख्या में उतार-चढ़ाव भी सदा होता रहा है। आबादी साधनों एव सुविधाओं की दृष्टि से शहर छोटे तथा बड़े होते हैं। परन्तु बड़े शहरो मे जनसंख्या की वृद्धि छोटे शहरों की तुलना मे अधिक तेज होती है। विकसित देशों मे शहरों की जनसंख्या देश की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ी है।

ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या—देश की अधिकांश जनसंख्या छोटे-छोटे ग्रामीण केन्द्रों में निवास करती है। इसलिए इस देश को ग्रामों का देश कहा जाता है। हमारे यहाँ नगरीकरण की गति बड़ी मन्द रही है यद्यपि जनसंख्या का लगातार स्थानान्तरण ग्रामों से नगरों की तरफ हो रहा है। इसको निम्न तालिका में देखा जा सकता है :

१	२	३
२. बम्बई	२८.४०	१४.४०
३. मद्रास	१४.२०	६.४०
४. दिल्ली	१३.८०	७.२०
५. हैदराबाद	१०.६०	३.५०
६. अहमदाबाद	७.६०	२.००
७. बंगलौर	७.८०	३.७०
८. कानपुर	७.१०	२.२०
९. पूना	५.६०	२.४०
१०. लखनऊ	५.००	१.१०

शहरों की समस्याएँ

(१) बड़े-बड़े शहरों में जलपूर्ति, नालियाँ, पुलिस-सरक्षण बाग-बगीचे तथा इसी प्रकार के अन्यान्य मानवोपयोगी साधनों के बनाये रखने की अनेकानेक समस्याएँ रहती हैं।

(२) अधिक समय व्यतीत होने के साथ-साथ शहरों के मध्य का भाग जातीय, अल्पसंख्यकों, आर्थिक दृष्टि से निर्बल लोगों एवं असामाजिक तत्त्वों का प्रधान निवास बन कर रह जाता है क्योंकि धनी तथा मध्यम-वर्ग के लोग शहर के बाहरी भागों में रहना अधिक पसन्द करते हैं।

(३) शहरों के बाहरी भागों में आबादी तेजी से बढ़ती है। इसलिए उनके विकास के लिये अधिक धन, बच्चों की शिक्षा के लिये हरेक स्तर के स्कूल, अधिक जल-पूर्ति, नालियाँ अधिक दमकल केन्द्रों तथा पुलिस-संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

शहरों की जनसंख्या में अदलाबदली—एक बार जो लोग शहरों के मध्य में रह लेते हैं वे शहर की अशान्ति एवं दूषित वातावरण के कारण शहरों के बाहर उपनगरों अथवा कृषि क्षेत्रों की तरफ आकर्षित होने लगते हैं। क्योंकि शहर के बीच का भाग जो एक समय विशुद्ध रूप से आवासीय (*Residential*) था, क्रमशः व्यापार, यातायात तथा अन्यान्य उपयोगों में आने लगता है। इस स्थानान्तरण से शहरों में न केवल जनसंख्या के घनत्व पर असर पड़ता है बल्कि भूमि उपयोग भी शीघ्रता से बदल जाता है। शहर के अंदर आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों का समायोजन भी होता रहता है। इस तरह प्रत्येक शहर की सीमाएँ बढ़ती हैं। एक शहर से दूसरे शहर में सीमा-परिवर्तन विभिन्न गति से होता है।

शरणार्थी जनसंख्या—सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की संख्या ७४.८० लाख थी जिनमें से ४९.०५ लाख पाकिस्तान (प० पाकि-

केन्द्र प्रशासित राज्यों को छोड़कर सबसे अधिक शहरीकरण महाराष्ट्र (३१%) में हुई है। आसाम, हिमाचल प्रदेश, नागालैण्ड और उड़ीसा में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत १० से भी कम है। सन् १९६१ में देश में कुल मिलाकर २७०० नगर थे। इसके प्रतिकूल ग्रामों की संख्या कुल मिलाकर ५६७३८८ थी। सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार पूरे देश में १० लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों की संख्या ९ है। मध्यम एवं छोटे शहरों की तुलना में इन बड़े शहरों में जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है। पाँचवी वर्ग के शहरों (५०००-९९९९) में तो १९६१-७१ के दशक में जनसंख्या में कमी आई है। निम्न तालिका में देश के ९ सबसे बड़े शहरों की जनसंख्या अंकित की गई है :

९ सबसे बड़े शहरों की जनसंख्या

तालिका १५५

	पुरुष	स्त्री	सम्पूर्ण जनसंख्या
१. कलकत्ता	४११७७९७	२८८७५६५	७००५३६२
२. वृहत्तर बम्बई	३४४७३९३	२५२११५३	३६२९८४२
३. नई दिल्ली	२०१८८५२	१६१०९९०	३६२९८४२
४. मद्रास	१२९८७८६	११७१५०२	२४७०२८८
५. हैदराबाद	९३३५८१	८६५३२९	१७९८९१०
६. अहमदाबाद	९५३३४०	७९२७७१	१७४६१११
७. बंगलोर			१६५३७७९
८. कानपुर			१२७५२४२
९. पूना			११३५०३४

विगत दशक में शहरों की जनसंख्या में लगभग २% की वृद्धि हुई है। परन्तु इस वृद्धि का प्रतिशत देश-विभाजन दशक (१९४१-५१) में सबसे अधिक लगभग ४% थी। क्योंकि अपने घरों को छोड़कर आने वाले शरणार्थियों के लिये शहरों में बसने, व्यापार करने, उद्योग प्रारम्भ करने तथा नौकरियों आदि के लिये सबसे अधिक अवसर थे और इसीलिए देश के बड़े-बड़े शहरों में सन् १९४१-५० के बीच लगभग ५० लाख लोगों की वृद्धि अंकित की गयी थी। देखें निम्न-तालिका :

प्रमुख नगरों में अतिरिक्त जनसंख्या वृद्धि (लाखों में)

तालिका १५६

शहर	वास्तविक जनसंख्या १९५१	अतिरिक्त जनसंख्या १९४१-५०
१. कलकत्ता	४५.८०	८.१०

जा रही है। प्रवासियों को बसाने तथा कल्याण साधनों के लिये भारत सरकार ने निम्न परियोजनाओं को प्रारम्भ किया है :

दण्डकारण्य विकास परियोजना—सड़क, पुलिया, अस्पताल, शिक्षा के लिये स्कूल दवाइयों आदि का निर्माण एवं वितरण तथा कृषि योग्य भूमि के विकास के लिये सिंचाई संसाधनों, *मिट्टी सर्वेक्षण, जलपूर्ति, भूमि आवटन, भूमि उद्धार, पुनर्वास, ग्राम निर्माण,* पशुपालन को समुचित प्रोत्साहन दिया गया है।

क्षेत्र विकास परियोजनाएँ—इस योजना के अन्दर अनेक राज्यों में विभिन्न क्षेत्रों के विकास का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इसमें क्षेत्रों का सर्वेक्षण, सड़क निर्माण, नये कृषि योग्य क्षेत्रों की खोज, नये रोजगारों का प्रारम्भ, व्यापारिक केन्द्रों को अनेक दिशाओं से प्रमुख नगरों से जोड़ना जैसे कार्यक्रम सम्मिलित किये गये हैं।

देश के सभी राज्यों में पर्मानेन्ट लाइबिलीटी होम्स का निर्माण कराया गया।

नये शरणार्थियों को बिहार, मध्य-प्रदेश, महाराष्ट्र, मनीपुर, अरुणाचल प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, त्रिपुरा तथा उत्तर-प्रदेश में बसाया गया।

विदेशों में भारतीय नागरिक

पहली जनवरी १९७२ को कुल मिलाकर १७,४६७ भारतीय वैज्ञानिक तकनीशियन तथा डॉक्टर विदेशों में या तो उच्च शिक्षा प्राप्त करने में अथवा नौकरी में लगे हुए थे। उनके वर्ग तथा देश के नाम आदि को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

तालिका १५७

देश का नाम	विज्ञान	समाजशास्त्र	इन्जीनियर	तकनीकी	डॉक्टर	सम्पूर्ण योग
संयुक्त राज्य अमेरिका	१५८६	४९	१०३३	१६०	४६३	३२९१
कनाडा	२९०	१०	१४९	१०	८५	५४४
ग्रेट ब्रिटेन	३२८	१८	७०५	९९	१७२८	२८७८
पं. जर्मनी	१३१	३	२२५	३६	२०	४१५
रूस	६७	१०	१५७	२	३	२३९
यूरोप के अन्य देश	१६६	९	१४०	२८	२१	३६४
अन्य विदेशी राष्ट्र	८४	२	३२	३	११	१३२

जनसंख्या का नियंत्रण

भारत एक घना बसा देश है। यहाँ जनसंख्या की स्थिति विस्फोटक हो रही है। न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है जिससे हमारी आर्थिक एवं राजनैतिक जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं और हम वास्तविक स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पाते हैं। इसलिए इस विस्फोट स्थिति से बचने तथा नागरिकों के रहन-सहन के स्तर

स्तान) तथा शेष २५.७५ लाख पूर्वी पाकिस्तान (बंगलादेश) से आये हुए थे। सन् १९५२ मे भी बगला देश से ४.३ लाख शरणार्थी भारत मे आये थे। पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थी पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, सौराष्ट्र, बम्बई, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के अनेक भागों तथा पूर्वी बंगाल के शरणार्थी मुख्य रूप से प. बंगाल में बसाये गये थे। पाकिस्तान तथा पूर्वी बंगाल के शरणार्थियो के आगमन मे काफी भिन्नता है। पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों ने सन् १९४६ से ही नोआखाली के दंगो के कारण आना प्रारम्भ किया था और हाल के वर्षों तक उनके आने का ताता लगा रहा।

जनवरी सन् १९६४ मे शरणार्थियो का भारी संख्या मे पुन: आना प्रारम्भ हुआ था और परिणामस्वरूप ८५४००० शरणार्थी भारत मे आये। जिनकी संख्या १९७० तक लगभग १.११ मिलियन तक पहुँच गई थी सन् १९६६ में ५१२१ तथा १९७० के अन्त तक ४१,८१६ परिवारो को देश के विभिन्न भागो में बसाया जा चुका था। उनके पुनर्वास की योजनाएँ कृषि, छोटे-छोटे उद्योगो, व्यापार, सरकारी तथा गैर-सरकारी नौकरियों मे विशेष सुविधाएँ देकर किया गया था। नये शरणार्थियों (३१ मार्च, १९५८ के पश्चात आने वाले) को मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आसाम तथा आन्ध्र आदि एवं दण्डकारण्य तथा अण्डमान निकोबार मे चल रहे अनेक कृषि परियोजनाओं में लगाया गया।

पूर्वी पाकिस्तान से आये हुए पुराने शरणार्थी—पुराने शरणार्थियों (३१ मार्च, १९५८ के पूर्व) की संख्या ४.१२ मिलियन थी जिनमे से ३.१ मिलियन पश्चिमी-बंगाल मे बसाये गये थे। मार्च, सन् १९७० तक इन शरणार्थियों पर २६०३.४१ मिलियन रुपया खर्च किया जा चुका था। इनके बसाने की योजनाएँ शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रारम्भ किया गया था। देश के बाहर जाने वाले मुसलमानों के लगभग ३०२००० और सरकार द्वारा बनाये गये अन्य २००,००० शहरी मकानो में इनको प्रारम्भिक रूप से बसाया गया। पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों ने देहाती क्षेत्रों मे अपने मकानों के साथ-साथ २.४२ मिलियन हैक्टर खेतीहर भूमि भी छोड़ दी थी। इसका भी उपयोग आनेवाले शरणार्थियो को बसाने के लिये किया गया था।

विदेशी अंत क्षेत्र एवं पुनर्वास—सन् १९५८ में नेहरू-नून समझौते के अनुसार भी काफी बड़ी संख्या मे लोगो को अपना घरबार छोड़कर भारत मे आना पड़ा था। इसके अन्तर्गत पश्चिमी तथा पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियो के ११६८ परिवारों को बसाने का कार्य था ही, तब तक सन् १९६५ मे भारत-पाक संघर्ष के समय मे भी जम्मू काश्मीर (२००,०००) पंजाब (५२००६) राजस्थान (८४००) तथा प. पाकिस्तान के ४५०० लोगो को भी बसाने की जिम्मेदारी अस्थायी रूप से भारत सरकार पर ही थी। परन्तु समझौता होने के पश्चात् इन लोगो को वापस जाने, मकानों की मरम्मत करने, दुकाने खोलने तथा व्यापार अनुदान देने आदि मुद्दों पर दोनों सरकारो के बीच सहमति हो गई।

भारत सरकार एवं जनता के समक्ष न केवल पाकिस्तान बल्कि अन्य देशों जैसे श्रीलंका, मोजाम्बिक तिब्बत, बर्मा तथा अफ्रीका के देशों से निरन्तर आ रहे प्रवासी भारतीयो के बसाने तथा उन पर भारी धनराशि खर्च करने की एक नैतिक एवं स्थायी जिम्मेदारी बनती

सिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार ही किसी भी राष्ट्र की नीतियाँ निर्धारित हुआ करती हैं। इस समय जब देश में उत्पादन कम, प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम, कृषि पिछड़ी तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में अनिश्चितता के कारण सरकार की जनसंख्या के सम्बन्ध में नियंत्रण नीति है। सरकार जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण चाहती है इसलिए इस नीति के अन्तर्गत निम्न बातें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं :—

(१) छोटे-छोटे परिवारों की सुख-सुविधाओं के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित करना।
(२) परिवार नियोजन, बंध्याकरण तथा कृत्रिम निरोधकों का प्रयोग को प्रोत्साहित करना।
(३) जन्म-दर के वर्तमान प्रतिशत को घटाना
(४) वैवाहिक उम्र वृद्धि
(५) गर्भपात को वैधानिक स्वरूप देना
(६) अविवाहित, संतान-रहित तथा इसी प्रकार से पीड़ित लोगों को सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था।
(७) बच्चों की निश्चित संख्या के बाद अनिवार्य आपरेशन करवाना।
(८) सन्तानोत्पादन कर की व्यवस्था करना।

परिवार नियोजन कार्यक्रमों का मूल्यांकन

जनसंख्या नियंत्रण नीति के अन्तर्गत चलाये गये कार्यक्रमों में से यह सबसे बड़ा तथा राष्ट्रीय-स्तर की योजना है। परिवार के सदस्यों की संख्या सीमित करने, स्वास्थ्य लाभ, पारिवारिक कल्याण एवं सुख-समृद्धि की कल्पना से प्रेरित होकर सरकार ने इस योजना को चलाया है। इसकी सफलता के लिये सारे देश में परिवार नियोजन केन्द्रों तथा प्रशिक्षण केन्द्रों को स्थापित किया गया है जिनके माध्यम से गर्भ-निरोधक साधनों का प्रचार, प्रसार एवं वितरण किया जाता है और लोगों को वित्तीय प्रलोभन एवं आपरेशन करवाने वालों को आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

परिवार नियोजन की कठिनाइयाँ

देश की अनेक योजनाओं की भाँति सरकार की इस योजना के सामने अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कठिनाइयाँ हैं जिनमें कुछ इस प्रकार है।

धार्मिक कठिनाइयाँ—हम धर्म-निरपेक्ष एवं जनतंत्रीय हैं। यहाँ मुसलमानों की भी अच्छी संख्या है जिनके धर्मानुसार अधिकतम संतानोत्पन्न करने पर बल दिया जाता है। बहु-पत्नीत्व के कारण यह सम्भव भी होता है। इसलिए व्यक्तिगत एवं धार्मिक कानूनों के कारण परिवार नियोजन कार्यक्रम पर यहाँ कम बल दिया जाता है।

स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव—गर्भ-निरोधकों के प्रयोग से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने की शिकायतें हैं। इस प्रकार की शिकायतें औरतों के संदर्भ में अधिक उचित जान पड़ती हैं। जब तक इनमें समुचित सुधार की व्यवस्था नहीं की जावेगी तब तक यह योजना अपने वांछित उपलब्धि से वंचित रहेगी।

को ऊँचा करने के लिये जनसंख्या नियन्त्रण परमावश्यक है जिसकी सफलतार्थ निम्नलिखित उपायों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है।

उत्पादन वृद्धि—देश के समस्त उत्पादन संसाधनों (मिट्टी, वन उद्योग, खनिज, शक्ति संसाधन आदि) की अधिकतम शोषण करके जनसंख्या के भरणपोषण तथा जीवनचर्या की वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन किया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी देश में सख्यात्मक समस्या नहीं बल्कि साधन विहिनता एक बड़ी समस्या होती है। भूमि-सुधार, उन्नत बीज, तकनीकी ज्ञान का समावेश आर्थिक वनारोपड़, उद्योग विकास, खनिज अन्वेषण तथा अधिकतम शक्ति उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया जाना अपेक्षित है।

विस्फोटक स्थिति का आभास—शिक्षा, प्रदर्शनियों तथा प्रचार आदि से इस स्थिति के प्रति सामान्य नागरिकों को जागरूक किया जाना चाहिए। सामाजिक तथा रूढ़िगत परम्पराओं के प्रति लगाव को कम किया जाना तथा सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा की गारन्टी भी इस दिशा में उपयोगी हो सकते हैं।

देर से विवाह—जैसाकि ऊपर कहा गया है यहां सामाजिक, धार्मिक तथा रूढ़िगत परम्पराओं से भी अनेक जिम्मेदारियां बढ़ती रहती हैं। हमारे यहाँ विवाह न केवल आवश्यक है बल्कि कम उम्रों में ही सम्पन्न भी कर दिये जाते हैं। कम उम्र में विवाह सम्पन्न होने से अधिक बच्चों के पैदा होने की निश्चितता रहती है। इसलिए इस उम्र को अधिक किया जाना चाहिये।

नैतिक दायित्व—कानूनी कार्यवाहियों की सफलतार्थ जहाँ अन्य प्रकार की व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है वहीं पर नैतिक दायित्व भी अति-आवश्यक होते हैं। शादियों के सम्बन्ध में अंग्रेजों के समय में शारदा एक्ट पारित किया गया था परन्तु नागरिकों द्वारा नैतिक समर्थन न मिलने से प्रभावशाली न हो पाया। राष्ट्र के प्रति अपने नैतिक दायित्वों को एक बार समझ लेने के बाद गर्भ-निरोधक साधनों, बन्ध्याकरण आप-रेशन अनावश्यक पुत्र-प्राप्ति तथा परिवार नियोजन आदि पर लोग स्वतः ध्यान देने लग जावेंगे तथा राष्ट्र की यह समस्या धीरे-धीरे सुधार मार्ग पर अग्रसर हो जावेगी।

जनाधिक्य निवारण के सुझाव

१. उत्पादक संसाधनों का शोषण
२. शिक्षा प्रचार एवं प्रसार
३. विवाह उम्र वृद्धि
४. नैतिक उत्तरदायित्व
५. प्रवास प्रोत्साहन

प्रवास प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना भी देश के हित में होगा। हम लोगों में घर में अथवा आसपास रहने, नौकरी करने, शिक्षा प्राप्त करने की एक घर चाह की बीमारी (Home sickness) फैल गई है। इसके कारण हम दूर जाकर नौकरी आदि करने में आलस्य की भावना के शिकार रहते हैं।

सरकार की जनसंख्या नीति

आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा देश की भू-ऐतिहा-

भावना से प्रेरित होकर यूरोप के लोगों ने संयुक्त राज्य अमेरिका में भी शहरों के नामकरण मे इसी पद्धति को अपनाया है। उदाहरण के लिये न्यूयार्क, न्यू हैम्पशायर तथा न्यूजर्सी आदि। दूसरा तर्क यह है कि उन दिनों राजनैतिक जागरूकता की अपेक्षा सास्कृतिक जागरण अधिक था। देशों का यदि कोई सीमांकन था तो निश्चित रूप से वह सास्कृतिक अधिक और राजनैतिक कम रहा होगा। तीसरी बात यह है कि यदि उन्होंने द्रविड़ों से सीधा युद्ध मोल लिया होता तो उनके सकुटुम्ब भारत में आने की बात समाप्त हो जाती है। क्योंकि सैनिक अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर युद्ध मे नहीं जाया करते हैं। लेखक की दृष्टि मे आर्यों का यदि कोई युद्ध द्रविडो से था तो वह शारीरिक नहीं बल्कि सास्कृतिक रहा होगा जिसमें धीरे-धीरे आर्य लोग सम्पूर्ण उत्तरी भारत, सिन्ध, पंजाब, काश्मीर, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और अन्य अनुकूल क्षेत्रों में फैल सके। इनका कद तथा सिर लम्बे होते हैं नाक ऊँची, लम्बी तथा रंग गोरा होता है।

द्रविड़ आर्य—भारत की दो उपर्युक्त विशुद्ध प्रजातियों के पश्चात अन्य जातियाँ मिश्रण से बनी हैं। जैसाकि नाम से ही चरितार्थ है द्रविड़ों तथा आर्यों के एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण इनका प्रादुर्भाव हुआ। इनका कद, रंग तथा स्वास्थ्य मध्य कोटि का होना स्वाभाविक है।

मंगोल—इस जाति के लोगो का बहुत प्राचीनकाल से भारत से धार्मिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। मगोल जाति के लोग-जो इस समय अस्पष्ट हैं, हिमालय पर्वतीय प्रदेशो मे अधिक पाये जाते हैं। लेपचा (सिक्किम) लिम्ब (नेपाल) कनेत (कुल्लू) बोडू (आसाम) लोग मगोल जातियों से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। रग पीला, चेहरा बाल-रहित, आँखें छोटी, सिर चौडा तथा नाकें चपटी होती हैं।

द्रविड मंगोल—जिस प्रकार भारत के आदिम निवासी द्रविडों के समीप आर्यों के आने से द्रविड़-आर्य जाति का प्रादुर्भाव हुआ उसी प्रकार द्रविडों के समीप मंगोलों के आने से द्रविड-मंगोल जाति का उदय हुआ है।

द्रविड़ सीथियन—यह भी एक मिश्रित जाति है। इनका रग काला नाक चौड़ी होने के कारण चपटो दिखाई पड़ती है।

भारतीय आदिवासी—भारत में लगभग १६० प्रकार की आदिवासी जातियाँ निवास करती हैं। जिनकी कुल जनसंख्या २५ मिलियन से कुछ अधिक है। ये लोग भारत के विभिन्न भागों में रहते हैं। आसाम की पहाडियों में नागा, गारो, कछारी, खासी तथा लुमाई जातियाँ रहती हैं। ये लोग तिब्बती-चीनी परिवार की भाषाएँ बोलते हैं, अधिकांश प्रसंगों में बहुपतित्व का प्रचलन है तथा परिवार मातृसत्तात्मक है। जीविकोपार्जन के लिये खेती, आखेट तथा जंगली वस्तुओं का संग्रह करते हैं और समाज में स्त्रियों का बड़ा आदर है।

सथाल जिनकी संख्या १० लाख से भी अधिक है बिहार तथा उडीसा की प्रमुख आदिम जातियाँ हैं। अपनी प्राचीन बोलियाँ बोलते, खेती करते तथा गतिशील रहते हैं। हस्तकला में निपुण ये लोग टोकरी बनाते, खुदाई तथा लकड़ी के काटने का काम बडी चतुराई एवं परिश्रम से करते हैं।

विशेषज्ञों की कमी—इस योजना को चलाने एवं उचित दिशा देने योग्य डॉक्टरों की कमी है और जो डॉक्टर उपलब्ध भी हैं वे ग्रामों में, जहाँ देश की सबसे अधिक एवं जागरण विहीन जनसंख्या निवास करती है, जाना नहीं चाहते हैं। डॉक्टरों की संख्या वृद्धि एवं प्रवृत्ति परिवर्तन योजना की सफलतार्थ नितान्त आवश्यक है। ग्रामीण समाज में निरोधक साधनों को उपलब्ध कराने, प्रसार, प्रचार एवं शिक्षा-वृद्धि से इस योजना को अतिरिक्त सफलता प्राप्त हो सकती है।

भारत की प्रजातियाँ

बहुत प्राचीनकाल से भारत आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित रहा है। इसके व्यापारिक सम्बन्ध सुदूर-पूर्व एवं पर्वतों को पार करके अरब तथा यूरोप के देशों से रहा है। आर्थिक विकास की इस चरम-सीमा से आकर्षित होकर नाना प्रकार की जातियों ने भारत पर समय-समय पर आक्रमण किया और उनके कुछ न कुछ वंशज देश के किसी न किसी भाग मे पाये जाते हैं। एक ही राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवेश मे रहने के कारण उनकी विशुद्धता अब समाप्त हो चुकी है। कतिपय जगली प्रजातियाँ इस कथन की अपवाद हो सकती हैं जिनको अब भी आधुनिकता की हवा नहीं लग पाई है। भारत के भू-वैज्ञानिक काल (Geological Era) की भाँति (द्राविडियन महाकल्पी तथा आर्य महाकल्पी) देश की जाति समुदायों को भी तीन प्रमुख वर्गों-पूर्व द्रविड़, द्रविड एवं आर्य मे विभाजित किया जा सकता है :

द्रविड पूर्व—रंग काला, कद छोटा, नाक चपटी बाल घुघराले तथा असभ्यावस्था में हैं। भील (राजस्थान) तथा मुण्डा (आसाम) इस कोटि मे आते हैं। इनके होने की कल्पना द्रविडों के पहले पूर्व ऐतिहासिक काल में की जाती है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि द्रविडों के साथ लडाई मे पराजित होने के बाद ये लोग सदैव के लिये जगलों मे चले गये।

द्रविड प्रजाति—भारत मे इनका निवास ऐतिहासिक काल से माना जाता है। ये लोग सम्पूर्ण भारत के आदि निवासी माने जाते हैं। इनका भी रंग काला, बाल घने, लम्बा सिर नाक चपटी तथा आँखें काली होती हैं। तमिल, तेलगू, कन्नड तथा मलयालम भाषाएँ बोलते तथा विन्ध्याचल की पहाडियो के दक्षिणी भाग से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए हैं। सथाल (बिहार) गोंड (मध्य-प्रदेश) टोडा (नीलगिरि) आदि इन्हीं से सम्बन्धित हैं।

विशुद्ध आर्य—कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा मे २०००–३००० वर्षों पूर्व आर्य जाति मध्य-एशिया से भारत मे आये और द्रविडों को गगा के उपजाऊ मैदान से निकालकर स्वयं इसके अधिकारी बन गये। परन्तु लेखक का ऐसा मत है कि आर्य सभ्यता भारत के ही एक बहुत सकीर्ण एव सकरे स्थलखण्ड पर विकसित हुई थी। इनकी जनसंख्या के क्रमश. एव तीव्र गति से बढ़ने तथा स्थानाभाव होने आदि के कारण उनके जीवन मे गतिशीलता आई और ज्यों-ज्यों उनके सामने कृषि योग्य एवं विस्तृत भूमि नजर आती गई वे फैलते गये और अपने सकीर्ण एवं सकरे जन्म-स्थान 'आर्यावर्त' के नाम पर ही पूरे भारत वर्ष का नाम रखा। पैतृक धरोहर को जीवित रखने का एक मानव स्वभाव होता है। सम्भवतः इसी

भारत की भाषाएँ

भारत मे कुल मिलाकर १७६ भाषाएँ तथा ५४४ बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमे से ११६ छोटी-छोटी आदिम जातियो की भाषाएँ हैं। जैसाकि हम ऊपर कह आये हैं। भारत के लगभग सभी राज्यो मे आदिम जातियाँ पाई जाती हैं। परन्तु अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर भारतीय भाषाओं को निम्न ४ वर्गों मे विभाजित किया जाता है :

(१) भारतीय आर्य भाषाएँ
(२) द्रविड भाषाएँ
(३) ग्रोस्टेरिक भाषाएँ
(४) तिब्बती चीनी भाषाएँ

भारतीय आर्य भाषाएँ—इन भाषाओ के बोलने वालों की सख्या तथा उनके सांस्कृतिक स्तर की दृष्टि से यह सबसे प्रसिद्ध है। भारत के लगभग ७३% निवासी इन भाषाओं को बोलते हैं। उत्तर-पश्चिम वर्ग, पूर्वी वर्ग पूर्वी मध्य ग्रुप, मध्य ग्रुप, उत्तरी हिमालय पहाड़ी ग्रुप तथा अतिरिक्त भारतीय ग्रुप के नाम से इनकी पाँच उप-शाखाएँ हैं।

द्रविड़ भाषाएँ—ऐसा कहा जाता है कि इन भाषाओ को बोलने वाले भारत मे ईसा से लगभग ३५०० वर्ष पहले आये थे। इसके पश्चात् पश्चिमी तथा दक्षिणी भागो में फैल गये। जब आर्यों का भारत मे फैलाव हुआ उस समय इन भाषाओ के बोलने वाले और दक्षिण की तरफ चले गये। इस ग्रुप मे चार निम्न वर्ग हैं :

(१) तेलगू (आन्ध्र)
(२) कन्नड़ (कर्नाटक)
(३) तमिल (तमिलनाडु)
(४) मलयालम (केरल)

ग्रोस्टेरिक भाषाएँ—इस वर्ग की भाषा मध्य तथा उत्तरी-पूर्वी भारत के केवल कुछ पहाड़ी तथा जगली ईलाको मे बोली जाती है। इस ग्रुप मे कोल, खासी (आसाम) तथा निकोबार सम्मिलित किये जाते हैं।

तिब्बती-चीनी भाषाएँ—इस ग्रुप के भाषा-भाषी देश के उत्तर-पश्चिम मे फैले हुए हैं। इस प्रकार के लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। भारतीय सभ्यता एवं सस्कृति के उत्थान मे इनका जरा भी योगदान नही रहा है। आसाम की पहाड़ियों मे ये भाषाएँ बोली जाती हैं। नेवारी तथा मनीपुरी उप-भाषाएँ इस वर्ग मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

मकानों की किस्में

भारत के मकानो मे छतरहित उस कमरे को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है जिसे हम भारतीय भाषा में आंगन के नाम से पुकारते हैं। सामान्य परिस्थिति में मकान के अन्दर इसका होना नितान्त आवश्यक है चाहे मकान किसी भी प्रदेश एवं जलवायु किस्म में बनाया गया हो। परिवार के सदस्यों के रहने, उठने-बैठने तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिये मकान के अन्य हिस्सो की तुलना में यह सबसे अधिक उपयोगी होता है। आंगन सदस्यों के लिये प्राकृतिक ससाधनो—धूप, प्राकृतिक जलवृष्टि एवं शीतल हवाओं का

उड़ीसा इस प्रकार की जातियों के लिये अधिक प्रसिद्ध है जहाँ पर मर्दमास, मूंगी, गवास, गोरोस (आसाम के आदिम जातियों के प्रतिकूल) इनका समाज पितृसत्तात्मक है इसलिए बहुपत्नी की भी प्रथा देखी जाती है। स्थानीय नृत्य एवं संगीत में इस प्रकार के लोग बड़े निपुण होते हैं।

मध्य-प्रदेश में लगभग २ मिलियन गोंड, बैगा तथा कोकूज लोग रहते हैं। इसके पश्चात् झांकुर, धीवियाज तथा बरिल लोगों का नम्बर आता है। त्रिपुरा में रियांग, हलाम्स, मोग, नागा तथा कुकिस जातियाँ निवास करती हैं। इन लोगों में बांस तथा घास-फूस के मकान बनाने की प्रथा है। उपर्युक्त आदिम जातियाँ वर्तमान शिक्षा एवं सभ्यता से बहुत दूर जंगलों में रहती, आखेट करती तथा कहीं-कहीं खेती भी करती हैं।

आदिवासियों की प्रमुख समस्याएँ

इस समय भारतीय आदिवासी वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति से बहुत दूर रह रहे हैं। स्वभाव से हिंसक, शिक्षा में पिछड़े तथा प्राचीन परम्पराओं में आबद्ध जीवन-यापन कर रहे हैं। इनके इलाकों में सड़कों, रोजगार, उद्योग धन्धों, उपजाऊ खेतों, रेल एवं सड़क परिवहन, अस्पताल एवं स्वास्थ्य केन्द्र डाक-तार तथा शिक्षण संस्थाओं का बड़ा अभाव है। निर्धनता उनकी पैतृक सम्पत्ति बन रही है। इनका सम्पूर्ण क्षेत्र चाहे नागाओं का आसाम हो, चाहे संथालों का बिहार, अथवा भीलों का राजस्थान सभी जगहों पर मलेरिया, चर्मरोग, तपेदिक तथा कोढ़ जैसे रोगों का भारी प्रकोप रहता है। दवा के स्थान पर अंध विश्वास, जादू-टोना, भूतप्रेत में विश्वास है।

समाधान के तरीके

समस्याओं का समाधान समस्या निराकरण से होता है। उपर्युक्त समस्याओं को समाप्त करने के लिए दो चीजों पर बल दिया जा सकता है।

(१) मानसिक विकास

(२) क्षेत्रीय विकास

(१) मानसिक विकास के अन्तर्गत स्कूल, कॉलिज आदि को प्रारम्भ किया जा सकता है। उनको देश के अन्य सभ्य प्रदेशों से अवगत कराया जाय। उनकी हिंसक प्रवृत्तियों तथा अंध-विश्वासों आदि को दूर करने के लिये जीवन के आधुनिक मूल्यों को समझाया जाना चाहिए। उन्हें अच्छे नागरिक की भाँति सभ्य जीवनयापन के लिये प्रेरित करना चाहिए।

(२) क्षेत्रीय विकास योजना के अन्दर सम्पूर्ण प्रदेश का भौगोलिक एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण कराया जाय और इन अलग-अलग पड़े हुए क्षेत्रों को देश के अन्य भागों से यथासम्भव सड़क, रेल, वायु एवं जलमार्गों से मिलाया जाना अधिक हितकर होगा उद्योग धन्धों को विकसित करके उन्हें रोजगारों में लगाया जाय। खनिज सम्पत्ति की खोज में उनकी मदद ली जानी चाहिए। स्वास्थ्य के लिये पौष्टिक भोजन तथा बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये अस्पताल की व्यवस्था होनी चाहिए।

मकान व्यवस्था उड़ीसा, बिहार, बंगाल, आसाम तथा त्रिपुरा में देखी जाती है। कहीं-कहीं बहु सकेन्द्रीय आँगन, उभयनिष्ठ दीवालों वाले घर, तथा मंदिर वास्तुकला का भी प्रचलन है। प्राचीन काल में जिन क्षेत्रों को अत्यधिक आक्रमण, युद्ध तथा असुरक्षा का सामना करना पड़ा था वहाँ अब भी सुरक्षा की दृष्टि से मकान बनाये जाते हैं। कर्नाटक तेलगाँना, आन्ध्र, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में कहीं-कहीं मकान बनाने में चारों तरफ से दीवालें खड़ी कर दी जाती हैं और फिर चारों तरफ की दीवालों के सहारे भीतर की तरफ वरण्डे लटका दिये जाते हैं। इस प्रकार बनाये गये मकान कमरा-रहित होते हैं परन्तु उनके मध्य में आँगन अवश्य होता है। इस प्रकार के आँगन में कृषि-यन्त्र, पशुओं का चारा, जलाने की लकड़ी तथा अन्यान्य सामान रखे जाते हैं।

लावा प्रदेश के मराठवाड़ा, विदर्भ तथा महाकौशल प्रदेशों में ऊँचे चबूतरों पर पत्थरों से बने हुए मकान बहुत पाये जाते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से इन मकानों में भीड़ अधिक रहती है और कभी-कभी मकानों के बीच की दीवार उभयनिष्ठ होती है।

सभ्यता के विकास, आर्थिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुदृढ़ता के साथ-साथ लोग अब परम्पराओं को छोड़कर खुले हुए एवं पक्के मकानों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं और देश के अधिकांश भागों में अच्छे एवं आधुनिक किस्म के मकान देखने को मिल रहे हैं। धनी तथा शिक्षित परिवार तेज धूप, आँधी एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा चाहते हैं इसलिए आँगन के चारों तरफ बड़े मकानों का निर्माण करवाते हैं। प्राचीनकाल में रसोई घरों से मकान में आग लगने के भय से अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में खपरैल तथा कम वर्षा वाले प्रदेशों में घास की कमी के कारण मिट्टी की छतें पड़ती हैं। जब आँगन मकान के भीतर होते हैं तब या तो छतें चपटी होती हैं अथवा छत को बीच में ऊँची करके उसका ढाल दोनों तरफ (बाहर एवं भीतर) कर दिया जाता है। यदि आँगन बाहर हुआ तो मकान का आकार-प्रकार परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता पर निर्भर करता है।

देश के अलग-अलग प्राकृतिक विभागों में अलग अलग किस्म की बस्ती आकृतियाँ पाई जाती हैं परन्तु बिखरे हुए रूपों में सभी आकृतियाँ सभी जगहों पर पाई जाती हैं। भारतीय गाँवों का प्रादुर्भाव बहुत प्राचीनकाल में हुआ था। इन दिनों इतनी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ नहीं थीं इसलिए सम्भवतः निम्न कारकों ने गाँवों की स्थिति एवं आकृतियों को प्रभावित किया होगा :

(१) स्थलाकृति एवं जल उपलब्धि

(२) कृषि की उपयोगिता

(३) संरक्षण तथा सुरक्षा की भावनाएँ

(४) समाज में जातीय एवं वर्ण व्यवस्था

उपर्युक्त कारकों में से कभी एक कभी दो और कभी सभी कारकों ने एक साथ मिलकर गाँवों को जन्म दिया है। इसलिए कभी-कभी एक ही प्राकृतिक प्रदेश में गाँवों की सभी आकृतियाँ पाई जाती हैं। इस प्रकार की मिली-जुली बस्तियों के लिये मध्यप्रदेश सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस राज्य में सभी किस्म की बस्ती आकृतियाँ पाई जाती हैं।

ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति में जहाँ जल आसानी से सुलभ हो जाता है विना सगुद

मधुरा भण्डार होता है जबकि मकान के अन्य कमरे तथा मकान खाद्य सामग्रियों का गोदाम मात्र रहते हैं। उपर्युक्त लाभों के कारण सम्पूर्ण देश के भवन-निर्माण का यह केन्द्र-बिन्दु होता है। गाँवों के रहने वाले अपने मकानों को बनाते समय निम्न तीन आधारभूत बातों का ध्यान रखते हैं :

(१) अपने पशुओं की सुरक्षा, किस्म (गाय, बैल, भेड़, बकरियाँ, ऊँट) कृषि उपज तथा गृह देवता।

(२) दीवारों एवं छतों को बनाने के लिये उपयोगी पदार्थों की स्थानीय उपलब्धि।

(३) अपनी आवश्यकता तथा मकानों का आकार-प्रकार एवं गोपनीयता की आवश्यकता।

प्रारम्भिक मकानों की कल्पना खुले मैदान में एक कमरे को खड़े करने से होती है। अलगाव एवं प्राइवेसी को भी बनाये रखने के लिये कमरों को वनस्पतियों से घेर दिया जाता है। इन कमरों की नींव गोलाकार अथवा चौकोर दोनों ही होती है। परिवार अपने कृषि उत्पादन, पशुओं—भेड़, बकरियों, मुर्गियों आदि को उसी एक कमरे में ३–४ फीट ऊँची दीवार से अलग-अलग करके रखता है। ऐसे लोग 'भूम किस्म' की खेती करते हैं। ऐसे परिवारों में व्यापारिक पशुओं—भेड़ बकरी, सूअर एवं मुर्गियाँ—अधिक होती हैं।

मकानों के किस्म की दूसरी किस्त उसी कमरे में बरण्डा लगाकर की जाती है। परिवार के अधिक सामाजिक कार्यों को आँगन अथवा बरण्डे में विभाजित करके सम्पन्न किया जाता है। किसी-किसी कम्युनिटी में दो तरफ से ऐसे मकानों को बनाकर बीच में गली (Street) छोड़ दी जाती है और इस गली में दोनों तरफ से बरण्डे लटकाये जाते हैं। इस गली का उपयोग कृषि यन्त्रों, बैलगाड़ियों तथा सामूहिक उत्पादन रखने तथा गाँव के कुँएं आदि बनाये जाने में किया जाता है। ऐसे गाँवों में स्कूल सबसे दूर होते हैं। इसको कॉमन विलेज कोर्टयार्ड के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार के मकान उड़ीसा, आन्ध्र, काठियावाड़ तथा गुजरात आदि में पाये जाते हैं। इस प्रकार के गाँवों में एक अथवा दो कम्यूनीटी रहती हैं। कम्यूनिटियों की संख्या बढ़ने पर उपर्युक्त व्यवस्था में संशोधन भी सम्भव है।

इस प्रकार की मकान व्यवस्था में परिवार स्थायी रूप से खेती करने वाला होता है। उसके पास एक से अधिक झोपड़े रहते हैं। इन मकानों में चौकोर आँगन के दो तरफ झोपड़ों की कतारें तथा शेष दो तरफ झाड़ियों की दीवारें होती हैं। इस प्रकार के मकान पूर्वी तथा पश्चिमी तटों एवं दक्षिण भारत के उन भागों में पाये जाते हैं जहाँ शुष्क गर्म तथा धूलभरी हवाएँ चलती हैं।

मकान बनाने की (चौथी) परम्परा में दो समानान्तर झोपड़े खड़े किये जाते हैं और बीच के स्थान को एक तरफ से झाड़ियों (Fence) से बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार के मकान उड़ीसा, बंगाल, आसाम, त्रिपुरा आदि प्रदेशों में पाये जाते हैं। सभी मकान मुख्य रूप से ९०° के कोण पर बनाये जाते हैं और कुछेक सदर्भों में आँगन मकान के भीतर तथा बाहर दोनों तरफ रहते हैं। कहीं-कहीं दो समानान्तर मकानों के बीच के क्षेत्र को तीसरा एवं चौथा झोपड़ा बनाकर बन्द भी कर दिया जाता है। इस प्रकार की

मैदानों तथा अच्छी तरह से जलमग्न होती है और चावल मुख्य कृषि उपज होती है, पाई जाती है। इन बस्तियों की आकृति समकोणिक होती है। बंगाल, त्रिपुरा, आसाम तथा उड़ीसा के तटवर्ती प्रदेशों के कुछ भागों में भी ऐसी बस्तियां अपवाद नहीं हैं। महाराष्ट्र के उन क्षेत्रों मे भी, जहां बहुत प्राचीन काल मे सुरक्षा के लिये किलेबन्दी अनिवार्य थी ऐसी बस्तियां पाई जाती हैं। तालाब से सिंचाई करने वाले क्षेत्रों जैसे मैदान ज़िला (कर्नाटक) रायलसीमा (आंध्र) तथा तमिलनाडु के ऊंचे भागों में भी इस प्रकार की बस्तियाँ पाई जाती हैं। गंगानगर (राजस्थान) तथा पंजाब में नहरों द्वारा सिंचाई होने के कारण केन्द्रीय समकोणिक बस्तियां पाई जाती हैं। इन क्षेत्रों में अधिक बाढ़ की सम्भावनाएं रहती हैं। चावल तथा जूट की खेती होती है खेतों में पानी भरा रहता है, इसलिए गांव घने तथा बाढ़ सतह से ऊपर बसाये जाते हैं। यहां की जलवायु नम तथा आर्द्र और वर्षा भी अधिक होती है, इसलिए मिट्टी एवं घासफूस के बने हुए मकान अधिक टिकाऊ नहीं होते हैं।

प्रकीर्ण संहत बस्तियां पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी मध्य-प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश मैदान (कर्नाटक) तमिलनाडु मे पाई जाती हैं। इस प्रकार के गाँव किसी कोर (Core) के सहारे अथवा उससे कुछ दूर बसते हैं। इन बस्तियों के लिये समतल मैदान तथा पहाड़ियों के सगमस्थल सबसे उपयोगी होते हैं। यहां जल निकासी की समस्या नहीं रहती है। परन्तु धूल की आंधियां, तेज धूप तथा जल की कमी का अनुभव किया जाता है।

ग्रामीण बस्तियों की वर्तमान आकृतियों के बनने में अनादिकाल से प्राथिक सामाजिक धार्मिक एव सांस्कृतिक तत्वों ने कभी अकेले तथा कभी मिलकर काम किया है। केन्द्रीय समकोणिक बस्तियों को छोड़कर अन्य किस्मों की बस्तियों में यदि आदिमवासियों की जनसंख्या अधिक रही है तो उनमे वंशानुसार गतिशीलता तथा उसके अनुकूल सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास हुआ है।

□□□

बस्तियाँ मुख्य रूप से पाई जाती हैं। घाटियों में जल तथा मकानों में आदिम जातियाँ रहती हैं। ऐसे प्रदेशों मे भूमि कम उपजाऊ होती है, तथा चलती-फिरती खेती की जाती है। जगली उत्पादनों को इकट्ठा करते हैं तथा खेतों को सीढ़ीनुमा बनाने मे रात-दिन जुटे रहते हैं। इस प्रकार की बस्तियों मे जल निकासी तथा जल जमाव पर रोकथाम तथा सुरक्षा की व्यवस्था व्यक्तिगत आधार पर अलग-अलग की जाती है। इस प्रकार की बस्तियाँ दार्जिलिंग सरगुजा, रायगढ, बालाघाट, शहडोल (मध्य-प्रदेश), पश्चिमी तथा पहाडी भाग (उडीसा), उत्तराखण्ड (उत्तर प्रदेश), डोडा, अनतनाग उधमपुर (काश्मीर) भील क्षेत्र, नीलगिरि आदि मे पाई जाती हैं।

रेखाकार बस्तियाँ सड़को तथा नदियों के समानान्तर पाई जाती हैं। सड़कों का उपयोग गाँव की सम्पत्ति, पशुओ का चारा एवं कृषि-यन्त्रो आदि को रखने के लिये किया जाता है। इस प्रकार की बस्तियो का जन्म सामूहिक रूप से कृषि मे आर्थिक सुविधाओं को बढाने, गाँव मे सफाई रखने, मनुष्य एव यान्त्रिक ससाधनों के शोषण, सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता बनाये रखने, सामुदायिक जलपूर्ति योजना, सुरक्षा तथा सरक्षण के लिये किया जाता है। ऐसी बस्तियाँ बालाघाट रायगढ, मण्डला (मध्य प्रदेश) मे नदियो के किनारों पर पाई जाती हैं। गजाम, बस्तर, छत्तीसगढ क्षेत्रों तथा उड़ीसा के उत्तर-पश्चिम एव उत्तर-पूर्व की तरफ भी ऐसी बस्तियाँ पाई जाती हैं। यह आदिमवासियों का इलाका है। इन गाँवो मे आदिम जातियो की एक-एक समुदाय रहती है। अधिक होने पर बस्तियों मे परिवर्तन समुदाय विशेष की अभिरुचि के अनुसार देखने को मिलता है। इस प्रकार की बस्तियाँ आंध्र तथा उडीसा के उन इलाकों मे पाई जाती हैं जहाँ बड़े पैमाने पर मंदिरों को दान देने तथा जजमानी प्रथाएँ अधिक थी। इस प्रकार की बस्तियाँ गुजरात के आदिमवासी रहित क्षेत्रो मे भी एक-दूमरे के समानान्तर रूप मे पाई जाती हैं। महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु मे भी ऐसी बस्तियाँ अपवाद नही हैं। जहाँ आदिमवासियों की बस्तियाँ घाटियों तथा मैदानो में पाई जाती हैं। यह प्राचीनकाल से लड़ाइयों का क्षेत्र रहा है। दार्जिलिंग, मनीपुर, उत्तरप्रदेश, पजाब, सिक्किम, तटवर्ती कर्नाटक, तथा केरल के ऊँचे भागों मे जहाँ लूटपाट का भय नहीं था रेखाकार बिना किलेबन्दी की बस्तियाँ पाई जाती हैं। परन्तु इसके प्रतिकूल जहाँ लूटपाट तथा आक्रमण की आशंकाएं थीं वहाँ बस्तियाँ रेखाकार हैं और उनकी किलेबन्दो होती हैं। युद्धलिप्त आदिमवासी इन क्षेत्रो मे चलती-फिरती खेती करते थे जिसे किसी भी स्तर पर नष्ट करने और स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाने मे उनको कोई भी हिचक नहीं होती थी। परन्तु दूसरी तरफ युद्ध न चाहने वालों ने पूरी पहाड़ियों को सीढ़ीनुमा कृषि योग्य खेतों मे बदल रखा था। जिनके सहारे वे चारों तरफ निचले मैदानों मे उतर सकते थे। इनमे सिंचाई की व्यवस्था थी। आसाम, त्रिपुरा, प. बगाल तथा उड़ीसा मे छोटी-छोटी नदियो के किनारों पर रेखाकार बस्तियाँ पाई जाती हैं। त्रिपुरा, मुर्शिदाबाद, नादिया, चौबिस परगना, बालासोर तथा महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु के अनेक भागों और लद्दाख प्रदेश मे मृन एव छोटी-छोटी नदियों के किनारों पर बसे हुए गाँवों मे मछली पकडने का मुख्य व्यवसाय किया जाता है।

केन्द्रकीय समकोणिक बस्तियाँ भारत के पूर्वी भाग में जहाँ भूमि अधिक उपजाऊ,

हैं। दूसरी तरफ कुछ प्राकृतिक प्रदेश अपने निर्माण की प्रक्रिया में हैं। उदाहरण के लिये मिर्जापुर (उ० प्र०) में सोन पार प्रदेश तथा कोटा-रावतभाटा प्रदेश (राजस्थान) लिये जा सकते हैं जो आधुनिकता तथा औद्योगीकरण के कारण एक नये प्रदेश के रूप में उभर रहे हैं।

अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत को प्राकृतिक भागों तथा प्राकृतिक प्रदेशों में बांटने का सबसे पहला प्रयास मैकफरलेन (McFarlane) ने किया था। इन्होंने भारत को दो—१. प्रायद्वीपीय तथा २. अतिरिक्त प्रायद्वीपीय, प्राकृतिक भागों में विभाजित किया था और इन प्राकृतिक विभागों को पुनः निम्न प्रदेशों में बाँटा था :

(१) प्रायद्वीपीय भारत

(क) पूर्वी तटीय प्रदेश।	(ख) पश्चिमी तटीय प्रदेश।
(ग) दक्षिणी पठारी प्रदेश।	(घ) उत्तरी पूर्वी दक्न।
(ङ) राजस्थान की ऊँची भूमि।	(च) गुजरात का मैदान।
(छ) काली मिट्टी का प्रदेश।	

(२) अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत

(क) हिमालय प्रदेश।	(ख) उत्तरी-पूर्वी पहाड़ियाँ।
(ग) गंगा की निचली घाटी।	(घ) गंगा की मध्य घाटी।
(ङ) गंगा की ऊपरी घाटी।	(च) थार का मरुस्थल।

उसके पश्चात् सन् १९२४ में प्रसिद्ध भूगोलविद् प्रो० एल० डी० स्टैम्प तथा बेकर ने स्वतंत्र रूप से बड़ा ही बौद्धिक, वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण विभाजन प्रस्तुत किया। दोनों विद्वानों द्वारा सुझाये गये विभाजन चूँकि आपस में काफी मिलते-जुलते हैं इसलिए प्रो० स्टैम्प के द्वारा किये गये भौगोलिक-विभाजन अधिक ग्राह्य हो पाये हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिये लेखक पाठकों के समक्ष दोनों के द्वारा सुझाये गये विभागों तथा प्रदेशों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इन्होंने सर्वप्रथम सम्पूर्ण भारत को तीन प्राकृतिक विभागों, फिर प्रत्येक को कई प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करते समय सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए सभी पहलुओं का अच्छी तरह अध्ययन किया। प्रो० स्टैम्प के विभाजन और अध्ययन के पश्चात् भारतीय उप-महाद्वीप में बहुत से राजनैतिक उथल-पुथल हुए और परिणामस्वरूप कुछ भौगोलिक प्रदेश आंशिक अथवा पूर्ण रूप से पाकिस्तान में चले गये। ऐसे प्रदेशों की चर्चा यहाँ नहीं की जायेगी। इसी प्रकार अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उन भौगोलिक प्रदेशों का भी अध्ययन यहाँ नहीं किया गया है जो राजनैतिक दृष्टि से अब भारत के अंग नहीं रहे हैं। प्रो० स्टैम्प के द्वारा सुझाये गये विभाग/प्रदेश निम्न प्रकार हैं :

(१) उत्तरी पर्वतीय विभाग (हिमालय)

(क) उत्तरी-पूर्वी पहाड़ियाँ।	(ख) पूर्व मुख्य हिमालय प्रदेश।

अध्याय १२

प्राकृतिक भाग एवं प्राकृतिक प्रदेश[1]

अंतर एवं विभाजन का आधार

पाठक प्राकृतिक विभाग एवं प्राकृतिक प्रदेशों के समझने मे अक्सर भूल करते हैं। दोनों मे बहुत कम अंतर होने के कारण ऐसी भूलों का होना स्वाभाविक भी होता है। प्राकृतिक विभागों का निर्धारण देश विशेष की भौमिकी एवं स्थलाकृति के आधार पर किया जाता है जबकि प्राकृतिक प्रदेशो के निर्धारण मे, भौमिकी एव स्थलाकृति के अतिरिक्त जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, पशुधन, मानवजीवन तथा उनके आर्थिक एव सास्कृतिक स्तरों पर गहराई से विचार किया जाता है। इस तरह यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि किसी देश के जलवायु, मानवजीवन तथा आर्थिक स्तर आदि का जितनी ही सूक्ष्मता और स्थानीय विविधताओं को महत्व देते हुए अध्ययन किया जावेगा उतने ही प्राकृतिक प्रदेश एवं उपप्रदेश बनते जाएँगे।

देश की विशालता, जलवायु की विविधताओ और स्थलाकृति के अनुसार प्राकृतिक वनस्पति मे भिन्नता आ जाती है। उदाहरणस्वरूप यदि भारत के कुछ प्रदेशों मे भूमध्य-रेखीय वन पाये जाते हैं तो कहीं वनस्पतिहीन व प्यासा मरुस्थल है। कहीं १५०० से. मी. वर्षा होती है तो कहीं ८—१० वर्षों तक वर्षा होती ही नही। इन भौगोलिक परिस्थितियो ने देश के विभिन्न भागों मे निवास करने वाले मानव तथा पशु-पक्षियों के जीवन और कार्य-कलापो को अत्यधिक प्रभावित किया है। उदाहरण के लिये कुछ लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है तो कुछ लोग पूरे दिन लकडी के गट्ठर सिर पर ढोते फिरते हैं, कुछ लोग पशुओं के साथ चरागाहों मे घूमते रहते हैं। प्राकृतिक विभागों अथवा प्रदेशो की सीमाओ के बारे में एक बात और स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसी सीमाएँ एकाएक अथवा अचानक नहीं बनती हैं। प्रदेशों की सीमाएँ जलवायु की दशाओ का अतिक्रमण अथवा प्रभाव को अस्वीकार कर सकती हैं। इस प्रकार भारत के प्राकृतिक प्रदेशों का अध्ययन यदि भारतीय दृष्टिकोण से गम्भीरतापूर्वक एवं खण्डों में किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि कुछ प्राकृतिक प्रदेश भौमिकी, जलवायु, आर्थिक, सास्कृतिक, सभ्यता, शिक्षा, औद्योगिक विकास तथा आवागमन आदि की दृष्टि से पूरी तरह निर्मित हो चुके

१. वर्तमान अध्याय प्रो. रामलोचनसिंह, अध्यक्ष भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा संपादित एव नेशनल ज्योग्राफिकल सोसाइटी आफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित 'इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी' पर आधारित है। विस्तृत अध्ययन एवं जानकारी के लिए पाठक उस पुस्तक का अध्ययन मानचित्रों का अवलोकन तथा उपयोग कर सकते हैं।

फेर बदल सुझाया है :

प्राकृतिक विभाग	प्राकृतिक प्रदेश	उप-प्रदेश
(१) पर्वतीय प्रदेश (प्रायद्वीप पर्वतों के अलावा)	(क) काश्मीर की घाटी	
	(ख) मध्यवर्ती हिमालय	
	(ग) उप-हिमालय प्रदेश	
	(घ) पूर्वी उच्च प्रदेश	(i) आसाम की पहाड़ियाँ
		(ii) शिलांग पठार (मेघालय)
(२) सतलज-गंगा का मैदान	(क) थार प्रदेश	
	(ख) सतलज-गंगा घाटी प्रदेश	
	(ग) गंगा की ऊपरी घाटी	
	(घ) गंगा की मध्यवर्ती घाटी	
	(ङ) गंगा की निचली घाटी	(i) ब्रह्मपुत्र घाटी
		(ii) गंगा ब्रह्मपुत्र का निचला मैदान
		(iii) गंगा का डेल्टा प्रदेश
(३) प्रायद्वीपीय भारत	(क) राजस्थान के अन्य प्रदेश	(i) उत्तरी-पश्चिमी भाग
		(ii) मेवाड़ का मैदान
		(iii) दक्षिणी-पूर्वी भाग
	(ख) दकन का लावा	(i) मध्य-प्रदेश का पठार
		(ii) पश्चिमी घाट
		(iii) महाराष्ट्र का दकन प्रदेश
	(ग) उत्तरी-पूर्वी पठारी प्रदेश	(i) महानदी बेसिन
		(ii) गोदावरी बेसिन
		(iii) पूर्वी घाट
		(iv) गोलकुण्डा तटीय प्रदेश
	(घ) दक्षिणी पठार	(i) कडप क्षेत्र
		(ii) बल्लारी क्षेत्र
		(iii) नीलगिरी क्षेत्र
		(iv) तमिल क्षेत्र
		(v) मलाबार तट प्रदेश
		(vi) कारोमण्डल प्रदेश

(ग) उप-हिमालय प्रदेश। (घ) लद्दाख प्रदेश।

(२) उत्तर का विशाल मैदान

(क) गंगा का ऊपरी तथा सतलज का मैदान। (ख) गंगा का निचला मैदान।
(ग) गंगा का मध्यवर्ती मैदान। (घ) ब्रह्मपुत्र की घाटी।

(३) दक्षिण पठार

(क) कच्छ-काठियावाड़-गुजरात प्रदेश। (ख) पश्चिमी तटीय प्रदेश।
(ग) कर्नाटक प्रदेश। (घ) पूर्वी सरकार प्रदेश।
(ङ) दकन प्रदेश। (च) लावा प्रदेश।
(छ) उत्तरी पूर्वी पठार। (ज) मध्य भारत प्रदेश।
(झ) राजस्थान का पठारी प्रदेश। (ञ) थार का रेगिस्तान।

सन् १९३० में कुछ सुधारों के पश्चात् प्रो० एन० एल० बेकर ने अपने अध्ययनों के आधार पर देश के किये गये विभागों/प्रदेशों को प्रस्तुत किया। उनके विभाजन पद्धति को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

(१) हिमालय प्रदेश

(क) पूर्वी हिमालय। (ख) पश्चिमी हिमालय।
(ग) उप-हिमालय। (घ) उत्तरी-पूर्वी हिमालय।

(२) उत्तरी मैदान

(क) असम की घाटी प्रदेश। (ख) गंगा का डेल्टा प्रदेश।
(ग) सतलज-गंगा का पूर्वी मैदान। (घ) सतलज-गंगा का मैदान।

(३) प्रायद्वीप

(क) अरावली और विन्ध्याचल के उच्च प्रदेश।
(ख) काठियावाड़-गुजरात प्रदेश।
(ग) पूर्वी तट (i) उत्तरी (ii) दक्षिणी।
(घ) बरार तथा उड़ीसा के उच्च प्रदेश।
(ङ) छत्तीसगढ़ के मैदानी प्रदेश।
(च) मध्यवर्ती उच्च भारत (i) पश्चिमी (ii) पूर्वी।
(छ) नागपुर की ऊँची भूमि।
(ज) दकन (i) उत्तरी (ii) दक्षिणी।
(झ) पश्चिमी घाट (i) उत्तरी (ii) दक्षिणी।

सन् १९३२ में करांची विश्वविद्यालय के भूगोलशास्त्री डॉ० पीठवाल ने भारत के प्राकृतिक विभाग/प्रदेशों को भौगोलिक जगत् के समक्ष रखा। इनके द्वारा सुझाये गये विभागों में सबसे बड़ी बात यह थी कि इन्होंने अब तक चले आ रहे तीन प्राकृतिक विभागों को ज्यों का त्यों मान लिया परन्तु प्रदेशों के विभाजन में कुछ परिवर्तनों के साथ निम्न

इसके पश्चात् प्रो० श्री० एच० के० स्पेट ने सन् १९५४ ई० में अपने 'भारत तथा पाकिस्तान' नामक पुस्तक में प्रादेशिक अध्ययन को अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए सम्पूर्ण भारत को ४ प्राकृतिक विभागों और जिनको पुन २२५ उप-विभागों में विभाजित किया है[१] वृहत्तर भारत के सुप्रसिद्ध भूगोलशास्त्री तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग के अध्यक्ष प्रो० रामलोचनसिंह ने पूरे भारत को ४(Macro-lavel) तथा २८ मध्यम(Mcro-lavel) प्रदेशों में विभाजित किया है। आपने मध्यम प्रदेशों को पुनः ६७ प्रथम श्रेणी (First-order Regions) तथा १६२ द्वितीय श्रेणी प्रदेश (Second order Regions) में विभाजित किया है। इन भागो तथा प्रदेशों को चित्र ५५ मे दिखाया गया है।

भारत को उपर्युक्त भौगोलिक प्रदेशों में बांटने के प्रयासों को देखकर पता चलता है कि वृहत्तर भागों को भी निश्चित करने मे विद्वानो मे मतभेद रहे है। इन कार्य मे विभिन्न विद्वानो की व्यक्तिगत सुविधाएँ, शोध-सूत्रों तथा विभिन्न कारकों का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई पड़ता है।

पाठक अब तक अनुमान लगा चुके होंगे कि विभिन्न विद्वानो द्वारा अनेकानेक शोध-सूत्रों तथा कारकों के आधार पर प्रस्तुत किये गये प्राकृतिक विभागों तथा प्रदेशों का वर्णन अलग-अलग कितना कठिन है। भारत को प्राकृतिक विभागो एव प्रदेशों में बाँटने की प्रक्रिया एक दिन मे पूरी नहीं हुई है और न ही वर्तमान विभाजन अन्तिम ही कहा जा सकता है। इसलिए यह विषय भविष्य के पाठकों तथा शोध-कर्त्ताओं की बौद्धिक एवं सारस्वत उपलब्धियों की अभिव्यक्ति हेतु अब भी खुला है। जहाँ तक इनके सामान्य परिचय देने की बात है प्रो० रामलोचनसिंह के द्वारा किये गये वर्गीकरण के अनुसार प्राकृतिक प्रदेशों का अध्ययन किया गया है।

प्रो० रामलोचनसिंह के द्वारा किये गये प्राकृतिक विभागों एव प्रदेशों को नीचे तालिका बद्ध किया गया है।

मध्यम स्तर प्रदेश	प्रथम श्रेणी प्रदेश	द्वितीय श्रेणी प्रदेश
(अ) उत्तर का विशाल मदान		
(i) राजस्थान का मैदान	(१) मरुस्थली	(अ) जैसलमेर मरुस्थली
		(ब) बाड़मेर मरुस्थली
	(२) राजस्थान बांगर	(स) बीकानेर-चुरू मरुस्थली
		(द) घघर मैदान
		(य) शेखावाटी प्रदेश
		(र) नागौर प्रदेश
		(ल) लूनी बेसिन
(ii) पंजाब का मैदान	(३) उत्तरी पंजाब मैदान	(अ) होशियारपुर-चंडीगढ़ मैदान

१. Spate O. H. K. and Learmonth 'India and Pakistan' Methuen and Co. Ltd, 1967 P. 411.

१	२	३
	(ङ) पश्चिमी तटीय प्रदेश	(i) पश्चिमी सम मैदान
		(ii) कोंकण प्रदेश
		(iii) दक्षिणी तटीय प्रदेश
	(च) पूर्वी तटीय प्रदेश	(i) उत्तरी तटीय प्रदेश
		(ii) कर्नाटक प्रदेश

लाहौर विश्वविद्यालय के भूगोलशास्त्री प्रो० काजी सयद्उद्दीन अहमद ने सन् १९४४ मे डॉ० पीठवाल के कार्यों की कटु आलोचना की और दक्षिणी पठार के भौगोलिक विभाजन को लेकर दोनों विद्वानो मे गहरा मतभेद रहा। श्री अहमद द्वारा सुझाये गये विभाजनों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होने अब तक चले आ रहे तीन प्राकृतिक विभागों को मानने के साथ ही साथ तटवर्ती मैदानों को भी स्वतन्त्र विभाग मानकर भारत के प्राकृतिक विभागों की सख्या तीन से बढ़ाकर चार कर दी। प्रो० एल० डी० स्टैम्प तक के विद्वान अब तक तटवर्ती क्षेत्र को प्रायद्वीप का ही एक प्रदेश मानते चले आ रहे थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रो० अहमद की भौगोलिक आलोचना और सुझाव अब तक के लगभग सभी भूगोलशास्त्रियो से भिन्न रहे। प्रो० अहमद ने पूरे देश को चार प्राकृतिक भागों तथा निम्न १९ प्राकृतिक प्रदेशों मे विभाजित किया है। इनके द्वारा बताये गये कुछ प्रदेश पाकिस्तान तथा बगला देश मे स्थित है।

(१) प्रायद्वीप के अतिरिक्त पर्वतीय भाग (हिमालय पर्वत श्रेणियाँ)

(क) मुख्य हिमालय (ख) शिवालिक पहाड़ियाँ
(ग) पटेमोर की पहाड़ियाँ (घ) पटकोई-लुसाई पहाड़ियाँ
(ङ) शिलाङ पठार।

(२) सिन्धु-गंगा का मैदान

(क) तराई प्रदेश (ख) चौस प्रदेश
(ग) गगा का ऊपरी मैदान (घ) गगा का मध्य मैदान
(ङ) ब्रह्मपुत्र की घाटी

(३) दकन का पठार

(क) अरावली पहाड़ियाँ (ख) मालवा का पठार
(ग) मध्यप्रदेश की पहाड़ियाँ तथा घाटियाँ (घ) दकन का लावा प्रदेश
(ङ) उत्तरी-पूर्वी पठार (च) पूर्वी-मध्यवर्ती पठार
(छ) दक्षिणी पठार

(४) तटीय मैदान

(क) पश्चिमी तटीय मैदान (ख) पूर्वी तटीय मैदान

१	२	३
(ब) हिमालय पर्वतीय प्रदेश		
(vii) काश्मीर प्रदेश	(१४) दक्षिणी काश्मीर घाटी	(अ) काश्मीर घाटी
		(ब) जम्मू-मीरपुर प्रदेश
	(१५) उत्तरी काश्मीर प्रदेश	(स) जस्कर-लद्दाख प्रदेश
		(द) देवसाई-कर्दू प्रदेश
		(य) गिलगिट-बाल्टीस्थान प्रदेश
		(र) अक्साई चीन प्रदेश
(viii) हिमाचल प्रदेश	(१६) हिमालय हिमाचल	(अ) चन्द्रभाग बेसीन
		(ब) रावी बेसीन
		(स) व्यास बेसीन
		(द) हिमालयी सतलज बेसीन
		(य) ऊपरी यमुना सहायक बेसीन
	(१७) ट्रांस हिमालयन हिमाचल	(र) स्पीती-काल्पा-सतलज बेसीन
		(ल) मालुग बेसीन
(ix) उत्तर-प्रदेश हिमालय	(१८) हिमाद्री	(अ) हिमाद्री श्रेणियाँ
		(ब) हिमाद्री घाटियाँ
	(१६) हिमाचल	(स) टान्स-यमुना बेसीन
		(द) भागीरथी अलकनन्दा बेसीन
		(य) रामगंगा-कोसी बेसीन
		(र) सरयू-काली बेसीन
	(२०) शिवालिक पहाड़ियाँ	(ल) यमुना-गंगा ट्रैक
		(ह) गंगा-रामगंगा ट्रैक्ट
		(स) रामगंगा-काली ट्रैक्ट
(x) पूर्वी हिमालय	(२१) दार्जिलिंग-सिक्किम-भूटान हिमालय	(अ) दार्जिलिंग-सिक्किम हिमालय
		(ब) भूटान हिमालय
	(२२) आसाम हिमालय	(स) डफला प्रदेश
		(द) मीरी प्रदेश

१	२	३
		(ब) ऊपरी बारी दोआब
		(स) जलन्धर का मैदान
		(द) पंजाब मालवा
	(४) दक्षिणी पंजाब मैदान	(य) अम्बाला मैदान
		(र) पूर्वी हरियाणा
		(ल) पश्चिमी हरियाणा
		(ह) दक्षिणी हरियाणा
(iii) ऊपरी गंगा का मैदान	(५) ऊपरी गंगा का मैदान (उत्तरी)	(अ) रोहिल खण्ड मैदान
		(ब) अवध का मैदान
	(६) ऊपरी गंगा का मैदान (दक्षिणी)	(स) ऊपरी गंगा-यमुना दोआब
		(द) ट्रान्स यमुना मैदान
		(य) निचला गंगा-यमुना दोआब
(iv) मध्य गंगा का मैदान	(७) मध्य गंगा का मैदान (उत्तरी)	(अ) गंगा-घाघरा जल-विभाजक
		(ब) सरयूपार मैदान
		(स) मिथिला मैदान
		(द) कोसी मैदान
	(८) मध्य गंगा का मैदान (दक्षिणी)	(य) सोन-गंगा जल-विभाजक
		(र) मगध-अंगा मैदान
(v) निचला गंगा का मैदान	(९) उत्तरी बंगाल का मैदान	(अ) बरिण्ड ट्रैक्ट
		(ब) तिस्ता बाढ क्षेत्र
	(१०) मुख्य डेल्टा प्रदेश	(स) मोरिबण्ड डेल्टा
		(द) परिपक्व डेल्टा
		(य) क्रियाशील डेल्टा
	(११) रार मैदान	(र) मयूराक्षी मैदान
		(ल) बांकुरा उच्च-भूमि
		(ह) मिदनापुर उच्च-भूमि
(vi) आसाम घाटी	(१२) ऊपरी आसाम घाटी	(अ) उत्तरी भाग
		(ब) दक्षिणी भाग
	(१३) निचली आसाम घाटी	(स) उत्तरी भाग
		(द) दक्षिणी भाग

१	२	३
(xv) विन्ध्याचल-बुन्देलखण्ड प्रदेश	(३१) उत्तरी विन्ध्याचल बुन्देलखण्ड	(अ) रीवा-पन्ना पठारी क्षेत्र
		(ब) मिर्जापुर-रोहतास गाढ पठार
	(३२) दक्षिणी विन्ध्याचल बुन्देलखण्ड	(स) बघेल खण्ड
		(द) छिन्दवाड़ा-मैकाल पठार
		(य) नर्मदा-सोन ट्रफ
(xvi) छोटा नागपुर प्रदेश	(३३) उत्तरी छोटा नागपुर	(अ) पलामू उच्च प्रदेश
		(ब) हजारीबाग पठार
		(स) दामोदर घाटी
		(द) सथाल परगना उच्च भूमि
	(३४) दक्षिणी छोटा नागपुर	(य) पाटलैण्ड
		(र) रांची पठार
		(ल) सिंहभूम क्षेत्र
(xvii) मेघालय-मिकिर प्रदेश	(३५) पश्चिमी मेघालय-मिकिर	(अ) उत्तरी गारो प्रदेश
		(ब) दक्षिणी गारो प्रदेश
	(३६) मध्य मेघालय मिकिर	(स) उत्तरी खासी प्रदेश
		(द) दक्षिणी खासी प्रदेश
	(३७) पूर्वी मेघालय मिकिर	(य) जयन्तिया प्रदेश
		(र) पश्चिमी मिकिर प्रदेश
		(ल) पूर्वी मिकिर प्रदेश
(viii) महाराष्ट्र प्रदेश	(३८) महाराष्ट्र सह्याद्री	(अ) उत्तरी महाराष्ट्र सह्याद्री प्रदेश

१	२	३
		(य) अबोर प्रदेश
		(र) मिश्मी प्रदेश
(xi) पूर्वांचल प्रदेश	(२३) उत्तरी पूर्वांचल	(अ) लोहित-तिराप प्रदेश
		(ब) नागालैण्ड
	(२४) दक्षिणी पूर्वांचल	(स) मनीपुर प्रदेश
		(द) मीजो प्रदेश
		(य) त्रिपुरा कछार प्रदेश
(स) पठारी उच्च प्रदेश		
(xii) उदयपुर-ग्वालियर प्रदेश	(२५) अरावली उच्च-भूमि	(अ) उत्तरी अरावली प्रदेश
		(ब) मध्य अरावली प्रदेश
		(स) दक्षिणी अरावली प्रदेश
	(२६) चम्बल-सिंध मैदान	(द) मध्य चम्बल बेसीन
		(य) निचला चम्बल बेसीन
		(र) सिन्ध बेसीन
(xiii) मालवा प्रदेश	(२७) उत्तरी मालवा प्रदेश	(अ) पूर्वी माही बेसीन
		(ब) ऊपरी चम्बल बेसीन
		(स) ऊपरी बेतवा बेसीन
	(२८) दक्षिणी मालवा प्रदेश	(द) पश्चिमी विंध्याचल
		(य) मध्य नर्मदा ट्रफ
		(र) पश्चिमी सतपुड़ा
(xiv) बुन्देल खण्ड प्रदेश	(२९) बुन्देलखण्ड मैदान	(अ) रेवाईन पेटी
		(ब) जालौन मैदान
		(स) हमीरपुर मैदान
		(द) बान्दा का मैदान
	(३०) बुन्देलखण्ड उच्च-भूमि	(य) बुन्देलखण्ड नीस प्रदेश
		(र) बुन्देलखण्ड विन्ध्याचल पठारी प्रदेश

१	२	३
		(ब) गढ़जात पहाड़ियाँ
		(स) उत्तरी पूर्वी पठार
	(४५) मध्य महा नदी घाटी	(द) हीराकुण्ड-सोनपुर घाटी
		(य) चौव घाटी
	(४६) दक्षिण-पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश	(र) हीराकुण्ड बोलनगिर बेसीन
		(ल) उड़ीसा घाट प्रदेश
(xxi) दण्डकारण्य	(४७) दण्डकारण्य घाट	(अ) पूर्वी दण्ड-कारण्य घाट
		(ब) मध्य दण्ड-कारण्य घाट
		(स) पश्चिमी दण्ड-कारण्य घाट
	(४८) दण्डकारण्य उच्च प्रदेश	(द) तेल-ओंक घाटी प्रदेश
		(य) बस्तर उच्च भूमि
		(र) इन्द्रावती-साबरी मैदान
(xxii) कर्नाटक पठार	(४६) मालनद (मध्य सह्मीयाद्री)	(अ) उत्तरी मालनद
		(ब) मध्य मालनद
		(स) दक्षिणी मालनद
	(५०) उत्तरी मैदान	(द) बिदर पठार
		(य) गुलबर्गा मैदान
		(र) रायचूर मैदान
		(ल) बेलारी मैदान
		(व) धारवार पठार
		(ह) बीजापुर प्रदेश

१	२	३
		(ब) दक्षिणी महाराष्ट्र सह्यायाद्री प्रदेश
	(३९) ताप्ती-परना घाटी	(स) पश्चिमी ताप्ती-परना घाटी
		(द) पूर्वी ताप्ती-परना घाटी
	(४०) महाराष्ट्र पठार	(य) अजन्ता की पहाड़ियाँ
		(र) गोदावरी घाटी
		(ल) बालाघाट उच्च भूमि
		(व) ऊपरी भीमा घाटी
		(ह) महादेव उच्च भूमि
	(४१) विदर्भ मैदान	(क्ष) वर्धा-पेनगंगा मैदान
		(त्र) वेनगंगा मैदान
(xix) छत्तीसगढ प्रदेश	(४२) रीमलैण्ड	(अ) उत्तरी रीम लैण्ड
		(ब) पश्चिमी रीम लैण्ड
		(स) दक्षिणी रीम लैण्ड
	(४३) छत्तीसगढ़ मैदान	(द) रायपुर-दुर्ग मैदान
		(य) विलासपुर मैदान
		(र) रायगढ़ मैदान
(xx) उड़ीसा उच्च प्रदेश	(४४) उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र	(अ) गंगापुर झारसगुड़ा बेसीन

१	२	३
		भूमि
(द) भारतीय घाट तथा द्वीप समूह		
(xxv) गुजरात प्रदेश	(५८) पश्चिमी गुजरात प्रदेश	(अ) भुज प्रदेश
		(ब) काठियावाड़ प्रदेश
	(५९) पूर्वी गुजरात प्रदेश	(स) अहमदाबाद प्रदेश
		(द) खम्भात प्रदेश
		(य) पूर्वी पहाड़ी प्रदेश
(xxvi) पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश	(६०) कोंकण घाट	(अ) कोंकण घाट (उत्तरी)
		(ब) कोंकण घाट (दक्षिणी)
	(६१) कर्नाटक घाट	(स) उत्तरी कनारा
		(द) दक्षिणी कनारा
	(६२) मलाबार घाट	(य) उत्तरी मलाबार तट
		(र) दक्षिणी मलाबार तट
(xxvii) पूर्वी तटवर्ती मैदान	(६३) तमिलनाडु तटवर्ती मैदान	(अ) दक्षिणी मैदान
		(ब) डेल्टा प्रदेश
		(स) पलार-पोनीआर मैदानी प्रदेश
	(६४) आन्ध्र तटवर्ती मैदान	(द) पेनार प्रदेश
		(य) कृष्णा-गोदावरी डेल्टा
		(र) विशाखापट्टनम् प्रदेश
	(६५) उत्कल तटवर्ती प्रदेश	(ल) चिल्का प्रदेश

१	२	३
	(५१) दक्षिणी मैदान	(क) चित्र दुर्ग प्रदेश
		(ख) तुमकूर प्रदेश
		(ग) बंगलोर प्रदेश
(xxiii) आन्ध्र पठार	(५२) तेलंगाना	(घ) हैदराबाद का पठार
		(च) तेलंगाना पेनेप्लेन
		(छ) कृष्णा घाटी
		(ज) गोदावरी घाटी
	(५३) रायलसीमा	(य) रायलसीमा पेनेप्लेन
		(र) रायलसीमा का पठार
	(५४) आन्ध्र घाट	(ल) उत्तरी आन्ध्र घाट
		(व) दक्षिणी आन्ध्र घाट
(xxiv) तमिलनाडु उच्चभूमि	(५५) दक्षिणी सह्याद्री	(अ) अन्नामलाई-पालनी पहाड़ियाँ
		(ब) कार्डमम पहाड़ियाँ
		(स) अगस्त्यमलाई पहाड़ियाँ
	(५६) तमिलनाडु घाट	(द) नीलगिरि पहाड़ियाँ
		(य) मेट्टूर बेनोर प्रदेश
		(र) तमिलनाडु पहाड़ियाँ
	(५७) कोयम्बटूर मदुराई उच्च प्रदेश	(ल) कोयम्बटूर उच्च भूमि
		(व) मदुराई उच्च

बिखरी हुई पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। पश्चिम की तरफ इसका आधा भाग सेंड्यून्स तथा छोटी-छोटी पहाड़ियों से परिपूर्ण है। इस प्रदेश की सबसे प्रसिद्ध नदी लूनी है जो अजमेर के दक्षिण-पश्चिम से निकलकर दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। अर्द्ध-पश्चिमी भाग बालू के टीबों से आच्छादित कच्छ के रन से प्रारम्भ होकर पंजाब की सीमा तक पाये जाते हैं। बालू के टीबों की शकल तथा आकार को हवाओं की दिशा तथा वनस्पति आच्छादन आदि के आधार पर अनुदैर्घ्य टीबा (सहारा किस्म), धन्वाकार (तुर्किस्तान किस्म) बर्खान्स तथा अनुप्रस्थ टीबे निम्न किस्मों में रखा जाता है। जैसलमेर, बाड़मेर तथा बीकानेर क्षेत्रों में बालू के टीबों के स्थान पर चट्टानी सतहों की अधिकता है। यहाँ चूने के पत्थर तथा बालू की चट्टानें जुरासिक तथा मायोसीन युगों की निर्मितियाँ हैं। जैसलमेर के उत्तर में 'प्लाया' झीलों की बहुतायत है। कहीं-कहीं ग्रिट, काग्लोमरेट, नीस एवं ग्रेनाईट की सतहें भी पाई जाती हैं।
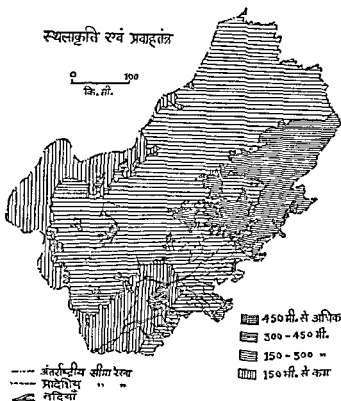
चित्र ५६

जलवायु एवं वनस्पति

यहाँ की जलवायु मानसूनी परन्तु बड़ी कठोर है। ग्रीष्म-ऋतु बड़ी गर्म तथा शुष्क

१	२	३
		(ह) महानदी डेल्टा
		(ख) बालासोर मैदान
(xxviii) भारतीय द्वीप समूह	(६६) अरब सागरीय द्वीप	(म) अमिन द्वीप समूह
		(ब) लक्षद्वीप समूह
		(स) मिनीक्वाय द्वीप समूह
	(६७) बंगाल की खाडी के द्वीप	(द) अण्डमान द्वीप समूह
		(य) निकोबार द्वीप समूह

१. राजस्थान का मैदान

यह मैदान (२४°३१′ उ० से ३०°१२′ उ० और ६९°१५′ पूर्व से ७६°४२′ पूर्व) सिंधु तथा सतलज नदियों के मिचित प्रदेश तथा अरावली के पूर्वी छोर के बीच स्थित है। इसके पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर में पंजाब का मैदान, पूर्व में राजस्थान का ऊँचा भाग तथा दक्षिण में कच्छ का रन स्थित हैं। थार के इस प्रदेश में बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, जालोर, श्रीगंगानगर तथा चूरु जिलों के लगभग सम्पूर्ण तथा पाली, सीकर और झुंझुनु जिलों के पश्चिमी भाग का लगभग १९६७४७ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल सम्मिलित किया जाता है।

भू-ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि बहुत प्राचीन काल में यह मैदान वनाच्छादित एवं मानव बसाव के अनुकूल था। वैदिक काल में सरस्वती इस क्षेत्र से प्रवाहित होती हुई अरब सागर में गिरती थी। यहाँ हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की शहरी सभ्यताएँ विकसित हुई थी। ग्रेवेयर तथा रंगमहल की सभ्यताओं के समय में भी इस मैदान में पर्याप्त वर्षा हुआ करती थी। हुवेनसांग के समय में इस सम्पूर्ण प्रदेश का नाम गुर्जर देश था। गुर्जर तथा प्रतिहार लोग सदैव आपस में युद्ध कार्यों में व्यस्त रहे थे।

स्थलाकृति एवं प्रवाह तंत्र

चित्र ५९ के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इस प्रदेश का सामान्य ढाल पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण की तरफ है। उत्तर-पूर्वी भाग की ऊँचाई ३०० मीटर और दक्षिण में ऊँचाई क्रमशः १५० मीटर हो जाती है। इस क्षेत्र में अनेकानेक छोटी एवं

होता है। इसके पश्चात् क्रमश: बीकानेर जोधपुर तथा जैसलमेर के स्थान आते हैं। संगमरमर के उत्पादन में भी मकराना (नागौर) का सर्वप्रथम स्थान है।

जनसंख्या

यहाँ की जनसंख्या ६४७१०६० (३३ प्र. व. कि. मी.) है। जबकि पूरे राजस्थान का घनत्व ५६ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या का घनत्व पश्चिम की तरफ बड़ी ही तेजी से कम होता जाता है। यहाँ की अधिकतर जनसंख्या उत्तरी तथा पूर्वी भागों में जलाशयों के आसपास निवास करती है। श्रीगंगानगर जिले की असंभावित घनी जनसंख्या वहाँ उपलब्ध सिंचाई के साधनों के कारण है। इस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व २ व्यक्ति प्र० व० कि० मी० (जैसलमेर) से लेकर १४७ व्यक्ति प्र० व० कि० मी० (श्रीगंगानगर) तक है जिसको चित्र ५६ A में दिखाया गया है। सन् १९११–२१ दशक को छोड़कर इस प्रदेश में जनसंख्या निरन्तर बढ़ी है। जनसंख्या की वृद्धि १९५१–६१ दशक में
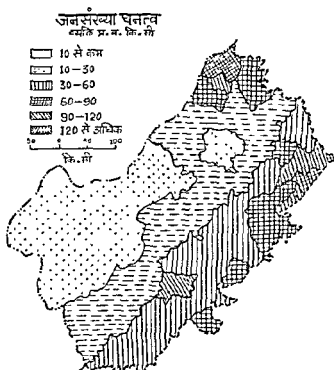
चित्र ५६ A

श्रीगंगानगर तथा बीकानेर जिलों को छोड़कर सर्वत्र हुई थी। इन जिलों में सबसे अधिक वृद्धि (१०२.५%) सन् १९२१–३१ दशक में हुई थी। प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या (८०२ जैसलमेर और ६९४ सीकर) के बीच है जबकि राज्य का अनुपात १००० :

१	१	२	३	४	५	६	७
सीकर	—	१	१	२	—	—	४
चूरू	—	—	४	४	२	१	११
श्रीगंगानगर	—	१	—	४	३	२	१०
झुंझुनू	—	—	२	२	४	१	६
बीकानेर	१	—	—	१	४	—	६
राजस्थान मैदान	२	२	११	२५	१७	५	६२

कृषि

कृषि की जाने वाली भूमि की प्रायधिक कमी होने के प्रतिरिक्त भी यहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि एव पशुचारण है। जोधपुर क्षेत्र में बोई जाने वाली तथा चरागाही एव अन्य प्रकार से बेकार पडी हुई भूमि का प्रतिशत क्रमश: ४०% तथा ६०% है। बांगर स्थिति जिलों में बोई जाने वाली भूमि का प्रतिशत ६० से ७५% तथा अन्य जिलों जैसे सीकर (६६%), चूरू (६७%) नागौर (६५%) श्रीगंगानगर (६४%) जालौर (६३%) बीकानेर (२१%) जैसलमेर (५%) है इसका अवलोकन चित्र ५७ में किया जा सकता है। इसके प्रतिकूल पश्चिमी जिलों में कृषि योग्य बेकार भूमि का प्रतिशत सबसे अधिक

चित्र ५७
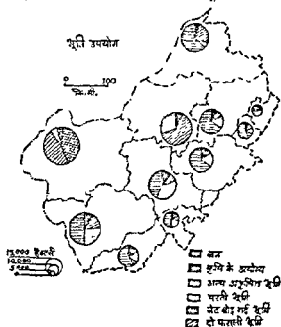
१०८ है। यहां की अधिकांश जनसंख्या देहातो मे रहती है जिसका भी घनत्व प्रति १३ वर्ग कि० मी० पर एक गाँव आता है। निम्न तालिका से यह बात और स्पष्ट हो सकती है।

गाँवों की सख्या तथा विभिन्न साइजों के गाँवों मे रहने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत (१९६१)

तालिका १५८

जिला	गाँवों की संख्या	२०० से कम	२०० से ४९९	५०० से ९९९	१००० से १९९९	२००० से ४९९९	५००० से ऊपर
श्रीगगानगर	९९०	३.७४	२४.५५	३५.१३	२४.३५	२०.२९	१.९४
बीकानेर	३५१	७.१९	२०.६२	३१.११	२६.३४	१४.७४	–
चुरू	४८२	४.५०	२२.९७	४१.५७	२१.०९	९.८५	–
झुंझनु	२७८	१.७८	११ ७४	२८ ८०	२९.३७	२०.४९	७.८२
सीकर	३३४	१.४४	१२.८८	२९.७६	२४.३९	२३.८४	७.६९
जैसलमेर	४२१	१८.१६	३२.७८	२५.८६	१४.१३	४.४१	४.६३
जोधपुर	३११	२.११	१०.३१	२३.३६	२९.५८	३०.१५	४.४९
नागोर	६२६	३.९५	१७.२१	३०.७१	२७.४८	१६.४८	५.०९
पाली	३७०	२.०८	११.१४	२२.९१	२७.१९	२८.८५	७.७५
बाड़मेर	४०६	३.३४	१२.१९	२४.०५	३२.४५	२३.५२	४.४५
जालोर	२२०	१.०१	११.६०	२८.००	३३.५५	२२.६६	३.१८

इस सम्पूर्ण प्रदेश मे ६२ नगर हैं जिनका वितरण बिल्कुल असमान है। नगरों की संख्या उत्तर मे अधिक परन्तु जल, आवागमन के साधनों, जनसख्या के घनत्व तथा आर्थिक ससाधनों की अत्यधिक कमी के कारण इनकी सख्या क्रमशः दक्षिण में (थार के रेगिस्तान) कम होती जाती है। निम्न तालिका मे जिलानुसार नगरों का वितरण दिखाया गया है।

वर्गानुसार शहरों का वितरण (१९६१)

तालिका १५९

जिला	१	२	३	४	५	६	योग
जैसलमेर	—	—	—	—	२	—	२
बाड़मेर	—	—	१	१	—	—	२
जोधपुर	१	—	—	३	—	—	४
नागोर	—	—	२	४	२	—	८
जालोर	—	—	—	२	—	—	२
पाली	—	—	१	२	—	१	४

जैसलमेर मरुस्थली—यह प्रदेश सूखा, न्यूनतम जनसंख्या, न्यूनतम बोई गई जमीन, अधिकतम परती भूमि, पशुपालन मुख्य धंधा, जिप्सम का निर्यात करने वाला प्रदेश है। जोधपुर से रेलमार्ग द्वारा जुड़ा है। जैसलमेर तथा पोकरन सबसे बड़े नगर हैं। इसका भविष्य राजस्थान नहर की सफलता से जुड़ा हुआ है। इसको पश्चिमी तथा पूर्वी दो उप-विभागों में विभाजित किया जाता है।

बाड़मेर-फलोदी मरुस्थली—शुष्क, कृषि तथा पशुपालन मुख्य धंधे, सिंचाई की सम्भावनाएँ न्यूनतम, कृषि भूमि कम तथा इसका भविष्य खनिज तेल उत्पादन की सफलता से जुड़ा हुआ है। बाड़मेर (३८,६३०) तथा फलोदी (१७,३७९) दो मुख्य शहर हैं। इसको बाड़मेर तथा फलोदी दो उप-प्रदेशों में विभाजित किया जाता है।

बाड़मेर-चूरू मरुस्थली—बोई गई भूमि का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक, जिप्सम तथा लिगनाईट, आदि का पर्याप्त भण्डार पाया जाता है। इसको पुनः बीकानेर मैदान तथा द. पूर्वी चूरू दो उप-विभागों में विभाजित किया जाता है।

घग्घर का मैदान—इस उप-प्रदेश में श्रीगंगानगर जिला सम्मिलित किया जाता है। सिंचाई ससाधनों का संतोषजनक विकास हो रहा है। कपास, गन्ना, गेहूँ तथा तिलहन मुख्य फसलें हैं। कृषि जन्य उद्योग-आटा मिलें, सूती तथा ऊनी वस्त्र व्यवसाय प्रमुख हैं। यातायात ससाधनों के विकास एवं शहरीकरण की गतियाँ तेज हैं। श्रीगंगानगर तथा नोहर बाड़ी दो उप-विभाग हैं।

शेखावाटी प्रदेश—कुएँ तथा नलकूपों पर आधारित कृषि, रेल तथा सड़क मार्गों का जाल, भाकरा नांगल जल विद्युत, जनसंख्या घनत्व अधिक है। शहर विकसित हो रहे हैं। इसको पुनः दो—दक्षिण पूर्वी चूरू तथा पश्चिमी सीकर उप-विभागों में विभाजित किया जाता है।

नागौर प्रदेश—प्रतर्क्षेत्रीय नदियाँ तथा नमक की झीलें प्रसिद्ध हैं। नमक उत्पादन अधिक होता है। चना तथा दालें, आदि मुख्य उपजें हैं। यह प्रदेश संगमरमर के लिए जगत् प्रसिद्ध है। इसको साँभर-डीडवाना तथा नागौर दो प्रदेशों में विभाजित किया जाता है।

लूनी बेसीन—तालाबों से सिंचाई की जाती है। ज्वार, बाजरा, गेहूँ, जौ तथा तिलहन मुख्य फसलें हैं। जनसंख्या का घनत्व अपेक्षाकृत अधिक, खनिज ससाधनों की कमी तथा उद्योग धंधे पिछड़े हुए हैं। इसको पाँच—(१) पाली-सुजात मैदान (२) द० पू० जोधपुर मैदान (३) लूनी सीकरी प्रदेश (४) जालोर भीनमाल मैदान (५) लूनी रन प्रदेश उप-प्रदेशों में विभाजित किया जाता है। इस प्रदेश के समस्त भागों एवं उप विभागों को चित्र ५६ में दिखाया गया है।

पंजाब का मैदान

भारत के विशाल मैदान का यह भाग (६५७१४ व. कि. मी.) पंजाब मैदान के नाम से २७°.२६′ उ० ३२°.३०′ उ० अक्षांशों और ७३° ५१′ पू० ७७°.३९′ पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। सांस्कृतिक तथा मानव इतिहास की दृष्टि से इस प्रदेश में बहुत प्राचीन काल

है। कृषि की दृष्टि से सर्वथा बेकार भूमि, जिसमे बस्तियां, सड़कें, नहरें तथा रेलमार्ग आदि सम्मिलित किये जाते हैं, का प्रतिशत सामान्यतः सभी जिलो मे २०% से कम है। यहाँ की कृषि मे ज्वार तथा बाजरा जैसे मोटे अनाजो का सबसे अधिक उत्पादन होता है। श्रीगंगानगर जैसे सिंचित क्षेत्रों मे गेहूँ, जौ तथा मक्का अधिक पैदा किये जाते हैं। इसी प्रदेश में घग्घर नदी की घाटी मे सूरतगढ नामक स्थान पर लगभग ४०,००० एकड भूमि पर रूसी सरकार की सहायता से एक आदर्श कृषि फार्म की शुरुआत सन् १९५६ में प्राचीन बालू के टीबो को समतल एव साफ करके इस फार्म को प्रारम्भ किया गया है। इस क्षेत्र की मिट्टी उपजाऊ आवागमन के साधनों से लाभान्वित तथा सिंचाई ससाधनो से परिपूर्ण है।

दूसरा सबसे प्रसिद्ध व्यवसाय पशुचारण है। भेड़, बकरियों और ऊँटों आदि की संख्या बहुत अधिक है। यह प्रदेश उद्योग धंधो की दृष्टि से बहुत पिछड़ा है। भाकरा नांगल की बिजली उपलब्ध होने तथा रेलमार्गों के खुल जाने से श्रीगंगानगर में कृषि पर आधारित उद्योगो—आटें की चक्की, बिनौला से तेल निकालने, ऊनी-सूतीवस्त्र व्यवसाय, तथा चीनी उद्योग सफलतापूर्वक चलाये जाने लगे हैं (चित्र ५८)। इस प्रदेश मे दो मुख्य मीटरगेज रेल मार्ग दिल्ली-अहमदाबाद तथा श्रीगंगानगर-बीकानेर-जोधपुर एव कांडला को मिलाती हुई
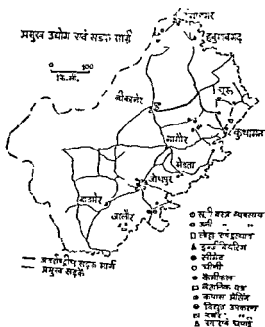
चित्र ५८

बनाई गई हैं। प्रधान नगरो को मिलाती हुई सडकों का भी निर्माण किया गया है। इस प्रदेश के लगभग सभी शहर एक दूसरे से सड़क परिवहन से जुड़े हुए हैं।

स्थान नहान सीमा पर करोड़ चोरी (१२०० मीटर) है। चित्र ६० के देखने से ज्ञात होता है शिवालिक पहाड़ियों का दक्षिणी ढाल इस प्रदेश में प्रवाहित होने वाली असंख्य पहाड़ी नदी नालों से कटा हुआ है। इस मैदान के सबसे दक्षिण में अरावली उत्तर तथा उत्तर-पूर्व की तरफ फैली हुई हैं। जिसके कारण अनेकानेक परन्तु एक दूसरे से अलग अलग पड़ी हुई पहाड़ियों के बीच समतल तथा घसे हुए पहाड़ी-विदर प्राप्त होते हैं। इन विदरो की दिशा मुख्यतः उत्तर उत्तरपूर्व से दक्षिण दक्षिण-

चित्र ६०

पश्चिम है। इसलिए सतह असमान एवं ऊँची नीची है। बालू के टीले एवं बालू की रीजों की अधिकता है पहाड़ी-विदरों में प्राचीनकाल से न केवल पानी की सुविधाओं से अच्छी खेती की जाती रही है परन्तु यहाँ जनसंख्या घनी, आवागमन के साधन अच्छे तथा बड़े नगर स्थित हैं। इसके साथ ही साथ इनसे होकर दिल्ली-हरियाना तथा राजस्थान

से विकसित तथा सुसभ्य मानव रह रहे हैं। राजस्थान तथा पंजाब मैदानों में आदि काल से अब तक जितने परिवर्तन हुए हैं सम्भवत. विश्व के किसी भी भाग मे इतने परिवर्तन अंकित नहीं किए गये होंगे। इन्ही मैदानों मे हड़प्पा की प्राचीन नगरी सभ्यता भी विकसित हुई थी। यहीं आधुनिक काल मे हरितक्रान्ति का परीक्षण भी किया जा रहा है। लेखक का ऐसा मत है कि यह हरितक्रान्ति कोई नवीन एव विदेशी परीक्षण नहीं है बल्कि भारत
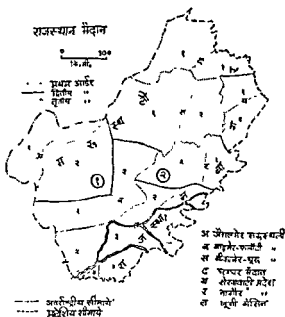
चित्र ५६

की प्राचीन गेहूँ एवं चावल सभ्यताओं का पुनर्स्थापना (Revivel of wheat culture of India) मात्र है। जो पानी की क्रमिक समाप्ति के साथ धीरे-धीरे समाप्त हुई थी और पानी के साथ पुनर्स्थापित हो रही है। महाभारत युग का विश्व प्रसिद्ध धर्मयुद्ध स्थल इसी प्रदेश मे स्थित है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र हूण, गुप्ता तथा मौर्य वंशों, सिकन्दर, चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के क्रियाकलापो और राजनैतिक दाव पेचो का प्राचीनकाल से केन्द्र रहा है। शहाबुद्दीन गौरी, पृथ्वीराज तथा मुगलवंश के बादशाहों के समय से इसका भू-ऐतिहासिक महत्व रहा है। राजनैतिक दृष्टि इसकी सदा से केन्द्रीय स्थिति है।

स्थलाकृति एवं प्रवाह तन्त्र

इस प्रदेश के उत्तर मे शिवालिक पहाड़ियों का ढाल दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम की तरफ है। दक्षिण में अरावली पहाड़ियों का ढाल उत्तर की तरफ है। केवल गुड़गाँव में इस प्रदेश का ढाल दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में है। दिल्ली के उत्तर तथा यमुना नदी के प्राचीन तट के सहारे इस प्रदेश का मैदानी भाग सबसे अधिक ऊँचा है। यहाँ सबसे ऊँचा

हैं। घघर नदी के प्रवाह क्षेत्र मे बाढ के कारण मिट्टियों का कई बार परिवर्तन भी हो चुका है। नवीन मिट्टियो मे मृतिका की मात्रा अधिक है। सतलज नदी के बाढ क्षेत्र में कल्लर जमाव पाये जाते हैं।

प्राकृतिक वनस्पति

इस मैदान का केवल ३.४ प्रतिशत क्षेत्र जंगलों के अन्दर है। यहाँ उष्ण कटिबन्धीय शुष्क पतझड के वनों की प्रधानता है। सामान्य शुष्कता तथा प्राचीन काल से मानव बसाव के कारण पजाब के मैदान में सबसे कम जगल रह गये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन काल में इस क्षेत्र में बहुत घने जंगल थे। वर्तमान वन प्रदेश अम्बाला, रुपड़, होशियारपुर तथा गुरदासपुर जिलों में सबसे अधिक (६८%) है। शिवालिक के ढालों पर जो होशियारपुर तथा रुपड जिलों में स्थित है, कटिदार भाड़ियाँ अधिक पाई जाती हैं इनमें किकर, बबूल प्रधान वृक्ष हैं। मैदानी भागों में शीशम तथा ढाक अधिकता से पाये जाते हैं।

खनिज

नदियों के ऊँचे किनारों पर कंकड़ को छोडकर सम्पूर्ण मैदानी भाग में किसी भी प्रकार की खनिज सम्पत्ति नही पाई जाती है। पहाडी इलाके विशेष रूप से अरावली क्षेत्र के दक्षिणी भाग में थोड़ी मात्रा में लोह-प्रयस्क (४६% लौहांश) पाया जाता है। इसका उत्पादन भी बहुत कम है। अम्बाला तथा महेन्द्रगढ जिलो में चूने का पत्थर अच्छी मात्रा में पाया जाता है जिसका प्रयोग सुराजपुर सीमेन्ट फैक्टरी में किया जाता है। गुड़गाँव तथा महेन्द्रगढ जिलों में स्लेट नामक खनिज पायी जाती है।

जनसख्या

इस मैदान में मिट्टी को छोड़कर अन्य कोई भी मानवानुकूल प्राकृतिक ससाधन नहीं है। शुष्क जलवायु, अधिकतम तापमान तथा मैदान के भू-सांस्कृतिक इतिहास ने यहाँ के लोगों को कठिनाइयो में रहने की अच्छी आदत डाल दी है। इस मैदान की जनसंख्या २१.४ मिलियन होने के वावजूद भी बहुत घना नहीं बसा है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व २२४ व्यक्ति प्रति व. कि. मी. है। विगत ५० वर्षों में यहाँ की जनसंख्या में ६०% की वृद्धि हुई है। परन्तु वितरण असमान है। जनसख्या का सबसे अधिक घनत्व (१८५४) बड़े पैमाने पर शहरीकरण के कारण दिल्ली तथा उसके आसपास है। जनसंख्या का घनत्व जलन्धर (३५०) अमृतसर (३०२) कपूरथला (२०६) रोहतक (२३५) अम्बाला (२३१) कर्नाल (१८६) व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम की तरफ जन-सख्या का घनत्व क्रमशः घटता जाता है। उदाहरण के सगरुर (१८६) जिन्द (१६४) फिरोजपुर (१६१) महेन्द्रगढ़ (१५८) भटिंडा (१५३) तथा हिसार में १११ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. रहते हैं। उपजाऊ तथा पानी की सुविधा वाले क्षेत्रो में जनसख्या का घनत्व २३० से २४० व्यक्ति प्र. व. कि. मी. भी है।

यहाँ की जनसख्या सन् १६०१ में केवल १२.४ मिलियन थी जो ६३% की दर से

को परिवहन मार्ग भी विकसित हुए हैं। इस समूचे मैदान मे नदियों की संख्या तो अधिक प्रतीत होती है परन्तु यहाँ की जलवायु एव स्थलाकृति के कारण बड़े इलाके में स्थायी नदियों की कमी है। जो वर्ष के अधिक दिनों सूखी तथा वर्षा के दिनों में जल-प्रवाही बन जाती हैं। स्थायी नदियों मे रावी, व्यास, सतलज तथा यमुना नदियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं जो हिमालय के बर्फीले स्थानों से निकलती हैं। बिस्त-जलन्धर दोआब का प्रवाहतन्त्र बारी दोआब से बिल्कुल भिन्न है। तीव्र ढालों पर गहरे कटाव तथा नालों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सीमावर्ती क्षेत्रों मे चट्टानों तथा अन्यान्य प्रकार के डेब्रीस का अत्याधिक जमाव है। इनकी लम्बाई तथा चौड़ाई अलग-अलग होती है। इन्हें चोज (Chos) कहते हैं। चोजपेटी की अधिकतम चौड़ाई ३२ कि० मी० से अधिक नहीं है। इस समूचे मैदान मे नदियों ने अपना मार्ग खूब बदला है। अरावली पहाड़ियों से निकलकर उत्तर की दिशा मे बहने वाले नाले बहुत छोटे एवं अस्थायी हैं।

जलवायु

इस मैदान मे अर्ध-शुष्क मानसून किस्म की जलवायु पायी जाती है। समुद्र से दूरी अधिक होने के कारण यहाँ मानसून से अधिक लाभ नहीं हो पाता है। वर्षा कम, तापमान ऊँचा तथा वाष्पीकरण अधिक होता है। इस मैदान में जाड़ा, ग्रीष्म तथा वर्षा की तीन ऋतुएँ होती हैं। जलवायु कारकों के प्रभाव मे, न केवल एक ऋतु से दूसरे ऋतु मे, बल्कि एक वर्ष से दूसरे वर्ष में बड़े अन्तर पाये जाते हैं। अमृतसर में २३.१ से. ग्रे. तथा दिल्ली मे २५.१° से. ग्रे. औसत तापमान रहता है। जून सबसे गर्म महीना होता है और औसत तापमान ३५° से ग्रे. तक पहुँच जाता है। अक्टूबर के अन्त से जाड़े की ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। नवम्बर तथा दिसम्बर का तापमान २०° से. ग्रे. रहता है और जनवरी सबसे ठंडा महीना होता है जबकि तापमान ११ से १४° से. ग्रे. के बीच रहता है। पश्चिम से आने वाली शीतलहरों के फलस्वरूप कभी-कभी तापमान—४° से. ग्रे. तक गिर जाता है जिससे फसलों को भारी क्षति होती है। मार्च से तापमान बढ़ने लगता है। तापमान की दशाएँ सम्पूर्ण मैदान में लगभग एक जैसी है परन्तु वर्षा की मात्रा में जो उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की तरफ कम होती जाती है, भारी अन्तर दिखाई पड़ता है। अधिकांश वर्षा जुलाई से सितम्बर के तीन महीनों में होती है। कभी-कभी चक्रवातों से भी भारी वर्षा हो जाती है। जाड़े के दिनो मे पछुवा हवाओं से वर्षा होती है जिससे फसलों को भारी लाभ होता है। अप्रैल से जून तक दिन भर शुष्क आँधियाँ चलती हैं। मानसून के प्रारम्भ होने के पूर्व धूलभरी आंधियाँ चलती हैं जिनसे कभी-कभी हल्की बूँदाबाँदी भी हो जाती है।

मिट्टी

यहाँ की मिट्टी जलोढ़ किस्म की है। बाँगर के दक्षिणी भाग में प्राप्त होने वाली मिट्टी में बालू के अंश अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ की मिट्टी का कुछ भाग बालू के टीबों से भी प्रभावित है। बलुई मिट्टी मे नाईट्रोजन, फासफोरस तथा पोटासियम की भारी कमी है। उत्तरी तथा पूर्वी भागों मे प्राप्त होने वाली मिट्टियों मे विभिन्न साइजों के कंकड़ पाये जाते

पंजाब मैदान के गाँवों तथा शहरों में आकर बसने वाले शरणार्थियों की संख्या

तालिका १६२

जिला का नाम	शरणार्थियों की संख्या	% बसने वाले शरणार्थियों की संख्या देहात	शहर	नगरी जनसंख्या %	ग्रामीण जनसंख्या %	सम्पूर्ण क्षेत्र पर बोई जाने वाली भूमि का %	प्रति १०० वर्ग किलोमीटर पर गाँवों की संख्या
हिसार	१२७६५७	६१	३९	१५.६	८४.२	८४.२	७५
रोहतक	१२३६४६	४३	५७	१३.२	८५.८	७७.१	१२.६
गुड़गांव	८४५८७	३३	६७	१६.६	८३.२	७५.५	२३.८
करनाल	२५०४७०	५३	४७	१७.०	८२.७	६९.७	१७.०
अम्बाला	१८८८९२	४६	५४	३४.०	६५.२	५९.४	३३.०
लुधियाना	१६९२६७	४६	५४	२९.२	७०.७	७७.८	२५.०
फीरोजपुर	३५८३४१	८१	१९	२०.१	७०.७	७९.२	१४.०
पटियाला	११९५१८	४३	५७	२६.१	७३.४	७९.५	३१.०
भटिंडा	४८१८२	५०	५०	२१.२	७८.४	८७.६	९.६
महेन्द्रगढ़	४९४४	११	८९	९.७	९०.२	८२.७	१५.७
होशियारपुर	१४६६३५	७५	२५	१०.८	८९.१	५६.१	३९.०
जालंधर	२७३६२५	५२	४८	२८.५	७१.४	७६.४	३४.०
कपूरथला	८४६६६	७४	२६	२३.१	७६.४	६७.०	३१.५
अमृतसर	३३२२६०	५७	४३	३०.२	६९.४	६३.७	२३.०
गुरदासपुर	२६७५८१	७२	२८	१९.५	८०.५	६१.७	४३.५
दिल्ली	४१५३९१	५	९५	९५.०	५.०	—	—

बढ़कर १६६१ में २१.४ मिलियन हो गई। दिल्ली में सबसे अधिक (१५५%) वृद्धि हुई है। इस केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र के बाहर ६७% वृद्धि हुई है। यह वृद्धि फीरोजपुर में (६३%) रोहतक (६६) कर्नाल (६१%) अमृतसर (२६%) गुरदासपुर में (४०%) थी।

सन् १६४७ में भारत के विभाजन के कारण जनसंख्या की वृद्धि और भी असमान्य ढंग से हुई थी क्योंकि पाकिस्तान से बडी संख्या में शरणार्थियों ने भारत मे आकर इन्हीं देहातों तथा शहरों मे शरण ली। देखिये आगे तालिका सख्या १६२।

इस मैदान की २६.२% जनसंख्या ५००० से १००,००० जनसंख्या वाले शहरों में रहती है। दिल्ली शहर जहाँ नगरीकरण ६५% है को निकाल देने पर यह प्रतिशत केवल २०.७% रह जाता है। अम्बाला मे शहरीकरण ३४% है। सन् १६६१ मे यहाँ की १५१४६८३० जनसंख्या कुल मिलाकर १८६१७ गाँवों में रहती थी। दिल्ली शहर को छोड़कर सम्पूर्ण मैदान की ग्रामीण आबादी ७६ ३% है। जिसको जिलानुसार तालिका १६२ मे दिखाया गया है। नहरों से सिंचित क्षेत्रों मे गाँवों का वितरण एक समान है। इनके बीच की दूरी लगभग ३ किलोमीटर है। अधिकांश गाँव सहत बस्तियो के रूप मे गोलाकार हैं। असिंचित क्षेत्रों मे गाँव दूर-दूर है। चट्टानी सतह मे गाँव और भी दूर-दूर अर्थात् १०० वर्ग किलोमीटर में केवल २ बड़े गाँव हैं।

कृषि एव उद्योग

इस मैदान की लगभग ७०% जनसंख्या गाँवों में रहती है और सम्पूर्ण क्षेत्र की लगभग ७६% भूमि पर खेती की जाती है। सम्पूर्ण क्षेत्र मे से बोई जाने वाली भूमि का प्रतिशत प्रत्येक जिलों मे अलग-अलग है। सबसे अधिक प्रतिशत जिन्द जिलों मे ८८.२% है। तालिका १६२ मे इस वितरण को दिखाया गया है। खरीफ तथा रबी की दो मुख्य फसलों मे ज्वार, कपास, गन्ना, चावल, गेहूँ, जौ, चना आदि फसलें मुख्य रूप से पैदा की जाती हैं। गेहूँ सबसे मुख्य फसल के रूप मे उगाया जाता है। सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण यहाँ अंग्रेजो के आने के पहले से हुआ है। जिसका वर्णन जलससाधन नामक अध्याय मे किया गया है।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि इस मैदानी भाग में खनिज सम्पत्ति की बिल्कुल कमी है। भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व यह प्रदेश औद्योगिक दृष्टि से बिल्कुल पिछड़ा हुआ था। इस समय पूरे प्रदेश मे बहुत से औद्योगिक प्रतिष्ठान कार्य कर रहे हैं। सूती, ऊनी, वस्त्र व्यवसाय, कुटीर उद्योग, बनियान, मोजे बनाने, कृषि यत्रो, साईकिलों, सिलाई मशीनों, जल के पाईप बनाने आदि बहुत से उद्योग इस मैदान मे सस्थापित किये गये है। चित्र ६१ को देखकर औद्योगिक प्रदेश को दो भागो--(i) उत्तरी औद्योगिक पेटी (ii) दक्षिणी-पूर्वी औद्योगिक पेटी मे विभाजित किया जा सकता है।

इस क्षेत्र का वर्तमान विकास यहाँ के यातायात तथा परिवहन के मार्गों के परिणाम स्वरूप और अधिक चमक पाया है। यहाँ १७,६७४ किलोमीटर अर्थात् प्रति १०० वर्ग किलोमीटर पर सड़क की लम्बाई १८.५ किलोमीटर है। इस क्षेत्र मे ५ राष्ट्रीय सड़क

सम्पूर्ण प्रदेश में सिंचाई की सुविधाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। इनसे होने वाले लाभों के अतिरिक्त नुकसान के प्रति भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। सिंचाई के साधनों के विकास के परिणामस्वरूप अधिकांश जिलों में जल जमाव (Water logging) की समस्या भयंकर होती जा रही है। अनुसंधानों से पता चलता है कि भटिंडा में जल सतह ४५ मीटर की गहराई से २१ मीटर हो गया है और आने वाले २० वर्षों में यही सतह केवल १० मीटर रह सकता है। होशियारपुर जिले में चोज से जमीन का कटाव अधिक हो रहा है। अमृतसर तथा फीरोजपुर जिलो में, जहाँ मुख्यतर जलोढ़ मिट्टी है नहरों के अत्यधिक प्रयोग से सेलाईन तथा अरल्काईन के खतरनाक जमाव हो रहे हैं। कृषि की इन समस्याओं के साथ-साथ उद्योगों में कच्चे माल की कमी हो रही है। जिससे निर्यात क्षमता पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा है।

३. ऊपरी गंगा का मैदान

(७३°.३′ पूर्व से ८२°.२१′ पूर्व तथा २५°.१५′ उ० से ३०°.१७′ उ०) पंजाब मैदान की भाँति यह भी भारत के विशाल मैदान का एक भाग है। इसका क्षेत्रफल १४९०२६ व० कि० मी० (उत्तर-प्रदेश का ५१%) है। ३०० मीटर समोच्च रेखा तथा नेपाल इसकी उत्तरी, यमुना नदी इसकी दक्षिणी सीमा बनाती है। यह सम्पूर्ण प्रदेश सप्त-सिन्धु का अन्तिम पूर्वी भाग माना जा सकता है। इसमें ऐतिहासिक पाँचाल राज्य सम्मिलित है। भारत में जितने बादशाह हुए सभी ने इस प्रदेश पर अपना प्रभाव सदा सर्वदा के लिए बनाये रखना चाहा। इसकी भू-सांस्कृतिक स्थिति से पता चलता है कि इसका विकास *सिन्धु घाटी की सभ्यता से कुछ बाद में हुआ था। वैदिक साहित्यों में कुरु, पाँचाल,* काशी, कौसल, तथा विदेह की चर्चा आती है। उन दिनों गंगा नदी मथुरा तथा इन्द्रप्रस्थ राज्यों की सीमा बनाती रही होगी। इस प्रदेश में राजधानियों को मिलाते हुए 'राष्ट्रीय' सड़क मार्ग भी बनाये गये थे। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, मिथिला, वैशाली तथा पाटलीपुत्र आदि के बीच राष्ट्रीय स्तर की सड़कें थीं। एक अन्य मार्ग गंगा नदी के दक्षिण में इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, काशी और रोहितगिरि के बीच भी था। वर्तमान राष्ट्रीय मार्ग नम्बर २ (जी० टी० रोड) का जीर्णोद्धार अशोक महान् ने करवाया था। इन्द्रप्रस्थ, आगरा-उज्जैन होती हुई पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाहों तक और कौशाम्बी, विदिशा राजमार्ग पश्चिमी तथा मध्य भारत को मिलाते थे। बौद्ध तथा जैन धर्मों के प्रादुर्भाव के साथ-साथ भारत के और अधिक भागों में आवागमन प्रारम्भ हुआ। मुसलमानों ने पश्चिम से देश पर आक्रमण किया इसलिए पश्चिमी भारत में मुसलमानों ने परिवहन एवं यातायात के *साधनों का विकास किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों का शासन हमारे देश में पूर्व की तरफ* से सारे देश में फैल पाया था। इसलिए देश के पूर्वी भाग में इन्होंने गमनागमन को आसान बनाया। भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७) के समय सभी मार्गों का समन्वय एवं जीर्णोद्धार किया गया।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतन्त्र

किसी स्पष्ट स्थलाकृति के अभाव में गंगा के ऊपरी मैदान का कोई तर्कसंगत और

चित्र ६१

मार्ग हैं। सभी सड़कें मैदानी भाग को दिल्ली से मिलाती हैं। इस मैदान में २८३४ किलोमीटर चौड़ी तथा ६०५ किलोमीटर मीटरगेज अर्थात् ३.६१ किलोमीटर प्रति १०० वर्ग किलोमीटर रेल्वे लाईन है।

सामान्य ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व को है। प्रारम्भ में यह प्रदेश प्राकृतिक वनों से आच्छादित था। परन्तु धीरे-धीरे वन साफ होते रहे। परिणामस्वरूप इस समय जंगलों के कुछ ही बिखरे हुए टुकड़े यत्रतत्र दिखाई पड़ते हैं। जिलानुसार जंगलों का वितरण तराई क्षेत्र में, उदाहरण के लिए लखीमपुर (२७.५%) पीलीभीत (३०.७%) सहारनपुर, बिजनौर, बहराईच (१३.०%) में अधिक है। इसके प्रतिकूल मैदानी भाग में जंगलों का प्रतिशत नगण्य उदाहरणार्थ प्रतापगढ़ (०.१%) मेरठ (३.०%) है। यहाँ के वनों को उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र पतझड़, उष्ण कटिबन्धीय नम तथा अर्ध उष्ण कटिबन्धीय शुष्क प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। तराई तथा भाँगर के वनोत्पादनों का उपयोग बड़े पैमाने पर सहारनपुर, इलाहाबाद, बरेली, मुरादाबाद, मेरठ तथा बिजनौर जिलों में चल रहे उद्योग धंधों में किया जाता है। इस प्रदेश में चूना, शीशा के अलावा खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस आदि के प्राप्त होने की बड़ी अच्छी सम्भावनाएँ हैं।

जनसंख्या एवं व्यवसाय

यहाँ की जनसंख्या ४५ मिलियन तथा क्षेत्रफल १५० हजार वर्ग कि० मी० है। यह भारत के सबसे घने (३०० व्यक्ति प्र० व० कि०) बसे हुए भागों में से एक है। जनसंख्या का वितरण तथा विकास यहाँ की कृषि की अनुकूल दशाओं पर आधारित है। भाँगर क्षेत्र में कृषि की बड़ी अनुकूल दशाओं के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर तथा घनत्व खादर तथा भूर क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ कृषि अपेक्षाकृत कठिन है, अधिक है। कृषि तथा जनसंख्या का इस प्रकार का संबंध वर्तमान वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियों के पहले और भी घनिष्ठ रहा था। क्योंकि उन दशकों में केवल कृषि ही जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन थी। औद्योगिक विकास, शहरीकरण तथा स्वास्थ्य आदि की सुविधाओं ने, प्राचीन मान्यताओं को न केवल झकझोर दिया बल्कि जनसंख्या की वृद्धि और घनत्व को अनुशासित भी करने लगे हैं। सम्पूर्ण प्रदेश में जनसंख्या की वृद्धि ४७.३% रही है। कानपुर जिले में बड़े पैमाने पर शहरीकरण के कारण जनसंख्या की सबसे अधिक वृद्धि (८०%) हुई है। गंगानदी के इस मैदान में वर्षा के अनुसार जनसंख्या का घनत्व भी पूर्व से पश्चिम की तरफ कम होता जाता है। कानपुर, फीरोजाबाद, मेरठ, आगरा, मुरादाबाद, लखनऊ (५००) हाथरस, अलीगढ़, बुलन्दशहर, हापुड़, गाजियाबाद तथा रूहेलखण्ड तहसीलों में (३७५–५००) और न्यूनतम जनसंख्या का घनत्व अवध के पुरानपुर तहसील में (७५ से भी कम) है। पिछले दशकों में देहाती जनसंख्या अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर कानपुर, कलकत्ता, बम्बई तथा सूरत के औद्योगिक प्रतिष्ठानों की तरफ जीविकोपार्जन के साधनों की तलाश में आकृष्ट हुए हैं। लैंगिक अनुपात की दृष्टि से प्रत्येक १००० पुरुषों पर ८००–९०० स्त्रियाँ हैं। शिक्षा १८.४७% है परन्तु इसमें भी क्षेत्रीय भिन्नता उभर कर सामने आती है। क्योंकि कानपुर में (४२%) लखनऊ (३८%), आगरा (३३%), मेरठ (३२%) शिक्षा है। इस प्रदेश की ५६% जनसंख्या ५२०३६ ग्रामों में रहती है। यहाँ की ५५.१% जनसंख्या मध्यम आकार के गाँवों (५००–२०००) तथा शेष बड़े गाँवों (५००० से अधिक) में रहती है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय भिन्नताएँ काफी महत्त्वपूर्ण हैं। विगत जनगणना दशकों को देखने

सर्वमान्य विभाग करना बड़ा कठिन है। परन्तु यह प्राकृतिक प्रदेश उत्तर में उप-हिमालय की पेटी तथा दक्षिण में मध्य-भारत के विन्ध्याचल और दकन ट्रैप के अग्र प्रदेशों के बीच में स्थित है। नदियाँ तथा कुछ 'भूर' (Bhur) क्षेत्र यहाँ स्थलाकृति के प्रमुख रूप हैं। श्री बेकर ने यमुना नदी से लेकर गंगा के डेल्टा तक के पूरे प्रदेश को गंगा-सिन्धु के मैदान के रूप में एक ही प्राकृतिक भाग माना है। सम्पूर्ण प्रदेश में स्थानीय ढालों का बोलबाला है। स्थलाकृति की दृष्टि से पश्चिम में शिवालिक से लेकर पूर्व में पिडमान्ट के बीच की पेटी सबसे जटिल है। नदियों के अपने मार्ग बदलने से भी निर्मित स्थलाकृतियाँ भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। यह सम्पूर्ण प्रदेश गंगा नदी के प्रवाह क्षेत्र में स्थित है। इसमें गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ जैसे जमुना, शारदा, चम्बल, बेतवा, केन तथा टोन्स नदियाँ हिमालय के बर्फीले भागों से निकलकर पूरे वर्ष प्रवाहित होती हैं। अधिकांश नदियाँ आपस में समानान्तर हैं। गंगा घाटी के अन्य भागों की तुलना में इसका ढाल तीव्र है। इस प्रदेश में बाढ़ एक प्राकृतिक समस्या है। दक्षिण से आने वाली गंगा की सहायक नदियों में चम्बल सबसे प्रसिद्ध है क्योंकि अपने प्रवाह क्षेत्र में यह नदी मीलों तक खड्ड (रेवाइन्स) के विकास के लिए प्रसिद्ध है।

जलवायु एवं वनस्पति

पश्चिम में शुष्क पंजाब तथा पूर्व में आर्द्र-मध्य गंगा की घाटी के बीच यहाँ की जलवायु मानसून के सामान्य प्रभाव के अन्दर अल्पार्द्र किस्म की है। फलस्वरूप इस प्रदेश के पश्चिम तथा पूर्व में स्थित दोनों ही प्रदेशों के मिश्रित प्रभाव देखने को मिलते हैं। जाड़े के दिनों में यहाँ मध्य गंगा की घाटी से अधिक वर्षा होती है। यहाँ चार-उष्णग्रीष्म, नमग्रीष्म, जाड़े के मानसून के पूर्व का मौसम तथा जाड़े की ऋतुएँ पायी जाती हैं। फरवरी महीने में तापमान ऊँचा होने लगता है और मई/जून में तापमान अधिकतम (४०° से. ग्रे.) हो जाता है। जून के दूसरे पखवारे में मानसून प्रारम्भ होता है। जिससे गर्मी और 'लू' से तप्त एवं पीड़ित जनजीवन राहत की साँस लेता है। तापमान अक्टूबर तक ३०° से. ग्रे. तथा सापेक्ष आर्द्रता ७०% तक हो जाता है। जुलाई से सितम्बर तक के महीनों में पूरे साल की औसत वर्षा का ८०% हो जाता है। अक्टूबर में वर्षा ऋतु लगभग समाप्त हो जाती है। अक्टूबर तथा नवम्बर सक्रमण काल रहता है जिसमें वायुमण्डलीय दशाएँ अस्थिर परन्तु मौसम स्वच्छ रहता है। पछुआ विक्षोभों के चलने से तापमान सबसे नीचे पहुँच जाता है। जाड़े में पश्चिम की तरफ तापमान क्रमशः कम रहता है। जाड़े में १० से. मी. से अधिक वर्षा नहीं होती है। औसत वार्षिक वर्षा ४० से १४० से. मी. तक होती है। इस प्रदेश में ऊँची नीची भूमि के न होने के कारण मिट्टी की भी किस्म लगभग समान है। यहाँ की मिट्टियाँ जलोढ, मटियार तथा ऊसर किस्म की पाई जाती हैं। कहीं-कहीं बलुई दोमट मिट्टी भी देखने को मिलती है। मिट्टी की दृष्टि से इस सम्पूर्ण प्रदेश को भाँगर तथा खादर दो भागों में बाँटा जा सकता है। चम्बल नदी की घाटी जो, यमुना के दक्षिण में स्थित है, खड्डों से परिपूर्ण, विहड़ तथा बेकार है। ऊँची नीची स्थलाकृति के अभाव के कारण सिंचाई के लिए नहरों का निकाला जाना बड़ा आसान है। इस प्रदेश की

वाली भूमि का प्रतिशत सहारनपुर (६६%) को छोड़कर सर्वत्र ७०% है। यह प्रतिशत मुजफ्फरनगर में (७४%) तथा अलीगढ़ में (७८%) है। रुहेलखण्ड मैदान में ६०% से ८०% अवध के मैदान मे ५४% से ७४%, तराई क्षेत्र मे खेती किये जाने वाली भूमि का प्रतिशत कहीं-कहीं ४०% से भी कम नैनीताल (२७%), ऊसरों से प्रभावित जिलों—उन्नाव, सुल्तानपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़ तथा लखनऊ में खेती की जाने वाली भूमि का प्रतिशत क्रमश: १८, १३, १७, १२ तथा १८% तक भी है। समूचे प्रदेश में वनाच्छादित भूमि का प्रतिशत बहुत कम है। इस मैदान के २४ जिलों में वनाच्छादन का प्रतिशत ५ तथा अन्य ७ जिलों में १ से भी कम है। सहारनपुर, नैनीताल, बिजनौर, पीलीभीत, खेरी, बहराईच तथा गोण्डा जिलों में वनाच्छादन का प्रतिशत क्रमश: १३.०%, ६६.२%, १६.०% २१.०%, २८.०%, १४.०% तथा १०.३% है। बस्तियाँ, यातायात के मार्गों तथा जलाशयों आदि के अन्दर भूमिका प्रतिशत सुल्तानपुर (८.३%), प्रतापगढ़ (७.१%) रायबरेली (८.१%) है। सिंचाई के साधनों का इस प्रदेश मे अच्छा विकास हो पाया है और सम्पूर्ण बोई गई भूमि के ३०% क्षेत्र की सिंचाई की जाती है। सिंचित भूमि का प्रतिशत जिलानुसार अलग-अलग है। उदाहरण के लिए ऊपरी तथा मध्य दोआब मे ६०%, लोअर दोआब मे ३०%, रुहेलखण्ड तथा अवध क्षेत्रों मे २%, तराई क्षेत्र मे १०% तथा पूर्वी क्षेत्र में १०%–४०% भूमि की सिंचाई होती है। इस प्रदेश मे सिंचाई के लगभग सभी साधनों को समुचित स्थान प्राप्त है परन्तु कुओं तथा नलकूपों से (४७%), नहरों से ४०%, झीलों तथा तालों आदि से १३% भूमि की सिंचाई होती है।

इस प्रदेश में फसलों की सबसे अधिक किस्में पैदा की जाती हैं। फसलों मे खाद्यान्नों की अधिकता है जो खेती की गई समस्त भूमि के ८५% भूमि पर उगाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त ८% में गन्ना पैदा किया जाता है। गेहूँ इस प्रदेश की सबसे प्रमुख फसल है। जाडे की ऋतु की थोड़ी भी वर्षा इस फसल को जितनी लाभदायक होती है पकते समय तेज और गर्म हवाएँ उतनी ही नुकसानदेह होती हैं। चावल यहाँ की दूसरी प्रधान फसल है। समस्त बोई गई भूमि का लगभग १५% भाग इसके उत्पादन में लगा है। इन फसलों के अलावा ज्वार, बाजरा, मक्का, दालें (उर्द, मूँग, अरहर मोटा चना, मटर तथा मसूर) तथा तिलहन आदि भी इस प्रदेश मे बोये जाते हैं। व्यावसायिक फसलों मे गन्ना, कपास तथा जूट प्रमुख हैं। परन्तु नकदी फसलों का महत्त्व सामान्य परिस्थितियों में धीरे-धीरे कम होता जाता है। चित्र ६२ में प्रदेश की प्रमुख एवं सहचरी फसलों को दिखाया गया है।

ऊपरी गंगा के मैदान में औद्योगिक प्रतिष्ठानों की भारी कमी है परन्तु मध्य गंगा के मैदान तथा पूर्वी-उत्तर प्रदेश की तुलना मे उद्योगों की सख्या यहाँ निश्चित ही अधिक है। इस प्रदेश के उद्योगों मे काम करने वालों की संख्या पूरे राज्य के औसत से अधिक है। उद्योगों में काम करने वालो का प्रतिशत सबसे अधिक मेरठ (२३%) आगरा (१९%) कानपुर (१६%) में है। इसके पश्चात् यह प्रतिशत ५% से १०% के बीच रहता है। कानपुर, लखनऊ, आगरा, रामपुर तथा बरेली जिलों को छोड़कर कुटीर उद्योगों का भी महत्त्व कहीं भी कम नहीं है। पूरे प्रदेश की २४०८३२ फैक्टरियों मे ६३% इतनी छोटी

से पता चलता है कि छोटे तथा मध्यम आकार के गाँवों (५०० से कम) की जनसंख्या में ह्रास हुआ है, इसके प्रतिकूल बड़े-बड़े गाँवों में जनसख्या का प्रतिशत काफी बढा है। यहाँ गाँवों का आकार प्रकार तथा वितरण प्रदेश की जलोढ़ आकृति, कृषि व्यवस्था, प्राकृतिक भूभाग, मिट्टी की किस्म, जल सुविधाएँ तथा यातायात संसाधनों के अनुसार विकसित हुए हैं। गंगा-यमुना दोआब में मिट्टी के उपजाऊपन, सिंचाई की अच्छी सुविधाओं तथा यातायात के विकसित ससाधनो के कारण जनसख्या का वितरण समान है। दूसरी तरफ तराई क्षेत्र मे अधिक जंगल, दलदल आकृति तथा मौसमी बाढ़ के कारण गाँव अपेक्षाकृत ऊँचे स्थानों पर स्थित हैं और गाँवों की स्थिति प्राये दिन बदलती रहने के कारण जनसंख्या का वितरण काफी असमान है। रुहेलखण्ड तथा अवध जिलो में गाँवों का वितरण समान तथा स्थिति बाढस्तर के ऊपर है। सहारनपुर जिले मे बस्तियाँ जलमार्गों तथा ढालो के अनुसार हैं। यमुना पार मैदान में आगरा तथा मथुरा शहरो के प्रभाव के कारण ३१.४% जनसंख्या शहरों मे निवास करती है। परन्तु गंगा-यमुना दोआब मे यही प्रतिशत २४.३ है। इस प्रदेश के पश्चिमी भाग मे शहरीकरण की दो प्रमुख पेटियाँ विकासाधीन हैं। प्रथम पेटी उत्तर में सहारनपुर तथा दक्षिण में इटावा के बीच फैले दो वर्गों—(१) अलीगढ, हाथरस, मेरठ-आगरा, फीरोजाबाद और (२) गाजियाबाद-हापुड-मेरठ-मुजफ्फरनगर-सहारनपुर हरिद्वार मे स्थित हैं। इस प्रदेश के अधिकांश शहर बहुधधी हैं। ५०,००० की जनसंख्या तक के २६ शहरो में से २० शहरों में नौकरी पेशे तथा ४ में उद्योगों मे काम करने वाले श्रमिकों की सख्या अधिक है जबकि हाथरस में श्रमिको की सख्या व्यापार में अधिक (३६%) है। उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस प्रदेश में केवल दो ही औद्योगिक शहर-फीरोजाबाद तथा कानपुर हैं। प्रथम में ६४% तथा दूसरे में ४२% जनसख्या उद्योगों में लगी हुई है। फीरोजाबाद के कुटीर उद्योगो के प्रतिकूल कानपुर उत्तर प्रदेश का सबसे बडा औद्योगिक तथा व्यावसायिक केन्द्र है। इस प्रदेश के अधिकांश शहर प्राचीन हैं। अंग्रेजों के आने के बाद इन शहरो से संलग्न नई बस्तियाँ बनाई गई। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् इन शहरों के विकास का तीसरा चरण प्रारम्भ हुआ। शहर के प्राचीन हिस्से मे गलियाँ सकरी, अनियोजित, मकान पास-पास तथा प्राचीन इमारतों मे आधुनिक प्रसाधनो की भारी कमी है। अंग्रेजो ने स्वतत्र बंगलों का निर्माण करवाया है। इनमें यूरोपीय वास्तुकला देखने को मिलती है। इन शहरों में कन्टूनमेन्ट, सिविल लाइन्स तथा रेलवे कालोनीज आदि का निर्माण करवाया है। स्वतंत्रता के पश्चात् नये सिरे से शहरी योजनाएँ बनाई जा रही हैं जिनके अन्तर्गत शैक्षणिक, औद्योगिक तथा अन्य सुख-सुविधाओं को अच्छी तरह एवं सुनियोजित ढंग से बनाया जा रहा है। अधिकाश शहरो मे व्यवसाय की सुविधाएँ प्रधान सडकों तथा गलियो में है और 'चौक' की व्यवस्था है जहाँ चारों तरफ सडकें आकर मिलती हैं। इस प्रकार का चौक शहर का सबसे व्यस्त स्थान होता है। यहाँ प्रसिद्ध होटल तथा हरेक प्रकार की दुकानें पाई जाती हैं।

यहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल के लगभग ६५% भूमि पर खेती की जाती है। खेती की जाने वाली भूमि का यह प्रतिशत यमुनापार क्षेत्र मे स्थित आगरा (७३.१%) तथा मथुरा (८२.०%) में सबसे अधिक है। ऊपरी दोआब मे खेती की जाने

लिए भी विश्व में सबसे प्रसिद्ध हैं। उत्तर प्रदेश के ४७ जूते की फैक्टरियों में से ९ केवल कानपुर तथा ३७ आगरा में है। उत्तर प्रदेश की सभी कागज तथा भारी केमिकल्स फैक्टरियाँ इसी प्रदेश के कानपुर (७) तथा गाजियाबाद में (१) में स्थित हैं। कानपुर, लखनऊ, बरेली, रामपुर तथा गाजियाबाद में कृषि यंत्र तथा आगरा और कानपुर में मशीनों के पुर्जे भी बनाये जाते हैं। कानपुर में सूती वस्त्र-व्यवसाय में काम आने वाली मशीनों का भी निर्माण होता है।

चित्र ६१
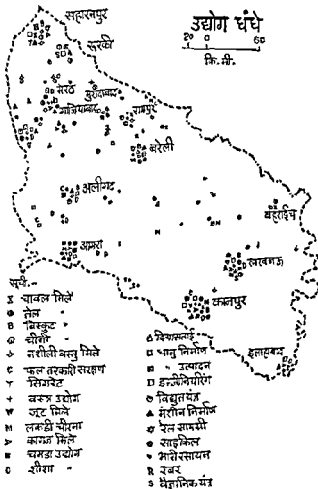
हाथकरघे तथा कुटीर उद्योगों के लिए भी यह प्रदेश प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। हैण्डलूम वस्त्र व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध तथा सामान्य रूप से समूचे प्रदेश में फैला हुआ है।

फैक्टरियाँ हैं जिनमें केवल ६-१६ व्यक्ति ही काम करते हैं। इस प्रकार केवल ७% ऐसे उद्योग हैं जिनमे २० अथवा उससे अधिक लोग काम करते हैं। ऐसी फैक्टरियों की संख्या जिनमें १०० से अधिक व्यक्ति एक साथ काम करते हैं आगरा (७८), कानपुर (५५), मेरठ (४०) मे हैं।

चित्र ६२

उत्तर प्रदेश अकेला सबसे अधिक गन्ना पैदा करता है। यहाँ चीनी की कुल मिलों की संख्या ७१ है। उनमें ५५००० श्रमिक काम कर रहे हैं। प्रदेश की फैक्टरियाँ बड़ी, जिनमें से १४ इकाइयों में १००० श्रमिकों से अधिक काम करते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में २८ फैक्टरियाँ हैं। चावल कूटने, दाल दलने, तेल निकालने, रोटी, बिस्कुट बनाने, फल, दूध तथा मिठाई बनाने के उद्योग अधिकतर कानपुर, इलाहाबाद, इटावा, अलीगढ़, हाथरस, गाजियाबाद तथा मेरठ में स्थित हैं। सूती, ऊनी, जूट तथा सिल्क वस्त्र व्यवसाय आदि को दिखाया गया है। पूर्व में बिहार की कोयले की खानों तथा पश्चिम में पंजाब के कपास क्षेत्र के बीच स्थित कानपुर, सूती वस्त्र व्यवसाय के लिए सबसे अनुकूल तथा बड़ा केन्द्र है। यहाँ १४ बड़ी-बड़ी सूती मिलें हैं। जिनमें राज्य के दो-तिहाई (६२०००) श्रमिक काम करते हैं। इसके अतिरिक्त मोदीनगर (४८००) हाथरस (३१००) रामपुर (२२००) आगरा (१२००) तथा इलाहाबाद में (१०००) श्रमिक सूती वस्त्र व्यवसायों में लगे हुए हैं। उत्तर प्रदेश की १४ ऊनी वस्त्र फैक्टरियों में से ८ इस प्रदेश में स्थित हैं जिनके लिए कानपुर पुनः सबसे बड़ा केन्द्र है। इसके अतिरिक्त कानपुर तथा आगरा चमड़े उद्योग के

पर बसे हैं। प्राचीन विदेह, कौसल, मगध तथा मिथिला तक आर्यों की सभ्यता की छाप यजुर्वेद काल तक लग चुकी थी। आर्यों के पूर्व की तरफ खिसकने तथा उपनिवेशीकरण के कारण इस क्षेत्र में स्वदेशी परिश्रम तथा तरीकों से खेती की प्रगति हुई। भगवान गौतम-बुद्ध के समय उत्तर भारत में १६ राज्य थे जिनमे कोशल (अवध) श्रावस्ती, मगध तथा अंग बड़े शक्तिशाली थे। उनके मध्य राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परिवहन तथा व्यावसायिक संबंध भी थे। कालान्तर में मगध की राजनैतिक शक्ति इतनी बढ़ गई कि चारो तरफ के छोटे-छोटे राज्यों को अपने मे मिलाकर एक राष्ट्रीय शक्ति के रूप मे माना जाने लगा। वाराणसी सांस्कृतिक राजधानी बनी रही। इन सब राजनैतिक उथल-पुथल के समय मे भी कृषि की बड़ी उन्नति हुई जो सदैव से जीविकोपार्जन तथा राजकीय आय का प्रधान साधन बनी रही। लड़ाई की सामग्रियों (अस्त्र-शस्त्र) के उत्पादन के साथ-साथ सूती वस्त्र व्यवसाय, हाथी दाँत के काम, धातु गलाने, दरी गलीचे, बर्तन बनाने तथा सोने चाँदी के उद्योगों की तरफ भी समुचित ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल में वाराणसी, अयोध्या, श्रावस्ती, कुशीनगर, मिथिला, वैशाली, पाटलिपुत्र, गया, राजगिरि तथा चम्पा आदि प्रसिद्ध औद्योगिक तथा व्यावसायिक केन्द्र थे। अधिकांश शहरों के बीच कच्ची तथा बिना पुल के सड़के थीं। चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी, मिर्जापुर, गाजीपुर, नदीपत्तन थे। उपर्युक्त शहर उद्योग, व्यवसाय, व्यापार, राजनीति तथा सभ्यता के केन्द्र थे। अयोध्या, पाटलिपुत्र तथा राजगिरि जैसे बड़े और राजनैतिक शहरों के चारों तरफ दिवालें बनाई गई थी। राजसत्ता तथा साम्राज्य स्थापित करने की पिपासा के कारण अंग्रेजों के आने के समय तक पूरे प्रदेश में राजनैतिक अस्थिरता बनी रही। मध्यकाल के अन्तिम चरण मे (मेडिवल) यह पूरा प्रदेश कई राजनैतिक शक्तियो मे विभाजित हो गया था। वाराणसी तथा पटना के बीच दोनो तरफ का क्षेत्र अत्यन्त सुन्दर, व्यापारिक एवं विश्व व्यापार में प्रमुख था। गंगा नदी के किनारे पर स्थित पटना, जल यातायात के लिए तथा कलकत्ता बन्दरगाह के कारण विश्व व्यापार मे बहुत प्रमुख नगर बन गये। भारत की प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७-५८) की असफलता के पश्चात् इस पूरे प्रदेश पर अंग्रेजों का शासन हो गया। इस प्रशासन ने पूरे क्षेत्र मे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों को लागू करने की नये सिरे से योजनाएँ बनाई। राज्यों का पुनर्गठन करके संयुक्त-प्रदेश-आगरा व अवध, बिहार, उड़ीसा तथा बंगाल का निर्माण किया गया। प्रशासन को और सुचारु रूप से चलाने के लिए अंग्रेजों ने राज्यों को जिलों, तहसीलो तथा परगनों में विभाजित किया। शैक्षणिक, तकनीकी, आर्थिक तथा स्वास्थ्य संबंधी संस्थानों की स्थापना से पूरे प्रदेश में एक तरह से कुछ समय के लिए राजनैतिक स्थायित्व का वातावरण फैल सका। पाश्चात्य देशों मे मशीनों द्वारा बनी हुई चीजों के अबाध गति से आने के कारण परंपरागत उद्योगों तथा कृषि को बड़ा नुकसान हुआ। इसके परिणामस्वरूप लाखों की संख्या में कुटीर उद्योग विशेष रूप से वस्त्र बुनकर बेकार हो गये। इससे कृषि पर और बोझ बढ़ने लगा। सन् १८५७-५८ में इस प्रदेश के लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाई थी। तात्कालिक प्रशासन ने इसे क्षमा नहीं किया और इसके कृषि तथा औद्योगिक विकास में सदैव ही सौतेली माँ जैसा व्यवहार बनाये रखा। पूरे क्षेत्र में न केवल लगातार

इस प्रदेश में पिछले १०० वर्षों में सड़क, रेल तथा वायु मार्गों का विकास अवश्य हुआ परन्तु इसके पूर्व से ही सड़कों, तथा नदी मार्गों से भारी मात्रा में व्यापार तथा यातायात होता रहा है। तराई को छोड़कर समूचे प्रदेश में सड़क तथा रेल परिवहन पर्याप्त मात्रा में विकसित है। इस प्रदेश के अधिकांश भाग से उत्तरी तथा उत्तरी-पूर्वी रेल्वे गुजरती है। उत्तर प्रदेश में रेल मार्ग का घनत्व प्रति १०००० व० कि० मी० पर लगभग ३०० कि० मी० है। आगरा अलीगढ़ (५०० कि० मी०) तथा कानपुर-लखनऊ क्षेत्रों में रेल मार्ग का घनत्व ६०० कि० मी० है। देश के अन्य कई प्रदेशों की तुलना में इस प्रदेश में सड़कें कम हैं। प्रदेश के अधिकांश भागों में प्रति १०००० वर्ग कि० मी० पर ७५० कि० मी० सतही सड़कें हैं। कानपुर-लखनऊ क्षेत्र में रेल घनत्व की भाँति सड़क घनत्व भी सबसे अधिक है सड़क तथा रेल मार्गों में गहरी प्रतिस्पर्धा है। कानपुर-लखनऊ, आगरा तथा इलाहाबाद देश के अन्दर प्रसिद्ध हवाई अड्डे हैं। यह प्रदेश दिल्ली के पालम अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के पास स्थित है और एक दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा गाजियाबाद में बनाये जाने की योजना सरकार के विचाराधीन है।

पंचवर्षीय योजनाओं के कारण इस प्रदेश में अनेक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं। पर्याप्त नहरें, रेलें तथा सड़कें आदि बनाई जा रही हैं। नलकूप तथा कुएँ भी काफी संख्या में खोदे गये। विद्युत् एवं अन्य औद्योगिक सुविधाओं के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण इस प्रदेश का पश्चिमी भाग एक अलग एवं स्वतंत्र छोटे प्रदेश के रूप में विकसित हो रहा है। दिल्ली के पास स्थित होने के कारण गाजियाबाद, मोदीनगर तथा मोहननगर आदि औद्योगिक केन्द्रों के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं।

४. मध्य गंगा का मैदान

(२४°३०' उ० २७°५०' उ० और ८१°४७' पूर्वी से ८७°५०' पूर्वी) देशान्तरों तथा हिमालय (उत्तर) तथा दकन पठार (दक्षिण) के बीच स्थित इस प्रदेश में उत्तर प्रदेश के अत्यधिक पूर्वी तथा बिहार के पश्चिमी भागों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रदेश की पूर्व-पश्चिम लम्बाई ६५० कि० मी० से भी अधिक तथा इसकी चौड़ाई उत्तर-दक्षिण १५० कि० मी० तथा क्षेत्रफल १४४४०६ वर्ग कि० मी० है। यह पूरे भारत का हृदय स्थल है। भारत के प्रत्येक भाग की सभ्यताएँ, शिक्षा, संस्कृतियाँ तथा प्रत्येक भाग के निवासी यहाँ पाये जाते हैं। पूर्व-ऐतिहासिक काल से यहाँ मानव निवास कर रहा है। कृषि तथा धातु उपयोग करने वाले मनुष्यों का इतिहास लगभग १०,००० वर्षों पुराना है। प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में इस प्रदेश की न्यूनतम चर्चा की गई है। गंगा-यमुना तथा सरयू नदियों का बहुत महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं किया गया है। कुरु तथा पांचाल लोगों के ऊपरी गंगा के मैदान में स्थायी रूप से बस जाने के कारण मध्य-गंगा के मैदान में उनका प्रवेश प्रारम्भ होगा। उस समय यह सम्पूर्ण प्रदेश जंगलों से आच्छादित होने के कारण कुरु तथा पांचाल लोगों का पूर्व की तरफ प्रवेश बहुत मंद गति से हुआ। पूर्व के मैदान में जनसंख्या के निवास के साथ-साथ वाराणसी तथा अयोध्या राजनैतिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुए थे। दोनों ही शहर यातायात के अनुकूल गंगा तथा घाघरा नदियों के तटों

चौड़े हैं। कहीं-कहीं गंगा नदी का किनारा कंकड़ मिश्रित कठोर मिट्टी अथवा चट्टानों से प्रभावित है जिससे तट अधिक ऊँचे एवं स्थायी हो गये हैं। मिर्जापुर, वाराणसी, पटना, चुनार, मुंगेर तथा सुल्तानगंज ऐसे ही तटों पर स्थित हैं।

हिमालय प्रदेश से सात नदियाँ आकर कोसी नदी में मिलती हैं। बिहार राज्य की दुखदायी नदी कोसी वर्तमान करगोला नामक स्थान के नीचे गंगा नदी में मिलती है। भारतीय नदियों में से यह सबसे खतरनाक, हानिकारक तथा धनजन की सबसे बड़ी शत्रु है। छतरागंज के नीचे यह एकाएक मैदान में पहुँचती है। यह नदी मैदान के बड़े भू-भाग को बलुई तथा दलदली क्षेत्रों में परिवर्तित करती है। कोसी नदी द्वारा लाई गई कठिनाइयों से बचने के लिए कोसी परियोजना को कार्यान्वित किया गया है। गंगा से मिलने तक के मार्ग में इस नदी पर पक्का तटबंध बनाया गया है। गंगानदी की उत्तरी तट की सहायक नदियों में अत्यधिक जल प्रवाहित होने के कारण प्रत्येक वर्ष जल जमाव तथा यातायात में रुकावट होने की घटनाएँ प्राये दिन होती रहती हैं। इन नदियों में राप्ती, घाघरा, गंडक तथा कोसी प्रधान हैं। ऐतिहासिक समय में इन सभी नदियों ने कई बार मार्ग परिवर्तन करके बहुत बड़े प्रदेश को भारी नुकसान पहुँचाया है।

गंगा नदी में दक्षिण की तरफ से भी अनेक सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। जिसमें सोन नदी सबसे बड़ी है। इसकी प्रवणता बड़ी तीव्र है। इस नदी ने भी भूतकाल में कई बार अपना मार्ग परिवर्तित किया है। डेहरी के पास इस नदी पर एक बाँध बनाकर इसके जल का उपयोग सिंचाई कार्यों में किया जाने लगा है।

जलवायु

पूर्व से पश्चिम की तरफ अधिक खुला होने के कारण हवाएँ हिमालय तथा पठार के बीच अबाध गति से चलती हैं। जाड़े के दिनों में चक्रवात भी, जिनसे मौसम अत्यधिक ठंडा हो जाया करता है, बिना किसी रुकावट के पूरे प्रदेश को प्रभावित करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली गर्म तथा शुष्क हवाओं की भी यही हालत रहती है। मध्य में स्थित होने के कारण इस प्रदेश में जाड़े के दिनों में पछुवा हवाओं के प्रवाहित होने के कारण अत्यधिक शीत का अनुभव किया जाता है। यह प्रदेश बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न होने तथा वर्षा करने वाले चक्रवातों से भी प्रभावित होता है। इस प्रकार यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो यहाँ हरेक प्रकार के मौसमों का प्रभाव रहता है। इसकी स्थिति अर्ध-उष्ण कटिबन्धीय, महाद्वीपीय तथा मानसूनी किस्म की होती है। साथ-साथ इन परिस्थितियों का यहाँ के जन-जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव रहता है।

जून के महीने में पटना का औसत तापमान ३२.६° से. ग्रे. जबकि वाराणसी का यही तापमान ३३.७° से. ग्रे. रहता है। गंगा नदी के उत्तरी मैदान में भी ऐसी ही परिस्थितियाँ रहती हैं। उदाहरण के लिए गोरखपुर (३१.५° से. ग्रे.) तथा मोतीहारी (३०.१° से. ग्रे.) के तापमान इसी प्रकार रहते हैं। बरसात के दिनों में उत्तरी बिहार में ८५% तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश ८०% वर्षा बंगाल की खाड़ी की मानसून से होती है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून सितम्बर के अन्तिम या अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में निम्न वायुदाब तथा ड्रोणी के धीरे-धीरे

अकाल, बाढ़ तथा महामारियों का प्रकोप बना रहा बल्कि यहाँ के मानवीय तथा प्राकृतिक संसाधनों को तनिक भी विकसित नहीं किया गया। यहाँ के लोग जो एक समय अपनी उपजाऊ भूमि तथा प्राचीनतम सभ्यता पर गर्व करते थे विपदाओं के कारण न केवल कलकत्ता, बम्बई तथा कोयले की खानों में जीविकोपार्जन के लिए भाग कर जाने लगे बल्कि इन्हीं में से लोग अफ्रीका, द० पू० एशिया, फीजी तथा मॉरीशस में भी जाकर बस गये। सिंचाई, परिवहन पूँजी तथा शिक्षा आदि की अत्यधिक कमी है। एक तरह से यहाँ की आर्थिक व्यवस्था बड़ी ही अस्त-व्यस्त है और इसका सुधार बहुत ही सूझबूझ तथा संसाधनों की बड़ी सतर्कता पूर्ण नियोजन से हो सकता है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र

बनावट की दृष्टि से यह सम्पूर्ण प्रदेश गंगा-सिन्धु के मैदान की द्रोणी का ही एक खण्ड है। उत्तर में शिवालिक (३६४ व. कि. मी.) तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय भारत के भी कुछ अंश इस प्रदेश में सम्मिलित है। इस प्रदेश में जलोढ़ की गहराई १३००—१४०० मीटर है। हिमालय की तरफ यह गहराई अधिक तथा दकन की तरफ अपेक्षाकृत कम है। इस पूरे प्रदेश में दो द्रोणियाँ—गोरखपुर द्रोणी तथा रक्सोल—मोतीहारी हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में घाघरा तथा बिहार में गंगा के दक्षिण में गहराई १५०० से ३००० मीटर है। हिमालय पर्वत के ऊपर उठने से इस सम्पूर्ण क्षेत्र में भारी अवसवलन (Down Warping) का प्रभाव पड़ा है। नदियों की अधिकता के कारण इस प्रदेश में कंकड़ की मात्रा अपेक्षाकृत कम है।

उत्तर में शिवालिक पहाड़ियों तथा भाँवर और दक्षिण में प्रायद्वीपीय उत्तर प्रदेश के बीच में स्थित, यह एक समांगी मैदान है। जब तक वास्तविक पर्वतों के पास न पहुँच जाय प्राकृतिक लक्षणों से प्रदेश वंचित है। मैदान प्राकृतिक दृष्टि से दिलचस्प है। इसकी सामान्यत ऊँचाई समुद्र सतह से १०० मीटर है। प्राकृतिक स्थलाकृति में विजातीयता स्थानीय कारणों से पाई जाती है। किसी प्रमुख स्थलाकृति के आधार पर इस प्राकृतिक प्रदेश को उप-विभागों में बाँटना बड़ा कठिन है। इसके उप-विभाजन का आधार नदियाँ, उनके बीच की दूरी, ढाल वर्षा की मात्रा तथा पहाड़ियों से समीपता हो सकते हैं। उपर्युक्त आधारों पर सम्पूर्ण प्रदेश को कई प्राकृतिक उप-विभागों में बाँट सकते हैं।

इस प्रदेश में नदियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं तथा प्रदेश की सामान्य सतह को अनेक भागों में विभाजित करती हैं। छोटे छोटे उप-विभागों की वैयक्तिकता को निखारती तथा कृषि और मानव बसाव को भी अनुशासित करती हैं। यहाँ की नदियाँ वृक्षाकार हैं। गंगा सबसे मुख्य नदी के रूप में वर्तते हिमालय से निकलकर अथाह अपरदन के साथ पश्चिम से पूर्व की तरफ बहती है। इसमें अन्य सभी नदियों का पानी बहकर आता है। जिसमें सोन तंत्र, कोसी तंत्र, घाघरा तंत्र तथा गंडक तंत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गंगा अपने दक्षिणी मध्य भाग में पठार के अधिक नजदीक से बहती है और कहीं-कहीं वो उत्तर में विशाल मैदान तथा दक्षिण में विन्ध्य श्रेणियों के बीच प्राकृतिक सीमा भी बनाती है। कहीं-कहीं कछारी मैदान, जिसको खादर के नाम से भी जाना जाता है, ५ से ३० कि. मी.

भूमि में मूँज, कुश, कांस तथा भाऊ नामक घासें अब भी प्राकृतिक रूप से उगती हैं। तराई तथा अन्य निचले भूभागों में दूब तथा मोथा भी उगकर फसलों की वृद्धि पर प्रतिकूल असर डालते हैं। बगीचों मे लगाये गये फलदार वृक्षों में आम, जामुन, अमरूद, महुवा, नीबू आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। गोरखपुर, गोण्डा तथा बहराइच जिलों में क्रमशः ९.७, ६.१ तथा १४.३% भूमि पर वन पाये जाते हैं।
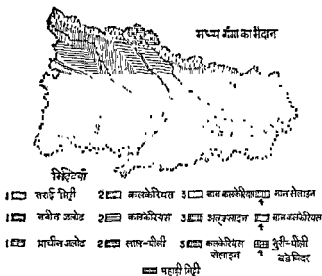
चित्र ६४

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि इस सम्पूर्ण प्रदेश मे उपजाऊ भूमि तथा सतही एवं भूमिगत जल, अर्थ व्यवस्था के प्रधान ससाधन हैं। इसके साथ विस्तृत मानव संसाधन के होने पर भी यह प्रदेश के सबसे गरीब और पिछडे हुए प्रदेशो में से एक है। पर्याप्त वर्षा होती है, फलस्वरूप पूरे वर्ष नाना प्रकार के खाद्यान्न तथा नकदी फसलें पैदा की जाती हैं। मानवकृत सिंचाई ससाधनों को विकसित किया जा सकता है। इस प्रदेश में एक-एक वर्ष के अन्तर पर अकाल तथा बाढ का प्रकोप रहता है। जगल कम हैं। ईंधन तथा कच्चे माल आदि की पूर्ति असतोषजनक है।

जनसख्या

इसका क्षेत्रफल १,४४,६६१ व. कि. मी. तथा जनसंख्या ५५.६५ मिलियन है। जन-संख्या का सामान्य घनत्व ३८४ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। जबकि सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश (२५०) बिहार (२६७) तथा सम्पूर्ण देश की जनसख्या का घनत्व (१३८) है। यहाँ शहरीकरण ७.२२% है। सम्भवतः चीन और बंगला देश को छोड़कर इतने विस्तृत क्षेत्र में इतनी जनसख्या के घनत्व के साथ देहाती आबादी विश्व में कहीं नहीं रहती है। शिवालिक पहाड़ी क्षेत्रों, पठारीफिजो, तराई में बिखरे छोटे जगली इलाकों,

लुप्त होने के कारण वापस होने लगता है।

नवम्बर के महीने से जाड़े का मौसम प्रारम्भ होने लगता है। तापमान तथा सापेक्ष आर्द्रता दोनों मे गिरावट आने लगती है। पटना मे अक्टूबर, नवम्बर तथा दिसम्बर में क्रमश: औसत तापमान २७.५° २२.५° तथा १८.३° से. ग्रे. रहता है। जाड़े की ऋतु का विशिष्ट महीना जनवरी होता है। उत्तरी बिहार में औसत तापमान १६.६° से. ग्रे. और पूर्वी उत्तर प्रदेश मे १६.१° से. ग्रे. रहता है। इस प्रकार जनवरी का सामान्य तापमान पश्चिम से पूर्व की तरफ बढ़ता है। फरवरी के अन्त अथवा मार्च के प्रारम्भ से तापमान मे पुनः क्रमिक वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है और वर्षा प्रारम्भ होने के पूर्व तक लगातार बढ़ता रहता है। ग्रीष्म की शुष्क तथा तेज हवाओं मे आम, जामुन तथा लीची की कृषि को बड़ी हानि होती है। इन आंधियों के साथ यदि वर्षा हो जाती है तो जायद फसल को लाभ होता है। खरीफ की बुआई के लिए तैयारियाँ ठीक समय से प्रारम्भ हो जाती हैं।

मिट्टी—सामान्य रूप से इस प्रदेश मे जलोढ़ किस्म की मिट्टी पाई जाती है। यहाँ की मिट्टी, विशेष मिट्टी-परिच्छेदिका अथवा क्षेत्रीय भिन्नताओं से रहित है। लगभग एक ही प्रकार से निर्मित होने तथा समान पारिस्थितिक वातावरण के कारण इनके रंगों, बनावट, सरध्रता, तथा नमी की मात्रा में भी बहुत कम अन्तर पाया जाता है। स्थानीय स्थलाकृति और प्रवाह तन्त्रो की भिन्नता के कारण मिट्टी के आकृतिविज्ञान में अन्तर पाया जाता है। इस प्रदेश मे प्राप्त जलोढ मिट्टी को भाँगर तथा खादर दो वर्गों मे विभाजित किया जाता है। वार्षिक बाढ़ की सीमा के ऊपर स्थित भाँगर प्राचीन जलोढ है। खादर के प्रतिकूल इसमे अधिक कटाव होता है और गंगा घाघरा दोआब के पश्चिम मे ऊसर जमीन के बिखरे हुए स्थल खण्ड प्राप्त होते हैं। इसमे कंकड़ की मात्रा अधिक होती है जिसका उपयोग सड़कों के निर्माण कार्यों मे किया जाता है। भाँगर मिट्टी को भी कई वर्गों मे विभाजित किया जाता है। खादर नई जलोढ़ मिट्टी है। मिट्टियो के वर्गीकरण को चित्र ६४ में दिखाया गया है। इसमे प्रत्येक वर्ष नई मिट्टी जमा होती रहती है। इनमे नमी सदैव बनी रहती है और अतिरिक्त नमी नदियो से भी प्राप्त होती रहती है। यह मिट्टी बहुत बारीक सिल्ट से बनती है जो कहीं-कहीं बलुई रूप भी धारण कर लेती है जैसाकि घाघरा गंडक तथा सोन नदियो के साथ-साथ प्राप्त होती है। इसमे ह्यूमस, नाईट्रोजन तथा चूने की मात्रा कम और बालू तथा सिल्ट की मात्रा अधिक होने के कारण भुरभुरी तथा सभी (रबी, खरीफ तथा जायद) फसलों के अनुकूल होती है।

वनस्पति

बिहार के चंपारन तथा तराई क्षेत्रों को छोड़कर प्रदेश के लगभग सभी भागों से प्राकृतिक वनस्पति समाप्त हो चली है। मध्यम वर्षा तथा उपजाऊ जमीन होने के कारण साल, शीशम, जामुन तथा महुवा के वृक्षों की अधिकता है। सन् १८४० तक सरयू पार के मैदान मे राप्ती, घाघरा तथा अन्यान्य नदियों के तटों पर घने जंगल थे। इन घने जंगलों के अवशेष अब भी गोरखपुर, सहर्सा तथा पूर्णिया जिलो में देखने को मिलते हैं। गाँवो में पड़ी हुई बेकार भूमि मे पीपल, बबूल, नीम तथा महुवा आदि के वृक्ष तथा दियारा

नैतिक अस्थिरता अथवा आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वैशाली, मिथिला तथा राजगिर जैसे कई शहर लुप्त हो गये परन्तु उनके स्थान पर अनेक शहरों जैसे सुल्तानपुर तथा मिर्जापुर शहरों का प्रादुर्भाव भी हुआ। इनके अलावा अन्य अनेक बहुत से शहरों का जन्म व्यापारिक केन्द्रों तथा दिल्ली सल्तनत मे प्रशासकीय इकाई के रूप में हुआ। आधुनिक शहरों का प्रादुर्भाव सड़कों के किनारे, नदी पत्तनों के पास तथा रेल जंक्शनों पर हो रहे हैं। इसके साथ-साथ प्राचीन शहरों को नवजीवन भी प्राप्त हुआ है। शहरों का जन्म व विकास प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक कारकों के आधार पर होता है जिनमें नदियों के संगम, नदियों के मोड़, किले, मन्दिर धर्म स्थान तथा रेल जंक्शन विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् इन शहरों में प्रशासनिक, औद्योगिक, शैक्षणिक, छावनियाँ तथा स्वास्थ्य केन्द्र आदि स्थापित किये गये हैं। इस प्रदेश के शहरों को यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो अधिकांश शहरों में तीन-प्राचीन, मध्य तथा नवीनतम संवृद्धि प्राप्त होते हैं। पुराने संवृद्धि में बाजार तथा नये संवृद्धि में नई दुकानें, सिविल लाइन्स, कैन्टोनमेन्ट तथा रेल कालोनी आदि पाते हैं। मध्य युगीन निर्माणों में राजा महाराजों के किले तथा उनसे सम्बन्धित इमारतों का समावेश किया जाता है।

मध्य गंगा मैदान मे आर्थिक संसाधन न तो अच्छी तरह विकसित हैं और न ही संतुलित। जीविकोपार्जन अधिकतर कृषि पर निर्भर है। बोई गई भूमि के वितरण मे क्षेत्रानुसार अन्तर पाया जाता है। दक्षिणी बिहार के पश्चिमी भाग में (६४–६७%), पूर्वी भाग में ७०%, पूर्णिया जिले मे ७७% तथा उत्तरी बिहार मे ८०% में खेती की जाती है। उत्तर प्रदेश में भी ऊसर मिट्टी को छोड़कर सभी जिलों मे ७५% से भी अधिक भूमि पर खेती की जाती है। बोई गई भूमि का नेट प्रतिशत पूर्वी उत्तर प्रदेश मे बिहार के मैदान की तुलना मे अधिक है। इसमे भी जिलानुसार अन्तर भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए गोण्डा (८८%), देवरिया (८४.१), प्रतापगढ़ (८४.१%) तथा बलिया (८२%) है। इसी के अनुरूप कृषि योग्य बेकार भूमि का भी प्रतिशत देवरिया (२.१%) सुल्तानपुर (७.३%), सरयूपार मैदान (२.५%), बलिया (३.२%), वाराणसी (४.१%) न्यूनाधिक। सम्पूर्ण प्रदेश मे अच्छी नस्ल के बीजो, कृषि के आधुनिक तरीकों, सिंचाई के विकसित साधनों, गोदामों, बाजारों तथा यातायात के आधुनिकतम संसाधनों के उपयोग के कारण कृषि की उन्नति के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। बड़े-बड़े कृषकों के यहाँ उगाई जाने वाली फसलों-चावल, गन्ना तथा जूट के उत्पादन मे गहरी प्रतिद्वन्द्विता रहती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे चावल सबसे प्रमुख फसल है। वर्षा की कमी वाले क्षेत्रों में उसी के अनुसार उत्पादन तथा चावल क्षेत्र कम होता जाता है। बिहार में उत्पादन मे लगी हुई कृषि उत्पादन क्षेत्रफल के ३२% भूमि पर चावल पैदा किया जाता है। अन्य फसलों मे चना (१६%), गेहूँ (१२%), जौ (८%), मक्का (६%) तथा अरहर, मूँग, मसूर आदि फसलें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गेहूँ रबी मौसम की सबसे प्रमुख फसल है। बिहार मे बोये गये नेट क्षेत्रफल के ३३% तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में ३७% में सिंचाई की जाती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होती है और अनिश्चितता कम है सिंचित भूमि का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। बिहार के दक्षिणी मैदान में नहरें, उत्तरी बिहार में नहरों के

दलदली तथा खादर पेटी आदि को छोड़कर जनसंख्या का सामान्य घनत्व सब जगह अधिक है। समतल मैदान, निवास योग्य दशाओं, उपजाऊ जमीन, अच्छी प्रवाह दशाओं, स्थानीय संसाधनों से जीविकोपार्जन योग्य दशाओं, सिंचाई की सुविधाओं, फसलों की किस्म तथा यातायात के विकसित साधनों के कारण इस प्रदेश में जनसंख्या घनी बसी है। जनसंख्या का घनत्व पूर्व से पश्चिम की तरफ क्रमशः कम होता जाता है।

विगत तीन जनगणना दशकों में जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है। पूरे देश में लगातार बाढ़, अकाल, महामारी तथा दुर्भिक्ष जैसे दैवी प्रकोपों के कारण सन् १९११-२१ दशक में जनसंख्या में गिरावट आई है। गोरखपुर तथा चम्पारन आदि जिलों के तराई क्षेत्रों में भूमि को खेती योग्य बनाने, कोसी मैदान में बाढ़ नियन्त्रण तथा सिंचाई की सुविधाओं के बढ़ने आदि से खेती के धंधे में काफी स्थायित्व तथा उन्नति हुई है। शहरीकरण की नवीनतम वृद्धि, मृत्युदर में आश्चर्यजनक गिरावट तथा अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण भी जनसंख्या के बढ़ने में बड़ी मदद मिली है। कृषि जीविकोपार्जन का प्रधान साधन है। सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग ८०% कृषि कार्यों, ६.६% नौकरी तथा ६.२% कुटीर उद्योगों, (२.६%) व्यवसाय, (१.५%) उद्योगों (१.२७) खनन कार्यों में लगे हुए हैं।

भारत के विशाल मैदानी प्रदेशों की तुलना में इस प्रदेश में सबसे कम शहरीकरण (७.२२%) हुई है। पूर्वी उत्तर प्रदेश (१२.६%) तथा बिहार में (८.४%) शहरीकरण में उपक्षेत्रीय अन्तर भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी मैदान (५.७%) उत्तरी बिहार, मिथिला तथा कोसी मैदान में शहरीकरण का प्रतिशत क्रमशः ३.६%, ४ ८% तथा ४.६% है। व्यापार, नौकरी, रेशम तथा चीनी के उद्योगों ने इस प्रदेश में शहरीकरण को काफी प्रोत्साहित किया है। बड़े-बड़े शहरों में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। परन्तु छोटे शहरों में जीविकोपार्जन के साधनों के सीमित होने के कारण कहीं कहीं जनसंख्या में भारी गिरावट भी आ रही है।

बस्तियां

इस प्रदेश की लगभग ९३% जनसंख्या ७३५६२ गाँवों में रहती है। जिसमें ४०% से ७०% लोग ऐसे गाँवों में रहते हैं जिनकी जनसंख्या ५००-१९९९ है। संथाल परगना तथा सहर्सा में यह प्रतिशत क्रमशः ३३ ४ तथा ३७ ६ है। जनसंख्या की किस्म तथा उसका वितरण जलोढ़ मिट्टी की प्रकृति तथा कृषि कार्यों की सघनता पर निर्भर होती है। गाँवों में अब भी जजमानी प्रथा है जिसके अन्तर्गत मजदूरी प्राचीन बार्टर प्रथा के अनुसार भुगतान की जाती है।

इस प्रदेश में शहरीकरण की गति न्यूनतम रही है। यहाँ न केवल भारत का बल्कि सम्भवतः समस्त विश्व का प्राचीनतम जीवित शहर वाराणसी स्थित है। इसके अलावा अयोध्या, बलिया, गाधिपुर (गाजीपुर), विन्ध्याचल, चुनार, पाटलिपुत्र (पटना) गया, चम्पा (भागलपुर) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। गंगा नदी की घाटी ने उपजाऊ मिट्टी के बल पर शहरों की सदैव सेवा करती रही। गंगा तथा उसकी सहायक नदियों के तटों एवं संगम स्थलों पर अत्यन्त प्राचीन काल में शहर बसते चले आ रहे हैं। मध्यकाल में राज-

नैतिक अस्थिरता अथवा आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वैशाली, मिथिला तथा राजगिरि जैसे कई शहर लुप्त हो गये परन्तु उनके स्थान पर अनेक शहरों जैसे सुल्तानपुर तथा मिर्जापुर शहरों का प्रादुर्भाव भी हुआ। इनके अलावा अन्य अनेक बहुत से शहरों का जन्म व्यापारिक केन्द्रों तथा दिल्ली सल्तनत में प्रशासकीय इकाई के रूप में हुआ। आधुनिक शहरों का प्रादुर्भाव सड़को के किनारे, नदी पत्तनों के पास तथा रेल जक्शनों पर हो रहे हैं। इसके साथ-साथ प्राचीन शहरों को नवजीवन भी प्राप्त हुआ है। शहरों का जन्म व विकास प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक कारकों के आधार पर होता है जिनमें नदियों के संगम, नदियों के मोड़, किले, मन्दिर धर्म स्थान तथा रेल जंक्शन विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् इन शहरों में प्रशासनिक, औद्योगिक, शैक्षणिक, छावनियाँ तथा स्वास्थ्य केन्द्र आदि स्थापित किये गये हैं। इस प्रदेश के शहरों को यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो अधिकांश शहरों में तीन-प्राचीन, मध्य तथा नवीनतम सेक्शन प्राप्त होते हैं। पुराने सेक्शन में बाजार तथा नये सेक्शन में नई दुकानें, सिविल लाइन्स, कन्टोनमेन्ट तथा रेल कालोनी आदि आते हैं। मध्य युगीन निर्माणों में राजा महाराजों के किले तथा उनसे सम्बन्धित इमारतों का समावेश किया जाता है।

मध्य गंगा मैदान में आर्थिक संसाधन न तो अच्छी तरह विकसित हैं और न ही संतुलित। जीविकोपार्जन अधिकतर कृषि पर निर्भर है। बोई गई भूमि के वितरण में क्षेत्रानुसार अन्तर पाया जाता है। दक्षिणी बिहार के पश्चिमी भाग में (६४-६७%), मैदानी भाग में ७०%, पूर्णिया जिले में ७७% तथा उत्तरी बिहार में ८०% में खेती की जाती है। उत्तर प्रदेश में भी ऊसर मिट्टी को छोड़कर सभी जिलों में ७१% से भी अधिक भूमि पर खेती की जाती है। बोई गई भूमि का नेट प्रतिशत पूर्वी उत्तर प्रदेश में बिहार के मैदान की तुलना में अधिक है। इसमें भी जिलानुसार अन्तर भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए गोण्डा (८८%), देवरिया (८४.१), प्रतापगढ़ (८४.१%) तथा बलिया (८२%) है। इसी के अनुरूप कृषि योग्य बेकार भूमि का भी प्रतिशत देवरिया (२.१%) सुल्तानपुर (७.३%), सरयूपार मैदान (२.५%), बलिया (३.२%), वाराणसी (४.१%) न्यूनाधिक। सम्पूर्ण प्रदेश में अच्छी नस्ल के बीजों, कृषि के आधुनिक तरीकों, सिंचाई के विकसित साधनों, गोदामों, बाजारों तथा यातायात के आधुनिकतम संसाधनों के उपयोग के कारण कृषि की उन्नति के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। बड़े-बड़े कृषकों के यहाँ उगाई जाने वाली फसलों-चावल, गन्ना तथा जूट के उत्पादन में गहरी प्रतिद्वन्द्विता रहती है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में चावल सबसे प्रमुख फसल है। वर्षा की कमी वाले क्षेत्रों में उसी के अनुसार उत्पादन तथा चावल क्षेत्र कम होता जाता है। बिहार में उत्पादन में लगी हुई कृषि उत्पादन क्षेत्रफल के ३२% भूमि पर चावल पैदा किया जाता है। अन्य फसलों में चना (१६%), गेहूँ (१२%), जौ (८%), मक्का (६%) तथा अरहर, मूँग, मसूर आदि फसलें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गेहूँ रबी मौसम की सबसे प्रमुख फसल है। बिहार में बोये गये नेट क्षेत्रफल के ३३% तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में ३७% में सिंचाई की जाती है। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होती है और अनिश्चितता कम है सिंचित भूमि का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। बिहार के दक्षिणी मैदान में नहरें, उत्तरी बिहार में नहरों के

साथ अरहट तथा अन्यान्य सिंचाई साधनों, पूर्वी उत्तर प्रदेश में गड्ढों के साथ कुएँ, नलकूप, पम्पिंग सेट्स, झीलें तथा तालाब विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर प्रदेश में प्रति व्यक्ति ०.७५ एकड़ कृषि भूमि, तथा बिहार में ०.७४ एकड़ आती है। उपजाऊ तथा समतल मैदान में घनी जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति कृषि भूमि न्यूनतम होती गई है। इस प्रदेश में चकबन्दी योजना लागू की गयी है। इस योजना के अन्दर प्रत्येक गांव में ९% भूमि स्कूलों, सड़कों, पंचायत घरों तथा खेलकूद के मैदानों के लिए छोड़ना आवश्यक कर देने के कारण लगभग प्रत्येक गांव की ऐसी भूमि में जिसमें अब तक खेती की जाती रही है, ९% की कमी हो गई है। इसके साथ-साथ दो फसली जमीन की मात्रा बढ़ी है। इस प्रदेश में फसलों का संयोजन सिंचाई की मात्रा तथा भूमि के उपजाऊपन के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता रहता है। धान, खरीफ तथा खेसारी रबी की प्रमुख फसलें हैं। चावल का उत्पादन जितनी ही दिलचस्पी, वैज्ञानिक तरीकों तथा पूँजी लगाकर किया जाता है खेसारी का उत्पादन उतनी ही लापरवाही से किया जाता है। इस प्रदेश के फसल संयोजन उदाहरणार्थ चावल-मक्का, चावल-चना, चावल-गेहूँ, चावल-जौ को चित्र ६५ में दिखाया गया है।
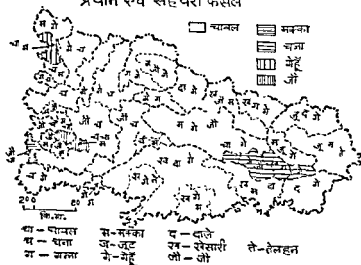
चित्र ६५

इस प्रदेश में चीनी की मिलें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त उद्योगों में साहूपुरी केमिकल्स (वाराणसी), मडुवाडीह डीजल लोकोमोटिव (वाराणसी), गोरखपुर फर्टिलाईजर, डालमिया सीमेन्ट, कागज, केमिकल, चीनी तथा वनस्पति उद्योग (डालमिया नगर), बरौनी पेट्रोकेमिकल्स उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुटीर उद्योगों में भी सूती वस्त्र तथा कृषि पर आधारित अन्य उद्योगों की प्रधानता है। जिनमें औसतन ५०%

श्रमिक काम कर रहे हैं। कुटीर उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों का प्रतिशत भागलपुर (६०%), बस्ती (६५%), वाराणसी (५६), गोरखपुर (३३), सहर्सा (१८%) में अलग-अलग है। फैक्टरी उद्योगों में भी उन्हीं उद्योगों को प्राथमिकता है जिनका कच्चा माल खेती से उत्पन्न किया जाता है। ऐसे उद्योगों में चीनी, कपड़ा, चावल कुटाई तथा दाल दलाई आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

यातायात एवं परिवहन

इस प्रदेश मे रेल तथा सड़क परिवहनों की अधिकता है। इस प्रदेश में वायुमार्गों तथा जलयातायात का सतोषजनक विकास अब तक नहीं हो पाया है। इस प्रदेश का सीधा सबंध पूर्व मे कलकत्ता तथा पश्चिम मे दिल्ली से है। बम्बई भी इस प्रदेश से जुड़ा हुआ है। इस प्रदेश के अधिकाश शहर सड़क यातायात से जुड़े हुए हैं। यहाँ प्रत्येक १० व. कि. मी. पर १ कि. मी. सड़क है। वाराणसी, गया, पटना विश्व वायुमार्ग मानचित्र पर अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पटना से नेपाल, कलकत्ता दिल्ली तक वायुयान उड़ते हैं।

ऊपर के कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि लाखों वर्ष प्राचीन मध्यगंगा की घाटी का उसके सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों के कारण सम्पूर्ण देश के इतिहास में एक प्रमुख स्थान है। जल तथा मिट्टी इस प्रदेश की दो प्रधान प्राकृतिक सपदाएँ हैं। नदी प्रवाहतन्त्र, जलोढ़ मिट्टी की प्राकृति, स्थलाकृति तथा भूमिगत जल आदि मे भी भिन्नताएँ पाई जाती हैं। जलोढ़ मिट्टी की किस्म तथा जलवायु के अन्तर के कारण इस प्रदेश को अनेक उपविभागों मे बाँटा जा सकता है। ऊपरी गगा की घाटी की भाँति यहाँ भी गगा नदी ने इस समूचे प्रदेश को दो प्रथम आर्डर के विभागों—उत्तरी तथा दक्षिणी भागों मे विभाजित कर रखा है। इसके बाद ६ द्वितीय आर्डर तथा १४ तृतीय आर्डर के विभागों मे विभाजित किया जा सकता है।

मध्य गगा के मैदान का उत्तरी भाग

गंगा घाघरा दोआब—इस सम्पूर्ण क्षेत्र मे जलोढ़ मिट्टी का जमाव अपेक्षाकृत कम गहरा (२०००–३००० मीटर), जल सतह नीचा, अधिकतर क्षेत्र भांगर, कहीं-कहीं ऊसर जमीन, मध्य गंगा घाटी का ३०–६०% नेट क्षेत्र सिंचित, फसलों की सघनता अधिक, वन विहीन, चरागाह के क्षेत्र कम, जनसख्या का घनत्व अधिक, (४२३), शहरीकरण (६%) वाराणसी क्षेत्रीय राजधानी, गाजीपुर तथा मऊनाथभंजन औद्योगिक, रेलें तथा सड़कें अधिक हैं।

सरयूपार का मैदान

यह प्रदेश अधिक ऊँचा (१२०–१५० से० मी०) तथा इसमें प्राचीन वोलियत, नदियों का प्राचीन शुष्क मार्ग, जल सतह ऊँचा, बाढ़ का अधिक प्रकोप प्राचीन समय से आबाद, बड़े पैमाने पर जगलों का विनाश, लम्बे घासों की बहुतायत, उपजाऊ जमीन, धान, गेहूँ, दालें, तिलहन तथा जूट प्रमुख फसलें, दोआब, टटबन्धों तथा जलोढ़ शंकुओं पर अधिकतर

मानव बस्तियाँ, रेलें तथा सड़कें कम, जनसख्या का घनत्व कम (२००) प्रसिद्ध शहरों की कमी तथा गोरखपुर क्षेत्रीय राजधानी है।

सरयूपार मैदान का पश्चिमी भाग

इस क्षेत्र मे देवरिया, गोरखपुर, बस्ती तथा गोण्डा जिलों के बलरामपुर तथा उतरौला तहसीलें सम्मिलित है। चावल प्रमुख फसल हैं। इस क्षेत्र के पूर्वी भाग में गन्ना और मध्य भाग मे गेहूँ तथा चना और पश्चिमी भाग मे मक्का तथा गेहूँ प्रमुख फसलों के रूप मे पैदा किये जाते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे गन्ना उत्पादन व्यवसाय सबसे अधिक देवरिया में केन्द्रित है। चावल, दाल तथा तिलहन की मिलें भी प्रधान उद्योग के रूप मे विकसित हुई हैं। सहजनवा मे एक जूट मिल भी कार्य कर रही है। गोरखपुर न केवल क्षेत्रीय तथा शैक्षणिक राजधानी है बल्कि यहाँ रेल जक्शन, उर्वरक कारखाना तथा इन्जीनियरिंग उद्योग की इकाईयाँ है।

मिथिला मैदान

मिथिला का मैदान मुख्यरूप से समतल है। नदीय ट्रैक्ट नेपाल के तराई क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। दक्षिण मे गगा नदी के पास तटबंध तथा खादर क्षेत्र स्थित हैं। गडक पश्चिमी तथा कोसी इस क्षेत्र की पूर्वी सीमाएँ बनाती हैं। बूढी गडक इस क्षेत्र को दो भागो मे विभाजित करती है। यह उपजाऊ कृषि प्रदेश है। यहाँ जनसख्या का घनत्व (४४५) तथा शहरीकरण(५.०%) है। चावल मुख्य फसल है। गन्ना द्वितीय फसलों के रूप में पैदा किया जाता है। इसके अतिरिक्त जौ, दालें, खेसारी आदि फसलें, और आम तथा लीची प्रमुख फल के रूप मे पैदा किये जाते हैं। बाँस तथा घास यहाँ की प्राकृतिक वनस्पतियाँ हैं। गाँव छोटे एव बिखरे हुए हैं। इस क्षेत्र मे सामान्यत: चीनी की मिलें और बरौनी मे तेल शोध कारखाना, पैट्रोकेमिकल तथा ताप बिजलीघर भी स्थापित किये गये हैं।

कोसी नदी का मैदान

यह क्षेत्र कोसी नदी के पूर्व तथा गगा नदी के उत्तर मे स्थित है। इसमे बिहार के सहर्सा तथा पूर्णिया जिले सम्मिलित किये गये हैं। यह समूचा क्षेत्र कोसी नदी का क्रीड़ास्थल है। अक्सर बाढे आती हैं। खादर भूमि की अधिकता है। क्षेत्र अधिक नम, जल सतह ऊँचा तथा चावल-जूट प्रधान फसलें हैं। बाढ से फसलों को स्थायी खतरा होने के कारण बोई गई नेट भूमि (६६%) से भी कम है। जनसख्या का घनत्व (३०५) तथा शहरीकरण का प्रतिशत (५%) है। आवागमन के साधन कम तथा उद्योग धधे उससे भी कम हैं। कोसी नदी घाटी परियोजना की सफलता पर इस समूचे क्षेत्र का भविष्य निर्भर है।

मध्य गंगा के मैदान का दक्षिणी भाग

मध्य गंगा के मैदान का लगभग ३०% क्षेत्रफल तथा सम्पूर्ण जनसंख्या का २४%

इसमें सम्मिलित है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व (३३५) है। इस क्षेत्र की मिट्टी बहुत उपजाऊ है।

गंगा की निचली घाटी—(२१°२५' से २६°५०' उत्तरी ८६°३०' ८६°५८' पूर्वी) देशान्तरों के बीच गंगा की निचली घाटी में बिहार का पूर्णिया जिला तथा पश्चिमी बंगाल सम्मिलित है। उत्तर में दार्जिलिंग तथा हिमालय से लेकर दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में छोटा नागपुर के उच्च प्रदेश से लेकर पूर्व में आसाम की सीमा तक फैला हुआ इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल ८०६६८ वर्ग कि. मी. है।

वैदिक काल में यह बंग प्रदेश के नाम से पुकारा जाता था। प्राचीन काल में इस पूरे प्रदेश में निषाद तथा किरात आदि अनार्य जातियों के प्रमुखों का शासन था। आर्यों के पूर्व यहाँ बड़े-बड़े सामाजिक तथा प्राकृतिक परिवर्तन हुए। अनार्य जातियाँ तथा वनाच्छादन दोनों ही हटाये गये। इससे इस प्रदेश में राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थायित्व का श्रीगणेश हुआ। बंग प्रदेश ने हुगली के रास्ते समस्त विश्व से व्यापार तथा यातायात का अपना सिक्का जमा लिया था। कम्बोडिया, बर्मा, श्रीलंका तथा मलाया आदि प्रमुख व्यापारिक देश थे।

स्थलाकृति एवं प्रवाह तंत्र

इस समस्त भू-भाग का निर्माण उत्तर में गंगा सिन्धु द्रोणी तथा दक्षिण में बंगाल की खाड़ी के अवसंवलन जैसी दो तनाव बलों के बीच हुआ है। इन शक्तियों के क्रियाशील होने के पूर्व यह समस्त प्रदेश राजमहल तथा गारो पहाड़ियों के बीच प्रायद्वीपीय भारत का एक सकरा भाग रहा होगा। इस प्रदेश की वर्तमान भू आकृति बनने के पूर्व दिल्ली रीज के ऊपर उठने के कारण शिवालिक नदियों का पानी दक्षिण में प्रवाहित होकर बंगाल की खाड़ी में आया। राजमहल तथा गारों पहाड़ियों के बीच मौजूद लेटेराईट प्रदेश तथा दक्षिण में निरन्तर नवीनतम जलोढ़ मिट्टी के जमाव से इस भूऐतिहासिक घटना का प्रमाण मिलता है। उत्तर की भाँति इस प्रदेश के दक्षिण में प्राचीन जलोढ़ किस्म की मिट्टी नहीं पाई जाती है।

इस सम्पूर्ण प्रदेश का निर्माण नवीनतम जलोढ़ मिट्टी से हुआ है। विस्तृत छानबीन करने के पश्चात् केवल चार क्षेत्रों—(१) मालदा, (२) छोटा नागपुर का ऊँचा प्रदेश (३) मिदनापुर के तटीय प्रदेश तथा (४) जलपाई गुड़ी एवं दार्जिलिंग क्षेत्रों में सापेक्षिक उच्चावचता दिखाई पड़ती है। अन्य अनेक क्षेत्रों में दलदल तथा तटबंध भू आकृति के प्रमुख घटक हैं। इस प्रदेश को तीन प्राकृतिक विभागों में विभाजित किया जा सकता है।

१. उत्तरी मैदान (क) दुआर (ख) बीरंड प्रदेश
२. डेल्टा प्रदेश (क) मुर्शिदाबाद (ख) नदिया क्षेत्र (ग) सुन्दरबन (घ) वीरभूमि, बर्दवान, मिदनापुर हुगली तथा हावड़ा
३. पश्चिमी डेल्टा प्रदेश

इस प्रदेश का सम्पूर्ण अपवाहतंत्र मुख्यरूप से गंगा-ब्रह्मपुत्र एवं उनकी सहायक नदियों से बना हुआ है। इस प्रदेश के अपवाहतंत्र को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा

सकता है। (१) गंगा आवाहतंत्र—इसमें हुगली प्रधान नदी के रूप में सागरद्वीप के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है। (२) ब्रह्मपुत्र आवाहतंत्र—यहाँ की नदियाँ मार्ग बदलने, बाढ़ तथा प्रतिवर्ष उपजाऊ मिट्टी लाने, आदि के कारण मानव बसाव एवं आर्थिक क्रिया-कलापों पर गहरा प्रभाव डालती हैं।

जलवायु

यहाँ की जलवायु गर्म-आर्द्र मानसूनी किस्म की है। इस प्रदेश की जलवायु बंगाल की खाड़ी हिमालय पर्वत और शिलांग पठार की निकटता से निर्धारित होती है। मानसून किस्म की सामान्य जलवायु के अन्दर मौसम के अन्य कारकों जैसे तापमान, वर्षा तथा सापेक्ष आर्द्रता के वितरण में भारी अन्तर पाया जाता है। जनवरी (१७°–२१° से. ग्रे.) सबसे ठंडा महीना है परन्तु तापमान क्रमशः दक्षिण की तरफ बढ़ता जाता है। क्षेत्रीय अन्तर बहुत कम रहता है। पूरे प्रदेश में फरवरी से तापमान ऊँचा होने लगता है और मई के अन्त तक बढ़ता रहता है।

पश्चिमी सीमा की तरफ (आसनसोल) नग्न चट्टानों के कारण मई का औसत तापमान अपेक्षाकृत ऊँचा रहता है। मार्च तथा अप्रैल महीनों में ताप परिसर सर्वत्र अधिक रहने के बावजूद भी १६° से. ग्रे. से अधिक नहीं होने पाता है। ताप परिसर जुलाई/अगस्त महीनों में न्यूनतम ५० से. ग्रे. होता है जो १० से. ग्रे. से कभी अधिक नहीं होता है। जून महीने से ताप परिसर कम होने लगता है और अक्टूबर तथा नवम्बर में ३° से ५° से. ग्रे. रह जाता है और यह जाड़े की ऋतु के आगमन का सूचक होता है। मार्च तथा अप्रैल महीनों के न्यूनतम सापेक्ष आर्द्रता (४०%) को छोड़कर पूरे वर्ष सर्वत्र ५०% से अधिक रहता है।

सम्पूर्ण प्रदेश में १२० से ४०० से. मी. अथवा इससे अधिक वर्षा होती है। देश के अन्य भागों की भाँति इस प्रदेश में भी वर्षा की मात्रा का क्षेत्रीय तथा मौसमिक वितरण बड़ा असमान है। यहाँ चार किस्मों—जाड़े में पछुआ, विक्षोभों, मार्च-अप्रैल में काल वैशाखी; मानसूनी चक्रवातों, तथा मानसून समाप्ति के समय की वर्षा होती है। इस पूरे प्रदेश में सबसे अधिक वर्षा अन्तिम दो तरीकों से सागर द्वीप (८५%) कृष्ण नगर (८०%) आसनसोल (८२%) तथा जलपाईगुड़ी में (८६%) वर्षा होती है। उत्तरी भाग हिमालय पर्वत और दक्षिणी भाग बंगाल की खाड़ी के समीप स्थित होने के कारण अधिक, परन्तु पश्चिमी भाग के छोटा नागपुर पठार के पास स्थित होने के कारण सबसे कम वर्षा प्राप्त करते हैं। जनवरी से मध्य-जून तक के महीनों में पानी की कमी रहती है। मुख्य डेल्टा प्रदेश की मिट्टी को छोड़कर प्रदेश के अन्य भागों की मिट्टी में नमी की कमी रहती है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि देश के अन्य भागों की अपेक्षा इस प्रदेश की वर्षा की स्थिति अच्छी है। परन्तु सुनिश्चित एवं गहरी कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। जूट की खेती से वर्षा एवं तापमान बहुत अधिक सम्बन्धित है।

मिट्टियाँ

इस प्रदेश की मिट्टियों को पाँच—(१) लेटेराईट (२) लाल मिट्टी (३) तराई मिट्टी

(४) जलोढ मिट्टी (५) तटीय मिट्टियां वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रदेश की मिट्टियों के वितरण को चित्र ६६ में दिखाया गया है।

१. लैटेराईट मिट्टी—यह मिट्टी प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित छोटा नागपुर के उच्च भाग में ५८८८ वर्ग कि. मी. में पाई जाती है। यहाँ धरातल ऊबड़खाबड़ नदियाँ अधिक तथा नग्न चट्टानें पाई जाती हैं। यह अम्लीय तथा इसमें जैव पदार्थों एवं जल-धारण करने की क्षमता कम रहती है।

२. लाल मिट्टी—इस प्रकार की मिट्टी का जमाव लैटेराईट के पूर्वी छोर पर, वरिण्ड, प्रदेश, मालदा तथा पश्चिमी दीनाजपुर जिलों के ४६६३ वर्ग कि. मी. में पायी जाती है। इसमें कहीं-कहीं मुरंम, तथा चूने के छोटे-छोटे कक्ड़ पाये जाते हैं। इसकी गहराई कम, कण बड़े अम्लीय तथा जैव पदार्थों की कमी है। वनों को साफ करके अधिकांश भू-भाग पर खेती की जाने लगी है।
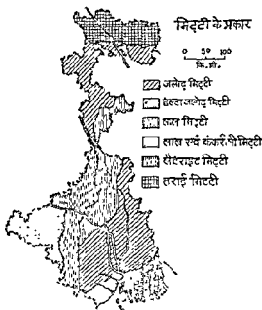
चित्र ६६

३. तराई मिट्टी—इस प्रकार की मिट्टी का जमाव दार्जिलिंग हिमालय, जलपाईगुड़ी तथा सिलीगुड़ी क्षेत्रों के ६६०० वर्ग कि. मी. में पाई जाती है। इसमें वनस्पति तथा जैव पदार्थों की भारी कमी रहती है तथा मिट्टी अम्लीय है।

४. जलोढ़ मिट्टी—इस प्रदेश में यह मिट्टी सबसे उपयोगी तथा कृषि योग्य है। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल २८६२१ वर्ग कि. मी. है। मुर्शिदाबाद, बाँकुरा, बर्दमान, हुगली तथा मिदनापुर जिलों में पाई जाती है। इस मिट्टी में स्थानीय अन्तर भी देखने को मिलते हैं। इसमें दामोदर तथा कसाई नदियों के तट्ट भी पाये जाते हैं। गंगा की जलोढ़ मिट्टी में

वनस्पति तथा जैव पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते हैं। ऊँचाई के बढ़ने अथवा नदी बाढ़ क्षेत्र से दूर होने पर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम होती जाती है।

५. तटीय मिट्टी—मिदनापुर तथा चौबीस परगना में पाई जाती है। यहाँ की मिट्टी सलाईन तथा एल्कलाइन किस्म की है।

खनिज सम्पदा

रानीगंज की कोयले की खदानें इस प्रदेश में स्थित हैं। इसलिए कोयला सबसे महत्व-पूर्ण खनिज है जिसका उपयोग शक्ति उत्पादन तथा कच्चे माल के रूप में किया जाता है। यहाँ की कोयला पेटी वर्दवान, वीर तथा बाँकुरा, जिलों में फैली हुई है। यहाँ के कोकिंग कोयले का अनुमानित भण्डार २८८ मिलियन टन है। नान-कोकिंग कोयले का भंडार ४८३८ मिलियन टन एवं सामान्य किस्म के कोयले भी भारी मात्रा में पाये जाते हैं। अन्य खनिज पदार्थों में लौह अयस्क, ताँबा, सल्फर, अभ्रक, डोलामाईट, चूना का पत्थर, ग्रेफाईट तथा खनिज तेल भी काफी महत्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश में कलकत्ता बन्दरगाह के स्थित होने के कारण आसनसोल तथा दुर्गापुर में राष्ट्रीय महत्व के बड़े बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना की गई है। पूरे देश की खनिज सम्पदा का २०% इस प्रदेश से प्राप्त किया जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति

इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सुन्दरवन तथा आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में मैंग्रोव तथा उत्तरीय वन और पश्चिमी सीमा क्षेत्र में उष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन एवं छोटी-छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं। मुख्य डेल्टा क्षेत्र के हावड़ा एवं हुगली जिलों में बिखरे हुए वन खण्ड भी पाये जाते हैं।

जनसंख्या

यहाँ की जनसंख्या ३३.२ मिलियन तथा क्षेत्रफल ८१००० व. कि. मी. है। भारत के सभी २८ प्राकृतिक प्रदेशों में से इसमें जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक (४१४ वर्ग कि. मी) है। जनसंख्या के घनत्व में स्थानीय अन्तर भी पाया जाता है। यहाँ की लगभग ६०% जनसंख्या मुख्य डेल्टा क्षेत्र में (पूरे प्रदेश का २/५) निवास करती है। उत्तरी बंगाल में जनसंख्या का घनत्व २६० व. कि. मी. है जबकि प्रधान डेल्टा में यह घनत्व ६०० और कलकत्ता में २९,२९६ तक पहुँच जाता है। उत्तरी बंगाल के मैदानी भाग में कूच बिहार (३०६) तथा मालदा (३३०) जिलों को छोड़कर जनसंख्या का घनत्व लगभग सर्वत्र २५० है। जिसको निम्न तालिका में दिखाया गया है।

१	२	३	४
मालदा	३२६	४.२	१६.६१
बांकुरा	२४२	१०.६	१४.४
बीरभूम	३१८	८.५	—
मिदनापुर	२१६	१०.७	—
हुगली	७०६	२६.०	४०.८
हावड़ा	१३७३	४०.५	४३.८
कलकत्ता	२८२५६	१००.०	६५.०

(—) आंकड़ा उपलब्ध नहीं।

यहां की समस्त जनसंख्या का लगभग ३/४ चौथाई गांवों में रहती है। परन्तु इसके वितरण में क्षेत्रीय विविधताएँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी बंगाल में ९२%, पश्चिमी क्षेत्र में ९०% परन्तु मुख्य डेल्टा प्रदेश में गाँवों की जनसंख्या का प्रतिशत केवल ४२% है। प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या केवल ८७६ है। शहरों में लैंगिक अनुपात गाँवों से भिन्न है। उदाहरणस्वरूप कलकत्ता में ६१२ तथा नादिया में ९३३ है। यहां की लगभग ४१% जनसंख्या १५ वर्ष के नीचे है। ४३० लड़कियों की उम्र १४ वर्ष अथवा इससे कम है। इस प्रदेश में २९% साक्षरता है। सन् १९०१ से लेकर अब तक इस प्रदेश की जनसंख्या दो गुनी हो गई है। दो विश्व युद्धों, देश के विभाजन तथा प्राकृतिक महामारियों आदि के कारण जनसंख्या की वृद्धि बड़ी असमान रही है। सन् १९११–२१ जनगणना दशक में सारे देश की भाँति यहाँ भी जनसंख्या का भी ह्रास हुआ था। देश के अन्य भागों की अपेक्षा यहां बड़ी संख्या में लोग आकर बसे हैं और यहां के औद्योगिक तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से जीविकोपार्जन करते हैं।

यहां के गांव कुछ मकानों के समूह की भाँति हैं जो जूट तथा चावल के खेतों में द्वीप के समान दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक गांव की औसत जनसंख्या लगभग ७०० है। इसमें क्षेत्रीय विषमताएँ अधिक पाई जाती हैं। मुख्य डेल्टा क्षेत्र में ४०% ग्रामीण जनसंख्या १५०० गाँवों में निवास करती है। गाँवों का घनत्व प्रति १०० व. कि. मी. में ३५ है। प्रदेश के पश्चिमी जिलों में गाँव छोटे और घनत्व ६० प्रति १०० व. कि. मी. है। मकान बहुउद्देशीय तथा पक्के मकानों की भारी कमी है। बस्तियों की किस्में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। उदाहरण के लिए पश्चिम में सहत एवं पूर्व में रेखाकार बस्तियाँ अधिक पाई जाती हैं। मोटे तौर पर इस प्रदेश की ग्रामीण बस्तियों को तीन—(१) सहत बस्ती (२) अर्ध सहत बस्ती, तथा (३) रेखाकार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

इस प्रदेश में लगभग १७६ शहरी बस्तियाँ हैं, जिनमें लगभग ७५% जनसंख्या अकृषि धंधों से अपना जीविकोपार्जन करती है। शहरों का वितरण पूरे प्रदेश में असमान है। उदाहरण के लिए केवल हुगली में ६५ शहर हैं। चूंकि यह प्रदेश काफी प्राचीन समय से व्यापारिक केन्द्र रहा है अतः द्रुत गति से बढ़ते हुए प्रशासनिक, व्यापारिक एवं

वनस्पति तथा जैव पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते हैं। ऊँचाई के बढ़ने अथवा नदी बाढ़ क्षेत्र से दूर होने पर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम होती जाती है।

५. तटीय मिट्टी—मिदनापुर तथा चौबीस परगना में पाई जाती है। यहाँ की मिट्टी सलाईन तथा एल्कलाइन किस्म की है।

खनिज सम्पदा

रानीगंज की कोयले की खदानें इस प्रदेश में स्थित हैं। इसलिए कोयला सबसे महत्त्वपूर्ण खनिज है जिसका उपयोग शक्ति उत्पादन तथा कच्चे माल के रूप में किया जाता है। यहाँ की कोयला पेटी बर्दवान, वीर तथा बांकुरा, जिलों में फैली हुई है। यहाँ के कोकिंग कोयले का अनुमानित भण्डार २८८ मिलियन टन है। नान-कोकिंग कोयले का भंडार ४८३८ मिलियन टन एवं खराब किस्म के कोयले भी भारी मात्रा में पाये जाते हैं। अन्य खनिज पदार्थों में लौह अयस्क, तांबा, सल्फर, अभ्रक, डोलामाईट, चूना का पत्थर, ग्रेफाईट तथा खनिज तेल भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश में कलकत्ता बन्दरगाह के स्थित होने के कारण आसनसोल तथा दुर्गापुर में राष्ट्रीय महत्त्व के बड़े बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना की गई है। पूरे देश की खनिज सम्पदा का २०% इस प्रदेश में प्राप्त किया जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति

इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सुन्दरवन तथा आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में मैंग्रोव तथा ज्वारीय वन और पश्चिमी सीमा क्षेत्र में उष्ण कटिबन्धीय पतझड़ वन एवं छोटी-छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं। मुख्य डेल्टा क्षेत्र के हावड़ा एवं हुगली जिलों में बिखरे हुए वन खण्ड भी पाये जाते हैं।

जनसंख्या

यहाँ की जनसंख्या ३३.५ मिलियन तथा क्षेत्रफल ८१००० व. कि. मी. है। भारत के सभी २८ प्राकृतिक प्रदेशों में से इसमें जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक (४१४ वर्ग कि. मी.) है। जनसंख्या के घनत्व में स्थानीय अन्तर भी पाया जाता है। यहाँ की लगभग ६०% जनसंख्या मुख्य डेल्टा क्षेत्र में (पूरे प्रदेश का २/५) निवास करती है। उत्तरी बंगाल में जनसंख्या का घनत्व २६० व. कि. मी. है जबकि प्रधान डेल्टा में यह घनत्व ६०० और कलकत्ता में २८,२४६ तक पहुँच जाता है। उत्तरी बंगाल के मैदानी भाग में कूच बिहार (३०६) तथा मालदा (३३०) जिलों को छोड़कर जनसंख्या का घनत्व लगभग सर्वत्र २५० है। जिसको निम्न तालिका में दिखाया गया है।

तालिका १६३

जिलों का नाम	जनसंख्या का घनत्व	शहरी जनसंख्या का घनत्व प्रतिशत	साक्षरता %
कूच बिहार	३०६	७.६	—

१	२	३	४	५
२. डेल्टा (प्रधान)	मुर्शिदाबाद	६	११०६	०.२०
	चौबीस परगना	५३०	२२०७८६	३३.८८
	कलकत्ता	१०१०	११६२२३	१८.२६
	हावड़ा	६५६	१३२५४४	२०.३४
	हुगली	१२६	७०५५६	१०.८१
	बर्दवान	१७७	५७६३	८.८४
	नादिया	२१	२६७८	०.४५
३. डेल्टा क्षेत्र का पश्चिमी भाग	बांकुरा	५४	२५६३	०.३९
	मिदनापुर	६१	१६७६४	२.५७
	वीरभूम	७३	४६७७	०.६७
	योग	२०२१	६५१६२६	१००.००

सम्पूर्ण प्रदेश में एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए खाद्यान्न, जूट, चाय, कोयला, विविध खनिज एवं औद्योगिक कच्चा तथा पक्का माल ढोने के लिए प्रतिकूल धरातल होने के बावजूद भी आवागमन के साधनों का समुचित विकास हुआ है। परिवहन ससाधनों में रेल, सड़कें तथा जलयातायात का विकास समुचित रूप से हुआ है। देश के विभाजन, नदियों के तेज प्रवाह अधिक स्थायी एवं सुरक्षित रेल और सड़क परिवहनों के तेजी से विकसित होने के कारण नदी पत्तनों का ह्रास होता जा रहा है। इस प्रदेश में रेल मार्ग का घनत्व ०.४२ कि. मी. प्रति वर्ग कि. मी. है जो देश में सबसे अधिक है। फिर भी प्रदेश का लगभग २५% भाग रेल मार्ग से करीब १६ कि. मी. दूर है। इस प्रदेश का सड़क घनत्व भी देश में सबसे अधिक है। सब प्रकार की सड़कों को मिलाकर इस प्रदेश में २५,००० कि. मी. सड़कें हैं।

प्रदेश के उप-विभाग

(१) उत्तर बंगाल का मैदान

(क) दुआर

i. पश्चिमी

ii. मध्य

iii. पूर्वी

(ख) बिरम्ब ट्रैक

i. कोसी-महानदी क्षेत्र

ii. महानदी-तिस्ता दोआब

iii. पूर्व बिहार का मैदान

औद्योगिक क्रियाकलापों के कारण इस स्तर का शहरीकरण इस प्रदेश में संभव हो पाय है। यह प्रदेश न केवल देश के अन्दर प्रमुख नगरों से बल्कि विश्व के अन्य महत्त्वपूर्ण देशों से भी व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। कृषि के स्थान पर औद्योगिक कार्यों की अधिक तेज प्रगति होने के कारण इस प्रदेश में शहरों का विकास हुआ है।

यहाँ की लगभग ५७% जनसंख्या और प्रदेश का ७०% क्षेत्र खेती के कार्यों में लगी हुई है। उत्तरी बंगाल मुख्यरूप से कृषि प्रधान क्षेत्र है। कृषि की प्रगति एवं जनसंख्या की उस पर निर्भरता दोनों ही प्रदेश की उच्चावचता, मिट्टी की किस्म, वर्षा की मात्रा तथा सिंचाई की प्राप्त सुविधाओं के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। दो फसली जमीन की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ रही है। इस पूरे प्रदेश में सिंचाई के साधनों की कमी है। मानसून अनियमितताओं के कारण वर्षा की मात्रा पर्याप्त होते हुए भी समुन्नत एवं सुनिश्चित कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता अनुभव की जाती है। दामोदर तथा मयूराक्षी नदी परियोजनाओं के निर्माण के बाद से सिंचाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध होने लगा है। ६०% सिंचाई राजकीय नहरों से की जाती है। तालाब एवं कुएँ सिंचाई के अन्य साधन हैं। चावल इस प्रदेश की सबसे प्रधान फसल है। इसकी खेती नेट बोई गई भूमि के ७५% भाग पर की जाती है। सिंचित क्षेत्र का ६०% भाग चावल पैदा करता है। जूट यहाँ की दूसरी प्रधान फसल है।

उद्योग धंधे

इस प्रदेश में पर्याप्त खनिज सम्पदा है। जिनमें से कोयला, जल तथा जनशक्ति संसाधन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस कारण हुगली के किनारे तथा आसनसोल-दुर्गापुर क्षेत्र में देश के सबसे बड़ी औद्योगिक पेटी का विकास सम्भव हो पाया है। इस प्रदेश के उद्योग केन्द्रीयकरण को चित्र ६७ में दिखाया गया है। यहाँ की ६२% जनसंख्या उद्योगों से अपनी जीविकोपार्जन करती है। कलकत्ता औद्योगिक पेटी के चौबीस परगना क्षेत्र में कताई उद्योग मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में सिन्थेटिक रबर, रासायनिक एवं धातु उद्योग, लौह एवं इस्पात उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निम्न तालिका में फैक्टरियों की संख्या एवं श्रमिकों की संख्या दिखाई गई है।

उद्योगों का वितरण, फैक्टरियों की संख्या, रोजगार १९६१

तालिका १६४

प्रथम श्रेणी के विभाग	जिलों के नाम	फैक्टरियों की संख्या	कारीगरों की संख्या	कारीगरों का %
१. बंगाल का मैदान	जलपाई गुड़ी	२१५	२००४२	३.०७
	कूच बिहार	११	४३६	०.०६
	प. दिनाजपुर	३२	१६६५	०.२६
	मालदा	४	८३	०.०१

(ड) क्रियाशील डेल्टा

i. उत्तरी

ii. दक्षिणी

(३) राढ़ मैदान

(च) बीरभूम-आसनसोल

i. बीरभूमि का मैदान

ii. अजय-दामोदर दोआब

(४) बाँकुरा राढ़

(छ) i. दामोदर द्वारकेश्वर दोआब

ii. द्वारकेश्वर-कसाई क्षेत्र

(ज) मिदनापुर राढ़

i. पूर्वी

ii. पश्चिमी

चित्र ६८ में इस प्रदेश के उप-विभागों को दिखाया गया है।

६. आसाम घाटी—(२५°४४' से २७°५५' उ० अक्षांशों एवं ८९°४१' ९६°०२' पूर्वी देशान्तरों) के मध्य स्थित यह सम्पूर्ण प्रदेश भारत के विशाल मैदान का अन्तिम पूर्वी भाग है। इसको आसाम घाटी अथवा ब्रह्मपुत्र की घाटी के नाम से भी पुकारा जाता है। यह प्रदेश पूर्वी हिमालय, पटकोई पर्वतीय भाग, गारों, खासी जयन्तियाँ एवं मिकिर पहाड़ियों से घिरा हुआ स्वयं में एक प्राकृतिक इकाई है। इसका विस्तार ७२० कि. मी. × ८० कि. मी. और क्षेत्रफल ५६२७४ वर्ग कि. मी. है। लखीमपुर, शिवसागर, नवगाँव, दरांग, कामरूप तथा ग्वालपाड़ा जिले इसमें सम्मिलित किए जाते हैं।

सम्भवतः २००० ईसा पूर्व से इस प्रदेश में मानव निवास कर रहा है। इस बात के भी प्रचुर प्रमाण हैं कि आर्यों का एक जत्था पूर्व की तरफ बिहार और बंगाल होता हुआ यहाँ भी आकर बस गया है जिसकी सभ्यता एवं संस्कृति इस प्रदेश के पश्चिमी भाग में अब भी पाई जाती है। कुछ विद्वानों की राय यह है कि आर्यों का एक अन्य जत्था देश के इस भाग में महाभारत काल में ही राज्य की स्थापना कर चुका था। इस प्रकार यदि देखा जाय तो चीनी एवं आर्य लोगों के संमिश्रण से ही वर्तमान आसामी सभ्यता का सृजन हुआ है। इस प्रदेश का वर्तमान इतिहास ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों से प्रारम्भ होता है। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग आसाम आया था और उसने अपने अनेक संस्मरणों में इस प्रदेश के वैभव के संबंध में लिखा है। ब्रह्मपुत्र घाटी में अनेक सड़कों का निर्माण पूर्व-ऐतिहासिक समय में किया गया था। इस घाटी के दक्षिणी भाग में अपेक्षाकृत अधिक सड़कें थी। इनके निर्माण एवं मरम्मत के कार्य समय-समय पर बराबर होते रहे हैं। प्रदेश बहुत घना बसा था तथा इन सड़कों के किनारे प्राचीन नगर, तीर्थ स्थान, एवं व्यापारिक केन्द्र भी स्थित थे। इन नगरों में प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) सोनितपुर (तेजपुर)

iv. दक्षिण-पश्चिम दिनाजपुर मैदान

v. मालदा मैदान

(२) प्रधान डेल्टा

(ग) मोरिबण्ड डेल्टा

i. मुर्शिदाबाद मैदान

ii. नादिया मैदान

चित्र ६७

(घ) परिपक्व डेल्टा

i. बर्दवान का मैदान

ii. हावड़ा हुगली का मैदान

iii. मिदनापुर का मैदान

iv. दक्षिण-पश्चिम दिनाजपुर मैदान

v. मालदा मैदान

(२) प्रधान डेल्टा

(ग) मोरिबण्ड डेल्टा

i. मुर्शिदाबाद मैदान

ii. नादिया मैदान

चित्र ९७

(घ) परिपक्व डेल्टा

i. बर्दवान का मैदान

ii. हावड़ा हुगली का मैदान

iii. मिदनापुर का मैदान

गया। युद्ध समाप्ति के पश्चात् इस प्रदेश में भारी आर्थिक परिवर्तन दिखाई देने लगा। क्योंकि पूर्व में आसाम की घाटी और पश्चिम मे पंजाब आपस में व्यापारिक संबंध सूत्र में बंध गये।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र

आसाम घाटी के अधिकतर भाग का निर्माण ब्रह्मपुत्र तथा उसकी सहायक नदियों की अभिवृद्धि क्रिया से हुआ है। परन्तु इसके कुछ भागो, जैसे धनसीरी एवं कापली, का निर्माण नदियों के अभिशीर्ष अपरदन (Heas-word erosion) से भी हुआ है। इस घाटी में नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी का जमाव लगभग १५०० मीटर गहराई मे हुआ है। यह मुख्य रूप से समतल है। इसकी मन्द ढाल तथा उत्तर-पूर्व (सादिया) से पश्चिम (धुवरी) की तरफ है। इस घाटी की ऊँचाई पूर्व मे १३० मीटर तथा पश्चिम में ३० मीटर है। १५० मीटर समोच्च रेखा इस घाटी की प्राकृतिक सीमा निर्धारित करती है। इस घाटी के उत्तर में तीव्र तथा दक्षिण की तरफ अपेक्षाकृत मन्द ढाल है। आसाम घाटी ऊपरी भाग में ८०-१०० मीटर, मध्य मे ग्रेनाईट निर्मित मिकिर पहाडियों के कारण ५५ मीटर एवं पश्चिम मे शिलांग पठार के कारण ७० मीटर चौडी है। शिलांग पठार के दक्षिण मे यह घाटी पुनः चौड़ी होने लगती है और अंत तक यह क्रिया जारी रहती है। इस घाटी में भू-आकृति संबंध की एक अन्य विशेषता यह है कि तेजपुर और मिकिर पहाड़ियों के बीच अनेकानेक बिखरी हुई पहाड़ियां नदी के दोनों तटों पर पाई जाती हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों की भू-आकृतियों मे भारी अंतर पाया जाता है। उत्तरी तट पर 'नेफा' तथा 'भूटान' हिमालय से असख्य नदियां तीव्रता से आकर घाटी मे प्रवाहित होती, जलोढ परतो का निर्माण करती हैं और विभिन्न मार्गों में प्रवाहित होती हुई ब्रह्मपुत्र नदी में मिलने तक एक दूसरे के समानान्तर बहती हैं। इस प्रकार नम मिट्टी तथा घने जंगलो के बीच, नदियाँ जलोढ परतों की मदद से दलदली भाग तथा तराई प्रदेश जैसी परिस्थितियों को जन्म देती हैं। घाटी का दक्षिणी भाग कम चौड़ा और असमान है। घाटी का पश्चिमी भाग पूर्वी भाग की अपेक्षा बहुत सकरा, नदियाँ छोटी अभिशीर्ष अपरदन करती हुई तथा कम टेढ़े-मेढे मार्गों से प्रवाहित होती हैं। ब्रह्मपुत्र स्वयं बहुत गुंफित नदी (Braided river) है और निम्न ग्रेडिएण्ट होने के कारण इसमें असख्य नदतटीय द्वीप (Riverain islands) पाये जाते हैं।

आसाम घाटी की सबसे महत्वपूर्ण नदी ब्रह्मपुत्र है। ५१५० मी० ऊँचे कैलाशपर्वत से निकलने के बाद इसका ऊपरी भाग तिब्बत में प्रवाहित होता है। नेफा में इसकी दिशा दक्षिण-पश्चिम की तरफ हो जाती है। भारी मात्रा मे गाद (Silt) नदी में प्रवाहित होती है जो हल्के रुकावट से भी इकट्ठा होने लगता है। तेजपुर, गोहाटी, ग्वालपाड़ा और धुवरी ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित हैं। कठोर चट्टानों पर स्थित होने के कारण इन शहरों में नदी के वार्षिक बाढ़ तथा अपरदन का प्रकोप कम रहता है। ब्रह्मपुत्र (आसाम) तथा सुरमा (बंगदेश) नदियों के बीच गारो पहाड़ियाँ जल विभाजक के रूप में पाई जाती हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मपुत्र, जिसकी चौड़ाई एक तट से दूसरे तट तक कहीं कहीं ८ किलोमीटर तक है,

कुण्डिल (सदिया) विशेष उल्लेखनीय हैं। इतिहास की प्रारंभिक शताब्दियों में इस प्रदेश का विकास बड़ा मन्द रहा था। बंगाल तथा गंगा के मैदान के शेष भाग के साथ सांस्कृतिक संबंध स्थापित होने के बाद इस प्रदेश में साहित्य, संस्कृति, कला तथा आर्थिक प्रगति तीव्र गति से होने लगी थी। सन् १८४२ के बाद आसाम घाटी पर अंग्रेजों का शासन हो गया था। इसके पश्चात् इस पूरे प्रदेश में सुरक्षा एवं संरक्षण का वातावरण प्रारंभ हुआ था। पूरे प्रदेश में सड़कों, सरकारी आवासों तथा डाक बंगलों आदि के निर्माण का कार्य प्रारंभ

चित्र ६८

किया गया। तदनन्तर प्रदेश के व्यापारिक तथा औद्योगिक पहलुओं को भी विकसित किये जाने की योजनाएँ बनाई गई। ब्रह्मपुत्र नदी में स्टीमर चलाये गये और नदी के दोनों किनारों पर आवश्यकतानुसार नदी पत्तनों को विकसित किया गया। आसाम की ऊपरी घाटी में खनिज तेल की सफल संभावनाओं का पता लगाया गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बंगाल राज्यों से बड़ी संख्या में मजदूर चाय के बगीचों तथा खदानों में काम करने के लिए यहाँ आकर बसने लगे और जंगली प्रदेश भी घना बस

जलवायु में भारी विचलन प्राप्त होता है जिसका संबंध ग्रीष्म में तूफानों एवं जाड़े में अत्यधिक कुहरे से रहता है। सम्पूर्ण देश की भांति आसाम की घाटी मे भी चार मौसम पाये जाते हैं जिनका वर्गीकरण तापमान, वर्षा की मात्रा एवं हवाओं की दशाओं के आधार पर किया गया है। (१) जाड़े (२) ग्रीष्म (३) वर्षा एवं (४) मानसून वापसी की ऋतु। प्रत्येक ऋतु को कुछ प्रमुख विशेषताओं को नीचे उद्धृत किया जाता है :

ऋतुओं के नाम	विशेषताएँ
१. जाड़े की ऋतु	दिसम्बर-फरवरी, शीतल, सुबह कुहरा, तापमान १२'८° से. ग्रे. से ऊपर, दैनिक तापान्तर ९'५° से. ग्रे. जनवरी सबसे ठंडा, दिन शीतल, स्वच्छ एव सुहावना, कभी-कभी पछुवा विक्षोभों का प्रभाव।
२. ग्रीष्म ऋतु	मार्च-मई, जाड़ा एवं आर्द्र ग्रीष्म मौसमों के बीच संक्रमण, दिन बढ़ने के साथ वर्षा, तड़ित झंझा, नारवेस्टर ४२ से. मी. वर्षा, औसत तापमान २३° से. ग्रे. तथा दैनिक तापान्तर ६'०° से. ग्रे. रहता है।
३. वर्षा ऋतु	जून-सितम्बर, बहुत ऊँची आर्द्रता, मौसम उमस-वाला, औसत तापमान २७'१७° से. ग्रे., दैनिक तापान्तर ६.° से. ग्रे., अगस्त सबसे गर्म, वर्षा सबसे अधिक, तड़ित् झंझा प्रतिदिन मूसलाधार वर्षा होती है।
४. मानसूनी वापसी की ऋतु	अक्टूबर-नवम्बर, मौसम प्रारम्भ होने के साथ तापमान गिरने लगता है। प्रातः धुंध एवं कुहरा, दैनिक तापान्तर ६° से. ग्रे., वर्षा १२ से. मी., वर्षा के दिनों की संख्या कम, पूर्वी भाग में अधिक वर्षा होती है।

मिट्टियाँ—कामरूप, लखीमपुर, नवगाँव तथा शिवसागर जिलो में घाटी के किनारों पर पाई जाने वाली लैटेराइट मिट्टि को छोड़कर सर्वत्र मिट्टि मुख्य रूप से जलोढ़ किस्म की है। जिसको दो—(१) पुरानी जलोढ़ (२) नई जलोढ़, वर्गों मे बाँटा जाता है।

(१) पुरानी जलोढ़ मिट्टी वार्षिक बाढ़ सतह से ऊपर, अधिक अम्लीय, चिकनी दुमट तथा बलुई, तथा चाय उत्पादन के लिए सबसे उपयोगी होती है। रासायनिक खाद देकर इस मिट्टी में प्राप्त फासफोरस एव नाइट्रोजन की कमी को पूरा किया जाता है। (२) नई जलोढ़ मिट्टी वार्षिक बाढ़ सतह के नीचे गन्ना, जूट, धान एवं अन्यान्य प्रकार की साग-सब्जियों के लिए बड़ी अनुकूल होती है। यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है।

बंगला देश के मैदान में प्रवेश करके बंगाल की खाड़ी में गिरने के पूर्व अपनी ३५ प्रमुख सहायक नदियों का पानी लेकर पद्मा नदी में मिल जाती है। इसकी दाहिने तट की सहायक नदियों में भैरेली, बारनदी, पगलदिया, मनास आदि तथा बायें तट की सहायक नदियों में लोहित, दिहाग, दिहिंग आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मनास का प्रवाह क्षेत्र ३१००० व. कि. मी., सकोश २६००० व. कि. मी., लोहित २१००० व. कि. मी. एवं दिहांग का १३००० व. कि. मी. है। यहाँ की कृषि के लिए वार्षिक बाढ़ एक स्थायी प्रकोप है। बाढ़ के दिनों में जब नदियों के प्रवाह क्षेत्रों मे मूसलाधार वर्षा होती है उस समय मार्ग अपने तटबंधों में बहते हुए गाद के कारण अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार नदियों की जलधारण करने की अपनी शक्ति कम हो जाने की स्थिति में तट-अपरदन प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मपुत्र नदी के संबंध में यह कथन विशेष रूप से लागू होता है क्योंकि प्रत्येक वर्ष गाद जमाव से इसका नदी-तल ऊँचा होता जाता है। दूसरी तरफ भूकम्प आदि जैसी प्राकृतिक हलचलों से भी नदियों के मार्ग बदल जाते हैं जिससे भयंकर बाढ़ आ जाती है। सन् १९६६ में बाढ़ द्वारा होने वाले नुकसान का अनुमान २०० मिलियन रुपयों के बराबर आंका गया था जिसका प्रभाव लगभग १६००० व. कि. मी. क्षेत्र पर अनुभव किया गया था।

सम्पूर्ण आसाम की जलवायु पर पाँच कारकों का प्रभाव रहता है। (१) विशाल पर्वत समूह (२) उत्तर-पश्चिम भारत एवं बंगाल की खाड़ी मे निर्मित दबाव पेटियाँ (३) उष्ण कटिबन्धी समुद्री हवाएँ (४) सामयिक पछुवा विक्षोभ एवं (५) स्थानीय पर्वतीय एवं घाटियों मे चलने वाली हवाएँ। आसाम घाटी का मौसम गंगा के मैदान से भिन्न रहता है। समुद्री समीरों की भाँति इस घाटी में भी पहाड़ी एवं घाटीय हवाओं के कारण तापमान कम हो जाता है और ग्रीष्म मे गंगा के मैदान की तरह यहाँ 'लू' नहीं चलती है। तापमान के कम होने के कारण गंगा के मैदान के प्रतिकूल ऊमसपूर्ण मौसम बना रहता है। कुहरा, तड़ित झंझा तथा धूल उछालने वाली हवाएँ अन्य स्थानीय मौसमी कारक हैं। वर्ष के ७० अथवा कहीं कहीं १०० दिनों तक कुहरा छाया रहता है। आसाम घाटी में मानसूनी वर्षा के अलावा होने वाली वर्षा के साथ तड़ित्-झंझा सामान्य रूप से सलग्न रहती है। ऐसे दिनों की संख्या १०० दिनों से भी अधिक हो जाती है। जिसे निम्न तालिका मे दिखाया गया है।

तड़िद् झंझा के दिनों की सख्या

तालिका १६५

केन्द्र	दिनों की संख्या	केन्द्र	दिनों की संख्या
रूपसी	८०	मजबात	६३
गौहाटी	११६	उ० लखीमपुर	६९
तेजपुर	१००	पसीघाट	३४
जोरहाट	८३	नेफा	—

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मपुत्र घाटी की पूर्व मानसून एवं मुख्य मानसूनी

१	२
वनस्पति किस्में	इस प्रदेश को प्राथिक वनस्पतियाँ हैं। जैसे बांस सर्वत्र पाया जाता है परन्तु आसाम की ऊपरी घाटी में इसकी अधिकता है।

आसाम की घाटी में वन क्षेत्र का वितरण १९६४-६५

तालिका १६६

(००० एकड़)

जिला	सुरक्षित वनं	संरक्षित वन एकड़ यूनिट	अवर्गीकृत वन	योग
ग्वालपाड़ा	५८०.१		४२७.२	१००७.४
कामरूप	२७७.१	६६	८२४.६	१००१.८
नवगाँव	२३९.७		५०.६	२९०.४
दरांग	३८६.३		१८.४	४०४.७
शिवसागर	४९०.६		१३८.६	६२९.२
लखीमपुर	४८७.२		४५४.१	९४१.३
योग	२४६१.२०	६६	१९१३.८	४३७५.१

जनसंख्या—यहाँ की जनसंख्या लगभग १,२५,५६,४७७ (१९७१), सम्पूर्ण क्षेत्रफल ५६५७९ वर्ग कि. मी. तथा जनसंख्या का घनत्व २०० व्यक्ति व. कि. मी. है। जबकि पड़ोस के पहाड़ी क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व केवल २२ है। यहाँ की शहरी जनसंख्या ७.४% है। सन् १८३२ में यहाँ की जनसंख्या केवल ७,९९,५१९ थी। निम्न तालिका में जनसंख्या की वृद्धि को दिखाया गया है। जनसंख्या की घनत्व विविधता को चित्र ९९ में दिखाया गया है।

चित्र ९९
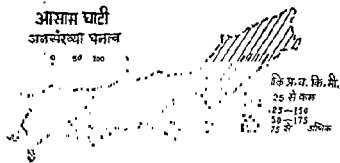
खनिज पदार्थ—खनिज तेल तथा खराब किस्म के कोयले को छोड़कर इस घाटी में अन्य कोई खनिज प्राप्त नहीं होता है। सम्पूर्ण देश का लगभग ५०% खनिज तेल का भण्डार आसाम घाटी में ही पाया जाता है। लखीमपुर जिले की डिब्रूगढ तहसील से पूरे आसाम का ६०% खनिज तेल एवं कोयला प्राप्त किया जाता है। डिगबोई, नाहरकटिया, मोरान, रुद्रसागर के टरशियरी क्षेत्रों में तेल के मुख्य केन्द्र हैं। २७० से ४३०० मीटर की गहराई तक खनिज तेल पाया जाता है। अधिकांश तेल के कुएँ प्राकृतिक गैस से संलग्न हैं परन्तु कुछेक कुओं में केवल प्राकृतिक गैस ही पायी जाती है।

आसाम के टरशियरी कोयले का भण्डार दक्षिण-पूर्वी भाग में केन्द्रित है। जिनमे लीडो, मकुम, जयपुर एवं नजिरा विशेष उल्लेखनीय हैं। कोयले का प्रतिवर्ष उत्पादन कम होता जा रहा है। इस क्षेत्र के कोयले में राख कम परन्तु सल्फर की मात्रा अधिक होती है। इस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले कोयले का उपयोग रेलों, ईंट पकाने, स्टीमरों, चाय के बगीचों तथा अन्यान्य छोटी-मोटी फैक्टरियों में किया जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति—यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति सदाबहार, अर्ध-सदाबहार एवं पतझड़ किस्म की है जिस पर मानसूनी वर्षा, तापमान तथा गहरी उपजाऊ मिट्टी का अधिक प्रभाव है। इनके वर्गीकरण एवं विशेषताओं को नीचे उद्धृत किया जाता है।

प्राकृतिक वनस्पति	विशेषताएँ
क. उष्णकटिबन्धीय सदाबहार	घाटी के पूर्वी भाग में प्राप्त बहुत घने वृक्ष बड़े-बड़े, होलाग, नबोर तथा मेकाई वृक्षों की अधिकता, दलदली भागों में गमरी, अमरी, कदम एवं साम वृक्ष पाये जाते हैं।
ख. अर्ध-सदाबहार वन	विस्तृत भू-भाग पर पाया जाना, स्थानीय किस्में, कम घने तथा आकर्षक, साम, धूप, गूदीजाम, अमरी वृक्षों की अधिकता।
ग. साल के वन	कामरूप, ग्वालपाड़ा, पश्चिमी नवगाँव तथा द. पू. दराग में प्राप्त। व्यापारिक महत्त्व, लम्बी रीढ़ मकरी, साल, सीदा एवं साम वृक्षों की अधिकता।
घ. नदीय वन	पश्चिमी ग्वालपाड़ा, कामरूप, पूर्वी दरांग में प्राप्त, खैर, करोई, कदम्ब तथा शीशम मुख्य वृक्ष। इनके अतिरिक्त अच्छी किस्म की घासें भी पायी जाती हैं।
ङ. मिश्रित पतझड़ वन	निचली ब्रह्मपुत्र घाटी, सिद्ध, सिमुल, मकरी तथा साल के वृक्ष तथा सतह पर घनी घासें पाई जाती हैं।
च. सवन्ना किस्म की वनस्पति	गाँवों के पास, ऊँचे प्रदेशों में जहाँ अधिक नदियाँ हैं पाई जाती हैं।
छ. बाँस, बेंत तथा अन्य	उपर्युक्त वनस्पतियों के अलावा बाँस तथा बेंत आदि

सन् १९५१ तक आसाम की घाटी में शहरी जनसंख्या की वृद्धि बड़ी मन्द थी। इसके पश्चात् रोजगार के अवसरों में वृद्धि, औद्योगिक उन्नति, शरणार्थियों और देहाती जनसंख्या के शहरों की तरफ आकृष्ट होने, व्यापार तथा परिवहन आदि संसाधनों में आशातीत वृद्धि होने के कारण शहरी जनसंख्या में एक तरफ बड़ी तेज गति से वृद्धि और इसके प्रतिकूल दूसरी तरफ गाँवों की जनसंख्या में आकर्षक ह्रास दिखाई देता है।

इस प्रदेश में लैंगिक अनुपात (८५०) बड़ा ही असंतुलित है। इसके प्रधान कारणों में प्रवासी लोगों का धनार्जन करने के उद्देश्य से यहाँ अकेले आना तथा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की अधिक मृत्युदर है। शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या में और भी अधिक लैंगिक विषमताएँ पायी जाती हैं। यहाँ की लगभग २७% जनसंख्या शिक्षित है जिनमें पुरुषों और स्त्रियों का प्रतिशत क्रमशः ३७.२ एवं १५.२ है। इस घाटी की लगभग ४३.३% जनसंख्या काम-धन्धों में लगी हुई है। यहाँ कृषि कार्यों में ६७.५%, उद्योगों में ८.०%, व्यापार में ३.८%, व्यवसाय १.६%, परिवहन १६.२%, व्यक्ति जीविकोपार्जन करते हैं।

यहाँ के अधिकांश ग्राम आकार में छोटे एवं मध्यम हैं। छोटे ग्रामों में ५०० से कम तथा मध्यम आकार के ग्रामों में १००० तक जनसंख्या निवास करती है। सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग ९२.४% ग्रामों में निवास करता है। यहाँ के अधिकांश ग्राम बाढ़ सतह के ऊपर परिवहन मार्गों के सहारे एकत्रित बस्तियों के रूप में बसे हैं। चाय व्यापार केन्द्रों ने मानव बस्तियों को अधिक आकर्षित किया है। अधिकांश बस्तियाँ बाँस तथा अन्यान्य प्रकार के वृक्षों से घिरी हुई हैं।

शहरों के बीच की दूरी अधिक है। इस घाटी के अधिकांश शहर ब्रह्मपुत्र नदी के समीप, रेल एवं राष्ट्रीय सड़क मार्गों के आसपास स्थित हैं। इसलिए अधिकांश शहर रेखाकृत हैं। नवीनतम नगरों का विकास व्यावसायिक आधार पर हो रहा है। इस प्रकार के शहर वस्तुओं को इकट्ठा करते तथा उनको बेचते हैं। इन व्यावसायिक शहरों के अतिरिक्त अनेक शहर औद्योगिक भी हैं। यदि नगरीय भूगोल की दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि शहरों की सान्द्रता (Concentration) दो स्थानों पर सबसे अधिक हुई है। (१) गौहाटी तथा उसके आसपास (२) डिब्रूगढ़ तथा उसके आसपास। अन्य शहरों का विकास जोरहाट, तेजपुर तथा धुबरी जैसे प्रशासकीय एवं व्यावसायिक नगरों के चारों तरफ हुआ है। इस घाटी के अधिकांश शहर आकार में छोटे हैं। पचास हजार से अधिक की जनसंख्या वाले केवल पाँच शहर—गौहाटी (१४६०२६), नवगाँव (५६५३७), जोरहाट (७०६७४), डिब्रूगढ़ (८०३४८) तथा तिनसुकिया (५६६११) हैं। छोटे शहरों में औद्योगिक विकास की दर कम है। इसके प्रतिकूल घाटी के बड़े शहर प्रशासन, व्यवसाय, परिवहन केन्द्र एवं उद्योग में निरन्तर विकास कर रहे हैं। उदाहरण के लिए गौहाटी प्रशासनिक, डिगबोई खनिज तेल एवं तिनसुकिया व्यवसाय कार्यों के लिए प्रसिद्ध हैं।

चित्र ७० के देखने से इस प्रदेश के कृषिप्रधान होने की पुष्टि होती है। कृषि से न केवल खाद्य सामग्री उपलब्ध होती है बल्कि अनेकानेक प्रकार के उद्योगों में काम आने वाले कच्चे माल का भी उत्पादन किया जाता है। इनमें चाय तथा जूट विशेष उल्लेखनीय हैं। आसाम घाटी में लगभग बराबर भूमि पर कृषि (३१.६%) तथा जंगल (३५.३%) पाये

आसाम घाटी में जनसंख्या की वृद्धि (१९०१–१९७१)

तालिका १६७

वर्ष	जनसंख्या	दशक भिन्नता	प्रतिशत अभिवृद्धि	घनत्व
१९०१	२६१८५९६	—	—	४७
१९११	३१०७७५५	४८९१८९	१८.६८	५५
१९२१	३८५६५०७	७४८७५२	२४.०९	६९
१९३१	४७२३८३३	८६७३२६	२२.४९	८४
१९४१	५६६६२४८	९४२४१५	१९.९५	१०१
१९५१	६७४७५५१	१०८१३०३	१९.०८	१२०
१९६१	९१७९१२७	२४३१५७६	३६.०४	१६२
१९७१	१२५५६४७७	३४७६३५०	३७.०१	२००

देश के अनेक भागों से तथा पाकिस्तानी शरणार्थियों का आगमन, घुसपैठ तथा नेपाली चरवाहों के निरन्तर आते रहने के कारण इस घाटी मे जनसंख्या की वृद्धि लगातार हुई है। पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरी घाटी में जनसख्या का वितरण लगभग समान है। देश के अन्य भागों की तुलना में यह घाटी कम घनी बसी है, परन्तु यदि पहाड़ो, दलदली एवं विस्तृत बागानी क्षेत्रों को निकालकर देखा जाय तो घाटी का घनत्व अधिक तथा कृषि घनत्व और भी अधिक हो जाता है।

जनसंख्या का घनत्व

तालिका १६८

जिला	थाना	क्षेत्रफल व कि. मी.	जनसंख्या १९७१	घनत्व व. कि. मी.
ग्वालपाड़ा	मानकच्चार	१५८.९	७९३७१	५०२
	धुबरी	४२५.०	१८२७९८	४३०
कामरूप	नालबारी	५०७.०	३६३८०४	७१७
	पातछरकूची	५९७.४	१६७७०५	२७९
	कमालपुर	४०९.०	१४४५५५	३५२
बागछोर		६२३.९	१८७११६	३००
नवगांव	धिंग	२०३.२	९८७७७	४८६
	नवगांव	३७०.२	२१२५०२	५७४
	रुपहीहाट	४३२.३	२०९६०७	४८५
शिवसागर	जोरहाट	८०५.१	२१९२७४	२७२
	नजीरा	५३५.९	१४९५१९	२७९

आसाम घाटी में जनसंख्या की वृद्धि (१६०१-१६७१)

तालिका १६७

वर्ष	जनसंख्या	दशक भिन्नता	प्रतिशत अभिवृद्धि	घनत्व
१६०१	२६१८६६६	—	—	४७
१६११	३१०७७५५	४८८१८६	१८.६८	५५
१६२१	३८५६५०७	७४८७५२	२४.०६	६६
१६३१	४७२३८३३	८६७३२६	२२.४६	८४
१६४१	५६६६२४८	६४२४१५	१६.६५	१०१
१६५१	६७४७५५१	१०८१३०३	१६.०८	१२०
१६६१	६१७६१२७	२४३१५७६	३६.०४	१६२
१६७१	१२५५६४७७	३४७६३५०	३७.०१	२००

देश के अनेक भागो से तथा पाकिस्तानी शरणार्थियो का आगमन, घुसपैठ तथा नेपाली चरवाहों के निरन्तर आते रहने के कारण इस घाटी में जनसंख्या की वृद्धि लगातार हुई है। पहाडी क्षेत्रों को छोडकर पूरी घाटी मे जनसंख्या का वितरण लगभग समान है। देश के अन्य भागों की तुलना मे यह घाटी कम घनी बसी है, परन्तु यदि पहाडी, दलदली एवं विस्तृत बागानी क्षेत्रों को निकालकर देखा जाय तो घाटी का घनत्व अधिक तथा कृषि घनत्व और भी अधिक हो जाता है।

जनसंख्या का घनत्व

तालिका १६८

जिला	थाना	क्षेत्रफल व. कि. मी.	जनसंख्या १६७१	घनत्व व. कि. मी.
ग्वालपाड़ा	मानकछार	१५८.६	७६३७१	५०२
	धुबरी	४२५.०	१८२७६८	४३०
कामरूप	नालबारी	५०७.०	३६३८०४	७१७
	पातछरकूची	५६७.४	१६७७०५	२७६
	कमालपुर	४०६.०	१४४५५५	३५२
बागछोर		६२३.६	१८७११६	३००
नवगाँव	धिग	२०३.२	६८७७७	४८६
	नवगाँव	३७०.२	२१२५०२	५७४
	रुपहीहाट	४३२.३	२०६६०७	४८५
शिवसागर	जोरहाट	८०५.१	२१६२७४	२७२
	नजीरा	५३५.६	१४६५१६	२७६

बगीचों में भी सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है। जाड़े के महीनों में विशेष रूप से जल का प्रभाव रहता है। मिकिर पहाड़ियों में यमुना नदी पर बकालीघाटी पर एक बाँध बनाया जाएगा। नहर की लम्बाई १६४ कि. मी. होगी। इसके अतिरिक्त ग्वालपाडा, कामरूप, लखीमपुर तथा शिवसागर जिलों में भी सिंचाई की छोटी-छोटी परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं जिनसे कुल मिलाकर इस घाटी प्रदेश में लगभग २२% नेट बोई गई भूमि की सिंचाई की जाती है।

आसाम घाटी मे चाय तथा खनिज तेल उद्योग राष्ट्रीय स्तर के उद्योग हैं। सर्वेक्षणों से इस बात का पता चलता है कि घाटी मे अन्य उद्योगों के लिए भी कच्चा माल संचित है परन्तु खराब परिवहन व्यवस्था, यातायात के साधनों में पूँजी की कमी, सस्ते एवं कुशल श्रमिकों तथा सस्ते शक्ति संसाधनों के न प्राप्त होने के कारण यह घाटी औद्योगिक दृष्टि से अभी पीछे है। यहाँ का औद्योगिक प्रदेश गौहाटी एवं डिब्रूगढ़ के आसपास ही केन्द्रित है। इस घाटी के उद्योगों को निम्न चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है:

(१) कृषि से कच्चा माल प्राप्त करने वाले उद्योग
(२) खनिज पर आधारित उद्योग
(३) जंगलों से कच्चा माल प्राप्त करने वाले उद्योग
(४) अन्यान्य उद्योग

प्रथम कोटि के उद्योगों मे—खाद्य सामग्री एवं चीनी, चाय एवं वस्त्र उद्योग सम्मिलित किये जाते हैं। चावल तथा आटे की मिलें और सीमित संख्या मे दुग्धशालाएँ एवं तेल निकालने की मिलें प्रदेश के कामरूप, नवगाँव एवं अन्य छोटे-मोटे शहरों मे कार्य कर रही हैं। इनमें चाय उद्योग सबसे महत्त्वपूर्ण है। वस्त्र व्यवसाय सबसे कम विकसित है। खनिज पर आधारित उद्योगों मे कोयले की खुदाई एवं खनिज तेल निकालने के उद्योग सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। सीमेन्ट उद्योग का विकास अब प्रारम्भ हुआ है। तिनसुकिया, डिगबोई तथा डिब्रूगढ़ मे पेट्रोकेमिकल, तेल शोधन, रेल्वे वर्कशाप, अल्युमिनियम उद्योग, रासायनिक खाद उत्पादन जैसे उद्योगों को भी समुचित ढंग से विकसित किया जा रहा है। यहाँ की वन सम्पदा सबसे अधिक है। इस घाटी मे लकड़ी काटने, प्लाई लकड़ी बनाने तथा बेंत के कार्य मुख्य रूप से किये जाते हैं। ग्वालपाडा जिले के जोगीघोपा नामक स्थान पर कागज की एक मिल भी स्थापित की जा रही है।

कुल मिलाकर परिवहन संसाधनों का संतोषजनक विकास नहीं हो पाया है। ब्रह्मपुत्र के अधिक उपयोगी भाग के बंगलादेश मे चले जाने के कारण घाटी का जल-परिवहन अच्छी तरह से विकसित नहीं हो सका है। नदियों की संख्या अधिक होने के कारण रेल एवं सड़क मार्ग भी सामान्य रूप से अविकसित हैं। इस प्रदेश में १७१८ कि. मी. रेल है जिसका घनत्व प्रति १०० वर्ग कि. मी. पर ३ कि. मी. रेल लाईन पड़ता है। १३१२५ कि. मी. सड़कें हैं जिनका घनत्व प्रति १०० व. कि. मी. पर केवल ३३ कि. मी. आता है। इस प्रदेश की अधिकांश सड़कें नदी तटों के समानान्तर बनाई गई हैं। ग्वालपाड़ा, गौहाटी, नवगाँव, जोरहाट, शिवसागर तथा डिब्रूगढ़ आदि प्रशासकीय एवं व्यावसायिक शहर राष्ट्रीय सड़क मार्गों पर स्थित हैं। ३२६१ कि. मी. जलमार्ग है जिसमें १६६३ कि. मी. की दूरी

जाते हैं। २२% भूमि कृषि के लिए अयोग्य है। क्योंकि इसके विस्तृत भाग पर जलाशय, दलदल तथा ब्रह्मपुत्र एवं उसकी अनेक सहायक नदियों का नदीतल स्थित है। १०% भूमि कृषि योग्य होते हुए भी उस पर खेती नहीं की जाती है। घाटी में कृषि के प्राथमिक व्यवसाय होने पर भी प्रति व्यक्ति केवल ०.५ एकड़ नेट बोई गई भूमि पड़ती है। दलदल एवं जंगली भूमि का उद्धार, प्रति एकड़ उपज वृद्धि, भूमि कटाव नियंत्रण, एक से अधिक फसलों का उत्पादन, आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को कृषि में लागू करके, जनसंख्या को खेती से हटाकर, लघु उद्योगों में लगाकर तथा जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करके कृषि पर पड़ने वाले इस बोझ को कम किया जा रहा है। फसल उत्पन्न करने वाली जमीन के ७६% भूमि पर खाद्यान्न, २१.५% पर गन्ना, चाय, तम्बाकू, जूट तथा तिलहन आदि जैसी मुद्रादायिनी फसलें एवं शेष भूमि पर आलू, फल तथा कपास आदि पैदा किये जाते हैं। चावल यहाँ की मुख्य फसल है तथा बोई गई भूमि के ७२% पर उगाई जाती है। अन्य फसलों का वितरण तथा उत्पादन पूरी घाटी में असमान है। चाय द्वितीय (७%), जूट तृतीय (६%), तिलहन चौथी (६%) फसलें हैं।
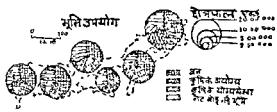
चित्र ७०

चाय-रोपण

सन् १८३३ से आसाम घाटी में चायरोपण कृषि की जा रही है। चाय उत्पादन क्षेत्र मुख्य रूप से आसाम घाटी में ही केन्द्रित है। भारत के समस्त ७१०० चाय इस्टेटों में से आसाम घाटी में ही लगभग ७०० इस्टेट स्थित हैं जिनमें प्रत्येक का औसत क्षेत्रफल ५०० एकड़ है। बड़े-बड़े चाय इस्टेट आत्मनिर्भर हैं। इनमें चाय के साथ-साथ मजदूरों की आवश्यकतानुसार न केवल चावल, तरकारियाँ तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ पैदा की जाती हैं बल्कि रहने के लिए निवास भी प्रदान किये जाते हैं। चाय उद्योग इस घाटी का प्राचीन उद्योग है इसलिए आवागमन, बाजार, उद्योग तथा व्यवसाय आदि की सभी सुविधाएँ इससे सलग्न हैं। चाय मजदूरों में ५५% स्त्रियाँ हैं। अनेकानेक प्राकृतिक एवं सामाजिक कठिनाइयों के बावजूद भी इस घाटी में चाय उद्योग का भविष्य उज्जवल है।

इस घाटी में वर्षा की अधिकता के कारण जलाभाव कम अनुभव किया जाता है। कुछ विशेष अभावग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई के लिए जल की व्यवस्था करने की सरकार की योजनाएँ हैं। उदाहरण के लिए नवगाँव जिले में सिंचाई के माध्यम से गेहूँ की खेती सफलतापूर्वक प्रारंभ की गयी है। यहाँ पर १७ मिलियन रुपये की लागत से ६४,००० एकड़ भूमि सींचने के लिए यमुना सिंचाई परियोजना को प्रारंभ किया गया है। चाय के

अधिकांश हिमनद बर्फीले केक (Cake) की भाँति दिखाई पड़ते हैं। पूरा नदीतंत्र बड़ा विचित्र है तथा चिनाव एवं झेलम में बड़े-बड़े मोड़ हैं।

पीरपंजाल का दक्षिणी किनारा उत्तर की अपेक्षा अधिक नम परन्तु मिट्टी निर्माण एवं जमाव के लिए किनारे बड़े तीव्र हैं। इसलिए अधिकाश जगल अपेक्षाकृत शुष्क एवं उत्तरी किनारे पर ही प्राप्त हैं। ऊँची बेसिन की निचली सतह में जनसख्या घनी बसी है। इस प्रदेश की जलवायु ठंडी है। सीढ़ीनुमा खेतो मे सिचाई अधिक कठिन नहीं होती। सेव अधिक पैदा किये जाते हैं। खाद्यान्नो में चावल भी पैदा किया जाता है। काश्मीर की घाटी में सफल सड़क परिवहन के लिए पीरपजाल अवरोध उत्पन्न करते हैं। पीरपंजाल विशाल हिमालय पर्वत का पश्चिमी प्रतिनिधि है इसकी औसत ऊँचाई ४००० मीटर तथा अधिकतम ऊँचाई ४७४३ मीटर है।

(३) काश्मीर की घाटी

स्थलाकृति एवं प्रवाह तंत्र—दक्षिण में पीरपंजाल तथा उत्तर में प्रधान हिमालय के बीच काश्मीर घाटी स्थित है। यह बेसिन उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व १३६ कि. मी. लम्बी तथा ४० कि. मी. चौड़ी है। झेलम नदी इसके उत्तरी छोर के बिल्कुल समीप से बहती है। डल झील के तट पर स्थित काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से होती हुई यह नदी वूलर झील मे गिरती है। इस घाटी मे यह नदी काफी चौड़ी तथा नौका विहार के योग्य है। इसका कछार समुद्र तल से केवल १५६० मी. ऊँचा है। प्रो. वाडिया तथा डीटेरा ने इस पूरी घाटी को अभिनत (Synclinal) बतलाया है। पीरपजाल शिखर की तरफ से इसका दक्षिणी छोर सम तथा लगातार ढाल के रूप मे है। यहाँ का नदी तत्र बड़ा दिलचस्प है। मुख्य हिमालय की पर्वतीय दीवाल सिन्ध, चिनाव तथा अन्य नदियों से कटी हुई है। चिनाब नदी दक्षिण दिशा में मुड़कर धौलागिरि पर्वत श्रेणी को काटती है। काश्मीर राज्य में पर्वतों की समानान्तर श्रेणियाँ पाई जाती हैं जिनमें से पांच पहाड़ी श्रेणियाँ—जस्कर, पंगी, लद्दाख, पीरपंजाल तथा कराकोरम विशेष उल्लेखनीय हैं। पीरपंजाल की तरफ नदियों की ऊपरी घाटियाँ अधःकर्तित (Incised) तथा वृत्ताकार परन्तु नीचे प्रायः मे समानान्तर प्रवाहित होती हैं। इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यहाँ पाये जाने वाले समतलही शिखर हैं जिनको करेवास (Karewas) कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग प्लायस्टोसीन अवसाद के लिए भी किया जाता है जिनसे इनका निर्माण होता है। इस प्रकार के जमाव मिट्टी, बालू तथा गाद से होते हैं। कहीं कहीं झेलम नदी ने 'करेवास' को समाप्त करके बड़े-बड़े वप्र (Bluffs) बना दिये हैं और ऐसी सीढ़ियाँ नदी सतह से १३१ मी. ऊपर तक पाई जाती हैं।

जलवायु एवं वनस्पति—यहाँ की जलवायु महाद्वीपीय है और इसका वर्गीकरण सम्वसन् तथा सूर्यातप पर आधारित होता है। जाड़े की ऋतु की कठोरता पश्चिम से आने वाली ठंडी हवाओं से और भी बढ़ जाती है। यह प्रदेश उत्तर की तरफ ६ महीने बर्फ से ढका रहता है। सर्दियों में वर्षा हिमपात के रूप मे होती है। १५६० मी. की ऊँचाई पर स्थित श्रीनगर मे जलवायु की पराकाष्ठाएँ उस पर्वतीय स्टेशन से अधिक हैं जो ९०० मी. की

तक ही स्टीमर चलाये जाते हैं। इस प्रदेश में वायुमार्ग का अपेक्षाकृत अधिक संतोषजनक विकास हो पाया है। गौहाटी, तेजपुर, जोरहाट, डिब्रूगढ़ आदि प्रमुख शहर वायुमार्गों द्वारा कलकत्ता से जुड़े हुए हैं।

७. काश्मीर प्रदेश

मोटे तौर से काश्मीर के सुदूर उत्तर में कराकोरम तथा दक्षिण में जसकर की दो पहाड़ियाँ स्थित हैं। दोनों पहाड़ियों के बीच सिन्धु नदी प्रवाहित होती है। पीरपंजाल से घिरी हुई काश्मीर की घाटी २४ कि. मी. चौड़ी एक सकरी पट्टी के रूप में पाई जाती है। इस प्रदेश का कटाव बहुत अधिक हो चुका है। इसके उत्तर में बेकार चट्टानों की ढेर जैसी शिवालिक पहाड़ियाँ, जिसकी ऊँचाई ६०० से १२०० मीटर तथा मुटाई ६००० मीटर है, फैली हुई हैं। इसमें नवीनतम तरंगित वलन (Folding) तथा भ्रंशन (Faulting) की क्रियाएँ हुई हैं जिसमें प्लायोसीन युग के क्षेपण भी सम्मिलित हैं। पूरी स्थलाकृति अस्त-व्यस्त एवं भ्रमात्मक है। यद्यपि विच्छेदन काफी सघन है परन्तु इनकी ऊँचाई से पुरानी स्थलाकृति का अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ समतल पर्वत स्कन्ध (Spur) पठार अवशेष, घाटी वेदिकाएँ, उच्च घाटी तल के एकाएक मोड़ आदि से पता चलता है कि इस सम्पूर्ण क्षेत्र का कायाकल्प अवश्य हुआ है।

इस क्षेत्र के पूर्व में ३० से. मी. तथा पश्चिम में ८५ से. मी. वर्षा होती है। जनवरी तथा मार्च में भी वर्षा होती है। ऊँचाई के अनुसार तापमान में परिवर्तन होता है। निचली एवं बाहरी पहाड़ियों में शुष्क झाड़ियाँ तथा भीतरी क्षेत्रों में अच्छे तथा अपेक्षाकृत घने जंगल पाये जाते हैं। मिट्टी कम गहरी तथा पानी के लिए प्यासी रहती है। इसलिए अपरदन तथा चट्टानों के टुकड़ों के जमा होने की क्रियाएँ अधिक देखी जाती हैं। ढालों पर चूने की चट्टानों के होने के कारण कृषि कार्य बड़ा कमजोर, सिंचाई बहुत सीमित, कुओं में पानी की सतह गहरी तथा नदियों में तूफानी बाढ़ जैसा प्रवाह होता है। निचले भागों में जहाँ कुछ खेती करके रबी की फसलें पैदा की जाती हैं बीमारी का प्रकोप रहता है।

इस प्रदेश में खनिज संपत्ति बहुत कम है और उसका भी समुचित उपयोग अब तक नहीं किया जा सका है। सुदूर पश्चिम में कोयले की खदानें पाई जाती हैं परन्तु कोयले की पर्तों के अस्त-व्यस्त तथा टूटी-फूटी होने के कारण खनन कार्य के योग्य नहीं हैं। इस प्रदेश में बाक्साइट अच्छी मात्रा में संचित है।

(२) पीरपंजाल

हिमालय पर्वत-श्रेणियों का बचा हुआ पूर्वी भाग पीरपंजाल के नाम से पुकारा जाता है। अश्म विज्ञान (Lithology) तथा संरचना की दृष्टि से यह सबसे जटिल क्षेत्र है। हिमानीकरण से बड़ी ही दिलचस्प स्थिति उत्पन्न होती है। तीस बड़े हिमनदों में से अधिकांश हिमनद उत्तरी ढाल पर स्थित हैं। इसके विपरीत सुदूर पूर्व में शुष्क तिब्बत की तरफ अपेक्षाकृत कम बर्फ है। जाड़े के दिनों में पीरपंजाल क्षेत्र के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में अधिक बर्फीला मौसम रहता है। इसके प्रतिकूल दक्षिणी भाग मैदान की गर्म हवाओं से प्रभावित रहता है। केवल एक या दो हिमनदों में वास्तविक घाटी जिह्वा है अन्यथा

कराल गाल में चले गये। मटोक पर स्थित एक सिक्ख सेना भी इस बाढ़ में बह गई थी। पर्वतों एवं पहाड़ियों के बीच रहते हुए भी इस प्रदेश को पर्वतों का प्रदेश कहते हैं। सहायक नदियों की घाटियों में कहीं-कहीं बिखरे हुए गाँव हैं। गाँजों के तट बहुत ही तीव्र हैं। फल उत्पादन यहाँ के लोगों का मुख्य धंधा है।

लद्दाख का पहाड़ी प्रदेश अथवा छोटा तिब्बत

यह सम्पूर्ण प्रदेश ग्रेनाइट तथा शेल जैसी जीवाश्मरहित परन्तु कठोर चट्टानों से बना हुआ है। इसकी वर्तमान सतह पूर्ण रूपेण परिवर्तित हो चुकी है। यहाँ कटा-फटा पठारी प्रदेश अनेक छोटे बड़े हिमनदों का घर तथा अनेक नदियों का उद्गम स्थल है। सिन्धु तथा स्याक नदियाँ ४०–४८ कि. मी. दूर तथा ३००० मी. ऊँचे पर्वतीय जल विभाजकों के दो तरफ एक दूसरे के समानान्तर प्रवाहित होती हैं। सतह बेहद ऊबड़खाबड़ तथा नदियाँ छोटे-छोटे जल विभाजकों से अलग हैं।

इस प्रदेश में ठंड अधिक पड़ती है। शीतकाल का तापमान हिमांक से बहुत नीचे चला जाता है। सम्पूर्ण क्षेत्र में बर्फ जम जाती है। जनवरी का औसत तापमान —८° से. ग्रे. रहता है। ग्रीष्म ऋतु में बर्फ पिघलती है। मौसम सुन्दर हो जाता है। ग्रीष्म का तापमान ६° से. ग्रे. रहता है। समुद्रों से बहुत दूर तथा पर्वतों के बीच स्थित होने के कारण समुद्री हवाएँ यहाँ तक नहीं पहुँच पाती हैं। वर्षा कम और वह भी मुख्य रूप से बर्फ के रूप में होती है। यहाँ शीत कटिबन्धीय वनस्पति पाई जाती है।

यहाँ सिन्धु की सहायक नदियाँ स्याक, सिन्धु, जस्कर तथा द्रास आदि की गणना बड़ी नदियों में की जाती है। इस प्रदेश के जल संसाधन को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस प्रदेश को जलविद्युत् की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। भूमि की कठोरता, ठंडक तथा कृषि योग्य भूमि के अत्यन्त सीमित होने के कारण यहाँ की आर्थिक दशा शोचनीय है। वर्षा के बहुत कम होने के बावजूद भी यहाँ लगभग ४२००० एकड़ भूमि पर खेती की जाती है। आलू, जौ, तथा गेहूँ प्रमुख फसलें हैं। लद्दाखी बड़े धार्मिक तथा कठिन परिश्रम करने वाले होते हैं। बड़े उद्योगों के अनुकूल संसाधनों की कमी के कारण कुटीर उद्योग उत्पादनों में कम्बल, लोइयाँ तथा अन्यान्य गर्म वस्त्र बनाये जाते हैं। खनिज की दृष्टि से गरीब होने के कारण बड़े उद्योगों का भविष्य यहाँ बड़े अंधकार में है। ऊन, दूध एवं मांस के लिए भेड़ बकरियों को पालते हैं। यहाँ पशुओं की संख्या अधिक है। खारी झीलों में नमक बनाया जाता है।

सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से यहाँ के लोग तिब्बती और बौद्ध हैं। यहाँ बौद्ध मठों तथा बौद्ध अनुयायियों की अधिकता है। जहाँ २० बौद्ध मठों में लगभग १५० लामा निवास एवं पूजा-पाठ करते रहते हैं। पूरे प्रदेश में आवागमन की कठिनाइयाँ हैं। पगडंडियाँ मुख्य मार्ग तथा याक एक मात्र भारवाहक हैं। यह एशिया महाद्वीप का 'मृत अंग' है।

कराकोरम

यह सम्पूर्ण पर्वत-शृंखला दक्षिण-पूर्व में स्याक तथा उत्तर-पश्चिम में हुन्जा नदियों

ऊँचाई पर बाह्य हिमालय में स्थित है। शिमला (हिमाचल प्रदेश) तथा श्रीनगर के औसत तापमानों में बहुत कम अन्तर रहता है। पछुवा हवाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। घाटी के पेंदे में स्थित श्रीनगर में वर्षा की मात्रा ७५-९० से. मी. तक होती है।

काश्मीर के लगभग ४/५ भाग मे कृषि संबंधी सुविधाएँ नहीं प्राप्त होती हैं। अधिकांश क्षेत्र पहाड़ी है। वन प्रदेश के नीचे मक्का प्रधान फसल के रूप मे पैदा की जाती है। २१०० मी. की ऊँचाई पर मोटा एव मजबूत तने वाला तथा इसके नीचे अच्छी किस्म का चावल उगाया जाता है। पहाड़ी ढालों पर सेव, अंगूर, अखरोट, नाशपाती तथा शहतूत आदि पैदा किये जाते हैं। शेष के १/४ भाग में, जो नदी तट के समीप स्थित है, खेती की जाती है। निचले भागो मे पर्याप्त उर्वरक तथा सिंचाई की व्यवस्था करके मक्का पैदा की जाती है। गेहूँ की भी कुछ किस्मे उगाई जाती हैं। कृषि के तरीके निराले हैं। चावल तथा बगीचों के फसलों के उत्पादन को छोड़कर अन्य फसलो पर कम ध्यान दिया जाता है। शीत ऋतु मे कपास, तम्बाकू, मकई, बाजरा तथा ज्वार पैदा किये जाते हैं। करेवासों मे कुछ कपास के उगाने की व्यवस्था की जाती है। कृषित भूमि तक लगभग ४०% कुल्स (Kuls) तथा झरनों से सींचा जाता है। यहाँ की कृषित भूमि की १०% मे एक से अधिक फसलें पैदा की जाती हैं। यहाँ के आर्थिक जीवन में झीलों का विशेष महत्त्व है। झीलों में तैरते हुए 'द्वीप' काश्मीर की कृषि के मुख्य आकर्षण हैं। इनमे असंख्य नावें चलती हैं। मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। पशुओ के लिए चारा तथा मनुष्यो के लिए सिंघाड़े का उत्पादन किया जाता है। यहाँ से सबसे अधिक निर्यात टिम्बर तथा बागानी उत्पादनों का होता है। कृषि के साथ रेशम के कीडो का पालना, चरागाही, हैण्डलूम के कपड़े बनाना, कपास, ऊन तथा सिल्क पैदा करना, भेड़ पालना तथा लकड़ी काटना, यहाँ के लोगों के जीवन निर्वाह के प्रमुख साधन हैं। इस प्राकृतिक प्रदेश की जनसंख्या लगभग ४८ लाख तथा क्षेत्रफल २४०३०० व. कि. मी. है। श्रीनगर यहाँ की राजधानी, प्रसिद्ध शहर, ऊनी तथा रेशमी कपड़ों का औद्योगिक केन्द्र है। अमरनाथ, खिलिनबर्ग, पहलगाँव तथा गुलमर्ग तीर्थ स्थान एवं विश्राम केन्द्र हैं। नदी से जल विद्युत् तैयार की जाती है। यहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट, गोरे, हिम्मती तथा ईमानदार होने के साथ-साथ अध्यवसायी भी होते हैं।

सिन्धु कोहिस्तान एवं गिलगिट प्रदेश

नागा पर्वत हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भाग मे सबसे विस्तृत पर्वत है। यह किशन गंगा तथा अस्तोर नदियों द्वारा, जिनके मध्य बर्जिल का दर्रा स्थित है, प्रधान हिमालय मे अलग हो रहा है। इसके उत्तर तथा पूर्व मे सिन्धु नदी के गह्वर (Gorges) हैं। कई अर्थों में यह मुख्य हिमालय से भिन्न है। इस मैसिफ के २५६ व. कि. मी. क्षेत्र मे बर्फ के मैदान स्थित हैं जो छोटे-छोटे हिमनदों के रूप में नीचे २४४० मीटर तक प्रवाहित होते हैं। बहुत से अपरदन प्लेटफार्म प्राप्त होते हैं। सिन्धु नदी इस प्रदेश मे ४५७२-५१८२ मीटर गहरी कन्दराओं में से प्रवाहित होती है, जबकि इस प्रदेश की समस्त चौड़ाई केवल २०-२५ कि. मी है। यहाँ पहले घनी जनसंख्या रही होगी परन्तु सन् १८४१ की बाढ़ में जबकि नदी का गाँर्ज, जमीन के खिसकने के कारण बिल्कुल बन्द हो गया, सभी लोग मृत्यु के

चट्टानें स्पीती शेल के साथ समविन्यासी रूप से पाई जाती हैं। गिऊमल की बालू की चट्टानों के उत्तर में भूरे रंग की चूने की चट्टानें पाई जाती हैं। यहाँ की चट्टानों में जीवाश्म अधिक पाये जाते हैं।

सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश पर्वतीय तथा इसकी ऊँचाई समुद्र सतह से ४५० मी. और ६५०० मी. के बीच है। यहाँ की स्थलाकृति में बर्फीली चोटियाँ सबसे महत्वपूर्ण हैं। ऊँची-ऊँची पहाड़ियों के नीचे शान्त घाटियाँ स्थित हैं जिनमें असंख्य नदियाँ प्रवाहित होती हैं। पर्वतों के नीचे पर्याप्त मात्रा में गोलाश्म लुढ़ककर आते हैं। पश्चिम से पूर्व और दक्षिण से उत्तर की तरफ धीरे-धीरे ऊँचाई बढ़ती जाती है। इस सम्पूर्ण प्रदेश को दक्षिण से उत्तर की तरफ तीन प्राकृतिक भागों—१. बाह्य-हिमालय अथवा शिवालिक, २. मध्य हिमालय तथा ३. उत्तरी हिमालय—में बाँटा जा सकता है।

बाह्य हिमालय में पहाड़ियों की ऊँचाई ६०० मीटर तक पाई जाती है। पहाड़ियों के दक्षिणी ढाल तेज तथा उत्तर की तरफ अपेक्षाकृत मंद हैं। इस प्रदेश में अनुदैर्घ्य घाटियों का बाहुल्य है। शिवालिक पहाड़ियों को प्राचीनकाल में मैनाक पर्वत के नाम से पुकारा जाता था। इन पर्वतों में सबसे अधिक कटान, वन विनाश, तथा चोब निर्माण की क्रियाएँ हुई हैं। रावी से लेकर यमुना नदी तक इस प्रकार के कटाव पाये जाते हैं।

मध्य हिमालय धौलाधर तथा पीरपंजाल श्रेणियों की तरफ धीरे-धीरे ऊँचा होता जाता है। दक्षिण में शिमला पहाड़ियों की ऊँचाई तीव्र है। शिमला के दक्षिण में और सबसे ऊँची (३६४७ मी.) चोटी है। सतलज नदी के उत्तर में ऊँचाई लगातार बढ़ती जाती है। पर्वत श्रेणियाँ आपस में समानान्तर तथा अनुदैर्घ्य घाटियों द्वारा विभाजित हैं। जिनके निर्माण में असंख्य नदियाँ अनवरत क्रियाशील रही हैं। इन नदियों में सतलज, व्यास तथा रावी प्रमुख हैं। इस प्रदेश के सबसे प्रमुख पर्वत धौलाधर को क्रमशः रामपुर, लारजी तथा चम्बा के दक्षिण-पश्चिम में काटती हैं। पीरपंजाल मध्य हिमालय में सबसे बड़ा है जो सतलज नदी के तट के पास से उत्तरी हिमालय से अलग होकर एक तरफ चिनाब और दूसरी तरफ व्यास एवं रावी नदियों के बीच जल विभाजक का कार्य करता है। रावी नदी के उद्गम के पास से पीरपंजाल धौलाधर की तरफ मुड़ जाता है। उत्तर का हिमालय (५०००-६००० मीटर) पूर्वी सीमा के सहारे फैला हुआ स्पीती तथा व्यास नदियों के आवाहक्षेत्र को अलग करता है। जस्कर पहाड़ियाँ सबसे पूर्व में स्थित हैं तथा स्पीती और किनौर श्रेणियों को तिब्बत से अलग करती हैं। इस प्रदेश में असंख्य प्रंतस्थ हिमोढ़ पाये जाते हैं जिन पर अब घासें तथा वृक्ष उग आये हैं। इससे इस प्रदेश में हिम अपरदन की पुष्टि होती है। इस प्रदेश में सटक्री यू-फिरम तथा सौर्न-रिस्म की घाटियाँ और हिमनदीय झीलें भी पायी जाती हैं।

इस प्रदेश के पूर्व में गंगा तथा पश्चिम में सिन्धु नदियों का पानी प्रवाहित होता है। इस प्रदेश की प्रमुख नदी समों में चिनाब, रावी, व्यास, सतलज तथा यमुना प्रमुख हैं। चिनाब (१२०० कि. मी.) इस प्रदेश की सबसे बड़ी नदी है। वैदिक काल में इस नदी को असिक्नी के नाम से पुकारा जाता था। इस नदी के किनारों पर न तो कृषि योग्य भूमि है और न ही गाँव पाये जाते हैं। मानव जीवन के चिह्न भी नहीं दिखाई देते हैं।

(दोनों सिन्धु की सहायक) के बीच लद्दाख के उत्तर मे लगभग ४०० कि. मी. में फैली हुई है। यह तिब्बत के पठार को भारत से अलग करती है। इसकी कई चोटियाँ ७५०० मीटर से भी अधिक ऊँची हैं। माउन्ट गाडविन आस्टिन (८६११ मीटर) एवरेस्ट के बाद विश्व की दूसरी सबसे ऊँची चोटी है। यहाँ सदैव बर्फाच्छादन, शान्त तथा एकान्त रहता है। यहाँ के प्रसिद्ध हिमनदो में चोगो लुगामा तथा बियाफों नामक हिमनद विशेष उल्लेखनीय हैं।

८. हिमाचल प्रदेश

३२° २२′ ४०″ तथा ३३° १२′ ४०″ उत्तरी अक्षाशो और ७५° ४७′ ५५″ तथा ७९° ०४′ २०″ पूर्वी देशान्तरो के मध्य इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल ५६०१६ वर्ग कि. मी. तथा जनसख्या ३४६०४३४ है। यह सम्पूर्ण प्रदेश पर्वतीय तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। इसमें चोटियाँ, नदियाँ, झीलें, प्राकृतिक स्रोत, मन्दिर आदि अत्यन्त प्राचीन काल से सुप्रसिद्ध रहे हैं। इसको प्राचीन साहित्य में 'देवभूमि' के नाम से भी पुकारा जाता था। प्रशासनिक दृष्टि से इसको महासू, किनौर, मडी, चम्बा, सिरमूर, बिलासपुर, शिमला कांगरा, कूलू तथा लाहोल १० जिलों में विभाजित किया गया है।

काश्मीर से हिमाचल के मध्य स्थित क्षेत्र भौमिकीय दृष्टि से बहुत जटिल है। संरचनात्मक दृष्टि से इसको (१) उप-हिमालय, (२) निचला हिमालय, (३) उच्च हिमालय तथा (४) तिब्बती हिमालय, चार भागों मे विभाजित किया जाता है।

(१) उप-हिमालय क्षेत्र—इसको शिवालिक तथा हिमालय-पाद-पर्वत क्षेत्र के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमे अधिकतर टरशियरी युग की चट्टानें पाई जाती हैं। व्यास नदी की घाटी मे शिवालिक पहाडियाँ सबसे अधिक चौड़ी हैं। शिवालिक पहाड़ियों को पुनः तीन—ऊपरी, मध्य तथा निचली, भागों मे विभाजित किया गया है। पंजाब हिमालय की मोटाई १८००—२७०० मीटर तक है। सिरपुर एवं शिवालिक पहाडियों के बीच एक दरार घाटी स्थित है। कसौली तथा डगसाई क्षेत्रों मे भूरे तथा नीले रंग की बालू की चट्टानें अधिकता से पाई जाती हैं।

(२) निचला हिमालय—इस क्षेत्र का अधिकाश भाग ग्रेनाइट तथा अन्य क्रिस्टलाइन चट्टानो से बना हुआ है। एक तरफ शिमला तथा दूसरी तरफ गढ़वाल और कुमायूँ हिमालय के मध्य क्रोलपेटी स्थित है जो शिवालिक पहाडियो को इससे अलग करती है। क्रोलपेटी की उपरिशायी चट्टानो को चार उप-विभागो—इन्फ्राक्रोल, बालू की चट्टानें, क्रोल चूना पत्थर तथा तालस्वार्टजाइट, मे बाँटा जाता है।

(३) उच्च हिमालय—प्रदेश के पूर्वी भाग मे उच्च हिमालय स्थित है जिसमें स्पीती का दक्षिणी भाग सम्मिलित है। यहाँ की चट्टानो मे जीवाश्म नही पाये जाते हैं। ग्रेनाइट तथा ग्रेनाइट नीस चट्टानें आपस में अंतरायिक ढंग से स्थित हैं। यहाँ की चट्टानों पर विवर्तनिकी का भारी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

(४) तिब्बत हिमालय—मेसोजोइक युग के नवीनतम निर्माण बेसीन में स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसमें काइनाइट से परिपूर्ण अभ्रकशीस्ट पाई जाती है। गिऊमल की बालू की

तालिका १७०

वनों के प्रकार	वनाच्छादित प्रदेश व. कि. मीटर
१. सुरक्षित वन	१६,१८०
२. रक्षित वन	२२,७०६
३. अवर्गीकृत	८६८
४. अन्य वन	२०३
५. वन विभाग से परे वन	१०७०
योग	२१,७६८
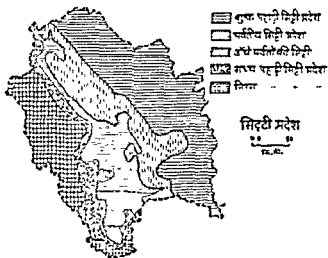
चित्र ७१

इस प्रदेश के वनों को निम्न लिखित भागों में विभाजित किया जाता है :—

वनों की किस्म	प्राप्ति क्षेत्र एवं विशेषताएँ
१. शुष्क घसनाहन वन	लाहौल, किन्नौर, पांगी, कुनिहार, भारमौर, भेड़ बकरियों के योग्य।
२. नम घसनाहन वन	वनाच्छादन, शाजितृन, मोलीनेरा, धूप तथा ढाक प्रमुख किस्में।
३. अर्ध घसनाहन वन	१५०० मी. तथा इससे नीचे पाये जाते हैं। लाहौल, चंबी, किन्नौर क्षेत्रों में ग्राम्य चरागाह के रूप में इनका प्रमुख उपयोग किया जाता है।

रावी इस प्रदेश की दूसरी नदी है। जिसको वैदिक काल में परोष्णी के नाम से पुकारा जाता था। इसकी लगभग १६० कि. मी. लम्बाई हिमाचल प्रदेश में पायी जाती है। सतलज जिसको शतद्रु के नाम से पुकारा जाता था लगभग ४०० कि. मी. सिन्धु नदी के समानान्तर प्रवाहित होती है। यह नदी जस्कर तथा विशाल हिमालय दोनों को ही काटती है। भाकरा बांध तक हिमाचल प्रदेश में इसका सम्पूर्ण प्रवाह क्षेत्र लगभग २०,००० व. कि. मी. है। हिमाचल प्रदेश में यमुना का प्रवाहक्षेत्र २३२० व. कि. मी. है।

ऊँचाई की भिन्नता के साथ यहाँ की जलवायु भी अलग-अलग पायी जाती है। पंजाब के मैदान की तुलना में यहाँ की ग्रीष्मऋतु छोटी तथा कम कठोर है। जाड़े की ऋतु लम्बी, अधिक ठंडी तथा वर्षा अधिक होती है। जलवायु में मौसमी उतार-चढ़ाव तथा लम्बवत् वर्गीकरण यहाँ की जलवायु की खास विशेषता है। यहाँ की जलवायु गर्म तथा अर्ध उष्ण-कटिबन्धीय किस्म की है। मुख्य पर्वत-श्रेणियों से अलग होने के कारण लाहौल एवं स्पीती की जलवायु अपेक्षाकृत शुष्क है। वर्षा की मात्रा ५०० मि. मी. से लेकर ३४०० मि. मी. तक होती है। कुल्लू में ९१५ मि. मी. तथा जोगिन्द्रनगर में ३३२७ मि. मी. वर्षा होती है। ३००० मी. की ऊँचाई पर बर्फ की मुटाई ३ मीटर तथा ४५०० मी. की ऊँचाई पर बर्फ स्थायी रूप से पाई जाती है। प्रदेश की सबसे अधिक वर्षा धर्मशाला में होती है। शिमला तथा नूरपुर में १५०० से २००० मि. मी. वर्षा होती है। पूरे वर्ष को निम्न तीन मौसमों में विभाजित किया जाता है। (i) शीत ऋतु (अक्टूबर-फरवरी), (ii) गर्म ऋतु (मार्च-जून), (iii) वर्षा ऋतु (जुलाई-सितम्बर)।

शीत ऋतु—आसमान स्वच्छ, सुबह एवं संध्या अधिक ठंडक, निम्न आर्द्रता, हवा शुष्क तथा विभिन्न ऊँचाइयों पर बर्फ का जमाव पाया जाता है। अक्टूबर सुहावना तथा शीतल रहता है। जाड़े में होने वाली वर्षा की मात्रा अलग-अलग पायी जाती है।

गर्म ऋतु—इस मौसम में जाड़े की कठोरता समाप्त हो जाती है। फरवरी से तापमान बढ़ने लगता है। मार्च में शिमला का तापमान १०.१° से. ग्रे., मण्डी का १७.३° से. ग्रे. तथा धर्मशाला का तापमान बढ़कर १७° से. ग्रे. हो जाता है। मौसम गर्म तथा धूलयुक्त हो जाता है। कभी-कभी हल्की वर्षा भी हो जाती है।

वर्षा ऋतु—यह मौसम जून के अन्त अथवा जुलाई के प्रारम्भ में शुरू होता है। बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर के मानसून शाखाओं से यहाँ वर्षा होती है। देश के अन्य भागों की भाँति इस पूरे प्रदेश में भी वर्षा प्रारम्भ होने से तापमान कम होने लगता है। वर्षा जुलाई तथा अगस्त में होती है परन्तु इस मौसम में वर्षा रहित दिनों की संख्या भी कभी कभी अधिक हो जाया करती है। बाढ़, भूमि कटाव तथा भूमि खिसकने आदि से अधिक हानियाँ होती हैं। परिवहन एवं संचार साधन ठप्प पड़ जाते हैं। सितम्बर माह से वर्षा की मात्रा कम एवं आकाश स्वच्छ होने लगता है।

जलवायु एवं ऊँचाई की भिन्नता के कारण हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक वनस्पति की दृष्टि से बड़ा धनी है। इस प्रदेश के २६,७६८ व. कि. मी. अर्थात् ४८% भूमि पर वन हैं। इसकी किस्मों को आगे की तालिका में दिखाया गया है।

प्राकृतिक एवं जलवायु सम्बन्धी दशाएँ अनुकूल नहीं हैं, जनसंख्या कम तथा अन्य क्षेत्रों उदाहरणार्थ कांगड़ा, कुलू, सतलज एवं रावी नदियों की घाटियों में घनी जनसंख्या है। जनसंख्या के सामान्य घनत्व की ही भाँति ग्रामीण घनत्व भी है जहाँ लगभग ९४% लोग गाँवों में रहते हैं। पूरे प्रदेश में प्रति वर्ग कि. मी. कृषित भूमि पर ४२८ व्यक्ति निवास करते हैं। यह घनत्व लाहौल तथा स्पीती में ८०० से भी अधिक पहुँच जाती है। पूरे प्रदेश में ९३.६६% जनसंख्या ग्रामीण तथा शेष (६.३४%) शहरी है। सबसे अधिक शहरीकरण शिमला में हुआ है जहाँ की केवल ६७% जनसंख्या ग्रामीण है। लैंगिक अनुपात ९३८ तथा शिक्षा का प्रतिशत १७% है। कृषि तथा पशुपालन यहाँ के प्रमुख धंधे हैं। इनके अतिरिक्त मत्स्य, बागानी, शिकार तथा खनन उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें कुल मिलाकर यहाँ की जनसंख्या के लगभग ५०% लोग लगे हुए हैं। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या १२६६० ग्रामीण बस्तियों में निवास करती है। यहाँ शहरों की संख्या कुल मिलाकर २९ हैं। शहर अधिकतर छोटे हैं। इन शहरों में चम्बा, शिमला तथा काँगरा विशेष उल्लेखनीय हैं।

चित्र ७२

जैसाकि ऊपर कहा गया है यहाँ की लगभग ९३% जनसंख्या कृषि से अपना जीविकोपार्जन करती है। पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण यहाँ कृषि को बढ़ाने की बहुत कम सम्भावनाएँ हैं। पर्वतीय ढालों को सीढ़ीनुमा समतल बनाकर खेती की जाती है। ३००० मीटर से अधिक की ऊँचाई पर भूमि का आर्थिक उपयोग सम्भव नहीं हो पाता है। नदी अपसरण से सिंचाई की जाती है। देहातों में सिंचाई की सुविधाओं को चालू करने के लिए विद्युतीकरण किया जा रहा है। इस प्रदेश में क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से खरीफ की फसलें अधिक प्रसिद्ध हैं। इन फसलों में मक्का तथा चावल विशेष उल्लेखनीय हैं।

१	२
४. हिमालयीय नम शीतोष्ण तथा मिश्रित वन	देवदार प्रमुख वृक्ष होता है। चौपाल शिमला, कोटगढ़, किनौर, कुलू आदि क्षेत्रों में इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।
५. नम शीतोष्ण वन	डलहौजी, धर्मशाला, कांगरा और पालमपुर के ढालों पर इस प्रकार के वन पाये जाते हैं।
६. अर्ध-उष्ण-कटिबन्धीय पाइन वन	इस प्रकार के वन चम्पा, मंडी, कोटगढ़ तथा शिमला आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं।
७. अर्ध उष्ण कटिबन्धीय चौडी पत्ती के वन	इस प्रकार के वन मंडी तथा व्यास क्षेत्रों मे सबसे अधिक पाये जाते हैं।
८. उत्तरी उष्ण कटिबन्धीय शुष्क पतझड के वन	निचली पहाडियो मे इस प्रकार के वन पाये जाते हैं। साल इस प्रदेश का सबसे उपयोगी वृक्ष है।
९. उष्ण कटिबन्धीय कांटेदार वन	नालागढ़ तथा पच्छाद तहसीलों में पाया जाता है।

यहाँ की मिट्टियाँ ऊँचाई तथा जलवायु के अनुसार बदलती हैं। मिट्टियाँ आमतौर से नवीन तथा छिछली हैं। जलवायु एवं ऊँचाई के आधार पर यहाँ की मिट्टियो को निम्न पाँच किस्मों में रखा जा सकता है :—

(१) निचली पहाड़ियों (९०० मी.) की मिट्टियाँ छिछली तथा पत्थरों से परिपूर्ण हैं।

(२) मध्य पर्वतीय मिट्टियाँ १५०० मी. की ऊँचाई तक पाई जाती हैं। यहाँ की मिट्टियाँ दुमट तथा चिकनी दुमट किस्म की हैं। इनमें प्राप्त होने वाले नाइट्रोजन तथा फासफोरस की मात्रा मध्यम हैं।

(३) ऊँचे पर्वतीय प्रदेश की मिट्टियाँ—इनकी प्राप्ति २१०० मी. की ऊँचाई तक होती हैं। ढाल तीव्र तथा नदियाँ अधिक हैं। अनुकूल स्थलाकृतियों में मिट्टियाँ अधिक गहरी एवं उपजाऊ हैं।

(४) पहाडी मिट्टियाँ—इस प्रकार की मिट्टियाँ कम गहरी होती हैं।

(५) शुष्क पहाडी मिट्टियाँ—इस प्रकार की मिट्टियाँ लाहौल, स्पीती तथा किनौर क्षेत्रो में पायी जाती हैं। इस प्रदेश की मिट्टी वितरण को चित्र ७१ में दिखाया गया है।

हिमाचल प्रदेश की खनिज संपदाओं मे अभ्रक, लौह अयस्क, पाइराईट स्लेट, चूना का पत्थर तथा जिप्सम विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ के खनिज प्रकार एवं वितरण को मानचित्र ७२ मे दिखाया गया है। अच्छा स्वास्थ्य, दवाइयों की व्यवस्था एवं स्वच्छता आदि इस प्रकार की जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारण हैं। यहाँ की जनसख्या का वितरण असमान है। कठोर जलवायु एव तीव्र ढाल के क्षेत्रो में, जहाँ कृषि योग्य भूमि की कमी तथा

ट्रान्स हिमालय हिमाचल—इसको पुनः अनेक उप-विभागों में विभाजित किया जा सकता है। नदी तथा नालों के पास कृषि योग्य भूमि पायी जाती है। सिंचित क्षेत्रों में कृषि की जाती है। सैनिक दृष्टि से इस प्रदेश का अधिक महत्त्व है। स्पीती प्रदेश के चारों तरफ पर्वत स्थित हैं। इस क्षेत्र में वर्षा नहीं के बराबर होती है। परन्तु जाड़े के दिनों में बर्फपात होता है।

सीमावर्ती क्षेत्र होने तथा अनेक भौगोलिक प्रतिकूलताओं के कारण यह प्रदेश प्रारम्भ से पिछड़ा रहा है। कृषि यहाँ का मुख्य पेशा है। जनसंख्या का भार कृषि पर अधिक है। वनों, पशुओं तथा खानों पर आधारित उद्योगों के विकास की आवश्यकता है। इसमें कोई सदेह नहीं है कि यदि इस प्रदेश में समुचित प्रबन्ध प्राथमिकता एवं योजनाएँ प्रदान की जाएँ तो प्रदेश के प्राकृतिक मानवीय एव सांस्कृतिक संसाधनों को विकसित किया जा सकता है।

(६) उत्तर प्रदेश हिमालय

इसका विस्तार २६°.५' से ३१°.२५' उत्तरी अक्षांश तथा ७७°.४५'–८१°.०' पूर्वी देशान्तरों के मध्य है। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल ४६,४८५ व. कि. मी. है। इस प्रदेश को कुमायूँ हिमालय के नाम से भी पुकारा जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह प्रदेश हिमाचल प्रदेश के समीप है।

यहाँ पर प्राचीन काल मे त्रिगर्त, त्रिगर्त तथा मद्र जैसे अनेक राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर थे। यह प्रदेश अपनी प्राचीनता के साथ-साथ अनेकानेक संस्कृतियों का क्षेत्र तथा विविध प्रशासन तन्त्रों द्वारा शासित क्षेत्र रह चुका है। इनमें राजपूत, तथा मुसलमान विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्रिटिश प्रशासन काल मे कुमायूँ तथा गढ़वाल प्रदेशों के प्रशासन को चलाने के लिए अल्मोड़ा को केन्द्र बनाया गया। गढ़वाल तथा कुमायूँ की संस्कृतियों में क्षेत्रीय अन्तर पाया जाता है। कुमायूँ क्षेत्र में अपेक्षाकृत ह्रास मंद है। कृषि योग्य अच्छी भूमि और प्राचीन काल से तिब्बत के व्यापारिक मार्ग में स्थित होने के कारण व्यापारिक, धार्मिक एवं राजनैतिक जागरण रहा है और फलस्वरूप विकास की दर भी अपेक्षाकृत तेज रही है।

इस प्रदेश की स्थलाकृति बहुत ऊबड़खाबड़ है। यहाँ खड़े ढालों, शृंगों, चोटियों, ऊँचे कटकों, हिमगह्वरों, हिमनदों, बर्फाच्छादित चोटियों, लटकती हुई घाटियों, तूफानी जल प्रवाहों एवं तीव्र ढालों की बहुतायत है। गहरे कैनियन, ध्वनित नदी नालों तथा प्रपातों आदि से इस प्रदेश का मौन्दर्यवर्द्धन होता है।

इस प्रदेश के अधिकांश भाग में अभी तक भौमिकी सर्वेक्षण नहीं किया जा सका है। विविध अध्ययनों के आधार पर इसको निम्न तीन स्तरण क्षेत्रों (Stratigraphical Zones) मे बाँटा जा सकता है। (i) बाह्य हिमालय, (ii) मध्य अथवा निम्ना हिमालय एव (iii) उच्च हिमालय।

बाह्य हिमालय का निर्माण अधिकतर टर्शियरी युग के अवसादों से हुआ है। इसमें हिमालय के पाद पर्वत (Foothills) सम्मिलित किए जाते हैं। शिवालिक अवसादों में

रबी की फसलों मे गेहूँ, जौ, चना तथा दालें पैदा की जाती हैं। कृषि के अतिरिक्त इस प्रदेश में बागानी खेती भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। सन् १६५०-५१ मे कुल मिलाकर १६५० एकड़ भूमि पर बागानी खेती की जाती थी जो सन् १६६८ मे बढ़कर लगभग ७५ हजार एकड़ हो गयी। चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक इस प्रदेश मे १४५००० एकड़ भूमि में फलोत्पादन की सम्भावना थी। फलों के अतिरिक्त इस प्रदेश में आलू, चाय तथा अन्य अनेक नकदी फसलें पैदा की जाती हैं। कृषि एवं फलोत्पादन के अतिरिक्त पशुपालन यहां का एक अन्य प्रमुख धन्धा है। अत्यधिक धारासाही, भूमि कटाव तथा घासों मे आग लगने का कृषकों के सामने सदैव भय बना रहता है।

खनिज सम्पदा के पर्याप्त होने के बावजूद इस प्रदेश मे सबसे कम औद्योगीकरण हो पाया है। यहां सस्ते श्रमिक, सस्ती बिजली, कच्चे माल, टिम्बर तथा ऊन आदि बहुतायत से पाये जाते हैं। इस प्रदेश मे (८.५ मिलियन कि० वाट) जल-विद्युत् पैदा की जा सकती है। यह सम्पूर्ण भारत की जल-विद्युत् का लगभग १५% है।

सुदूर-स्थित पर्वतीय बनावट के कारण हिमाचल प्रदेश सदैव से एकाकी रहा है। निकट भूतकाल तक यहाँ परिवहन के संसाधनों की बड़ी कमी थी जिसके परिणामस्वरूप यह प्रदेश सदैव पिछड़ा रहा। इस समय इस प्रदेश मे दो मीटरगेज—कालका-शिमला तथा पठानकोट-जोगिन्द्रनगर रेलमार्ग हैं। रेल की सेवाएँ बडी सीमित हैं। वायु सेवाएँ मौसमी होती हैं। विगत तीन पंचवर्षीय योजनाकालों में प्रदेश के बजट का ३०% सडक निर्माण हेतु व्यय किया गया था। इस प्रदेश में प्राप्त सड़कों की किस्में तथा लम्बाई को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

हिमाचल प्रदेश की सड़कें ३१ मार्च १६६६ तक

तालिका १७१

१. पक्की सड़कें	१२६४ कि० मी०
२. कच्ची सड़कें	२८८८ कि० मी०
३. सम्पूर्ण मोटर योग्य सड़कें	४१५२ कि० मी०
४. जीप योग्य सड़कें	४७५ कि० मी०
५. ट्रैक	१७७० कि० मी०

इस सम्पूर्ण प्रदेश को दो प्रथम आर्डर—(i) हिमालय हिमाचल तथा (ii) ट्रान्स हिमालय हिमाचल, ७ द्वितीय आर्डर तथा १४ तृतीय आर्डर भागों में विभाजित किया जा सकता है।

हिमालय हिमाचल—इसकी ऊँचाई ३०० से ६५०० मी. है। इसमें असंख्य नदियाँ, वर्षा ८००-३००० मि. मी., कृषि भूमि, उद्योग तथा परिवहन संसाधनों की अपेक्षाकृत अधिकता है। यहाँ विकास की गति भी तेज है। लाहौल ३००० मी. की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ के अधिकांश लोग कृषक, पशु पालक तथा रोजगारी हैं। इस प्रदेश को अनेक बेसिनों जैसे चन्द्रभागा, रावी, व्यास तथा सतलज बेसिनों में विभाजित किया जा सकता है।

चौथाई भाग वाली नदी तंत्र से प्रवाहित होता है। इस प्रदेश की नदियाँ अधिकतर गहरी तथा सकरी घाटियों का निर्माण करती हैं।

ग्रीष्म ऋतु में घाटियों में गर्मी पड़ती है। मौसम धुंधला रहता है। जबकि केवल ७५ कि. मी. दूर सबसे ऊँची पहाड़ी चोटियाँ प्राप्त होती हैं, सकरी घाटियों में घाटी की हवाएँ तथा जाड़े के दिनों में चौड़ी घाटियों में सघन कुहरा पड़ता है। इस प्रदेश में वर्षा की मात्रा न केवल ऊँचाई बल्कि स्थान की स्थिति (पर्वत श्रेणियों के सामने अथवा पीछे) के अनुसार भी निर्धारित होती है। जून के अन्तिम दिनों में इस प्रदेश में मानसून प्रारम्भ होकर सितम्बर के मध्य तक कायम रहता है। जाड़े की ऋतु में चलने वाले चक्रवातों से वर्षपात होता है। अप्रैल एवं मई में आकस्मिक आंधियाँ चलती हैं। १२०० तथा २१०० मी. की ऊँचाई पर सबसे अधिक वर्षा होती है। प्रत्येक घाटी में जलवायु अलग-अलग पाई जाती है। इस प्रदेश की जलवायु पर पर्वत श्रेणियों की दिशा, ढाल की तीव्रता, ढालों पर छाया तथा वनाच्छादन की मात्रा जैसे कारकों का प्रभाव देखने को मिलता है।

इस प्रदेश के एक बड़े भूभाग पर प्राकृतिक वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। यहाँ की वनस्पति वायुमण्डलीय, मृदीय तथा जीवीय कारकों से निर्धारित होती है। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति को निम्न चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) अर्ध-उष्णकटिबन्धीय—इस प्रकार की वनस्पति १२०० मीटर के नीचे सम्पूर्ण बाह्य हिमालय में पायी जाती है। इस प्रदेश में साल सबसे अधिक आर्थिक महत्त्व का वृक्ष होता है। अन्य वृक्षों में बाड़, सेमल, खैर तथा शीशम अधिक उल्लेखनीय हैं।

(२) शीतोष्ण कटिबन्धीय वनस्पति १२००–१८०० मीटर की ऊँचाई पर पायी जाती है। इन वनों में चीड़ तथा पाइन का बाहुल्य रहता है। पतझड़ की भी कुछ किस्में मिली-जुली पायी जाती हैं।

(३) अर्ध-अल्पाइन—इस प्रदेश का पर्याप्त क्षेत्र इस प्रकार के वनों से आच्छादित है। सिलवरफर, स्प्रूस, बर्च, ब्लू पाइन तथा देवदार आदि प्रमुख वृक्ष हैं। इस प्रकार की वनस्पति १८०० से ३००० मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है।

(४) अल्पाइन वनस्पति इस प्रदेश में ३००० से ४५०० मी. की ऊँचाई तक पायी जाती है।

यहाँ की मिट्टियाँ एक घाटी से दूसरी घाटी और एक ढाल से दूसरे ढाल पर परिवर्तित होती रहती हैं। भागीरथी तथा अलकनंदा की ऊपरी घाटी की मिट्टियाँ हिमानी तथा नदीय-हिमानी के मिश्रित क्रियाओं से बनी हैं। सैल अथवा तथा समतल चोटियों पर प्राप्त होने वाली मिट्टियाँ अधिक उपजाऊ हैं। अल्पाइन क्षेत्र में पायी जाने वाली मिट्टियाँ पैनाइट निर्मित हैं। कुल मिलाकर इस प्रदेश की मिट्टियाँ पथरीली, छिछली, भीषण अपरदन वाली, कम उपजाऊ तथा कठोर हैं।

इस पर्वतीय प्रदेश में जनसंख्या के वितरण पर स्थलाकृति एवं जलवायु का सबसे अधिक प्रभाव है। भागीरथी, यमुना, रामगंगा, कोसी, अलकनन्दा के निचले हिस्सों में जनसंख्या सबसे घनी बसी है। हिमाद्रि में घाटियाँ जनसंख्या के मुख्य केन्द्र हैं।

टूटी हुई चट्टानों, मिट्टी तथा कांगलोमरेट आदि का जमाव ५५०० मीटर की गहराई तक पाया जाता है। इस प्रदेश मे शेल चट्टानें विविध रंगो मे पायी जाती हैं। शिवालिक पहाड़ियों को भी तीन-निचले, मध्य तथा ऊँचे भागों मे विभाजित किया जाता है।

मध्य अथवा निचले हिमालय का निर्माण जीवाश्म रहित ग्रेनाइट तथा क्रिस्टलाइन चट्टानों से हुआ है। हिमालय का यह भाग पूर्व मे आराग से पश्चिम मे व्यास नदी तक फैला है। इसकी तीन कोलपेटी, देवबन-सेजाम पेटी तथा अल्मोड़ा संरचनात्मक क्षेत्रों मे विभाजित किया जाता है।

उच्च हिमालय का निर्माण जीवाश्म पूर्ण अवसादों से हुआ है। यह प्रदेश मध्य अथवा निचला हिमालय से हिमालय की मध्य क्षेत्र से विभाजित है। कालीगोंर्ज, गोरीगंगा और पिण्डार नदियो की घाटियों मे मुख्य मध्य क्षेत्र सबसे अधिक स्पष्ट है। क्वार्टजाइट, नीस तथा गारनेट आदि चट्टानें इस प्रदेश मे मुख्य रूप से पायी जाती हैं।

इस प्रदेश को निम्न प्राकृतिक भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. हिमाद्रि (विशाल हिमालय)
   (क) हिमाद्रि श्रेणियाँ
   (ख) हिमाद्रि घाटियाँ
२. हिमाचल (निचला हिमालय)
   (क) हिमालय पहाड़ियाँ
   (ख) हिमाचल घाटियाँ एवं झीलें।
३. शिवालिक
   (क) दून घाटियाँ
   (ख) शिवालिक पहाड़ियाँ

हिमाद्रि की चौड़ाई ५५ कि. मी. और औसत ऊँचाई ४८०० से ६००० मीटर है। इस प्राकृतिक प्रदेश की प्रमुख चोटियां नन्दा देवी (७८१७ मी.), गंगोत्री (६६१४ मी.), केदारनाथ (६६४० मी.) तथा त्रिशूल (७१२० मी.) ऊँची हैं। इसमें से भागीरथी तथा अलकनन्दा प्रमुख नदियाँ प्रवाहित होती हैं। कुमायूँ का झील प्रदेश बहुत सुन्दर है और नैनीताल तथा भीमताल आदि पहाड़ी नगर बहुत प्रसिद्ध हैं। लगभग ३५० मीटर की ऊँचाई पर दून घाटियों का निर्माण नवीन बजरी के भरने से हुआ है। दून घाटियों मे देहरादून घाटी सबसे बड़ी एव प्रसिद्ध है।

इस प्रदेश की नदियों को तीन—गंगा, यमुना तथा काली नदी-तंत्रों में विभाजित किया जा सकता है। प्रदेश का अधिकांश क्षेत्र गगा प्रवाह मे सम्मिलित है। यहाँ की अधिकांश नदियाँ कुछ दूर तक पर्वत श्रेणियो के समानान्तर तथा सरचना द्रोणी में होकर बहती हैं। देवप्रयाग के नीचे अलकनन्दा तथा भागीरथी आपस में मिलती है। इसके पश्चात् गगा के नाम से यही नदी दून घाटियों मे प्रवाहित होती हुई शिवालिक पहाड़ियों को हरिद्वार के पास काटकर मैदान में प्रवेश करती है। अलकनन्दा के अलावा मंदाकिनी, पिण्डार तथा धवलगगा भागीरथी की अन्य प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। यमुनोत्री यमुना नदी का उद्गम स्थान है। टोन्स यमुना नदी की सबसे बड़ी सहायक नदी है। प्रदेश का लगभग एक

१९६२ से जोर पकड़ पाया है। ऋषीकेश से दो पर्वतीय सड़कें प्रारम्भ होती हैं—एक बद्रीनाथ तथा दूसरी गगोत्री को मिलाती है; कर्ण प्रयाग से पिन्डारा, अल्मोडा तथा रानीखेत के बीच सड़कों का निर्माण कराया गया है। काठगोदाम एवं नैनीताल, रानीखेत, अल्मोडा तथा कौसानी के बीच भी सड़कें यातायात के कार्य में प्रयोग में लाई जा रही है। इस प्रदेश के परिवहन मार्गों को चित्र ७३ मे दिखाया गया है।

स्थानीय भौगोलिक विविधताओं के आधार पर इस प्रदेश को पुनः अनेकानेक भागोपभागों में विभाजित किया गया है। जिसका सविस्तार अध्ययन इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी से किया जा सकता है।

चित्र ७३

१०. पूर्वी हिमालय

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—पूर्वी हिमालय २६° ४०′–२९.° ३०′ उत्तरी अक्षांसों तथा ८८°.२′–९७.° ७′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसकी दक्षिणी सीमा को १५० मीटर की रेखा निर्धारित करती है। गैन्सर ने इस सम्पूर्ण प्रदेश को निम्न चार संरचनात्मक इकाइयों में रखा है :—

१. उप-हिमालय में टरशियरी युग का शिवालिक अवसाद, जो मुख्य रूप से दक्षिणी भाग में पाया जाता है।
२. निचले हिमालय में परतदार एवं कायांतरित चट्टानें पायी जाती हैं जो पेलियोजोइक से लेकर मेसोजोइक युगों तक जमा हुई थी।
३. उच्च हिमालय में मध्यक्षेत्र का उत्तरी भाग।
४. उच्च हिमालय का वह भाग जिसमें जीवाश्ममय टेथिज अवसाद जमा हुआ है।

यह सम्पूर्ण प्रदेश सदा से अत्यधिक कटाव के अनुकूल एवं मानव बसाव के प्रतिकूल रहा है। सम्पूर्ण प्रदेश में असंख्य नदियों ने भरपूर कटाव किया है। इस प्रदेश की सहायक नदियाँ ब्रह्मपुत्र में मिलती हैं। यहाँ के अधिकांश लोग नदी घाटियों अथवा घाटियों में ढालों

जनसंख्या—हिमालय प्रदेश में जनसंख्या के वितरण में स्थलाकृति एवं जलवायु का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है। अधिक घनत्व के क्षेत्रों में कृषित भूमि १३ प्रतिशत है। नकारात्मक क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व १० प्र. व. कि. मी. है। ऐसे क्षेत्रों में कृषि भूमि का प्रतिशत कम है। एक फसल पैदा होती है। शिवालिक पहाड़ियों में, जहाँ जंगल अधिक हैं, जनसंख्या केवल ५ से १० प्र. व. कि. मी. है। सम्पूर्ण उत्तर-प्रदेश की ४० प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या के विपरीत यहाँ की ६१ प्रतिशत जनसंख्या कार्यशील है। कृषि सबसे महत्त्वपूर्ण धंधा है। कृषकों एवं कृषि मजदूरों का प्रतिशत क्रमशः ८६ से ९३ तक है। यहाँ की २.४ मिलियन जनसंख्या १४१७७ गाँवों में रहती है जिसमें प्रतिगाँव औसत जनसंख्या १४२ से २३५ तक है। नदी, घाटियाँ तथा सीढ़ीनुमा ढालों पर मानव बसाव की सबसे अनुकूल परिस्थितियाँ पायी जाती हैं। विभिन्न ऊँचाईयों एवं घाटियों में प्राप्त बहुत छोटे-छोटे समतल भूमि खण्डों पर छोटे-छोटे अनियोजित गाँव बसे हुए हैं। मकान अधिकतर दो-मंजिले हैं। इस प्रदेश के प्रमुख नगर पाँच प्रकार के स्थानों—१. कटक—मसूरी (१८०३८) लैंसडाउन (६६७०) रानीखेत (१३११७)। २. घाटियाँ—देहरादून (१६६०७३) नैनीताल (२५१६७), ३. नदी वेदिका—उत्तर-काशी (६०२०) श्रीनगर (५५६६), ४. संगम—टेहरी (५४८०) देव प्रयाग (१५२७), ५. द्वार नगर—ऋषीकेश (१७६४६) हरिद्वार (७७८६४), इन नगरों का विकास अनेक धार्मिक एवं प्रशासनिक कारणों के आधार पर हुआ है।

बद्रीनाथ एक सड़क के सहारे रेखीय नगर के रूप में अंतस्थ हिमोढ के नीचे तथा यू-क्रिरम की घाटी के मध्य में बसा हुआ है। देवप्रयाग एक संगम शहर है। दून घाटी में सबसे अधिक शहरीकरण हुआ है जहाँ पर जनसंख्या का लगभग ५५ प्रतिशत शहरी है। हरिद्वार तथा ऋषीकेश बिखरे हुए पट्टीदार नगरों के रूप में विकसित हुए हैं। देहरादून शैक्षणिक, अनुसंधान, सैनिक प्रशिक्षण, वन शोध संस्थान, भारतीय पेट्रोलियम तथा फोटो इन्टरप्रेटेशन आदि का सबसे प्रमुख केन्द्र है। अल्मोड़ा, नैनीताल, भोवाली तथा पिथौरागढ़ अन्य प्रसिद्ध शहर हैं।

कृषि—इस प्रदेश का लगभग १७ प्रतिशत बर्फाच्छादित, ५३ प्रतिशत वनाच्छादित, तथा १६ प्रतिशत (कुमायूं) हिमालय में कृषि के अन्दर है। यहाँ की फसलों पर स्थानीय ऊँचाई, जलवायु तथा मिट्टी की प्रकृति के कारण उनकी अमिट छाप दिखाई देती है। प्रमुख फसलों में चावल (३६%), गेहूँ (२४%) तथा जौ (२२%) प्रमुख फसलें हैं; यहाँ की बागानी कृषि जो एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है, १२००-२४०० मीटर की ऊँचाई तक सफलतापूर्वक किया जाता है और इस पर भी मिट्टी एवं जलवायु का प्रमुख प्रभाव रहता है। हिमालय प्रदेश में चरागाही भी बड़े पैमाने पर की जाती है।

उद्योग-धंधे—विद्युत यहाँ का प्रमुख औद्योगिक संसाधन है। इसके अतिरिक्त वन, पशु, कृषि एवं बाग इस प्रदेश में अन्य महत्त्वपूर्ण संसाधनों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्रदेश में सस्ती एवं विविध हस्तकलाओं के विकास योग्य साधन उपलब्ध हैं। यहाँ पर्वतारोहण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य निदर्शन, आदि के लिए सुन्दरतम स्थान उपलब्ध हैं।

परिवहन—इस प्रदेश में यातायात एवं परिवहन संसाधनों का आधुनिक विकास सन्

इस प्रदेश मे यातायात एवं परिवहन संसाधनों की भारी कमी है। सन् १९५४ के पूर्व सिक्किम मे केवल ४८ कि. मी. ट्रक मोटर चलने योग्य सड़क गगटोक तथा रौंगपो के मध्य थी। सुरक्षा एवं विकास कार्यों के लिए परिवहन मार्गों का विकास नितान्त आवश्यक है। सन् १९६२ में भारत सरकार की सहायता से १९० कि. मी. सड़क का निर्माण कराया गया था। डाक, तार, टेलीफोन वायरलेस आदि के विकास की तरफ भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस प्रदेश के उप-विभागों को चित्र ७४ में दिखाया गया है।

चित्र ७४

११. पूर्वांचल

२१°.५७′–२८°.२३′ उत्तरी अक्षांशों तथा ९१°.१३′–९७°.२५′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य इस प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ९८,८०० वर्ग कि. मी. है। यहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या ४ मिलियन तथा घनत्व ४३ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। इस प्रदेश में नागालैण्ड, मनीपुर, त्रिपुरा, मिजो पहाड़ियां तथा कछार जिले सम्मिलित हैं, इसकी अधिकतम लम्बाई उत्तर-दक्षिण को ७५५ कि. मी. है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का भौमिकी सर्वेक्षण विस्तृत रूप में नहीं हुआ है। यह हिमालय के पूर्वी भागों को सम्मिलित करने से स्थलाकृति की तरफ पर्याप्त संकेत दे देता है। आसाम हिमालय पूर्व-पश्चिम को फैला है। त्रिपुरा एवं कछार की घाटियों मे चिकनी जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। नागालैण्ड मे पाई जाने वाली मिट्टी मे चूना, पोटाश तथा फास्फोरस कम पाये जाते हैं। जबकि मनीपुर, मिजो तथा कछार पहाड़ियों की मिट्टियां लाल दुमट किस्म की हैं। इस प्रदेश मे तीव्र ढालों एवं अत्यधिक वर्षा के कारण मिट्टी कटाव बहुत अधिक होता है।

पूर्व कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि मिट्टी, वन, जल तथा खनिज इस प्रदेश के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन हैं। यहाँ के वनों में टिम्बर, रबर, सँर तथा गोंद आदि बहुमूल्य लकड़ियाँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश मे जल संसाधन का अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका है। इस प्रदेश में पेट्रोल के पाये जाने की सम्भावनाएँ हैं। यहाँ प्रमुख उद्योग खेती है। उन्हीं पुराने तरीकों से अभी तक खेती की जाती है। यहाँ चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, मुख्य फसलें हैं। परन्तु ऊँचे भागो मे गेहूँ, जो भी पैदा किये जाते हैं। खेती के अलावा इस प्रदेश में टोकरियाँ, ऊनी सामान, तीर, धनुष आदि के बनाने का भी रोजगार किया जाता है। यहाँ की जनसंख्या ३,६६,२०० है। यहाँ के प्रधान निवासी नागा के

पर रहते हैं। यहाँ की नदियों का उपयोग गमनागमन के लिए नहीं हो सकता है। नदियाँ तिस्ता, टोरसा, कांगडू तथा मोचू उल्लेखनीय नदियाँ हैं।

जलवायु—यहाँ की जलवायु में थोड़ी-थोड़ी दूर पर भारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। घिरी हुई घाटियों, पाद पर्वतों तथा ऊँचे पर्वतों में तापमान एवं वर्षा की मात्रा में भारी प्रतिकूलताएँ पाई जाती हैं। अधिक मात्रा में भूमि खिसकाव, भूकम्प तथा इसी प्रकार की घटनाएँ हुआ करती हैं। कुछ ही महीनों को छोड़कर यहाँ पूरे वर्ष वर्षा होती है। मई से सितम्बर के अंत तक मानसून से वर्षा होती है। जाड़े में भी वर्षा होती है। १५०० मीटर तथा इससे ऊँचे स्थानों पर वर्फपात होता है। इस प्रदेश में ही जलवायु के तीन भाग पाये जाते हैं।

मिट्टी—इस प्रदेश में मिट्टी सर्वेक्षण अब तक नहीं कराया गया है। परन्तु यहाँ की चट्टानें हिमालय किस्म की हैं जिनमें शेल, शिस्ट, तथा कांग्लोमरेट विशेष उल्लेखनीय हैं। मिट्टी में अम्लता अधिक है। नई मिट्टियाँ जो खेती के लिए साफ की जाती हैं, उनमें सड़ी-गली पत्तियों की भारी वहँ पाई जाती हैं। पाद-पर्वतों में मिट्टी जलोढ़ किस्म की है। जिनमें विभिन्न आकारों के कंकड़-पत्थर भी पाये जाते हैं। यहाँ की पूर्वी भाग की प्राकृतिक वनस्पति तीन मंजिली उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र वन है। पश्चिमी भाग के शुष्क क्षेत्रों में पाइन, सिलवर-फर, तथा बौने किस्म के झाड़ एवं बेर के वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। यहाँ के वनों का अभी उपयोग नहीं हो पाया है। परन्तु इनको जलाकर बड़े पैमाने पर "झूमिंग" किस्म की खेती की जाती रही है।

हाल ही में भूटान में एक स्विटजरलैण्ड की कम्पनी कागज बनाने की कम्पनी चालू करने पर सहमत हुई है। भूटान में वन विभाग की स्थापना की गई है। यहाँ कीमती साल, बांस तथा अन्य व्यावसायिक लकड़ियों के प्राप्त होने की भारी सम्भावनाएँ हैं। यहाँ की समस्त जनसंख्या १,७६१,५०३ है। यह प्रदेश भारत के सबसे कम घने बसे क्षेत्रों में से एक है जहाँ प्र. व. कि. मी. में केवल १४ व्यक्ति निवास करते हैं। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या का वितरण प्राकृतिक एवं जलवायु संबंधी कारकों से निर्धारित होता है। जनसंख्या बसाव की यहाँ तीन पेटियाँ हैं: (१) उच्च हिमालय की मानवरिक्त पेटी (२) अपेक्षाकृत आबाद मध्य हिमालय की पेटी (३) सबसे घना बसा हुआ दक्षिण का भाग। जनसंख्या का वितरण असमान, छोटी २ घाटियों में तथा गाँवों के रूप में पाई जाती हैं। दार्जिलिंग एक बड़ा नगर है। गंगटोक (सिक्किम) पुनाखा तथा थिम्बू (भूटान) पासीघाट (नेफा) नगरों के विकास को देखकर कहा जा सकता है कि सिक्किम, भूटान एवं नेफा में नगरीकरण की गति तेज है। देश का यह पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या आदिम निवासियों की है। यहाँ के ९० प्रतिशत लोग कृषि से अपना जीविकोपार्जन करते हैं। खेती यहाँ का प्रधान धंधा है। खनिज एवं वन संपदाओं का अभी तक न तो विकास हो पाया है और न ही नदियों का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए किया जा सका है। 'झूमिंग' कृषि यहाँ का प्रधान पेशा है। सिक्किम में कृषि अपेक्षाकृत विकसित है। यहाँ औद्योगिक फसलोत्पादन, चरागाही, व्यवसाय एवं चावल की खेती की जाती है। दार्जिलिंग शहर का मुख्य धंधा पर्यटकों को आश्रय प्रदान करना तथा चाय उत्पादन है।

इस प्रदेश मे यातायात एवं परिवहन संसाधनों की भारी कमी है। सन् १६५४ के पूर्व सिक्किम में केवल ४८ कि. मी. ट्रक मोटर चलने योग्य सड़क गंगटोक तथा रांगपो के मध्य थी। सुरक्षा एवं विकास कार्यों के लिए परिवहन मार्गों का विकास नितान्त आवश्यक है। सन् १६६२ में भारत सरकार की सहायता से १६० कि. मी. सड़क का निर्माण कराया गया था। डाक, तार, टेलीफोन वायरलेस आदि के विकास की तरफ भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस प्रदेश के उप-विभागो को चित्र ७४ में दिखाया गया है।

चित्र ७४

११. पूर्वांचल

२१°.२७′–२८°.२३′ उत्तरी अक्षांशो तथा ६१°.१३′–६७°.२५′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य इस प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ६८,८०० वर्ग कि. मी. है। यहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या ४ मिलियन तथा घनत्व ४३ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। इस प्रदेश में नागालैण्ड, मनीपुर, त्रिपुरा, मिजो पहाड़ियाँ तथा कछार जिले सम्मिलित हैं, इसकी अधिकतम लम्बाई उत्तर-दक्षिण को ७५५ कि. मी. है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का भौमिकी सर्वेक्षण विस्तृत रूप में नहीं हुआ है। यह हिमालय के पूर्वी भागो को सम्मिलित करने से स्थलाकृति की तरफ पर्याप्त संकेत दे देता है। आसाम हिमालय पूर्व-पश्चिम को फैला है। त्रिपुरा एवं कछार की घाटियों में चिकनी जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। नागालैण्ड में पाई जाने वाली मिट्टी में चूना, पोटाश तथा फास्फोरस कम पाये जाते हैं। जबकि मनीपुर, मिजो तथा कछार पहाड़ियों की मिट्टियाँ लाल दुमट किस्म की हैं। इस प्रदेश मे तीव्र ढालों एवं अत्यधिक वर्षा के कारण मिट्टी कटाव बहुत अधिक होता है।

पूर्व कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि मिट्टी, वन, जल तथा खनिज इस प्रदेश के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन हैं। यहाँ के वनो में टिम्बर, रबर, गैर तथा गोंद आदि बहुमूल्य लकड़ियाँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश मे जल संसाधन का अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका है। इस प्रदेश में पेट्रोल के पाये जाने की सम्भावनाएँ हैं। यहाँ प्रमुख उद्योग खेती है। उन्हीं पुराने तरीकों से अभी तक खेती की जाती है। यहाँ चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, मुख्य फसलें है। परन्तु ऊँचे भागों में गेहूँ, जो भी पैदा किये जाते हैं। खेती के अलावा इस प्रदेश में टोकरियाँ, ऊनी सामान, तीर, धनुष आदि के बनाने का भी रोजगार किया जाता है। यहाँ की जनसंख्या ३,६६,२०० है। यहाँ के प्रधान निवासी नागा के

नाम से पुकारे जाते हैं। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या ८१४ गाँवों में रहती है जिसका घनत्व लगभग २५ व्यक्ति व. कि. मी. आता है। सम्पूर्ण क्षेत्र का लगभग ४० प्रतिशत भाग कृषि के लिए उपलब्ध हो पाया है। इस प्रदेश की कृषि किस्मों में झूमिंग तथा सीढ़ी नुमा खेती सबसे अधिक प्रसिद्ध है। राष्ट्रीय सड़क नं० ३९ इम्फाल तथा कोहिमा दो प्रमुख शहरों को मिलाती हुई इस प्रदेश से गुजरती है। राष्ट्रीय मार्ग नं० ३८ डिबूगढ़ तथा लिखापानी को मिलाती है। कुल मिलाकर इस प्रदेश में रेल, सड़क तथा जल यातायात की भारी कमी है। सिलचर तथा कलकत्ता के बीच नित्य भारतीय वायुयान उड़ान भरते हैं। इम्फाल-कलकत्ता तथा अगरतल्ला-कलकत्ता के बीच मालवाहक जहाज भी उड़ा करते हैं।

१२. उदयपुर-ग्वालियर प्रदेश

उदयपुर-ग्वालियर प्रदेश ७२°.७′ से ७९°.५′ पूर्वी देशान्तरों और २३°.२०′ से २८°.२०′ उत्तरी अक्षांशों के बीच फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल १,९७,८७२ व. कि. मी., जनसंख्या १ करोड़ ६० लाख और ८५ व. कि. मी. घनत्व ९० है। इसमें मुख्य रूप से राजस्थान का पूर्वी, मध्य प्रदेश का उत्तरी-पश्चिमी तथा गुजरात का छोटा-सा हिस्सा सम्मिलित है। एक तरफ गंगा की घाटी और दिल्ली-आगरा द्वार तथा दूसरी तरफ दकन के मध्य मालवा सहित यह केन्द्रीय प्रदेश सदैव से भारत के इतिहास में रणस्थल, पुनर्वास, तथा अनेकानेक भील, राजपूत, तथा जाट जैसे स्वतंत्रता प्रेमियों के, जो सदियों से भारत के इतिहास पर प्रभुत्व स्थापित किए हुए थे, एकत्र होने, शक्तिवर्धन तथा शक्ति संचय करने का स्थान रहा है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—यह प्रदेश भू-वैज्ञानिक दृष्टि से दकन प्रायद्वीप के आद्यकल्प के काल का एक भाग है। इसमें नीस चट्टानों के जटिल तहखाने स्पष्ट पर्णालिकृत तरीके से दिखाई पड़ते हैं। प्रथम पर्वत निर्माण की प्रक्रिया आद्यकल्प अवसाद के ऊपर उठने के साथ प्रारम्भ हुई। इससे न केवल अरावली श्रृंखला का जन्म ही हुआ बल्कि यह पर्वत-माला प्रारम्भ से ही क्षेत्रीय भू-आकृति में प्रधान रही। इस तथ्य के प्रचुर प्रमाण हैं कि प्रारम्भिक पुराजीव काल में इस पर्वत श्रृंखला में नवीनीकरण हुआ है। उस समय इसका आकार-प्रकार बहुत बड़ा था और सम्भवतः दक्षिण में दकन से लेकर उत्तर में हिमालय की सीमा तक फैला हुआ था। अरावली का निर्माण एक समअभिनति में, अरावली तथा दिल्ली तन्त्रों के चट्टानों के भरने तथा नीस और ग्रेनाइट के प्रतर्भेदन से हुआ है। कैम्ब्रियन पूर्व कल्प से लेकर उपाधुनिक समय तक के अनाच्छादन के इतिहास में प्रायः समभूमीकरण, समावलन, अंतर्भेदन तथा विरूपण के कारण अरावली तथा विन्ध्याचल पहाड़ियों के कगार स्थलों में अनेक अवशिष्ट भू-खण्ड प्राप्त होते हैं। भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से यह सम्पूर्ण प्रदेश दो इकाइयों (१) अरावली श्रेणियाँ तथा पहाड़ी क्षेत्र (२) पूर्वी मैदान, में विभाजित किया जा सकता है। अरावली श्रेणियाँ इस प्रदेश का प्रमुख स्थल रूप हैं। सम्पूर्ण प्रदेश के आरपार दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व को फैली हुई हैं। इसकी ऊँचाई तथा चुड़ाई असमान हैं। सम्पूर्ण अरावली तब उन दो पर्वों की तरह दिखाई पड़ता है जिनकी हँसिलें

आपस में बाँध दी गई हों। अजमेर बंधन स्थल का काम करता है।

अरावली श्रेणी तथा संबंधित पहाड़ियों को निम्न प्राकृतिक इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है—

१. उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र २. मध्य अरावली (क) साँभर बेसिन (ख) मेरवाड़ा पहाड़ियाँ ३ मेवाड़ पहाड़ियाँ ४. आबू ब्लाक ५. विन्ध्यन कगार।

उत्तर-पूर्वी मैदान—अवक्षेपित पहाड़ियों के समनत काठियों से परिपूर्ण अलवर, सीकर, सवाई माधोपुर, नीमका-थाना तथा खेतड़ी में पाई जाती हैं। इनकी औसत ऊँचाई ३००–६७० मी. है। पहाड़ियाँ चपटी तथा दो पहाड़ियों के बीच में उपजाऊ घाटियाँ, बड़े-बड़े गाँव तथा परिवहन मार्ग पाये जाते हैं।

मध्य अरावली—बालू की पहाड़ियों, निचले गर्तों तथा आंतरस्थलीय नदियों, से परिपूर्ण है। इन निचले गर्तों में नमक तथा सोडा का अधिक जमाव पाया जाता है। साँभर, नावाँ कुचामन, डेगाना तथा डीडवाना अधिक उल्लेखनीय हैं। मेरवाड़ा पहाड़ियाँ ६२५–८०० मी. ऊँचे, तथा कहीं-कहीं दुर्गम्य हैं।

मेवाड़ पहाड़ियाँ—समुद्रतल से इसकी ऊँचाई १२२५ मी. है। कुछेक चोटियाँ १३०० मी. से भी अधिक ऊँची हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र काठियों तथा गाँठों से परिपूर्ण है। साबरमती, सेई, वकाल तथा सोम प्रसिद्ध नदियाँ हैं।

आबू ब्लाक—अरावली श्रेणी का दक्षिण-पश्चिम भाग इसमें सम्मिलित किया जाता है। प्रक्षेपों के कारण ये पहाड़ियाँ अधिक टूटी फूटी हैं। यहाँ बहु प्रवाह आकृतियाँ भी पाई जाती हैं तथा माउण्ट आबू असमान तथा अनेक प्रक्षेपित चोटियों से घिरा हुआ है।

विन्ध्याचल कगार—इसका निर्माण बालू की चट्टानों से हुआ है। चम्बल तथा सिन्ध बेसिनों, विशेषकर कोटा, शिवपुरी तथा ग्वालियर में मुख्य स्थल रूप देखने को मिलते हैं। पूर्वी मैदान में चम्बल, बनास तथा मध्यमाही के मैदान सम्मिलित किये जाते हैं। भरतपुर, मुरैना तथा ग्वालियर के मैदान ऊपरी गंगा के मैदान के बढ़े हुए भाग प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र में बाढ़ मैदान, नदी कगार, दोआब तथा तंग घाटियाँ, अवनालिका निर्माण, पुनर्नवीनीकरण के उदाहरण पाये जाते हैं। नदियों के आधार पर इसको पुनः चम्बल, बनास तथा माही के मैदानों में विभाजित किया जा सकता है। अरावली बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर के प्रवाह तंत्रों को अलग करता है। इस प्रदेश में चम्बलतंत्र यमुना से पुराना है। तथा एक महान् सीमा निर्धारक भ्रंश की सहायता से चम्बल अपवाह तंत्र का विकास हुआ है। यह नदी गहरे गार्ज तथा तंग प्रदेश में से प्रवाहित होती है। लूनी, सेई, बकाल, इयमाती, बैसाली, संख, पारवती आदि अन्य अनेक नदियाँ हैं जिनमें केवल बरसात में ही जीवन संचार होता है।

जलवायु, वनस्पति एवं मिट्टियाँ—यह सम्पूर्ण प्रदेश पूर्व में आर्द्र और पश्चिम में शुष्क जलवायु के बीच स्थित है। इसलिए यह एक संक्रामी क्षेत्र है। कोपेन के अनुसार यह (Bshw) गर्म, अर्धशुष्क तथा स्टेप्स किस्म की जलवायु में आता है। यहाँ वार्षिक वर्षा ४८ से ८५ से. मी. तक होती है। वानस्पतिक आच्छादन कम तथा मिट्टी नग्न है। जनवरी का औसत तापमान ११ से. ग्रे. तथा १६ से. ग्रे. के बीच रहता है। जनवरी सबसे ठंडा,

तथा कभी-कभी शीत लहरी भी आती हैं। वर्षा की मात्रा में मौसमी तथा क्षेत्रीय अंतर पाये जाते हैं। इस प्रदेश में मिश्रित-पर्णपाती और उपोष्ण सदाबहार से लेकर बिखरी हुई वनस्पतियाँ तक पाई जाती हैं। वृक्षों तथा झाड़ियों आदि की किस्में तथा सघनता वर्षानुसार निर्धारित होती हैं। अधिकांश पहाड़ियाँ नग्न एवं वनस्पति विहीन हैं। यहाँ अनवरत कटाई तथा चारागाही के कारण प्राकृतिक वनस्पति का सबसे अधिक विनाश हुआ है। यहाँ की मिट्टियों में जलोढ़ (भरतपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, मुरैना तथा अलवर) मध्यम काली (कोटा, बूंदी, शिवपुरी, ग्वालियर) मिश्रित लाल एवं काली (भीलवाड़ा, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ तथा डूंगरपुर) भूरी मिट्टी (झुन्झुनू, सीकर तथा नागौर जिलों में) पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त लाल, पीली तथा लोहमय लाल मिट्टियाँ भी बिखरे हुए भू-भागों में पाई जाती हैं।

खनिज पदार्थ—राजस्थान के खनिज उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत भाग अरावली क्षेत्र में ही पाया जाता है। इनमें सीसा, जिंक, चाँदी, लौह अयस्क, ताँबा, अभ्रक, इमारती पत्थर, बेरील, चूना पत्थर, मैंगनीज, पन्ना तथा एस्बेस्टस अधिक उल्लेखनीय हैं। जिनमें कुछेक के वितरण को नीचे दिखाया गया है।

खनिज का नाम	वितरण क्षेत्र
लौह अयस्क	मोरिजा बनोल, निमला, रायसोलों, डबला, सिंघाना तथा नीम-का-थाना। धातु की मात्रा ६५ प्रतिशत।
सीसा जिंक	उदयपुर, जावर, मोचियामगरा, बाँसवाड़ा, बाड़िला, अलवर, सवाई माधोपुर। धातु अंश २७ प्रतिशत।
बेरील—	आमेर, कुम्भलगढ़, अजमेर, भीलवाड़ा, दौसा, जीलोली तथा टोंक।
अभ्रक	भीलवाड़ा, बागौर, गंगापुर, मानकिया, बेमाली, टोंक।
एस्बेस्टस	उदयपुर, खेर्वाड़ा, ऋषभदेव, कौन्थल, आमेट तथा सरूपगंज।
पन्ना	मावली, मारवाड़ जंक्शनों के बीच
साबुन बनाने का पत्थर	उदयपुर, भीलवाड़ा, जयपुर
चूने का पत्थर	निंबाहेड़ा, चित्तौड़गढ़, किशनगढ़, नन्दवास, कोटा, बूंदी तथा ग्वालियर।
संगमरमर तथा अन्य इमारती पत्थर	नागौर, रायलो श्रेणियाँ, अलवर, अजबगढ़, मतिया की भाँकरी, डूंगरी आदि।

जनसंख्या—इस प्रदेश के ९३७७१ वर्ग कि. मी. क्षेत्र में ९४६०९५६ से अधिक लोग निवास करते हैं। इस प्रकार यहाँ की जनसंख्या का घनत्व १०१ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। जनसंख्या का वितरण समतल, उपजाऊ तथा अपेक्षाकृत सिंचाई की सुविधाओं वाले

क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। यहाँ की ४३ प्रतिशत जनसंख्या प्रदेश के २६ प्रतिशत भू-भाग पर निवास करती है। आबू ब्लाक में घनत्व (६८) मध्यमाही (८२) बनास बेसिन (८६) मेवाड़ पहाड़ियों में (८१) व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। अरावली पहाड़ियों के कुछेक भागों में, जहाँ उपजाऊ गहरी चिकनी मिट्टी तथा सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त हैं, जनसंख्या का घनत्व १३० व्यक्ति प्र. व. कि. मी. तक भी पाया जाता है। साँभर बेसिन का घनत्व केवल ८१ है। इस प्रदेश की १६ प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है। प्रमुख शहरों में जयपुर (६३६७६८), अजमेर (२६४२९१), उदयपुर (१६१२७८), अलवर (१००३७८), ब्यावर (६६११४), सीकर (७०६८७), भीलवाड़ा (८२१५५) अधिक उल्लेखनीय हैं। *जयपुर तथा अजमेर रीजनों में शहरों की जनसंख्या सबसे अधिक है।* अरावली प्रदेश के अधिकांश शहरों का विकास प्वाइन्ट-डी-अप्पुई (*Point-de-Appui*) पर हुआ है। जो राजा-महाराजाओं की राजधानियों के रूप में विकसित हुए हैं। यहाँ के अधिकांश नगर मध्यकालीन हैं। अधिकांश नगरों के चारों तरफ दीवारें बनाई गई हैं तथा सुरक्षा के लिए नहरों, झीलों, तालाबों, किलों, महलों, आदि की भी आड ली गई है।

उपर्युक्त आँकड़ों को देखकर कहा जा सकता है कि यहाँ की अधिकतर जनसंख्या ग्रामों में रहती है। इस प्रदेश में १६,००० गाँव हैं जहाँ पर लगभग ८३ प्रतिशत जनसंख्या पायी जाती है। गाँवों का आकार कुछ झोपड़ों की बिखरी हुई छोटी-छोटी बस्तियों से लेकर १००० परिवार को सघन बस्तियों तक है। गाँवों के वितरण पर यहाँ के भौतिक, सांस्कृतिक कारकों जैसे सिंचाई की सुविधाओं, कृषि जनित आदतें, भूमि आकार, खेतों का वितरण, सांस्कृतिक बंधन, तथा कृषक के परिश्रमी स्वभाव का सबसे अधिक प्रभाव है। यहाँ के गाँव सघन, विसर्जित, पल्लीदार, पुन्जीयपल्ली, तथा अर्ध-पुन्जीय हैं।

कृषि—सम्पूर्ण क्षेत्र के लगभग ४२ प्रतिशत भू-भाग पर खेती की जाती है। ३.५ *प्रतिशत भूमि पर वन तथा अधिकांश भूमि पर कृषि योग्य बेकार भूमि है जिसके वितरण* को निम्न तालिका में दिखाया गया है—

भूमि उपयोग प्रतिरूप १९६०-६१

तालिका १७२

भूमि उपयोग के प्रकार	कुल क्षेत्रफल (000) (एकड़)	प्रतिशत
वन	१०,२२	३.५
कृषि के अयोग्य एवं बंजर भूमि	५९६१	२०.५
कृषि योग्य भूमि (परती के अलावा)	६२३२	२१.२
परती भूमि	३७५१	१२.८
कुल बोई गई भूमि	१२,३३२	४२.१
योगफल	२६,३२८	१००.०

कुल बोई गई भूमि के ७१ प्रतिशत पर खाद्यान्न (बाजरा, ज्वार, मक्का, गेहूँ, जौ तथा चावल) २०.५ प्रतिशत पर दालें, ५.६ प्रतिशत पर तिलहन तथा २.८ प्रतिशत पर विविध फसलें जैसे गन्ना, तम्बाकू, कपास तथा आलू आदि पैदा किए जाते हैं।

औद्योगिक अर्थ व्यवस्था—इस प्रदेश मे औद्योगीकरण एक नवीन प्रघटना है। स्वतंत्रता के पूर्व सीमित तकनीकी ज्ञान, परिवहन की असुविधा, स्थानीय प्रशासन की अंतर्मुखी नीति के कारण उपलब्ध साधनों का भी उपयोग आधुनिक उद्योगो के प्रसार में नहीं किया जा सका था। औद्योगिक दृष्टि से इस प्रदेश का उत्तरी भाग (जयपुर अजमेर) दक्षिणी भाग की तुलना में अधिक विकसित है। इस सम्पूर्ण प्रदेश मे सस्थापित प्रधान उद्योग-धन्धे कृषि कच्चे माल, खनिजों, वनों तथा पशुओं पर आधारित हैं। वितरण के आधार पर कम से कम निम्न चार क्षेत्रों का अंकन किया जा सकता है। जहाँ कुछ न कुछ उद्योगों का जमाव है।

क्षेत्र का नाम	सम्मिलित भाग	उद्योग के प्रकार
(१) खेतड़ी जयपुर क्षेत्र	नीम-का-थाना, श्रीमाधोपुर, जयपुर।	इंजीनियरिंग, विद्युत्, ताम्रप्रक्षालन (स्मेल्टर) सीमेन्ट। औद्योगिक श्रमिकों की प्रतिशत १८
(२) मकराना ब्यावर क्षेत्र	अजमेर, किशनगढ़, ब्यावर, फुलेरा। परवतसर	इमारती पत्थर, नमक, सोडा, सूती-वस्त्र, रेल वर्कशाप तथा धातु उद्योग श्रमिक प्रतिशत १८।
(३) भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़	भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़	सूतीवस्त्र, वनस्पति तेल, अभ्रक, लकड़ी चीरना, दाल बनाना, सीमेन्ट, श्रमिक प्रतिशत २२।
(४) उदयपुर क्षेत्र	उदयपुर तथा आसपास का क्षेत्र	जिंक स्मेल्टर कारखाना, सीमेंट, सूती धागा, शराब, रासायनिक पदार्थ, दवाएँ, खिलौने बनाने के उद्योग। श्रमिक प्रतिशत १६।

परिवहन एवं संचार—इस प्रदेश में राजस्थान की (१०५० कि. मी.) या १२ प्रतिशत रेल एव (४००६० कि. मी.) १६ प्रतिशत सड़क मार्ग हैं। वर्तमान नगरों, औद्योगिक विकास एवं बढ़ती हुई पर्यटक सस्थाओं से इस प्रदेश के परिवहन एवं संचार विकास को भारी सहायता मिली है। इस प्रदेश के दो प्रमुख नगर—जयपुर तथा उदयपुर हवाई यातायात की सुविधा से दिल्ली, आगरा, अहमदाबाद तथा बम्बई से जुड़े हुए हैं। इस प्रदेश मे परस्पर अंतसबंधित यातायात प्रणाली का अभाव है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि यहाँ उत्पादन एवं वितरण केन्द्रों के बीच यातायात की सुविधा कम विकसित है। यहाँ की ४५ प्रतिशत सड़कें पक्की हैं। सड़कों की लम्बाई प्रति एक हजार व्यक्ति पर ४.२ कि. मी. है। यह तथ्य इस बात का स्पष्ट प्रतीक है कि सुगम परिवहन व्यवस्था के लिए

सड़कें बहुत कम हैं। इसके अलावा सड़क-जल व्यवस्था अनेक कमियों से ग्रस्त हैं। उदाहरण के लिए सड़कों पर पुलों, कठोर एवं लगातार सड़कों का अभाव, तथा पुनर्नवीनीकरण अथवा पुनर्निर्माण आदि की समुचित व्यवस्था नहीं है। राष्ट्रीय राजमार्ग नं० ८ (१४३५ कि. मी.) सामान एवं यात्री परिवहन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अन्य राजमार्गों एवं पक्की सड़कों में आगरा-जयपुर-बीकानेर नं० ११, अजमेर-कोटा (१९२ कि. मी.), अजमेर-भीलवाड़ा (१३३ कि. मी.), भीलवाड़ा-उदयपुर (२०८ कि. मी.), भीलवाड़ा-चित्तौड़गढ़ (५६ कि. मी.), उदयपुर-चित्तौड़गढ़ (११५ कि. मी.), विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ एक कि. मी. रेल प्रति ५१ वर्ग कि. मी. की क्षेत्र मे है। दिल्ली-अहमदाबाद रेल मार्ग (अलवर, बाँदीकुई, दौसा, जयपुर, फुलेरा, अजमेर, आबूरोड़ होती हुई) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस पर सबसे अधिक माल एव यात्री ढोये जाते हैं। अजमेर-खण्डवा, दूसरी महत्त्वपूर्ण रेल लाइन है।

१३. मालवा प्रदेश

इस प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल १५०,००० वर्ग कि. मी. तथा २५°–१०′ से २७°–७०′ उत्तरी अक्षांशों एवं ७५°–४५′ से ७९°.१४′ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला हुआ है। यहाँ की कुल जनसंख्या १२ मिलियन है। यह प्रदेश भारतीय प्रायद्वीप के सबसे उत्तरी भाग मे स्थित है। इसका निर्माण बुन्देलखण्ड नीस, बसाल्ट तथा गोण्डवाना शैलों एवं लावा से हुआ है। भू-आकृति की दृष्टि से इस सम्पूर्ण प्रदेश को निम्न चार विभागों में बाँटा जा सकता है—

उप विभाग का नाम	विस्तार एवं नदी तंत्र
(१) मालवा पठार	भोपाल-गुना, विन्ध्य पहाड़ियों तथा मच्छलय घाट के बीच फैली है। इसकी सामान्य ऊँचाई ५००–६०० मीटर है। माही, चम्बल, काली सिन्ध, पारबती तथा बेतवा नदियों का ऊपरी भाग इसमे प्रवाहित होता है।
(२) पश्चिमी विन्ध्यन पहाड़ियाँ	यहाँ तीव्र ढाल है। ६५० कि. मी. लम्बा तथा विभिन्न ५०० से ६०० मीटर तक की ऊँचाई में स्थित है। जानपा, सिंगार चोरी गोमानपुर प्रधान ऊँची चोटियाँ हैं।
(३) पश्चिमी नर्मदा ट्रफ	उदयपुरा से कुक्षी उपआऊ, क्षैतिज ढाल, परन्तु सान्तर, उदयपुरा से नीचे हंडिया तक होशंगाबाद मैदान। हंडिया के नीचे क्वार्टजाइट की पहाड़ियाँ फैली हैं।
(४) पश्चिमी सतपुड़ा	नर्मदा तथा ताप्ती जल विभाजक। पश्चिमी भाग का निर्माण डकन ट्रैप से हुआ है तथा २०–४०

१	२
	कि. मी. चौड़ी असमान तथा सान्तर, पहाड़ियाँ हैं। पूर्वी भाग का निर्माण तालचीर, बराकर तथा विजोरी पुगों में हुआ है जिनमें कोयला धारक चट्टानें पाई जाती हैं। इस प्रदेश में पंचमढ़ी सबसे ऊँचा स्थान है।

प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश में अरबसागर तथा बंगाल की खाड़ी में प्रवाहित होने वाली नदियाँ स्थित हैं। नर्मदा, ताप्ती, माही, चम्बल तथा बेतवा नदियाँ मुख्य हैं। प्रवाहतंत्र एवं जल ससाधन के अध्याय में इनका वर्णन भली भाँति किया जा चुका है।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति—यहाँ की जलवायु उष्ण मानसूनी किस्म की एवं स्वास्थ्यवर्द्धक है। रातें शीतल एवं दिन गर्म होते हैं। यहाँ पर विन्ध्यन तथा सतपुड़ा के पूर्व-पश्चिम मे समानान्तर होने के कारण अरब सागर की मानसून इन्हीं के समानान्तर प्रवाहित होती है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से तीन शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुएँ पाई जाती हैं। इनका विस्तार भारतीय ऋतुओं की भाँति देखा जाता है जिसका वर्णन जलवायु के अध्याय में किया जा चुका है। ग्रीष्म महीनों मे मानसून हवाएँ अधिक तेज एवं दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की तरफ प्रवाहित होती हैं। यहाँ की औसत वर्षा ११० से. मी. परन्तु न्यूनतम एवं अधिकतम ८ से. मी. से २१० से. मी. तक है। होशंगाबाद (११५), सागर (११७), तथा भोपाल में १२६ से. मी. वर्षा अंकित की जाती है। जुलाई से सितम्बर तक सबसे अधिक वर्षा तथा पूरे वर्ष का ६० प्रतिशत होती है। लगभग सम्पूर्ण प्रदेश मे काली मिट्टी पाई जाती है। इसमें चूने के कंकड़ तथा कैल्सीयम कार्बोनेट के टुकड़े सम्मिलित पाये जाते हैं। ग्रीष्म में दरारें पड़ जाती है। फास्फेट, नाइट्रोजन तथा वनस्पति अंशों की कमी है। इस प्रदेश की मिट्टियाँ (१) गहरी काली (२) मध्यम काली (३) छिछली काली (४) लाल काली मिश्रित (५) लाल पीली मिश्रित (६) जलोढ़ आदि छः किस्मों में बाँटी जा सकती हैं। कुल मिलाकर देश की काली मिट्टी के सभी गुण इनमें पाये जाते हैं।

यहाँ सवन्ना किस्म की वनस्पति पाई जाती है। इसके अतिरिक्त नम, पतझड़ वाली किस्म के वन दक्षिणी भाग में फैले हुए हैं। श्री एच. जी. चैम्पीयन के अनुसार उत्तरी भाग मे शुष्क पतझड़ वाले वन पाये जाते है जिनको स्थिति के अनुसार पहाड़ी, नदीय तथा पठारी वनों मे बाँटा जा सकता है। इनमे सलई, खजूर, महुआ, जामुन, हर्रे, टीक तथा बाँस मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इनको आर्थिक उपयोग में लाने के लिए वैज्ञानिक ढग से प्रयास किए जा रहे हैं।

खनिज संसाधन—इस प्रदेश में अनेक प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। परन्तु कोयला, मैंगनीज तथा अभ्रक इनमे विशेष उल्लेखनीय है। तवा घाटी तथा बेतूल क्षेत्र कोयला;

धर, झाबुवा, बाँसवाड़ा, तथा झालावाड़ में लोह मयस्क तथा झाबुवा और बाँसवाड़ा में मैंगनीज की खानें अधिक पाई जाती हैं। इस प्रदेश के खनिज वितरण को चित्र ७२ में भली भाँति देखा जा सकता है। खनिज सम्पत्ति के साथ-साथ जल संसाधन की दृष्टि से भी यह प्रदेश बड़ा धनी है। नर्मदा, चम्बल, माही तथा काली सिन्ध नदियों के उपयोग के संबंध में पाठक जल संसाधन अध्याय देख सकते हैं। नदियाँ इस प्रदेश की प्राकृतिक संपदा है।

जनसंख्या एवं मानव बसाव—यह प्रदेश कम घना (८१ प्र. व. कि. मी.) बसा हुआ है। जनसंख्या का वितरण असमान है। होशंगाबाद, रायपुर, उज्जैन तथा रतलाम आदि क्षेत्र जहाँ अधिक घने बसे हैं वहीं विन्ध्यन तीव्र ढाल एवं सतपुड़ा का वनाच्छादित भाग जनविहीन हैं। इन्दौर, भोपाल तथा रतलाम एवं उज्जैन क्षेत्रों का घनत्व क्रमशः ८४, ९७ तथा १०८ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। यहाँ की ८१ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है तथा २७,६५० गाँवों में निवास करती है। जल प्राप्ति के स्थानों पर सहत तथा पठारी क्षेत्रों में अर्द्ध-संहत बस्तियाँ पाई जाती हैं। आदिवासियों की बस्तियाँ ऐसे क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहाँ पहुँचना बड़ा कठिन होता है। इस प्रदेश के अधिकांश शहरों का प्रादुर्भाव गाँवों से हुआ है। अधिकांश शहर नदियों के किनारे अथवा प्राचीन राजपथों पर स्थित हैं। शहरों का विकास विगत दो दशकों में अधिक हुआ है। उज्जैन (२०८,५६१), इन्दौर (५६०,९३६), खण्डवा (८५४०३), भोपाल (३०४५५०), सेहोर (३६,१३६) इस प्रदेश के कतिपय प्रमुख शहर हैं। इस प्रदेश के लोगों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है। इस प्रदेश की लगभग ६६ प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। ज्वार इस प्रदेश की सबसे प्रमुख फसल है। ज्वार के ४० प्रतिशत के पश्चात् गेहूँ ३१ प्रतिशत तथा कपास १४ प्रतिशत के स्थान आते हैं।

चित्र ७२
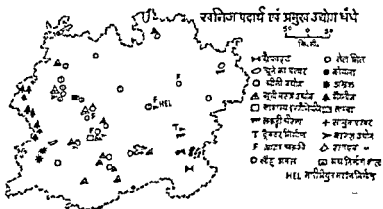
इस प्रदेश में सूती वस्त्र व्यवसाय, चीनी तथा कृषि पर आधारित कतिपय उद्योगों का ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के रूप में समुचित विकास हो पाया है। उज्जैन, इन्दौर, भोपाल

तथा खण्डवा में नव निर्मित औद्योगिक प्रतिष्ठानों को हाल ही में चम्बल परियोजना से जल-विद्युत् मिलने के कारण उद्योगों की अधिक उन्नति सम्भव हो पाई है। चम्बल परियोजना के अलावा रतलाम, उज्जैन तथा इन्दौर आदि शहरों में ताप-विद्युत् घरों की भी स्थापना की गई है। इटारसी, झालावाड़ तथा मन्दसौर मे वनों पर आधारित उद्योगों को विकसित किया जा रहा है जिनमे कागज, कार्डबोर्ड तथा सिल्क उद्योग अधिक उल्लेखनीय हैं। भोपाल तथा उज्जैन मे भारी इंजीनियरिंग एवं विद्युत् उपकरणों से संबंधित उद्योगों की स्थापना की गई है। इस प्रदेश के अन्य उद्योगो में औषधि, साबुन, रसायन तथा दियासलाई निर्माण विशेष उल्लेखनीय हैं।

परिवहन—दिल्ली-मद्रास, दिल्ली-बम्बई तथा कलकत्ता-बम्बई को जोड़ने वाले अधिकांश परिवहन मार्ग इस प्रदेश से गुजरते हैं। प्रमुख रेल लाइन (बम्बई-कलकत्ता) जो इलाहाबाद होती हुई बनाई गई है इस प्रदेश में से होकर गुजरती है। दिल्ली-मथुरा-बड़ोदा-बम्बई प्रमुख रेल लाइन भी इस प्रदेश से गुजरती है। इस प्रदेश के प्रमुख नगरो से होकर न केवल बड़ी लाइन का रेल मार्ग ही गुजरता है बल्कि छोटी लाइनें भी अनेक शहरों को स्पर्श करती हैं। इस प्रदेश मे राष्ट्रीय सड़क मार्ग नं० ३,२६ तथा १२ की सेवाएँ भी उपलब्ध हैं। कपास, खाद्य सामग्री तथा विभिन्न प्रकार के पशु इस प्रदेश के रेल एवं सड़क मार्गों से ढोये जाते हैं। रेल एवं सड़क मार्गों के वितरण एवं निर्माण पर प्रदेश की स्थलाकृति का सबसे अधिक प्रभाव देखा जाता है। अधिकाश परिवहन मार्ग सतपुडा एवं नर्मदा घाटी के समानान्तर बनाये गये हैं। इस प्रदेश मे १०५२६ कि. मी. पक्की तथा ५५२८ कि. मी. कच्ची सड़कें हैं जिनका घनत्व क्रमश: ७ एवं ४ कि. मी. प्रति १०० व. कि. मी. है।

इस प्रदेश को पुन: अनेक उप-विभागो में विभाजित किया जा सकता है।

१४. बुन्देलखण्ड प्रदेश

उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम मे यमुना, दक्षिण में विन्ध्यन तीव्र ढाल, और दक्षिण-पूर्व में पन्ना-अजयगढ़ पहाड़ियों से घिरा हुआ यह प्रदेश २४°.०′–२६°.३०′ उत्तरी अक्षांशों और ७८°.१०′–८१°.३०′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य ५४,५६० व. कि. मी. के क्षेत्र मे फैला हुआ है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—भौमिकी दृष्टि से इसको चार उप-विभागो—(१) आर्कीयन तंत्र (२) संक्रमण तंत्र (३) विन्ध्यन तंत्र तथा (४) आधुनिक जमाव, में बांटा जा सकता है। प्रो० स्पेट ने इस सम्पूर्ण प्रदेश की भू-विन्यास को जीर्ण स्थलाकृति (Senile Topography) की संज्ञा दी है। इस प्रदेश के उत्तर का एक तिहाई भाग एक दिष्ट समतल है। शेष भाग विन्ध्याचल का पठार तीन क्रमश. तीव्र ढालो के रूप में ऊपर उठा हुआ है जिसकी सीमाएँ क्रमश: ३००, ३७५ तथा ४५० मीटर की समोच्च रेखाएँ बनाती हैं। विन्ध्याचल पहाड़ियों की औसत ऊँचाई ६०० मी. से भी अधिक है और इस पठार की चौड़ाई २० कि. मी तक है। भौमिकी दृष्टि से ग्वालियर, बिजावर तथा विन्ध्याचल बालू की चट्टानें इसमें सम्मिलित हैं। पश्चिमी भाग मे बिखरी हुई एवं सान्तर पहाड़ियाँ हैं। यमुना प्रवाहतंत्र इस प्रदेश मे प्रवाहित है। इस प्रदेश की नदियों मे बेतवा, केन, तथा

दसन प्रमुख हैं। अधिकांश नदियाँ मौसमी हैं एवं बरसात में ही जलधारण करती हैं। इन नदियों पर पाहुज, बरवा सागर, बरवार, सीप्रोरी, पछवारा भीलों आदि का निर्माण करके इस प्रदेश के जल संसाधन को विकसित किया जा रहा है।

जलवायु, वनस्पति एवं मिट्टी—भारत के लगभग मध्य में स्थित होने के कारण इस प्रदेश में पूर्व की समुद्री एवं पश्चिम की उष्ण महाद्वीपीय शुष्क जलवायु का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है। यहाँ का औसत वार्षिक तापमान २५° से. ग्रे. तथा वर्षा ७५ से. मी. है। ९० प्रतिशत वर्षा मानसून पद्धति से जून से सितम्बर के महीनों में होती है। जाड़े में कभी-कभी पछुवा अवदाबों से भी वर्षा हो जाती है। इस प्रदेश की लगभग ७ प्रतिशत भूमि वनाच्छादित है जिस पर छोटी-छोटी झाड़ियाँ एवं घासें पाई जाती हैं। छोटे-छोटे वृक्षों में टीक, ढाक, सेमल, सलई तथा बबूल, विशेष उल्लेखनीय हैं। खैर (लाख उत्पादक वृक्ष) तथा तेन्दु पत्ता (बीड़ी पत्ती) सब जगह पाये जाते हैं। घासों में काँस की प्रधानता है जो आसानी से नष्ट नहीं होता है। पशु चारण, घास उत्पादन एवं वनों पर आधारित उद्योग-धन्धों के लिए इस प्रदेश के वन बहुत ही उपयोगी हैं। ऊँचाई को ध्यान में रखकर यहाँ की मिट्टियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) ऊँचे प्रदेशों की मिट्टी मुख्य रूप से चट्टानी है (२) निचले भागों में काली, लाल एवं पीली मिट्टियाँ पाई जाती हैं (३) खड्डों (Ravines) में पायी जाने वाली मिट्टियाँ। स्थानीय विशेषताओं एवं अंतरों (गहराई, रंग, वनस्पति अंश, पी-एच मूल्यों तथा उपयोगिता) को ध्यान में रख कर इस प्रदेश की मिट्टियों को और भी छोटे छोटे वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

ऊपरी विन्ध्यन पहाड़ियों और रींवा के बीच एवं कैमूर बालू की चट्टानों में सबसे अधिक पन्ना की खानें स्थित हैं। इस प्रदेश में ४.६२ मिलियन कैरेट पन्ना होने का अनुमान लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रेनाइट, बालू के पत्थर एवं शेल आदि इमारती पत्थर अधिकता से पाये जाते हैं। ग्वालियर तथा बिजावर में लौह अयस्क की रिक्त खानें लौह भण्डार की प्रतीक हैं।

जनसंख्या बसाव एवं उद्योग-धन्धे—यहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या ५.३ मिलियन से अधिक है। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में जहाँ कृषि योग्य भूमि प्राप्त होती है जनसंख्या का घनत्व अधिक है। घने बसे हुए उप-प्रदेशों में जालौन, हमीरपुर तथा बान्दा में विकसित सिंचाई संसाधनों तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपयोग के कारण अच्छी खेती की जाने लगी है। इस प्रदेश के ८० प्रतिशत से अधिक लोग लगभग ८३,००० गाँवों में रहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के अनुसार इन गाँवों का आकार प्रकार बदलता रहता है। झोपड़ियों से लेकर आधुनिकतम किस्म के मकानों एवं झोपड़ों के समूह से लेकर सहत-बस्तियों तक के गाँव देखे जाते हैं। सबसे अधिक शहरी जनसंख्या (२४%), झाँसी में पाई जाती है। इसके पश्चात् दतिया (३७४३६), जालौन (१६२७४), छत्तरपुर (३२२७१) तथा टीकमगढ़ (२७६०५) के स्थान हैं। कुल मिलाकर इस प्रदेश में ३० महत्वपूर्ण शहर हैं जिनमें २० उत्तर प्रदेश तथा १० मध्य प्रदेश में स्थित हैं। झाँसी की जनसंख्या सन् १८८१ में केवल २४७३ थी अब बढ़कर ११८१३५ हो गई है। यह प्रदेश का सबसे बड़ा शहर है। प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक प्रतिकूल स्थितियों के कारण यह प्रदेश भारत के

अविकसित भागों में से एक है। यहाँ ४६ प्रतिशत भू-भाग पर खेती की जाती है। मानसून की अनिश्चितता के कारण इस प्रदेश में अनेकानेक किस्म की फसलें पैदा की जाती हैं। बोई गई भूमि के ६२ प्रतिशत पर खाद्यान्न, २७ प्रतिशत पर दालें तथा शेष पर फल तरकारियाँ आदि पैदा किये जाते हैं। खाद्यान्नों में ज्वार, बाजरा, जौ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश में खरीफ तथा रबी की दो मुख्य फसलें उगाई जाती हैं। कृषि कार्यों, सिंचाई संसाधनों, एवं फसल पद्धतियों में स्थानीय अंतर देखे जाते हैं। कृषि के साथ-साथ इस प्रदेश में औद्योगिक विकास की गति भी तेज की जा रही है। इस प्रदेश में बड़े पैमाने पर चलाये जा रहे उद्योगों की भारी कमी है परन्तु कुटीर उद्योगों का प्रचलन एवं विकास अधिक सराहनीय है। इन कुटीर उद्योगों में लकड़ी चीरना, लकड़ी के कार्य, कोयला बनाना, हैण्डलूम सूती वस्त्र, चमड़े का कार्य, आटा चक्की, तेल निकालना आदि अधिक उल्लेखनीय हैं।

परिवहन संसाधन—इस प्रदेश की विषम स्थलाकृति के कारण यातायात एवं परिवहन समाधनों का संतोषजनक विकास नहीं हो पाया है। इस प्रदेश की सड़कों की पूरी लम्बाई ४,८०० कि. मी. है जिसमें ६० प्रतिशत प्रत्येक मौसम के अनुकूल एवं शेष मौसमी हैं। प्रति वर्ग कि. मी. क्षेत्र में केवल ०.२१ (उत्तर प्रदेश) तथा ०.२७ कि. मी. (मध्य प्रदेश) सड़कें हैं। इसके प्रतिकूल मध्य प्रदेश के हिस्से में रेल मार्गों की अत्यधिक कमी है। इसलिए प्रमुख यातायात एवं परिवहन कार्य सड़कों की सहायता से किये जाते हैं। इस प्रदेश को पुन. अनेक उप प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है।

१५. विन्ध्याचल बघेलखण्ड प्रदेश

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का क्षेत्रफल १४०,१७२ व. कि. मी. तथा जनसंख्या ६.८६ मिलियन से अधिक है तथा २१°.२६'–२५°.११' उत्तरी अक्षांशों एवं ७८° १५'–८४°.१५' पूर्वी देशान्तरों के बीच प्रायद्वीप के अग्र-भूमि के मध्य में स्थित है। इसमे मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के हिस्से सम्मिलित हैं। प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक कारकों ने मिलकर इस प्रदेश को जन्म दिया है। यह सारा प्रदेश कटकों, पहाड़ियों, घाटियों, एवं नग्न चट्टानों में छिपा हुई, जलोढ़ बेसिनों से परिपूर्ण है। प्राकृतिक अवयवों में पहाड़ी घाटियाँ, तीव्र ढाल तथा विन्ध्यन बालू की चट्टानें असमान स्थल प्रधान हैं। यहाँ की ऊँचाई १५० से १२०० मीटरों के बीच है। इस प्रदेश का दक्षिणी तीव्र ढाल एक दीवाल की भाँति खड़ा है। उत्तर तथा दक्षिण में स्थित दो तीव्र ढालों के बीच रीवाँ, मिर्जापुर तथा रतना के पठार स्थित हैं। इस प्रदेश का दक्षिणी ढाल महानदी तथा गोदावरी की सहायक नदियों के उद्गम का कार्य करता है जो मैकाल तथा आसपास के भू-भाग से निकलकर दक्षिण में प्रवाहित होती हैं। नदियों का वितरण बड़ा असमान है। परन्तु प्रवाहतंत्र मुख्य रूप से वृक्षाकार है।

जलवायु, वनस्पति एवं मिट्टी—यहाँ की जलवायु मानसूनी किस्म की है सामान्य रूप से यहाँ गर्म-शुष्क ग्रीष्म (मार्च-मई), वर्षा (जून-सितम्बर), संक्रमण (अक्टूबर-नवम्बर) तथा शीत ऋतुएं (दिसम्बर-जनवरी) अनुभव की जाती हैं। जनवरी सबसे ठंडा औसत

एवं न्यूनतम तापमान (शीत लहर के दिनों को छोड़कर) क्रमशः १५° से. ग्रे. तथा ५° से. ग्रे. रहते हैं। जून में अधिकतम तापमान (४०° से. ग्रे.) अंकित किया जाता है। जून के मध्य से वर्षा होने तथा तापमान के कम होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। पूरे देश की ही भाँति इस प्रदेश में भी वर्षा का जमाव, वितरण, मात्रा एवं आचरण बदलता रहता है। मौसमी वर्षा एवं मिट्टी की विविधता के कारण वनस्पति किस्मों में अप्रत्याशित वृद्धि देखी जाती है। यहाँ की वनस्पति में घास से लेकर मानसूनी पतझड़ वृक्ष तक पाये जाते हैं। व्यापारिक लकड़ियों में टीक, साल, तेन्दू, सेमल, धो तथा खैर आदि अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश की अधिकांश मिट्टियाँ 'इन सीटू' (In Situ) किस्म की हैं। परन्तु नर्मदा-सोन, टूफ, टोन्स, सिंगरौली, दुद्धी, तथा उनकी बेसिनों में जलोढ़ मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं। इनके अलावा कपास उत्पादक काली, लाल, भूरी, जंगली, काली, लाल तथा पीली मिट्टियों का मिश्रण, कनकारयस, तथा लाल भूरी मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं।

छिंदवाड़ा, नर्मदा घाटी तथा आसपास के क्षेत्रों में कपास वाली काली मिट्टी; मध्य सेवनी, मध्य बालाघाट तथा छिन्दवाड़ा में लाल भूरी जंगली; उत्तर-पश्चिम नरसिंहपुर, ऊपरी टोन्स में दुमट मिश्रित; शहडोल, छिन्दवाड़ा, सिद्धी तथा दुद्धी में काली लाल पीली मिश्रित; बेलन घाटी में करैल मिट्टी तथा शहडोल में लाल भूरी मिट्टियाँ भी अपवाद नहीं हैं।

खनिज संसाधन—इस प्रदेश की खनिज सम्पत्ति में कोयला, चूना का पत्थर, बाक्साइट, कुरविन्द (कोरून्डम), डोलोमाइट तथा इमारती पत्थर जैसे संगमरमर, स्लेट तथा बालू के पत्थर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कोयला सबसे प्रसिद्ध है। इस प्रदेश में गोंडवाना की कोयले की खानें, सिंगरौली, कोरार, उमरिया, सरगुजा, मिर्जापुर, शहडोल में पाई जाती है। यहाँ का कोयला घटिया किस्म का होता है जिसमें राख तथा नमी की मात्रा अधिक होती है। इसलिए इसका उपयोग ताप-बिजली उत्पादन हेतु अधिक किया जाता है। डाला सीमेन्ट फैक्ट्री तथा ओबरा ताप बिजलीघर, इसी प्रकार के कोयले के उत्पादन पर निर्भर हैं। महत्त्व की दृष्टि से चूने का पत्थर का स्थान दूसरा है। रोहतास, मुरवारा बेसिन, रीवा, सतना और मिर्जापुर जिलों में खूब पाया जाता है। सतना, कटनी तथा उमरिया की सीमेन्ट फैक्ट्रियों में इसका प्रयोग होता है। बालाघाट-छिन्दवाड़ा क्षेत्र में मैंगनीज अच्छी मात्रा में पाया जाता है। इनके अलावा हीरा, कीमती पत्थर, जिप्सम, अभ्रक, तांबा आदि खनिज के मिलने की सम्भावनाएँ निरन्तर खोज के साथ बढ़ती जा रही हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव एवं उद्योग—यह भारत का कम घना बसा प्रदेश है। यहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या ६.८६ मिलियन से कुछ अधिक तथा घनत्व ७० व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। कृषि की सफलता, खनिज सम्पत्ति की प्राप्ति, औद्योगिक एवं नगरीय विकास की विभिन्न दरों के अनुसार जनसंख्या के इस घनत्व में क्षेत्रीय एवं स्थानीय विविधता पाई जाती है। उदाहरण के लिए जबलपुर (२४१), रीवाँ (१२३), सतना (६४) तथा बालाघाट में जनसंख्या घनत्व केवल ८७ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में सरगुजा (४६) माण्डला (५२) जिले विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रदेश में भी आदिवासियों की जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है। यह प्रदेश ऊबड़खाबड़, वनाच्छादित, चट्टानी, खराब

मिट्टी वाला एवं सिंचाई शून्य है। इस प्रदेश में आवागमन के साधनों एवं शिक्षा आदि की कमी होने के कारण ६४ प्रतिशत लोग घरों में ही रहते एवं कृषि आदि कार्यों में लगे रहते हैं जिनमे लगभग ८४ प्रतिशत लोग कृषि पर आधारित होते हैं। इस प्रदेश में खनन, वनोत्पादन तथा पशु चारण व्यवसाय का भी कम विकास हो पाया है। इसलिए कृषि पर निर्भर व्यक्तियों का प्रतिशत अनेक उप-क्षेत्रों मे ६० प्रतिशत तक पहुँच जाता है। भारत के सबसे कम नगरीकृत प्रदेशों में से यह (१० प्रतिशत) एक है। नगरीकरण की क्षेत्रीय विभिन्नता विशेष उल्लेखनीय है। जहाँ सिद्धी और जबलपुर के नगरीकरण का प्रतिशत क्रमश. ०.६ प्रतिशत और ३८ प्रतिशत है। कुल मिलाकर इस प्रदेश मे ५१ नगर केन्द्र हैं। जिसमे केवल जबलपुर नगर क्षेत्र (५,३४,८४५) प्रथम तथा मुरवारा (८६,५३५) द्वितीय कोटि के शहर हैं। अन्य शहर अधिकतर जिला एवं तहसील कार्यालय केन्द्रों के रूप में विकसित हुए हैं और रेल एवं सड़क मार्गों पर स्थित हैं।

उपर्युक्त आँकड़ो के अध्ययन से कहा जा सकता है कि यह प्रदेश मुख्य रूप से ग्रामीण है। जहाँ सम्पूर्ण जनसख्या का लगभग ६० प्रतिशत इस प्रदेश मे स्थित हर साइज के २४,५२५ गाँवों मे रहती है। यहाँ अधिकतर बस्तियाँ बिखरी किस्म की हैं। परन्तु उपजाऊ घाटियो मे तथा पठारो पर पाई जाने वाली बस्तियाँ संहत एवं अर्द्ध-संहत किस्म की हैं। इस प्रदेश को हरेक किस्म की बस्तियों पर यहाँ की प्राकृतिक सरचना जैसे घाटियों, बेसिनो, पठारी सतहो, कटकों, तीव्र ढालो, जलोढ़, मिट्टी का सान्तर वितरण, अनुपजाऊ मिट्टी, मौसमी नदियो, वनस्पति आच्छादन तथा भूमिगत जल का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है यह प्रदेश कृषिप्रधान है और कृषि यहाँ का प्रधान व्यवसाय है। परन्तु नेट बोई गई भूमि का प्रतिशत केवल ३२ प्रतिशत ही है। फसल उत्पादक क्षेत्रो की केवल १३ प्रतिशत भूमि पर एक वर्ष मे दो फसलें पैदा की जाती हैं और कृषि की जाने वाली भूमि का केवल ४ प्रतिशत की सिंचाई की जाती है। तालाब, कुएँ तथा स्थानीय महत्त्व के बाँध सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। कृषि की जाने वाली भूमि के बड़े हिस्से पर खाद्यान्न पैदा किये जाते हैं। चावल का अपना क्षेत्रीय महत्त्व है जो कृषि भूमि के ३० प्रतिशत पर उगाया जाता है। गेहूँ का उत्पादन १६ प्रतिशत पर किया जाता है जो प्रदेश की दूसरी फसल है। चना, ज्वार, बाजरा तथा अरहर प्रदेश की अन्य प्रसिद्ध फसलें हैं।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है यह प्रदेश कोयला तथा वनो की दृष्टि से धनी है। परन्तु औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ है। केवल चूने के पत्थर का उपयोग अब तक सीमेन्ट उद्योगों मे किया जा सका है। इनमे चुर्क सीमेन्ट फैक्टरी, किशोर नगर सीमेन्ट तथा जबलपुर अस्बेस्टस वर्क्स विशेष उल्लेखनीय हैं। रिहन्द परियोजना की सफलता के कारण अब इस प्रदेश का औद्योगिक भविष्य बहुत उज्जवल दिखाई पड़ने लग गया है। पीपरी मे हिन्दालको की स्थापना की गई है। यह इस प्रदेश का सबसे बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान है। इसके अलावा अनेकानेक लकड़ी चीरने, बीड़ी बनाने, लाख उत्पादन, तथा सूती वस्त्र व्यवसाय के प्रतिष्ठानों की स्थापनाएँ की गई हैं। इलाहाबाद-

बम्बई रेलमार्ग इस प्रदेश में स्थित जबलपुर तथा कटनी होता हुआ गुजरता है। कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्ली इस प्रदेश से रेल मार्गों द्वारा जुड़े हुए हैं। चुनार-चुर्क, तथा दुद्धी-गढ़वा इस प्रदेश के नवीनतम रेलमार्ग हैं। कुल मिलाकर इस प्रदेश के पूर्वी तथा मध्य जिलों में परिवहन की व्यवस्था संतोषजनक न होने के कारण इस क्षेत्र को एकाकी एवं पिछड़ा माना जाता है।

स्थानीय कारकों के आधार पर इस प्रदेश को पुनः अनेक उप-क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

१६. छोटा नागपुर प्रदेश

२२.०'–२५°.३०' उत्तरी अक्षांशों तथा ८३°.४७'–८७°.५०' पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित यह प्रदेश भारतीय प्रायद्वीप का उत्तरी-पूर्वी भाग है। रांची, सिंहभूम, धनबाद, पलामू तथा हजारीबाग (विहार) और पुरुलया (प० बंगाल) जिलों का ८६२३६ व. कि. मी. का क्षेत्र इस प्रदेश में सम्मिलित है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इसका निर्माण प्राचियन युग की ग्रेनाइट तथा नीस चट्टानों से हुआ है जिसमें धारवाड़ की बिखरी हुई अभ्रक तथा सिस्ट भी पाई जाती है। इस प्रदेश में विभिन्न ऊँचाइयों के अनेक पठार स्थित हैं जिनकी सबसे अधिक ऊँचाई मध्य-पश्चिमी भाग में ११०० मी. है। इस पठारी प्रदेश की ढाल चारों तरफ है। हजारीबाग तथा रांची जिलों में स्थलाकृति की विशेषता देखने को मिलती है जहाँ समान ऊँचाई के पठार दामोदर द्रोणी से विभाजित हैं। स्वर्णरेखा नदी बागमुण्डी पठार को, जिसकी ऊँचाई ६०० मीटर है, रांची पठार से अलग करती है। प्रो० एम० पी० चटर्जी ने रांची पठार पर चार समप्राय भूमि (Pene plain) के पाये जाने की बात कही है। राजमहल पहाड़ियाँ (३००–४५० मी.) ज्वालामुखी तथा पलामू क्षेत्र विच्छेदित हैं। छोटा नागपुर प्रदेश से विभिन्न दिशाओं में नदियाँ प्रवाहित होती हैं। कोईल, स्वर्णरेखा, बराकर, दामोदर, अजय और, ब्रह्मनी तथा गुमानी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बहुत छोटी-छोटी एवं स्थानीय महत्व की अनेक नदियाँ जैसे पुनपुन, फल्गु, सकरी तथा किऊल प्रदेश के उत्तरी छोर पर प्रवाहित होती हैं। अधिकांश नदियाँ तीव्र किनारों, सकरी घाटियों, गह्वर तथा जलप्रपात युक्त एवं छिछली हैं। यहाँ की नदियों में केवल मानसून में पानी प्रवाहित होता है। वर्ष के शेष महीनों में या तो सूख जाती हैं अथवा इनमें सान्तर जल जमाव पाया जाता है। इस प्रदेश की अधिकांश नदियों में शीघ्र बाढ़ आती और तुरन्त ही प्रवाह समाप्त हो जाता है।

जलवायु, वनस्पति एवं मिट्टी—इस प्रदेश की जलवायु मानसूनी किस्म की है। मार्च के आने के साथ ताप वृद्धि (२६° से ३२° से. ग्रे.) प्रारम्भ होती है। वर्षा प्रारम्भ होने पर तापमान कम होने लगता है। इस प्रदेश में हवाओं की सामान्य दिशा पूर्व से दक्षिण-पूर्व की तरफ होती है। ८० प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर के महीनों में हो जाती है। मानसून के सभी गुण (पाठक जलवायु का अध्याय देखें) पाये जाते हैं। जिसमें वर्षा के स्थानीय एवं मासिक अंतर विशेष महत्वपूर्ण हैं। जाड़े की ऋतु नवम्बर के साथ प्रारम्भ

होती है और लगभग फरवरी तक चलती है। जनवरी का तापमान हजारीबाग एवं राँची में क्रमशः १६° से. ग्रे. तथा १७° से. ग्रे. रहता है। जाड़े में सम्भावित शीत लहरी का प्रभाव यहाँ तक बहुत ही नगण्य होता है। वृक्षो की अनवरत कटाई एवं चरागाही के कारण यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति को बहुत अधिक क्षति हुई है। फिर भी छोटा नागपुर के बच रहे अगम्य भागों में अब भी प्राकृतिक वनस्पति सुरक्षित पायी जाती है। यहाँ पायी जाने वाली वनस्पति को (१) शुष्क पतझड (२) शुष्क प्रायद्वीपीय साल वन तथा (३) नम प्रायद्वीपीय साल वन तीन प्रकारों में रखा जाता है। प्रथम कोटि के वनों में पाये जाने वाले प्राकृतिक वृक्षो मे अमलतास, खैर, हर्रा, महुवा, सेमल, बाँस सवाई एवं कुश घास प्रमुख हैं। साल, कुसुम, पीयार तथा खैर आदि वृक्ष द्वितीय एवं तृतीय कोटि के वनो में पाये जाते हैं। जनकीय पदार्थों के आधार पर इस प्रदेश में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं। परन्तु नीस एवं ग्रेनाइट से बनी हुई लाल मिट्टी की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त दामोदर घाटी में बलुई, ऊँचे प्रदेशों मे लैटेराइट तथा राजमहल के पहाड़ी प्रदेश में लावा तथा लैटेराइट मिट्टियाँ पाई जाती हैं। लाल मिट्टी में पोटाश तथा चूने की मात्रा पर्याप्त है परन्तु नाइट्रोजन, फासफोरिक एसिड और ह्यूमस की कमी है। मिट्टियो की गहराई कम है। इस प्रदेश मे पाई जाने वाली मिट्टियों की उर्वरा शक्ति स्थलाकृति, स्थिति, एव जनकीय पदार्थों के गुणों के अनुसार बदलती रहती है। काली मिट्टी अधिक उपजाऊ है।

खनिज संसाधन—देश की सबसे महत्वपूर्ण खनिज पेटी इस प्रदेश में पाई जाती है। देश के ताम्र उत्पादन का लगभग १००% काइनाइट ६५% कोयला, अभ्रक, बाक्साइट, चाइना क्ले ५०% और ४०% लौह अयस्क निकाला जाता है। भारत में कोयले के अब तक के ज्ञात भण्डार का ८०% तथा कोकिंग कोयले का १००% भाग छोटा नागपुर प्रदेश मे स्थित है। इस प्रदेश की कोयला की खानें गोंडवाना चट्टानों के साथ पायी जाती हैं। कोयले की प्रधान खानें पूर्व से पश्चिम को फैली हुई हैं। कोयले का उत्पादन सदैव बढ़ता जा रहा है।

इस प्रदेश मे प्राप्त होने वाला लौह अयस्क धारवाड चट्टानो से संबंधित है। सिंहभूम सबसे प्रसिद्ध है। यहाँ का लौह अयस्क हैमेटाइट (६०% लौहांश) किस्म का है। इस प्रदेश मे पाये जाने वाले लौह अयस्क का अनुमानित भण्डार १०४७ मिलियन टन है। पलामू, हजारीबाग, सिंहभूम, राँची जिलों मे चूने का पत्थर पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। इस प्रदेश मे १२८ कि. मी. लम्बी तथा ३२ कि. मी. चौड़ी पेटी में अभ्रक पाया जाता है। अभ्रक के लिए कोडरमा सबसे महत्वपूर्ण है। (खनिज संसाधन अध्याय में विस्तृत वर्णन दिया गया है)।

जनसंख्या, मानव बसाव—इस प्रदेश की जनसंख्या लगभग एक करोड़ तीस लाख है। जनसंख्या का वितरण बहुत असमान, प्राकृतिक एव सांस्कृतिक ससाधनों से प्रभावित है। कुल मिलाकर यहाँ की जनसंख्या विरली (१५० व्यक्ति व. कि. मी.) बसी है। जबकि दक्षिणी बिहार के मैदानी भाग में ३८५ है। पहाडी ऊबड़खाबड़, कटे-फटे, क्षेत्रो मे जनसंख्या न्यूनतम है। इसके विपरीत हजारीबाग तथा सिंहभूम के मैदानी भागों में

जनसंख्या का वितरण समान है। खानों तथा मैन्यूफैक्चरिंग के अनुकूल क्षेत्रों जैसे दामोदर की निचली घाटी में सिंहभूम, राँची, रामगढ़, हजारीबाग, तथा गिरीडीह के आसपास जनसंख्या का घनत्व २००–४०० व्यक्ति प्र. व. कि. मी. तक पाया जाता है। धनबाद के औद्योगिक एवं खनन प्रधान क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व (४००–६०० व्यक्ति प्र. व. कि. मी.) सबसे अधिक है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण, बस्तियाँ दूर-दूर, बिखरी हुई एवं छोटी हैं। इनमे स्थानीय विविधताएँ पायी जाती हैं। दामोदर घाटी मे मुख्य रूप से सहत बस्तियाँ; राँची, हजारीबाग, क्षेत्रो मे अर्द्ध-संहत तथा पठारी क्षेत्रो मे बिखरी हुई बस्तियों की प्रधानता है। इस प्रदेश मे लगभग २५ किस्म की आदिम जातियाँ निवास करती हैं जिनकी जनसंख्या पर्याप्त है। यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। कृषि से जीविकोपार्जन करने वालो का प्रतिशत क्षेत्रीय आधार पर हजारीबाग ७७, सिंहभूम ७०, पलामू ८४ तथा राँची में ८३ है।

इस प्रदेश में ७० शहर हैं। जिनमे जमशेदपुर (४५६१४६) एवं राँची (२५५५५१) सबसे बड़े हैं। इनके अलावा घाटशिला (१८३५१), नोवामुण्डी (११६६२) मोसाबनी (१६८११), डाल्टनगंज (३२३६७), चाईबासा (३५३८६), दुमका (२३३३८) तथा पूर्णिया (५७७०८) अन्य महत्वपूर्ण शहर हैं।

उद्योग-धन्धे—औद्योगिक विकास की दृष्टि से छोटा नागपुर प्रदेश सबसे अनुकूल वातावरण मे स्थित है। यहाँ वनो तथा खानो से प्राप्त होने वाले समस्त कच्चे माल प्राप्त होते हैं। इस प्रदेश में उच्च कोटि का लौह अयस्क, कोकिंग, कोयला, चूने का पत्थर बहुत बड़ी मात्रा मे पाये जाते हैं। बाक्साइट, ताम्र अयस तथा दामोदर विद्युत् के सम्मिश्रण से अलौह उद्योगो का भी विकास हो रहा है। बाँस, सबाई घास, टिम्बर तथा लाख के बड़े पैमाने पर पाये जाने के कारण कागज, फर्नीचर, प्लाई लकड़ी तथा दियासलाई उद्योगो का केन्द्रीयकरण सम्भव हो पाया है। इतना ही नही बल्कि बड़े पैमाने पर सीमेन्ट, रसायन, ग्लास आदि के भी उद्योग इस प्रदेश में स्थापित हो गये हैं। जिनका वितरण चित्र ७६ में दिखाया गया है। इस प्रदेश मे टाटा लौह इस्पात उद्योग, भारी इंजीनियरिंग, कृषि मशीन, मोटर, रेल, जूट, चीनी, मशीनें एवं उपकरण निर्माण, उर्वरक उत्पादन तथा सूती वस्त्र व्यवसाय आदि की बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ उत्पादन कार्य में जुटी हुई हैं। न केवल प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से ही यह प्रदेश सबसे धनी है बल्कि यहाँ बाजार सर्वेक्षण, बैंकिंग, बीमा, परिवहन, बन्दरगाह, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुविधाएँ भी देश के अन्य प्रदेशों की तुलना मे सबसे अधिक विकसित हो पायी हैं।

यातायात एवं परिवहन संसाधन—खनिज संसाधन की दृष्टि से धनी होने के कारण इस प्रदेश में पूर्वी रेलमार्ग का निर्माण १८७१ मे कराया गया था। सन् १८७६–१६०० के मध्य रानीगज-झरिया मे रेलमार्गों का विकास हो गया था। देश की सबसे महत्वपूर्ण रेल लाईन (धनबाद-गया-हजारीबाग) ग्रैण्डकार्ड सन् १६०६ में ही बन चुकी थी। इस प्रदेश के अधिकांश औद्योगिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक एवं खनिजोत्पादक केन्द्र इस ग्रैण्डकार्ड से जुड़े हुए हैं। न केवल देश की उपर्युक्त सबसे प्रसिद्ध रेल लाईन बल्कि सबसे प्रसिद्ध सड़क ग्रेट इण्डियन ट्रंक रोड भी इस प्रदेश से होकर गुजरती है। इन रेल एवं सड़क मार्गों
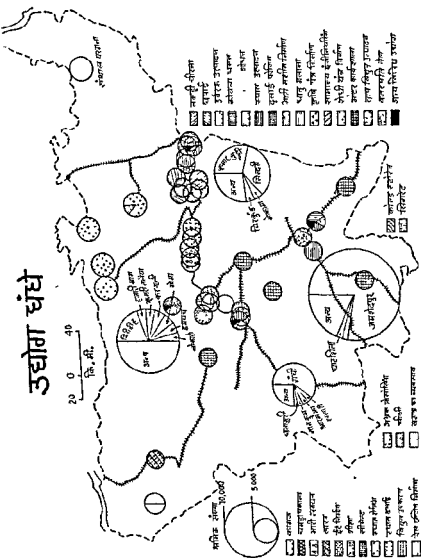
पर देश की सबसे अधिक जनसंख्या एवं सबसे अधिक सामान ढोये जाते हैं।

इस सम्पूर्ण प्रदेश को पुनः दो उप-प्रदेशों—*उत्तरी छोटा नागपुर तथा दक्षिणी छोटा* नागपुर मे विभाजित किया जा सकता है। विकास की स्थानीय दरों, जनसंख्या घनत्व एवं अनेकानेक प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर उपर्युक्त दो उप-प्रदेशों को २२ छोटे-छोटे भागों मे विभाजित किया गया है।

१७. मेघालय-मिकिर प्रदेश

यह सम्पूर्ण प्रदेश २५°.०५′ से २६°.४१′ उत्तरी अक्षांशों तथा ८६°.४७′ से ९३°.३६′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसमें गारो, खासी, जयन्तियाँ एवं मिकिर पठारी क्षेत्र सम्मिलित हैं। इसका क्षेत्रफल ३५,२९१ व. कि. मी., ऊँचाई ६१० से १८३० मी. के बीच है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का निर्माण अनेकानेक बार जमीन के ऊपर उठने तथा नीचे धसने, समप्राय (पेनेप्लेन), कटाव, जमाव, पटल विरूपण तथा भ्रंतर्भेदन की क्रियाओं आदि से हुआ है। इसलिए यहाँ की स्थलाकृति अत्यधिक कटाव, असमान भू-भाग, एवं तीव्र ढालों से परिपूर्ण तथा जीर्ण है। पश्चिम में गारो पहाड़ी क्षेत्र (८१६४ व. कि. मी.) अत्यधिक कटा-फटा है। मेघालय का मध्य तथा पूर्वी भाग (१४३७४ व. कि. मी.) जिसमे खासी, जयन्तिया पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं, पठार के रूप में फैला हुआ है। गारो प्रदेश में दो प्रवाहतंत्र पाये जाते हैं जिनके फलस्वरूप ब्रह्मपुत्र तथा सुरमा प्रावाह क्षेत्रों का निर्माण होता है। प्रथम कालू, रिंगी, ख्रागुवा तथा अजगर एवं द्वितीय मे भोगाई, दरांग तथा बन्द्रा प्रमुख नदियाँ हैं। मध्य तथा पूर्वी मेघालय मे दीगारू, श्रमियम, तथा उमली नदियाँ बहुत छोटी होने पर भी महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रदेश का नदीतंत्र त्रिज्य (Radial) किस्म का है।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति—ऊँचाई के कारण यहाँ की जलवायु ब्रह्मपुत्र की घाटी से भिन्न है। ब्रह्मपुत्र का मैदान ग्रीष्म मे गर्म तथा जाड़े मे शीतल रहता है। अप्रेल सबसे गर्म तथा औसत तापमान लगभग ३१° से. ग्रे. रहता है। दिसम्बर तथा जनवरी के महीने सबसे ठंडे और तापमान लगभग २५° से. ग्रे रहता है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा २६८६ मि. मीटर होती है। जाड़े मे वर्षा नहीं के बराबर होती है। वर्षा की मात्रा दक्षिण से उत्तर क्रमशः कम होती जाती है। मानसून महीनो में भी वर्षा अपेक्षाकृत कम होती है। यहाँ मिट्टी जिनको चित्र ७७ मे दिखाया गया है, तीन—पर्वतीय, लेटेराइट तथा प्राचीन जलोढ किस्म की है। सीमित पाद-पर्वतों को छोड़कर पर्वतीय मिट्टी सर्वत्र पायी जाती है। यह मिट्टी अम्लों से पूर्ण है परन्तु फास्फेट एवं पोटाश की इसमें कमी है। फल, आलू तथा चावल अधिक सफलतापूर्वक उगाये जाते हैं। लेटेराइट किस्म की मिट्टी पश्चिम से पूर्व को मिकिर तथा जयन्तियाँ पहाड़ियो में छोटे-छोटे क्षेत्रों मे पाई जाती है। कृषि की दृष्टि से इस मिट्टी का महत्व कम तथा बरसात में ही उपयोगी होती है। प्राचीन जलोढ़ किस्म की मिट्टी क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत कम तथा ऊँचे क्षेत्रों मे पाई जाती है। इसमे फास्फेट की' कमी है परन्तु पोटाश अधिक प्रतिशत में पाया जाता है। चावल, फल तथा तरकारियाँ इस

मिट्टी की प्रधान फसलें हैं। इस प्रदेश की वनस्पति मिश्रित है। मिश्रित उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वनस्पतियों की प्रधानता और साल वृक्षों की अधिकता है। इसके अतिरिक्त बांस, बेंत, प्लाई लकडी, साल के वृक्ष भी अधिकता से पाये जाते हैं। ३००–७५० मीटर की ऊँचाई पर घास तथा ७५० मीटर से अधिक ऊँचे क्षेत्रों मे पाइन वन पाये जाते हैं। इनमे ओक तथा बर्च वृक्षों की प्रधानता है। मिकिर पहाडियों मे वनस्पति अधिक घनी तथा मध्य ब्रह्मपुत्र घाटी के समान पाई जाती है।

चित्र ७७

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग—असमान एव निरोधक स्थलाकृति के कारण यहाँ की जनसख्या बहुत विरल (२८ व्यक्ति प्र. व. कि. मी.) है। जनसंख्या के घनत्व मे स्थानीय अंतर अधिक नहीं है। पूर्वी भाग मे १८ तथा पश्चिमी भाग में ३८ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. निवास करते हैं। मिकिर पहाडियो में जनसंख्या अधिक ग्रामीण है। सम्पूर्ण प्रदेश मे पठारी स्थलाकृति, छिछली मिट्टी, सीमित कृषि योग्य भूमि तथा कम गुणकारी वर्षा पाई जाने के कारण बिखरी हुई एवं पल्लीदार (Hamleted) बस्तियाँ पाई जाती हैं। ७६ प्रतिशत बस्तियाँ अत्यधिक छोटी हैं जिनकी जनसख्या २०० से कम है। केवल ४ प्रतिशत ग्रामों मे ५०० से अधिक जनसख्या रहती है। प्रदेश की बस्तियाँ मंद ढालों तथा इन्टर-मान्ट घाटियों में बसी हैं। इस प्रदेश की १२ प्रतिशत जनसख्या शहरी है तथा शहरों का वितरण बहुत असमान है। शिलांग सबसे बडा (१२२७५२) शहर है। मेघालय के पूर्वी भाग मे जोवाई (८६२१६) तथा पश्चिमी भाग मे तुरा (१५४८६) दो अन्य महत्त्वपूर्ण शहर हैं। बोकाजन, आमलाखी, मट्टर तथा चेरापूँजी, अन्य उल्लेखनीय शहर हैं। यहाँ के अधिकांश आदिवासी झूमिंग कृषि करते हैं। परन्तु घाटियो, सीढ़ीनुमा ढालो तथा इन्टरमान्ट घाटियों मे नम एव स्थायी कृषि भी अपवाद नही है। खासी, जयन्तिया क्षेत्रों में चावल और मध्य मेघालय में मक्का, ज्वार, बाजरा, आलू तथा साग सब्जियों की खेती की जाती है। खजूर, संतरा, अनन्नास, नींबू, तथा लीची के बगीचों के साथ-साथ कुछ क्षेत्रों में चावल के भी खेत देखने को मिलते हैं। प्रदेश की कृषित भूमि के ५७ प्रतिशत भाग मे चावल, १५ प्रतिशत में आलू, १३ प्रतिशत मे मक्का पैदा किये जाते है। पश्चिमी मेघालय में चना, दालें,

सरसों, तम्बाकू, तथा आलू पैदा किये जाते हैं। नील तथा लाख का भी बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। खनिज की दृष्टि से इस प्रदेश को धनी नहीं कहा जा सकता है। परन्तु सिल्मेनाइट, चूने का पत्थर, चाइना क्ले, ताम्र अयस्क, कोयला तथा स्वर्णधारक चट्टानें, पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं।

यातायात एवं परिवहन संसाधन—अत्यधिक एवं तीव्रगामी नदियों, असमान धरातल, कृषि योग्य भूमि की कमी, वनों के आधिक्य और खनिज एवं उद्योग की दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण इस प्रदेश में यातायात एवं परिवहन संसाधनों की भारी कमी है। उत्तरी-पूर्वी सीमावर्ती रेल मार्ग का थोड़ा सा हिस्सा इस प्रदेश में पड़ता है। ८० प्रतिशत बस्तियां सड़कों से बहुत दूर स्थित हैं। मध्य तथा पूर्वी मेघालय में थोड़ी बहुत सड़कें हैं जिनमें गौहाटी-शिलांग शिलांग-डावकी तथा शिलांग-चेरापूंजी अधिक उपयोगी एवं उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी मेघालय में ३१ कि. मी. पूर्णरूपेण पक्की (काली), ४२२ कि. मी. कंकड़ तथा ६२ कि. मी. मिट्टी निर्मित सड़कें हैं। ग्रामीण सड़कों की कुल लम्बाई १४२२ कि. मी. है। इस प्रदेश में जल परिवहन, रस्सी मार्गों तथा वायु मार्गों को भी काम में लाया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रदेश को तीन (१) पश्चिमी मेघालय-मिकिर (२) पूर्वी मेघालय-मिकिर एवं (३) मध्य मेघालय-मिकिर उप-प्रदेशों एवं १४ छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

१८. महाराष्ट्र प्रदेश

यह पूरा प्रदेश १५°.४४′-२१°.४०′ उत्तरी अक्षांशों तथा ७३°.१५′ व ८०°.३३′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य फैला हुआ है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—वर्धा-वैनगंगा नदियों के बेसिन तथा रत्नगिरि के बेलॉवली प्रदेशों, जहाँ कतिपय प्राचीनतम चट्टानें पाई जाती हैं, को छोड़कर समूचे प्रदेश में बसाल्ट चट्टानें पाई जाती हैं। आर्चियन धारवाड़, कुडप्पा तथा विन्ध्यन चट्टानें भी अपवाद नहीं हैं। इस प्रदेश के स्थल विन्यास में जलवायु का महत्वपूर्ण योगदान है। पश्चिमी भाग में प्राचीनतम पठारांश एवं अपक्षरण सतह अब भी सुरक्षित हैं। इसको सह्याद्रि के नाम से पुकारा जाता है जो पठार एवं लैटेराइट मिट्टी से ढका हुआ है। सह्याद्रि एवं दकन पठार के बीच कहीं-कहीं इतनी समानताएँ हैं कि उनको पहिचानना कठिन हो जाता है। पूर्व की तरफ थोड़ी नदी घाटियां पाई जाती हैं। स्थलाकृति के आधार पर महाराष्ट्र प्रदेश को चार—सह्याद्रि, मुख्य पठार, ताप्ती बेसिन तथा वर्धा-वैनगंगा मैदान, भागों में विभाजित किया जा सकता है। यह प्रदेश तीन—ताप्ती, गोदावरी तथा कृष्णा नदी तंत्रों से प्रवाहित होता है। अरब सागर में गिरने वाले प्रथम तंत्र को छोड़कर शेष दो नदियाँ बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गोदावरी तथा कृष्णा नदियाँ वृक्षाकार हैं। अधिकांश नदियों के दोनों तरफ सीढ़ीनुमा ढाल हैं। इस प्रदेश के अधिकांश नदी जल संसाधन का आधुनिक ढंग से उपयोग किया जा रहा है। उन पर बाँध बनाये गये हैं, नहरें निकाली गई हैं तथा विद्युत उत्पादन से प्रदेश को औद्योगिक दृष्टि से विकसित बनाया जा रहा है।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—यह प्रदेश बहुत विस्तृत है। जलवायु पर

इस विस्तार का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। पश्चिमी भाग अरब सागर के अधिक नजदीक है, पूर्वी भाग बंगाल की खाड़ी की मानसून के समानान्तर एवं दूर स्थित है। इस कारण पूर्वी भाग मे पश्चिमी भाग की अपेक्षा कम वर्षा होती है परन्तु गर्मी अधिक पड़ती है। इस प्रदेश के अधिकांश भाग में द. प. मानसून की अरब सागर वाली शाखा से १० जून तक वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। यह मानसून वर्ष के चार महीनो तक कायम रहता है। पश्चिमी भाग मे अधिक एवं विश्वसनीय वर्षा होती है। इस प्रदेश में प्राप्त होने वाली वर्षा की मात्रा, दिनों की संख्या, मानसून के प्रारम्भ एवं अंत होने के समयों मे स्थान विशेष की स्थिति के अनुसार भारी अंतर पाया जाता है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से दो—(१) काली (२) लेटेराइट प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। ताप्ती, गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेशों और मुख्य दक्कन पठार मे सबसे अच्छी काली मिट्टी पाई जाती है। इस मिट्टी में ४० से ६० प्रतिशत मृदांश, तथा ७.२ से ८.५ तक पी-एच० मूल्य होता है। इस मिट्टी मे कहीं-कहीं विभिन्न आकार की कंकड़ियाँ भी मिली-जुली दिखाई पड़ती हैं। इस मिट्टी मे कपास, गेहूँ तथा गन्ना बड़ी सफलतापूर्वक उगाये जाते हैं। स्थलाकृति एवं स्थिति के कारण काली मिट्टी की उर्वराशक्ति बदलती रहती है। कोल्हापुर, सतारा तथा कोंकण में लेटेराइट मिट्टी पाई जाती है।

जनसंख्या, मानव बसाव एवं उद्योग—यहाँ की ४० लाख से भी अधिक जनसंख्या २७६,७७७ व. कि. मी. क्षेत्र मे वितरित है तथा घनत्व ११० व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। अधिक वर्षा की मात्रा, सिंचाई संसाधनों के विकास, काली एवं उपजाऊ मिट्टी की प्राप्ति, परिवहन सुविधाएँ तथा शहरीकरण आदि ने यहाँ जनसंख्या वितरण को सबसे अधिक प्रभावित किया है। कृषि को अनुकूल परिस्थितियों के कारण यहाँ की जनसंख्या के लगभग ८० प्रतिशत लोग गाँवो मे ही रहते हैं। पठारी क्षेत्र मे गाँव संहत किस्म के हैं। गाँवों की योजना असमान एवं अवैज्ञानिक है। यहाँ की लगभग २० प्रतिशत जनसंख्या शहरों मे रहती है। पूना (११३२०३४) सबसे प्रसिद्ध शहर है। जहाँ उच्च कोटि के शिक्षा एवं रिसर्च संस्थान हैं। नागपुर (८६६०७६) तथा शोलापुर (३९८३६१) दो अन्य महत्वपूर्ण शहर हैं।

कृषि पुन यहाँ का महत्वपूर्ण धन्धा है जिसमें कार्यशील जनसंख्या के लगभग ७० प्रतिशत लोग लगे हुए हैं। ६० प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। यह प्रतिशत क्षेत्रीय स्थलाकृति के अनुसार कम और अधिक होता रहता है। १८ प्रतिशत भू-भाग पर वन पाये जाते हैं। कृषित भूमि के ७० प्रतिशत पर खाद्यान्न (ज्वार, बाजरा, गेहूँ, धान) और ३० प्रतिशत पर कपास, मूंगफली, गन्ना, तिलहन, चारा एवं अन्य रेशेदार फसलें पैदा की जाती हैं। सिंचाई के प्रतिशत मे भी क्षेत्रीय अंतर पाया जाता है।

खनिज संसाधन—इस प्रदेश की खनिज सम्पत्ति मे कोयला (नागपुर से ५० कि. मी. रेडियस में) मैंगनीज (छिन्दवाड़ा, बालाघाट, नागपुर तथा भण्डारा) चूने का पत्थर (वर्धा-बेनगंगा बेसिन, चंदा, नागपुर, भण्डारा) तथा लौह अयस्क (लोहारा, देवलगाँव, पिपलगाँव) विशेष उल्लेखनीय हैं। उद्योग-धन्धो की दृष्टि से इस प्रदेश का भविष्य अधिक उज्जवल नहीं है। पूना, नागपुर, शोलापुर तथा नासिक आदि जगहो पर विकसित उद्योग-धन्धों मे

से सूती वस्त्र व्यवसाय सबसे प्रसिद्ध है।

यातायात एवं परिवहन—यह प्रदेश रेलमार्गों—*बम्बई-कलकत्ता तथा बम्बई-मद्रास*, द्वारा देश के अन्य भागों से जुड़ा हुआ है। इन दो प्रधान रेलमार्गों के अतिरिक्त अन्य अपेक्षाकृत कम महत्त्व की रेल लाइनें भी हैं। रेलमार्गों की लम्बाई ५,००० कि. मी. है। इस प्रदेश से होकर राष्ट्रीय, राज्यीय एवं जिला स्तर की सड़कें गुजरती हैं। कुल मिला कर ५०,००० कि. मी. लम्बी सड़कें हैं जो प्रदेश के अनेक शहरों, गाँवों तथा क्षेत्रों को मिलाती हैं।

१६. छत्तीसगढ़ प्रदेश

इस प्रदेश का कुल क्षेत्रफल ७२६४० व. कि. मी. १६°.४५'–२३°.१५' उत्तरी अक्षांशों तथा ८०°.२५'–८४°.२०' पूर्वी देशान्तरों के मध्य फैला हुआ है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इसकी समस्त स्थलाकृति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) छत्तीसगढ़ मैदान (२) ऊबड़खाबड़ प्रदेश। प्रदेश की ऊँचाई २५० से ३३० मीटर तक है। महानदी इस प्रदेश की दक्षिण-पूर्वी सीमा के बिलकुल नजदीक से प्रवाहित होती है। इसका प्रावाह क्षेत्र अनेकानेक (७) सेक्टरों में विभाजित है। इस नदी के दाहिनी तट की नदियाँ (पायरी, सुखा तथा जोंक) अत्यन्त छोटी हैं।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—प्रो. कोपेन के वर्गीकरण के अनुसार इस प्रदेश में उष्ण कटिबन्धीय (Aw) किस्म की जलवायु पाई जाती है। १६.८° से. ग्रे. से ३४.७° से. ग्रे. *तक ताप वैभिन्यता तथा ऊँचाई के अनुसार (१०० से. मी. से १८० से. मी.)* वर्षा पाई जाती है। छत्तीसगढ़ मैदान में उष्णकटिबन्धीय लाल तथा पीली मिट्टियाँ पाई जाती हैं। कुडप्पा चट्टानें इन मिट्टियों का प्रमुख जनकीय पदार्थ है। मिट्टियों का निर्माण लैटराइजेशन क्रिया से हुआ है और लौहांश की अधिकता से रंग लाल हो गया है। मिट्टी के कण बड़े-बड़े हैं, वनस्पति अंश एवं उर्वरा शक्ति की कमी के साथ-साथ कैल्सीयम, मैगनेसीयम, नाइट्रोजन, फासफोरस, चूना, तथा पोटाश की भी कमी है। उच्च प्रदेशों में लैटेराइट किस्म की मिट्टी पाई जाती है। गड्ढों तथा पानी रुकने के *स्थानों पर पाई जाने वाली यही मिट्टी गहरे रंग की एवं उपजाऊ होती है।* प्रदेश के अधिकांश प्रारम्भिक वन-प्रदेश को साफ करके भूमि पर खेती की जाने लगी है। चावल तथा ज्वार-बाजरा प्रमुख फसलें हैं, वनों में साल की अधिकता है। कहीं-कहीं टीक के भी वृक्ष बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं। साल के घने वनों में आबनूस, तेन्दू, शीशम, हुर्रे आदि के वृक्ष भी पाये जाते हैं। इस प्रदेश के वनों में पाई जाने वाली वनस्पति से रेलवे स्लीपर, बीड़ी, शराब, फर्नीचर तथा लुगदी आदि तैयार किये जाते हैं।

खनिज संसाधन—इस प्रदेश में चूना पत्थर, डोलोमाइट, बाक्साइट, कोयला, लौह *अयस्क, मैंगनीज, गलेना, ग्रेफाइट, तथा कालमाइट आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं।* चूना पत्थर इसमें महत्त्वपूर्ण है। इससे सीमेन्ट बनाया जाता है। कोरबा के पास बाक्साइट तथा डालोराजहरा एवं अन्य अनेक स्थानों पर लौह अयस्क खोदे जाते हैं। लौह अयस्क का प्रयोग भिलाई लौह इस्पात कारखाने में किया जाता है। यहाँ की कोयले की खानें

गोंडवाना किस्म की तथा महानदी एवं ब्रह्माणा नदियों के बीच स्थित क्षेत्रों में पाई जाती है, बिलासपुर में मैंगनीज अयस्क तथा चंदनी डोंगरी मे सीसे की खदानें हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग-धन्धे—यहाँ की जनसंख्या लगभग ७० लाख है। जनसंख्या वितरण पर समतल जमीन, चावल उत्पादन, तथा आधुनिक औद्योगिक विकास का अधिक प्रभाव पड़ा है। नदियों के बरसाती होने के कारण इनके तटों पर कम जनसंख्या पायी जाती है। इसके विपरीत मैदानी भाग घना बसा है। सड़कों, रेलमार्गों, खनिज संसाधनों ने भी मानव बसाव को आकर्षित किया है। यहाँ की जनसंख्या का घनत्व बड़ा असमान है। उदाहरणार्थ दुर्ग में १८१, रायपुर १७३, शक्ति २००, जान्जगिर १८० है। औसत घनत्व ६६ है।

इस प्रदेश मे कुल मिलाकर १३५६६ गाँव हैं जिनमें से केवल ७ प्रतिशत गाँवो मे १००० जनसंख्या रहती है। दो-तिहाई गाँवों मे ५०० तथा एक चौथाई मे ५०० से १००० लोग निवास करते हैं। इस प्रदेश के शहरो की संख्या ३० है। अधिकाश शहर पहले किलेदार शहर थे परन्तु अब सुरक्षा की गारन्टी हो जाने के कारण संलग्न भागों में बस्तियों में बदलते जा रहे हैं। शहरों में रायपुर (२०५६८६), रायगढ़ (४८०४६), सरनगढ़ (६६८१), शक्ति (१०७५४) तथा राजनांदगाँव (५५८२७) के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सम्पूर्ण प्रदेश पूरी तरह से कृषिप्रधान है जहाँ पर कार्यशील जनसंख्या का ८१ प्रतिशत कृषि मे लगे हुए हैं। इस प्रदेश की ४३ प्रतिशत भूमि कृषि के अंतर्गत, ३४ प्रतिशत वनाच्छादित तथा शेष में अन्य भूमि उपयोग होता है। सिंचाई की संतोषजनक व्यवस्था न होने के कारण इस प्रदेश को कृषि मुख्य रूप से प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर रहती है। अब तक लगभग १२ प्रतिशत कृषि भूमि की सिंचाई सम्भव हो पाई है। बोई गई नेट भूमि के लगभग ३१ प्रतिशत में दो फसलें पैदा की जाती हैं। यहाँ की कृषि उपजों मे चावल (५२%), दालें, तिलहन, फल-तरकारी, मूँगफली, रेशे वाली फसलें मुख्य रूप से पैदा की जाती हैं। इस प्रदेश के उद्योग-धन्धे प्राथमिकता के आधार पर कृषि, वन एवं खनिज संसाधनो पर निर्भर हैं। प्रदेश की कुल रजिस्टर्ड फैक्टरियों (६४३) मे से लगभग ३०७ कृषि, १६३ वन एव ६४ खनिज संसाधनों से अपने कच्चे माल को प्राप्त करते हैं। कृषि पर आधारित उद्योगों मे चावल कूटने, दाल दलने, आटा पीसने तथा कपास की मिलें प्रसिद्ध हैं। वनों से कच्चा माल प्राप्त करने वाले उद्योगों मे लकड़ी चीरना, बीड़ी तथा टसर निर्माण विशेष उल्लेखनीय हैं। खनिज उद्योगों मे भिलाई इस्पात उद्योग, चूना पत्थर तथा मैंगनीज की खुदाई महत्त्वपूर्ण हैं। कृषि उत्पादन के लिए इस प्रदेश में रासायनिक उर्वरक स्थानीय आधार पर प्राप्त होता है।

यातायात एवं परिवहन—इस प्रदेश की प्रमुख रेल शाखाओं में नागपुर-कलकत्ता, बिलासपुर-कटनी, रायपुर-राजिम, रायपुर-वाल्टेयर, तथा चम्पा-कोरवा शाखाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अधिकाश रेल शाखाएँ चौड़ी हैं। कम दूरियों का परिवहन मोटरो द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रदेश मे ४४०८ कि. मी. सड़कें हैं।

२०. उड़ीसा उच्च प्रदेश

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का क्षेत्रफल ७६,८०० व. कि. मी. तथा विस्तार

१७°.१५'-से २२°.३४' उ० प्रक्षांश और ८२°.२७' से ८६°.२५' पूर्वी देशान्तरों के मध्य है। इसका निर्माण प्राचियन और प्लाइस्टोसीन भौमिकी युगों के बीच हुआ है। इसमें निचली गोंडवाना की कोयले की खानें वराकर, कामपी तथा तालचीर में पाई जाती हैं। मायोसीन युग के चूना पत्थर, बालू पत्थर, तथा मिट्टी का जमाव उत्तर की पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। स्थलाकृति के आधार पर प्रदेश तीन उपक्षेत्रों (१) उत्तर का ऊँचा प्रदेश (२) महानदी की घाटी (३) पूर्वी घाट का दक्षिणी-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र, में विभाजित किया जा सकता है।

उत्तर के ऊँचे प्रदेश में मयूरभंज, क्योंझर, पल्लाहरा के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र ऊबड़खाबड़, तथा उत्तर से दक्षिण को ढालू है। इस क्षेत्र का पश्चिमी भाग चपटे सिरे एवं तीव्र ढाल युक्त और घने जंगलों से परिपूर्ण है। इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई ६०० मीटर है। महानदी घाटी में सम्भलपुर का २/३ भाग तथा बोलनगिरी का एक तिहाई भाग सम्मिलित है। इसमें बिखरी हुई पर्वतीय चोटियाँ पाई जाती हैं। १५० मीटर की समोच्च रेखा इसकी सीमा निर्धारित करती है। तीसरे भाग में, कतिपय बिखरी हुई पहाड़ियों से परिपूर्ण, पूर्वी घाट का दक्षिणी तथा दक्षिणी-पश्चिमी भाग शामिल किया जाता है।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—इस प्रदेश की जलवायु उष्ण-कटिबन्धीय मानसूनी किस्म की है। अधिकांश भागों में तापमान ऊँचा तथा मध्यम से अधिक वर्षा होती है। इस प्रदेश में मानसून की दोनों (अरब सागर व बंगाल की खाड़ी) शाखाओं के साथ साथ कुछ चक्रवाती तूफानों का भी प्रभाव पड़ता है। वर्षा ऋतु मध्य जून से सितम्बर तक रहती है। ७८ प्रतिशत वार्षिक वर्षा इन्हीं महीनों में होती है। इस प्रदेश में पाँच-नदी जलोढ़, लैटेराइट, लाल, भूरी तथा काली किस्म की मिट्टियाँ पाई जाती हैं जिनको चित्र ७८ में दिखाया गया है। उड़ीसा राज्य का यह सबसे जंगली हिस्सा है। इस प्रदेश के लगभग ४५ प्रतिशत भू-भाग पर अधिकांश रूप से वन फैले हुए हैं। मयूरभंज, सुन्दरगढ़, सम्भलपुर तथा बोलनगिर जिलों में घने वन पाये जाते हैं। आसाम की भाँति इस प्रदेश में भी स्थानी-फिरती खेती की जाती है जिसको पाडू (Podu) के नाम से
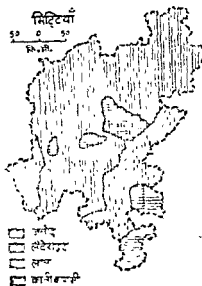
चित्र ७८

पुकारते हैं। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति को तीन—उष्णकटिबन्धीय पर्ण पतझाड़, शब्बू

गोंडवाना किस्म की तथा महानदी एवं ब्रह्मणी नदियों के बीच स्थित क्षेत्रों में पाई जाती है, बिलासपुर में मैंगनीज प्रयस्क तथा चंदनी-डोंगरी मे सीसे की खदानें हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग-धन्धे—यहाँ की जनसंख्या लगभग ७० लाख है। जनसंख्या वितरण पर समतल जमीन, चावल उत्पादन, तथा आधुनिक औद्योगिक विकास का अधिक प्रभाव पड़ा है। नदियो के बरसाती होने के कारण इनके तटो पर कम जनसंख्या पायी जाती है। इसके विपरीत मैदानी भाग घना बसा है। सड़कों, रेलमार्गों, खनिज संसाधनों ने भी मानव बसाव को आकर्षित किया है। यहाँ की जनसंख्या का घनत्व बड़ा असमान है। उदाहरणार्थ दुर्ग में १८१, रायपुर १७३, शक्ति २००, जान्जगिर १८० है। औसत घनत्व ६६ है।

इस प्रदेश मे कुल मिलाकर १३५६६ गांव हैं जिनमे से केवल ७ प्रतिशत गाँवों मे १००० जनसंख्या रहती है। दो-तिहाई गाँवों में ५०० तथा एक चौथाई मे ५०० से १००० लोग निवास करते हैं। इस प्रदेश के शहरों की संख्या ३० है। अधिकांश शहर पहले किलेदार शहर थे परन्तु अब सुरक्षा की गारन्टी हो जाने के कारण संलग्न भागों में बस्तियों में बदलते जा रहे हैं। शहरों में रायपुर (२०५६८६), रायगढ़ (४८०४६), सरनगढ़ (६६८१), शक्ति (१०७५४) तथा राजनांदगांव (५५८२७) के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सम्पूर्ण प्रदेश पूरी तरह से कृषिप्रधान है जहाँ पर कार्यशील जनसंख्या का ८१ प्रतिशत कृषि मे लगे हुए हैं। इस प्रदेश की ४३ प्रतिशत भूमि कृषि के अंतर्गत, ३४ प्रतिशत वनाच्छादित तथा शेष में अन्य भूमि उपयोग होता है। सिंचाई की सतोषजनक व्यवस्था न होने के कारण इस प्रदेश की कृषि मुख्य रूप से प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर रहती है। अब तक लगभग १२ प्रतिशत कृषि भूमि की सिंचाई सम्भव हो पाई है। बोई गई नेट भूमि के लगभग ३१ प्रतिशत मे दो फसलें पैदा की जाती हैं। यहाँ की कृषि उपजों में चावल (५२%), दालें, तिलहन, फल-तरकारी, मूँगफली, रेशे वाली फसलें मुख्य रूप से पैदा की जाती हैं। इस प्रदेश के उद्योग-धन्धे प्राथमिकता के आधार पर कृषि, वन एवं खनिज संसाधनो पर निर्भर हैं। प्रदेश की कुल रजिस्टर्ड फैक्टरियों (६४३) मे से लगभग ३०७ कृषि, १६३ वन एवं ६४ खनिज संसाधनो से अपने कच्चे माल को प्राप्त करते हैं। कृषि पर आधारित उद्योगों मे चावल कूटने, दाल दलने, आटा पीसने तथा कपास की मिलें प्रसिद्ध हैं। वनों से कच्चा माल प्राप्त करने वाले उद्योगों में लकड़ी चीरना, बीड़ी तथा टसर निर्माण विशेष उल्लेखनीय हैं। खनिज उद्योगों मे भिलाई इस्पात उद्योग, चूना पत्थर तथा मैंगनीज की खुदाई महत्त्वपूर्ण हैं। कृषि उत्पादन के लिए इस प्रदेश मे रासायनिक उर्वरक स्थानीय आधार पर प्राप्त होता है।

यातायात एवं परिवहन—इस प्रदेश की प्रमुख रेल शाखाओं मे नागपुर-कलकत्ता, बिलासपुर-कटनी, रायपुर-राजिम, रायपुर-वाल्टेयर, तथा चम्पा-कोरबा शाखाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अधिकाश रेल शाखाएँ चौड़ी हैं। कम दूरियों का परिवहन मोटरो द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रदेश मे ४४०८ कि. मी. सड़कें हैं।

२०. उड़ीसा उच्च प्रदेश

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का क्षेत्रफल ७६,८०० व. कि. मी. तथा विस्तार

को देखते हुए इस प्रदेश में उज्जवल भविष्य की आशाएँ की जा सकती हैं।

२१. दण्डकारण्य प्रदेश

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—दण्डकारण्य का ऐतिहासिक भू-भाग ८६०७८ व. कि. मी. १७°.५०′–२०°.३०′ उत्तरी अक्षांशों एवं ८०°.१५′–८४°.०′ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला हुआ है। उत्तर में छत्तीसगढ़ एवं दक्षिण में आन्ध्र, पश्चिम में महाराष्ट्र पठार तथा पूर्व में पूर्वी तटवर्ती मैदान के बीच इसकी मध्यवर्ती स्थिति है। यह असमान, स्पष्ट ऊँचाइयों तथा निचले भागों से परिपूर्ण है। एक तरफ घने वनाच्छादन तथा दूसरी तरफ गोदावरी तथा कावेरी नदियों का मैदान पाया जाता है। परन्तु पठार की प्रधानता है। जो बस्तर जिले में सबसे स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। पूर्व की तरफ ढाल तीव्र है। भूतकाल में इस भू-भाग को विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है। इस प्रदेश के नदीतंत्र को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। महानदी तन्त्र उत्तरी भाग तथा गोदावरी तंत्र मध्य एवं दक्षिणी भागों में प्रवाहित है। महानदी तन्त्र में तेल, जोन्क, उदन्ती, तथा सन्दूल प्रधान सहायक नदियां हैं। गोदावरी की सहायक नदियों में इन्द्रावती, नारंगी, कोटारी तथा बद्रिया विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन नदियों के पानी का उपयोग कृषि के लिए बहुत कम किया जाता है।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—यहाँ की जलवायु उष्णकटिबन्धीय और गर्मी एवं नमी अधिक पाई जाती है। जून तथा सितम्बर के बीच अधिकांश वर्षा होती है। वर्षा की मात्रा अनिश्चित, अविश्वसनीय तथा वितरण असमान है। घाटियों तथा मैदानी भागों की अपेक्षा ऊँचे क्षेत्रों में अधिक वर्षा होती है। बाढ़ यहाँ की मुख्य समस्या है। मलेरिया का अधिक प्रकोप रहता है। मृत्यु दर अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ की मिट्टियों को जनवीय पदार्थों, ढाल, वनस्पति अंशों एवं स्थिति के अनुसार कई प्रकारों में रखा जा सकता है। शरणार्थियों को बसाने, कृषि विकास एवं विस्तार कार्यक्रमों को लागू करने के कारण बड़े पैमाने पर वनों का विनाश हुआ है, जंगल साफ करके उसे कृषि योग्य बनाया गया है। प्रदेश के लगभग ४० प्रतिशत भू-भाग पर वन और वनों में टीक तथा साल के वृक्षों की प्रधानता है।

खनिज संसाधन—इस प्रदेश में बाक्साइट, लौह अयस्क, चूना पत्थर तथा मैंगनीज के धात्विक भण्डार पाये जाते हैं। बैलाडीला, सिंहभूम, जगदलपुर, रायपुर, कालाहांडी, बस्तर एवं कोरापुट खनिज उत्पादन एवं भण्डार के प्रमुख केन्द्र हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव एवं उद्योग—यह प्रदेश कम घना बसा हुआ है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ४२ लाख है। जनसंख्या का घनत्व केवल ४६ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। इस प्रदेश की अधिकांश जनसंख्या मैदानों, निचले भू-भागों तथा बिखरी हुई ऐसी बेसिनों में केन्द्रित है जहाँ अच्छी उपजाऊ मिट्टी, जल एवं परिवहन के संसाधन उपलब्ध हैं। यहाँ की ८५ प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण परन्तु कहीं-कहीं (बस्तर) यह प्रतिशत ९८ तक पहुँच जाता है। कृषि एवं खनिज उत्पादन इस प्रदेश के लोगों का मुख्य जीविकोपार्जन का साधन है। चावल यहाँ की मुख्य फसल है जो कृषित भूमि के ८३ प्रतिशत भाग पर पैदा किया

कटिबन्धीय नम पतझड़ तथा उष्ण कटिबन्धीय शुष्क पतझड़ में विभाजित किया जा सकता है। वनों मे साल, बाँस, महुवा, खैर, तेन्दू, बेर तथा अनेकानेक प्रकार की घासें पाई जाती हैं जिनका उपयोग प्रदेश में चल रहे लाख, कागज, रेशम, बीड़ी आदि उद्योगों मे किया जाता है।

खनिज संसाधन—खनिज की दृष्टि से प्रदेश धनी है। यहाँ पाये जाने वाले खनिज पदार्थों मे कोयला, लौह अयस्क, अभ्रक, शीशा, ताम्र अयस्क, क्रोमाइट तथा मैंगनीज अधिक प्रसिद्ध हैं। मयूरभंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़ तथा सम्बलपुर के चार जिलों में लगभग सभी खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। बिहार, प. बंगाल तथा मध्यप्रदेश के बाद खनिजोत्पादन मे उड़ीसा का चौथा स्थान है। सम्पूर्ण देश के उत्पादन का ३१% मैंगनीज, ६०% क्रोमाइट तथा ४५% डोलोमाइट इस प्रदेश मे निकाला जाता है। क्योंझर, बोनाई तथा मयूरभंज आदि क्षेत्रों में देश के लगभग ३० प्रतिशत लौह अयस्क का भारी भण्डार संचित है। २० मिलियन टन मैंगनीज के भण्डार के होने की सम्भावना है। उपर्युक्त खनिज पदार्थों के अलावा इस प्रदेश में अस्बेस्टस, बाक्साइट, जिंक, काईनाइट तथा निकल के भी बड़े भण्डार संचित हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव एवं उद्योग—इस प्रदेश के लगभग ७० लाख निवासी हैं। यहाँ की औसत जनसंख्या का वितरण (६०) विरल है। वितरण असमान, अनुकूल स्थानों तथा आर्थिक केन्द्रों तक सीमित है। हीराकुण्ड परियोजना से कृषि मे स्थायित्व आया है तथा कृषि विस्तृत हुई है। प्रति एकड़ उपज मे वृद्धि हुई है। परन्तु मिट्टी के कम उपजाऊ होने एवं उद्योग-धंधों की अधिकता के कारण इस प्रदेश मे कृषि की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है। बोलनगिरी तथा रूरकेला के मध्य ग्रामीण जनसंख्या का अधिक जमाव देखने को मिलता है। ग्रामीण बस्तियों के वितरण मे यहाँ की स्थलाकृति का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। चावल, दालें, ज्वार, बाजरा तथा मक्का प्रधान फसलों के रूप में पैदा किये जाते हैं। प्रत्येक वर्ग के शहरों को मिलाकर इस प्रदेश में २८ शहर हैं। इनका वितरण आर्थिक ससाधनों के अनुरूप तथा असमान है। रूरकेला (१७२,५०२), सम्बलपुर (१०५०८५) तथा सुन्दरगढ़ (१७२४४) में अधिक उद्योग-धन्धों एवं खनन कार्यों के केन्द्रित होने के कारण शहरी जनसंख्या का विकास अधिक हुआ है। इस प्रदेश में सूती वस्त्र-व्यवसाय, खाद्य-पदार्थ-निर्माण, उर्वरक उत्पादन, हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स, एरो-इन्जिन आदि के कारखानें अधिक महत्वपूर्ण हैं।

यातायात एवं परिवहन संसाधन—इस प्रदेश मे परिवहन ससाधनों की कमी है। रेल मार्गों का सबसे पहले निर्माण खनिज उत्पादक क्षेत्रों एवं औद्योगिक केन्द्रों के मध्य कराया गया था। खनिज पदार्थों की ढुलाई इन रेलमार्गों का प्रथम उद्देश्य था। इस प्रदेश मे रेलमार्गों का विकास विभिन्न स्तरों पर एवं असमान रूप से हुआ है। खनिज, वन एवं कृषि उत्पादन सबसे अधिक ढोये जाते हैं। नदियों की संख्या अधिक होने तथा उनमें आये दिन बाढ़ आने के कारण सड़कों का भी विकास असंतोषजनक ही रहा है। इस प्रदेश को राष्ट्रीय सड़क मार्ग नं० ४२ तथा ६ की सेवाएँ उपलब्ध हैं। प्रदेश की किसी भी नदी में जलपरिवहन सम्भव नहीं है। विविध खनिज पदार्थों एवं अन्यान्य कच्चे माल के उत्पादन

खनिज संसाधन—खनिज पदार्थों में लौह प्रयस्क, मैंगनीज, क्रोमियम तथा सोना अधिक उल्लेखनीय हैं। बाबाबूदन की पहाड़ियों में हैमेटाइट किस्म का लौह प्रयस्क तथा शिमोगा और बेलारो में मैंगनीज पाये जाते हैं। उपर्युक्त खनिज पदार्थों के अतिरिक्त तांबा, पाइराइट, सीसा, एन्टीमनी, बाक्साइट, गारनेट, अस्बेस्टस, ग्रेफाइट आदि भी पाये जाते हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग—इस प्रदेश में २.३ करोड़ से अधिक लोग निवास करते हैं तथा जनसंख्या का घनत्व १२६ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है परन्तु वितरण बहुत ही असमान है। कृषि योग्य क्षेत्रों, औद्योगिक केन्द्रों एवं प्रतिष्ठानों में घनत्व सबसे अधिक है। इस प्रदेश की जनसंख्या का लगभग ७८ प्रतिशत भाग ग्रामीण है। जनसंख्या का आधा भाग मध्यम आकार (५००-९९९) के गाँवों में रहता है। शेष छोटे-छोटे गाँवों में। बस्ती प्रकारों में क्षेत्रीय विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश के सम्पूर्ण भू-भाग का लगभग ५४ प्रतिशत फसलोत्पादन में लगा हुआ है। १५.३ प्रतिशत कृषि योग्य बेकार भूमि है, १२ प्रतिशत वनाच्छादित है तथा परती जमीन का प्रतिशत ७ है। फसलोत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत खाद्यान्न पैदा किया जाता है इसके अतिरिक्त कपास, गन्ना, केला, मसाले भी पैदा किये जाते हैं। आधुनिक समय में व्यापार, परिवहन, प्रशासनिक एवं औद्योगिक इकाइयों के विकास के कारण बहुत से शहर विकसित हो रहे हैं। इस प्रदेश में बेलगाँव (२१३,८७२), बीजापुर (१०३९३१), गुलबर्गा (१४५५८८), बंगलौर (१६५३,७७९), भद्रावती (१०१३५८) सबसे प्रसिद्ध शहर हैं। कुल मिलाकर लगभग ३२६ फैक्टरियाँ हैं। जिनसे समस्त कार्यशील जनसंख्या का लगभग २३ प्रतिशत जीविकोपार्जन करती हैं। इसके अतिरिक्त खनन कार्यों में १६ प्रतिशत, शराब, खाद्य, तम्बाकू उद्योगों में १७ प्रतिशत, इंजीनियरिंग १७, लकड़ी तथा पत्थर के सामान बनाने में ७, रसायन उद्योगों से लगभग ४ प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या जीविकोपार्जन करती है। आधुनिक एवं सूक्ष्मतम उद्योगों के लिए बंगलौर तथा मैसूर सबसे प्रसिद्ध हैं। उद्योगों के साथ साथ लघु उद्योगों का भी इस प्रदेश में समान रूप से विकास हुआ है। हैण्डलूम, चटाई निर्माण, लकड़ी के खिलौने, चन्दन तेल, चमड़े का काम विकसित लघु उद्योगों के कतिपय उदाहरण हैं।

यातायात एवं परिवहन—असमान स्थलाकृति के रहते हुए भी सड़क मार्गों का समुचित विकास हुआ है। रेलें बड़े-बड़े एवं प्रमुख केन्द्रों को मिलाती हैं। बंगलौर-मद्रास शाखा रेल की बड़ी लाइन है। इस प्रदेश में ४८,००० कि. मी. पक्की जिसमें से लगभग १५०० कि. मी. राष्ट्रीय सड़कें हैं। बम्बई, मद्रास, तथा दिल्ली से बंगलौर के लिए नियमित उड़ानें हुआ करती हैं।

२३. आन्ध्र का पठार

आन्ध्र राज्य का अधिक क्षेत्र (२०४९९२ व. कि. मी.) जो १२°.१४' से १९°.५४' उ० अ० और ७६°.५०' से ८१°.५०' पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है, इस भौगोलिक प्रदेश में शामिल किया जाता है।

जाता है। अन्य फसलों में तिलहन, मक्का, ज्वार तथा चना हैं। कुल मिलाकर लगभग १४ शहरों में से श्रीकाकुलम् (२५७२८१), जगदलपुर (३६६३२) तथा कोरापुट (२१५०५) विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ की कार्यशील जनसंख्या का लगभग ४६ प्रतिशत कृषि आधारित तथा ३१ प्रतिशत वनाधारित उद्योगों में कार्य करते हैं।

यातायात एवं परिवहन—आर्थिक रूप से पिछड़े होने, देश की मुख्य आर्थिक एवं सांस्कृतिक धारा से अलग होने, तथा प्राकृतिक अवरोधों के कारण यहाँ पर यातायात एवं परिवहन साधनों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। पंचवर्षीय योजना काल में यहाँ की सड़कों के सुधार, विस्तार एवं निर्माण पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। सन् १९६६ में दण्डकारण्य, बोलनगिर होते हुए विशाखापट्टनम् तक रेल मार्ग का विस्तार किया गया था।

२२. कर्णाटक पठार

स्थलाकृति एवं प्रवाहतन्त्र—यह प्रदेश ११°.३६'–१८°.२६' उ० अ० तथा ७४°.३५'–७८°.४०' पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। यहाँ आर्कियन युग से लेकर अब तक की चट्टानें पाई जाती है। इसकी औसत ऊँचाई ६००–९०० मीटर तक है। अधिकाधिक नदियों द्वारा इसका अपरदन हुआ है। मुलानगिरी (१९१३ मीटर) सबसे ऊँची चोटी है। उत्तरी भाग में सतह की ऊँचाई ६०० मी० है। अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के मध्य पश्चिमी घाट मुख्य जल विभाजक का काम करता है। नदीतंत्र अधिकतर वृक्षाकार है। यहाँ के नदीतंत्र तीन हैं गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी। कृष्णा नदी प्रदेश के लगभग ७० प्रतिशत भू-भाग से जल ग्रहण करती है। गोदावरी जलग्रहण क्षेत्र सबसे छोटा है। इस प्रदेश में धार्मिक स्थानों जैसे शृंगेरी, हरिहरपुर, तथा शिमोगा की एक कड़ी-सी बनी हुई है। अधिकांश नदियों पर बाँध बनाकर उनकी आर्थिक उपयोगिता को बहुउद्देशीय बनाया गया है।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—यह प्रदेश उत्तर-दक्षिण में अधिक लम्बा है। मानसून किस्म की जलवायु के साथ-साथ क्षेत्रीय भेद भी देखने को मिलते हैं। पश्चिमी घाट एक शक्तिशाली जलवायु-निर्धारक तत्त्व हैं। इस पर तापमान, वर्षा एवं आर्द्रता का वितरण निर्भर होता है। तापमान फरवरी में बढ़ने लगता है। वह मई तक कायम रहता है। गुलबर्गा, बीजापुर तथा रायचूर में तापमान अधिकतम क्रमशः ४२°, ४०° तथा ४०° से. ग्रे. रहता है। जून में वर्षा के प्रारम्भ होने के साथ-साथ तापमान कम होने लगता है और मानसून के स्थायी हो जाने पर एकाएक गिर जाता है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से (६० प्रतिशत) वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून से होती है। काली, मिश्रित लाल, तथा मिश्रित मिट्टियाँ पाई जाती हैं। बागानी खेती की प्रधानता है। नारियल, काफी, काली मिर्च तथा चाय के बगीचे पाये जाते हैं। पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर उष्ण कटिबन्धीय सदाबहार वनस्पति पाये जाते हैं। मैसूर जिले का ३३ प्रतिशत भू-भाग वनाच्छादित है। पूर्वी भाग में शुष्क पतझड़ वन स्थित है। टीक, साल, चन्दन तथा युकेलिप्टस के वृक्षों की प्रधानता है।

२४ प्रतिशत भू-भाग पर वन पाये जाते हैं। वनाच्छादन बड़ा असमान है। ये नम पतझड़, शुष्क पतझड़, एवं उष्ण कटिबन्धीय कटीले वनों के रूप में पाये जाते हैं। वारंगल, करीम नगर, पश्चिमी गोदावरी में जहाँ अधिक वर्षा होती है नम पतझड़, कम वर्षा वाले क्षेत्रों में शुष्क पतझड़ तथा पहाड़ियों के बाह्य क्षेत्रों में उष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते हैं।

खनिज संसाधन—खनिज प्रकारों की दृष्टि से यह प्रदेश काफी धनी है। यहाँ पर ऐस्बेस्टस, लौह अयस्क, कोयला, अभ्रक तथा चूने के पत्थर भारी मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्लेट, ग्रेफाइट, सोना तथा हीरे की खानें भी महत्वपूर्ण हैं। करीमनगर, वारंगल तथा पश्चिमी गोदावरी में कोयला, रायलसीमा, उत्तरी तेलगाना तथा अनन्तपुर में लौह अयस्क और हैदराबाद, नालगोण्डा तथा गुंटूर आदि जिलों में सीमेन्ट योग्य चट्टानें पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कर्नूल में स्लेट, कोटागुंडम् में काइनाइट तथा क्रोमाइट की भी खानें पाई जाती हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग-धंधे—यहाँ की जनसंख्या लगभग २०,९२३,७८६ है। इसका वितरण वर्षा की मात्रा, स्थलाकृति, मिट्टी की उर्वरा शक्ति, सिंचाई संसाधनों की उपलब्धि तथा खनिज प्राप्ति के अनुसार असमान है। परन्तु औसत जनसंख्या का घनत्व १०२ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। पठारी भागों में घनत्व कम है। उदाहरण के लिए रायलसीमा में घनत्व ६४ तथा गोदावरी में सबसे कम (६२) है। पश्चिमी हैदराबाद में ११७६, विजयवाड़ा में ४०६, वारगल में २५७ तथा चितूर में जनसंख्या का घनत्व २२७ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। यहाँ की कार्यशील जनसख्या का लगभग ७० प्रतिशत कृषि में लगा हुआ है। नेट बोई गई भूमि का प्रतिशत ४० है। इसमें २.५ प्रतिशत दो-फसली जमीन है। १४ प्रतिशत भूमि परती है। ४.३ प्रतिशत भूमि कृषि योग्य बेकार भूमि है। खाद्यान्नों की प्रधानता है। इसमें चावल, ज्वार तथा बाजरा प्रधान फसलें हैं। कपास, तम्बाकू तथा मूंगफली भी सफलतापूर्वक पैदा किए जाते हैं। इस प्रदेश में शहरीकरण का समय निश्चित करना बड़ा ही कठिन है परन्तु इस समय वहाँ की शहरी जनसंख्या का प्रतिशत लगभग १७.२ तथा शहरों की संख्या १३१ है। हैदराबाद सबसे अधिक शहरीकरण (६२.२ प्रतिशत) के प्रभाव में है। इसके प्रतिकूल करीमनगर में शहरीकरण (७ प्रतिशत) सबसे कम है। हैदराबाद (१७९६,३३९) वारगल (२०७,५२०) तथा कर्नूल (१३६,७१०) यहाँ के सबसे बड़े नगरों में से हैं। इस प्रदेश के छोटे शहरों में अब भी कृषि पर आधारित उद्योगों की प्रधानता है। औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ है। इस प्रदेश में मशीनी औज़ार, कृषि यंत्र, घड़ियाँ, साइकिलें तथा उनके हिस्से बनाये जाते हैं। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स की यूनिटों के अतिरिक्त बर्तन निर्माण, सीमेन्ट तथा मुद्रा छपाई के उद्योग भी यहाँ विद्यमान हैं।

यातायात एवं परिवहन—इस प्रदेश में रेल, सड़क, जल एवं वायु मार्गों का उपयोग किया जाता है। कोयला, लौह अयस्क, सीमेंट, मैंगनीज, तिलहन, चीनी तथा खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान को रेलों से लाये जाते हैं। इस प्रदेश में दक्षिण-मध्य तथा दक्षिणी रेल मण्डलों के प्रधान कार्यालय स्थित हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली-मद्रास तथा बम्बई-मद्रास रेल शाखायें इस प्रदेश से होकर गुजरती हैं। इन दो प्रधान शाखाओं के अतिरिक्त काजीपेट,

स्थलाकृति एवं प्रवाह-तंत्र—इस प्रदेश का निर्माण दो प्राकृतिक भागों—घाट तथा समप्राय भूमि में हुआ है। उत्तर में गोदावरी तथा दक्षिण में कृष्णा (१५० कि. मी.) के बीच घाट अनेक स्थानों पर कटा हुआ है। अनेक गोलाकार एवं बिखरी हुई पहाड़ियाँ पाई जाती हैं जिनका अत्यधिक अपरदन हुआ है। पहाड़ी ढालों पर कम वर्षा होने के कारण कम घने वन पाये जाते हैं। पूर्व में आन्ध्र घाटों को छोड़कर शेष पठार उदाहरणार्थ तेलंगाना तथा रायलसीमा नीस चट्टानों पर विकसित समप्राय भूमि है। मध्य तेलंगाना में इस घाट की चौड़ाई सबसे अधिक है। इस प्रदेश में गोदावरी, कृष्णा तथा पेन्नर तीन नदियाँ प्रवाहित होती हैं। केवल तीसरी नदी कर्नाटक पठार से निकलती है अन्यथा गोदावरी तथा कृष्णा पश्चिमी घाट से प्रारम्भ होती हैं। इन नदियों में बरसात तथा सोतों का पानी प्रवाहित होता है। गोदावरी दक्षिणी गंगा के नाम से पुकारी जाती है। पेनगंगा, वर्धा, प्राणहिता तथा इन्द्रावती इसकी सहायक नदियाँ हैं। कृष्णा नदी समप्राय भूमि को तेलंगाना तथा रायलसीमा दो भागों में बाँटती है। तुंगभद्रा तथा मूसी कृष्णा की और चित्रावती तथा पापाग्नी पेन्नर की सहायक नदियाँ हैं।

जलवायु, मिट्टी तथा प्राकृतिक वनस्पति—जलवायु मानसूनी है। यहाँ (१) दक्षिण-पश्चिम मानसून (२) उत्तर-पूर्वी मानसून (३) जाड़े की ऋतु तथा (४) शुष्क एवं गर्म ऋतुएँ पाई जाती हैं। मानसून के सामान्य स्वभावानुसार यहाँ वर्षा की मात्रा आदि में भारी स्थानीय अन्तर पाये जाते हैं। आन्ध्र पठार की अधिकांश मिट्टियाँ स्थानीय चट्टानों से बनी हुई अवशिष्ट (Residual) किस्म की हैं। इनको लाल, काली, लैटेराइट तथा जलोढ़ चार भागों में रखा जा सकता है। इनके वितरण को चित्र ७६ में दिखाया गया है। गोदावरी तथा कृष्णा के बीच रायलसीमा, नेल्लोर तथा गुंटूर जिलों में लाल मिट्टी सबसे बड़े क्षेत्र में पाई जाती है। कपास वाली काली मिट्टी आदिलाबाद, निजामाबाद, तेलंगाना के उत्तरी भाग तथा कर्नूल में सकरी पट्टियों के रूप में पाई जाती है। इसमें चूने के कंकड़ पाये जाते हैं। लैटेराइट मिट्टी अनन्तगिरि पहाड़ियों तथा हैदराबाद जिलों में पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टियाँ कम उपजाऊ होती हैं। गोदावरी, तथा कृष्णा नदियों के किनारे जलोढ़ मिट्टियाँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश के

२४ प्रतिशत भू-भाग पर वन पाये जाते हैं। वनाच्छादन बड़ा असमान है। ये नम पतझड़, शुष्क पतझड़, एवं उष्ण कटिबन्धीय कटीले वनों के रूप में पाये जाते हैं। वारंगल, करीम नगर, पश्चिमी गोदावरी में जहाँ अधिक वर्षा होती है नम पतझड़, कम वर्षा वाले क्षेत्रों में शुष्क पतझड़ तथा पहाड़ियों के बाह्य क्षेत्रों में उष्ण कटिबंधीय वन पाये जाते हैं।

खनिज संसाधन—खनिज प्रकारों की दृष्टि से यह प्रदेश काफी धनी है। यहाँ पर अस्बेस्टस, लौह अयस्क, कोयला, अभ्रक तथा चूने के पत्थर भारी मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्लेट, ग्रेफाइट, सोना तथा हीरे की खानें भी महत्त्वपूर्ण हैं। करीमनगर, वारंगल तथा पश्चिमी गोदावरी में कोयला, रायलसीमा, उत्तरी तेलंगाना तथा अनन्तपुर में लौह अयस्क और हैदराबाद, नालगोण्डा तथा गुन्टूर आदि जिलों में सीमेन्ट योग्य चट्टानें पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कर्नूल में स्लेट, कोटागुडम् में फाइनाइट तथा क्रोमाइट की भी खानें पाई जाती हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग-धंधे—यहाँ की जनसंख्या लगभग २०,६२३,७८६ है। इसका वितरण वर्षा की मात्रा, स्थलाकृति, मिट्टी की उर्वरा शक्ति, सिंचाई संसाधनों की उपलब्धि तथा खनिज प्राप्ति के अनुसार असमान है। परन्तु औसत जनसंख्या का घनत्व १०२ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। पठारी भागों में घनत्व कम है। उदाहरण के लिए रायलसीमा में घनत्व ६४ तथा गोदावरी में सबसे कम (६२) है। पश्चिमी हैदराबाद में ११७६, विजयवाड़ा में ४०६, वारंगल में २५७ तथा चित्तूर में जनसंख्या का घनत्व २२७ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। यहाँ की कार्यशील जनसंख्या का लगभग ७० प्रतिशत कृषि में लगा हुआ है। नेट बोई गई भूमि का प्रतिशत ४० है। इसमें २.५ प्रतिशत दो-फसली जमीन है। १४ प्रतिशत भूमि परती है। ४.३ प्रतिशत भूमि कृषि योग्य बेकार भूमि है। खाद्यान्नों की प्रधानता है। इसमें चावल, ज्वार तथा बाजरा प्रधान फसलें हैं। कपास, तम्बाकू तथा मूंगफली भी सफलतापूर्वक पैदा किए जाते हैं। इस प्रदेश में शहरीकरण का समय निश्चित करना बड़ा ही कठिन है परन्तु इस समय यहाँ की शहरी जनसंख्या का प्रतिशत लगभग १७.२ तथा शहरों की संख्या १३१ है। हैदराबाद सबसे अधिक शहरीकरण (६२.२ प्रतिशत) के प्रभाव में है। इसके प्रतिकूल करीमनगर में शहरीकरण (७ प्रतिशत) सबसे कम है। हैदराबाद (१७६६,३३६) वारंगल (२०७,५२०) तथा कर्नूल (१३६,७१०) यहाँ के सबसे बड़े नगरों में से हैं। इस प्रदेश के छोटे शहरों में अब भी कृषि पर आधारित उद्योगों की प्रधानता है। औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ है। इस प्रदेश में मशीनी औजार, कृषि यंत्र, घड़ियाँ, साइकिलें तथा उनके हिस्से बनाये जाते हैं। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स की यूनिटों के अतिरिक्त वर्तन निर्माण, सीमेन्ट तथा मुद्रा ढलाई के उद्योग भी यहाँ विद्यमान हैं।

यातायात एवं परिवहन—इस प्रदेश में रेल, सड़क, जल एवं वायु मार्गों का उपयोग किया जाता है। कोयला, लौह अयस्क, सीमेन्ट, मैंगनीज, तिलहन, चीनी तथा खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान को लाये ले जाये जाते हैं। इस प्रदेश में दक्षिण-मध्य तथा दक्षिणी रेल मण्डलों के प्रधान कार्यालय स्थित हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली-मद्रास तथा बम्बई-मद्रास रेल शाखाएँ इस प्रदेश से होकर गुजरती हैं। इन दो प्रधान शाखाओं के अतिरिक्त काजीपेट,

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का निर्माण दो प्राकृतिक भागों—घाट तथा समप्राय भूमि से हुआ है। उत्तर में गोदावरी तथा दक्षिण में कृष्णा (१५० कि. मी.) के बीच तट अनेक स्थानों पर कटा हुआ है। अनेक गोलाकार एवं बिखरी हुई पहाड़ियाँ पाई जाती हैं जिनका अत्यधिक अपरदन हुआ है। पहाड़ी ढालों पर कम वर्षा होने के कारण कम घने वन पाये जाते हैं। पूर्व में आन्ध्र घाटों को छोड़कर शेष पठार उदाहरणार्थ तेलंगाना तथा रायलसीमा नीस चट्टानों पर विकसित समप्राय भाग हैं। मध्य तेलंगाना में इस घाट की चौड़ाई सबसे अधिक है। इस प्रदेश में गोदावरी, कृष्णा तथा पेन्नर तीन नदियाँ प्रवाहित होती है। केवल तीसरी नदी कर्नाटक पठार से निकलती है अन्यथा गोदावरी तथा कृष्णा पश्चिमी घाट से प्रारम्भ होती हैं। इन नदियों में बरसात तथा स्रोतों का पानी प्रवाहित होता है। गोदावरी दक्षिणी गंगा के नाम से पुकारी जाती है। मैनगंगा, वर्धा, प्राणहिता तथा इन्द्रावती इसकी सहायक नदियाँ हैं। कृष्णा नदी समप्राय भूमि को तेलंगाना तथा रायलसीमा दो भागों में बाँटती है। तुगभद्रा तथा मूसी कृष्णा की और चित्रावटी तथा पापाग्नी पेन्नर की सहायक नदियाँ हैं।

जलवायु, मिट्टी तथा प्राकृतिक वनस्पति—जलवायु मानसूनी है। यहाँ (१) दक्षिण-पश्चिम मानसून (२) उत्तर-पूर्वी मानसून (३) जाड़े की ऋतु तथा (४) शुष्क एवं गर्म ऋतुएँ पाई जाती हैं। मानसून के सामान्य स्वभावानुसार यहाँ वर्षा की मात्रा आदि में भारी स्थानीय अन्तर पाये जाते हैं। आन्ध्र पठार की अधिकांश मिट्टियाँ स्थानीय चट्टानों से बनी हुई अवशिष्ट (Residual) किस्म की हैं। इनको लाल, काली, लैटेराइट तथा जलोढ़ चार भागों में रखा जा सकता है। इनके वितरण को चित्र ७६ में दिखाया गया है। गोदावरी तथा कृष्णा के बीच रायलसीमा, नेलोर तथा गुंटूर जिलों में लाल मिट्टी सबसे बड़े क्षेत्र में पाई जाती है। कपास वाली काली मिट्टी आदिलाबाद, निजामाबाद, तेलंगाना के उत्तरी भाग तथा कर्नूल में सकरी पट्टियों के रूप में पाई जाती है। इसमें चूने के कंकड़ पाये जाते हैं। लैटेराइट मिट्टी अनंतगिरि पहाड़ियों तथा हैदराबाद जिलों में पाई जाती है। इस प्रकार की मिट्टियाँ कम उपजाऊ होती हैं। गोदावरी, तथा कृष्णा नदियों के किनारे जलोढ़ मिट्टियाँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश के

चित्र ७६

जलोढ़ मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं जिनको चित्र ८१ में दिखाया गया है। अधिकांश मिट्टियों में पोटास, चूना तथा मैगनेसिया की मात्राएँ अधिक हैं। दक्षिणी सह्याद्रि तथा नीलगिरि घने मानसूनी वनों से ढके हुए हैं। इनमें चन्दन, शीशम, नारियल, पालमीरा, पीपल, रोज-वुड प्रधान वृक्ष हैं।

चित्र ८०

खनिज संसाधन—सलेम, तिरुचिरपल्ली तथा दक्षिणी अर्काट में पर्याप्त मात्रा में लौह अयस्क (४०% लौहांश) पाया जाता है। देश के सम्पूर्ण मैगनेसाइट उत्पादन का लगभग ६० प्रतिशत इस क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है। शिवराय पहाड़ियों में बाक्साइट, सलेम तथा कोयम्बटूर में बेरिल, नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा मदुराई में जिप्सम पत्थर के भण्डार हैं। उपर्युक्त खनिज पदार्थों के अलावा अभ्रक, डोलोमाइट, लिमोनाइट, सोना, ग्रेफाइट, पाइराइट तथा चूना पत्थर के भी महत्त्वपूर्ण भण्डार संचित हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग—यहाँ की जनसंख्या १५.७ मिलियन से अधिक तथा लगभग ८० प्रतिशत ४१८८ ग्रामीण बस्तियों में रहती है। जनसंख्या का औसत घनत्व २१२ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है परन्तु यह घनत्व स्थानीय कारकों से प्रभावित होने

वारंगल, वाड़ी, गुंटूर, गुन्टकल, सिकन्दराबाद के मध्य रेल लाइनें बनाई गई हैं। राष्ट्रीय राजमार्ग नं० ७ तथा ६ हैदराबाद शहर होकर गुजरती हैं। इनके अलावा अनेक स्थानीय महत्त्व की सड़कें बनी हुई हैं। गोदावरी तथा कृष्णा नदियाँ पर्याप्त दूरी तक गमनागमन के योग्य हैं। हैदराबाद का बेगमपेट हवाई अड्डा बम्बई, दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता *तथा बंगलौर* के हवाई मार्ग से जुड़ा हुआ है।

२४. तमिलनाडु और दक्षिणी सह्याद्रि

इसका क्षेत्रफल ७४,२५४ व. कि. मी. है जिसमें तमिलनाडु और केरल के भूभाग सम्मिलित हैं।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—धरातल विन्यास को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इतने अपरदन के पश्चात् भी घाटों के अवशेष विद्यमान हैं। पठार का यह हिस्सा दक्षिण में कन्याकुमारी से उत्तर में सतपुड़ा तक फैला हुआ है। कावेरी इस प्रदेश की सबसे प्रसिद्ध नदी है। कावेरी द्वारा कटाव करके निर्मित भू-भाग शेष पठारी भाग से अलग दिखाई पड़ता है। उत्तरी-पश्चिमी पर्वतीय प्रदेश में पश्चिम की तरफ नीलगिरि (२५६० मी.) *तथा* उत्तर में बालाघाट प्रसिद्ध पहाड़ियाँ हैं। दादावेटा (२६३७ मी.) तथा मकुर्ती (२५५४ मी.) प्रमुख चोटियाँ हैं। बालाघाट का क्षेत्रफल ऊँचाई एवं क्षेत्रफल में कम होता गया है। उत्तर-पूर्वी मैदान पलार एवं कावेरी के बीच, सान्तर, दूर-दूर स्थित एवं छोटी-छोटी पहाड़ियों से परिपूर्ण है। उत्तर-पश्चिम की पहाड़ियाँ, जिनकी ऊँचाई ३०५ से ७१० मी. है, ऊँची तथा मैसूर पठार का विस्तार मालूम होती है। कोयम्बटूर उच्च प्रदेश कावेरी नदी के साथ-साथ धीरे-धीरे ऊपर उठता है। *कावेरी घाटी की ऊँचाई ३०० मीटर से अधिक नहीं है।* इसमें बहुत प्राचीनकाल से मनुष्य रह रहा है। इस प्रदेश की नदियाँ परिपक्व तथा आधार तक पहुँच चुकी हैं। कावेरी, पलार, वैगाई तथा परियार प्रदेश की प्रमुख नदियाँ हैं, इनमें से कावेरी सम्पूर्ण प्रदेश से होकर प्रवाहित होती है। सह्याद्रि के पश्चिमी भाग में अनेकानेक जलप्रपात हैं। इस प्रदेश की भौमिकी को चित्र ८० में दिखाया गया है।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति—इस प्रदेश की जलवायु पर, उष्ण कटिबन्धीय स्थिति, स्थलाकृति तथा समुद्र (अरबसागर, बंगाल की खाड़ी) से समीपता का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। न तो ग्रीष्म ऋतु अधिक गर्म और न ही शीत ऋतु ठंडी होती है। दिसम्बर का तापमान वेलोर में १३.४° से. ग्रे. तथा सलेम में १६.०° से. ग्रे. रहता है। न्यूनतम तथा अधिकतम तापमानों का औसत क्रमशः २° से. ग्रे. तथा २४° से. ग्रे. रहता है। वर्षा के हिसाब से इस प्रदेश के दो हिस्से हैं :—(१) उच्च प्रदेश (२) दक्षिणी सह्याद्रि पहाड़ियाँ। वर्षा पूरे वर्ष होती रहती है परन्तु अधिक वर्षा अक्टूबर-नवम्बर में होती है। चक्रवाती तूफानों का भी प्रभाव रहता है। पूरे देश की भाँति इस प्रदेश के वर्ष को भी चार मौसमों में विभाजित किया जा सकता है। घाटियों तथा निचले क्षेत्रों में दुमट और चिकनी तथा कावेरी नदी की उत्तरी घाटी में लाल तथा बलुई मिट्टियाँ पाई जाती हैं। पलाइम, पोलाची तथा उदमलपेट में काली मिट्टी के छोटे-छोटे तथा बिखरे हुए क्षेत्र पाये जाते हैं। उपर्युक्त मिट्टियों के अतिरिक्त इस प्रदेश में लाल दुमट, कपास वाली काली मिट्टी, लैटेराइट तथा

जलोढ़ मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं जिनको चित्र ८१ में दिखाया गया है। अधिकांश मिट्टियों में पोटास, चूना तथा मैगनेसिया की मात्राएँ अधिक हैं। दक्षिणी सह्याद्रि तथा नीलगिरि घने मानसूनी वनों से ढके हुए हैं। इनमें चन्दन, शीशम, नारियल, पालमीरा, पीपल, रोज-वुड प्रधान वृक्ष हैं।

चित्र ८०

खनिज संसाधन—सलेम, तिरुचिरपल्ली तथा दक्षिणी अर्काट में पर्याप्त मात्रा में लौह अयस्क (४०% लौहांश) पाया जाता है। देश के सम्पूर्ण मैगनेसाइट उत्पादन का लगभग ६० प्रतिशत इस क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है। शिवराय पहाड़ियों मे बाक्साइट, सलेम तथा कोयम्बटूर में बेरिल, नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा मदुराई में जिप्सम पत्थर के भण्डार हैं। उपर्युक्त खनिज पदार्थों के अलावा अभ्रक, डोलोमाइट, लिमोनाइट, सोना, ग्रेफाइट, पाइरा-इट तथा चूना पत्थर के भी महत्त्वपूर्ण भण्डार संचित हैं।

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग—यहाँ की जनसंख्या १५.७ मिलियन से अधिक तथा लगभग ८० प्रतिशत ४१८८ ग्रामीण बस्तियों में रहती है। जनसंख्या का औसत घनत्व २१२ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है परन्तु यह घनत्व स्थानीय कारकों से प्रभावित होने

के कारण गुडालूर, कोडाइकनाल तथा देवीकुलम् में १०० ही रह जाता है। केरल की ग्रामीण बस्तियां अपेक्षाकृत बड़ी तथा तमिलनाडु की छोटी हैं। कुल मिलाकर लगभग १०० शहर हैं तथा २०.५ प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती है। केरल स्थित दक्षिणी सह्याद्रि शहरी जनसंख्या से रिक्त है (चित्तूर एक ही शहर है)। सम्पूर्ण शहरी जनसंख्या इन्हीं ६६ शहरों में केन्द्रित है। इस प्रदेश के शहरों को ४ स्तरों में विभाजित किया गया है। कतिपय शहरों के बसने एवं विकास में धार्मिक, सुरक्षात्मक, जल यातायात, सड़कों तथा जलाशय जैसे कारकों ने प्रमुख भूमिका अदा की है। प्रमुख शहरों में कोयम्बटूर
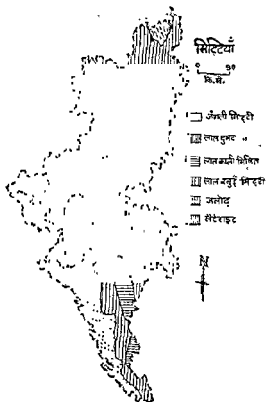
चित्र ८१

(७३६,२०३) सलेम (४१६४४०) वेलोर (१७८५५४), निलाखोटा (६१६४), भावनी (५६६६६), पोलाची (६८,६१५) तथा ऊटकमण्ड (६३३१०) विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रदेश के लगभग ४२ प्रतिशत भू-भाग पर खेती की जाती है। २६ प्रतिशत भू-भाग वनाच्छादित है, ५ प्रतिशत उजाड़ एवं कृषि के लिए अयोग्य, १५ प्रतिशत परती तथा ६ प्रतिशत कृषि योग्य बेकार भूमि के अन्तर्गत है। प्रदेश में अधिकतर चावल, कपास, तिलहन, ज्वार, बाजरा तथा गन्ने की खेती की जाती है। कोयम्बटूर, करूर तथा पालनी तालुकों में सिंचाई

जनसंख्या, मानव बसाव तथा उद्योग—यहाँ की जनसंख्या १६.८ मिलियन से अधिक है। जो १६,००० ग्रामीण बस्तियों तथा १२३ छोटे, ५८ मध्यम एवं १५ बड़े नगरो मे रहती है। यहाँ की अधिक जनसंख्या जलोढ़ मिट्टी तथा तटवर्ती क्षेत्रों में बसी हुई है। जनसंख्या का ७४% ग्रामीण है और क्षेत्रीय आधार पर बदलता जाता है। पश्चिम तथा पूर्व की तरफ बसाव क्रमशः कम घना होता जाता है। कच्छ में जनसंख्या का घनत्व १६ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है जबकि अहमदाबाद (२४७), कैरा (२६१), बड़ोदा (१६६), घने बसे हुए क्षेत्र हैं। प्रदेश का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग कृषि है जिसमें लगभग ७६ प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या जीविकोपार्जन करती है। इसके पश्चात् कुटीर उद्योग (७.३%) मैन्युफैक्चरिंग (७%), व्यापार (५%) के स्थान आते हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया है इस प्रदेश की लगभग ५० लाख (२६%) जनसंख्या शहरों में रहती है और इसका लगभग ५० प्रतिशत ऐसे १५ बड़े शहरों में रहता है जिनकी आबादी ५०,००० से अधिक है। ५८ मध्यम शहरों की जनसंख्या २०,००० से कम है। शहरों के अध्ययन से पता चलता है कि राजस्थान (सीमावर्ती राज्य) की भाँति यहाँ भी अधिकांश बड़े शहर ब्रिटिश शासन के समय भारतीय रजवाड़ों की राजधानियों अथवा औद्योगिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुए हैं। इस प्रदेश में राजकोट (३००६१२), जामनगर (२२७६४०), भावनगर (२२५६७४), अहमदाबाद (१७४१५२२) और सूरत (४६३००१) उल्लेखनीय शहर हैं। प० बंगाल तथा महाराष्ट्र के पश्चात् यह तीसरा औद्योगिक महत्त्व का प्रदेश है। नमक एवं सूती वस्त्र उत्पादन में प्रदेश का क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय स्थान है। इसके अलावा इंजीनियरिंग, वनस्पति तेल, भारी रसायन, सीमेन्ट उर्वरक तथा पेट्रोकेमिकल आदि उद्योगों में भी इसका राष्ट्रीय महत्त्व है। परन्तु कुल मिलाकर इस प्रदेश के औद्योगिक मानचित्र पर सूती वस्त्र-व्यवसाय का बोलबाला है (पाठक भारत के प्रमुख उद्योग नामक अध्याय देखें)। इस प्रदेश मे तापविद्युत् का अधिक उपयोग किया जाता है।

यातायात एवं परिवहन—इस प्रदेश मे ५,००० कि. मी. रेल मार्ग तथा २४,००० कि. मी. पक्की सड़कें हैं। इस प्रकार रेल तथा सड़कों का किलोमीटरेज क्रमशः ३ और १४ प्रति १०० व. कि. मी. है। बम्बई बड़ोदा रेल मार्ग गोधरा होता हुआ दिल्ली तक जाता है। अहमदाबाद-वीरमगाम रत रेल मार्ग की सेवाएँ भी प्राप्त है। तटीय भाग में कोई रेल मार्ग नहीं है। इस प्रदेश के लगभग सभी शहरों को मिलाती हुई सड़कें बनाई गई हैं जिनमें से अधिकांश के बीच राष्ट्रीयकृत सेवाएँ उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय मार्गों में नं० ८ दिल्ली-अहमदाबाद (५१२ कि. मी.) नं० ८ए अहमदाबाद-काण्डला (३६६ कि. मी.) नं० ८ बी बमनबोर-राजकोट-पोरबन्दर (२१८ कि. मी.) की सेवाएँ इस प्रदेश को उपलब्ध हैं।

२६. पश्चिमी तटीय प्रदेश

पश्चिमी तटीय प्रदेश का लगभग ६४,२८४ वर्ग कि. मी. का भू-भाग पूर्व में सह्याद्रि तथा पश्चिम मे अरबसागर के बीच उत्तर से दक्षिण लगभग १४०० कि. मी. लम्बा तथा १० से ८० कि. मी. चौड़ा और ८°-१५' से २०°.२२' उत्तरी अक्षांशों और ७२°.४०' से

७७°.३०' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसमें महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु के तटवर्ती निचले भाग सम्मिलित हैं।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—स्थल विन्यास की दृष्टि से यह एक सकरा, निचला एवं १५०–३०० मी. ऊँची पहाड़ियों से आवरित भू-भाग है। इस सम्पूर्ण भू-भाग का निर्माण बालुका पुलिनो, तटवर्ती बालू के टीलो, कीचड के प्लेटफार्मों, जलोढ़ मिट्टी, लगूनों, लेटेराइट प्लेटफार्मों तथा अपरदित सतहों से हुआ है। सह्याद्रि पहाड़ियाँ ७६० से १२२० मीटर ऊँची, लगातार, तीव्र ढाल युक्त एवं समानान्तर हैं। थाल एवं भोरघाट सह्याद्रि पर्वतमाला को विभाजित करते हैं। अरबसागर की तरफ सह्याद्रि की तीव्र ढाल का निर्माण भंजन क्रिया का परिणाम है। उत्तरी कोंकण या निचला एवं असमान भू-भाग ५३० कि. मी. लम्बा तथा ३०–५० कि. मी. चौड़ा है। यह तटवर्ती प्रदेश उत्तर की तरफ सबसे चौड़ा है। इसके विपरीत दक्षिणी कोंकण चट्टानी तथा ऊबड़-खाबड़ है। ऊँची पहाड़ियाँ हैं और ऊँचे पठार हैं जिनको अनेकानेक नदियों ने काटकर मार्ग बना लिया है। गोवा की स्थिति डेल्टा प्रदेशीय है। उत्तरी कर्नाटक में स्थित इस प्रदेश का हिस्सा सकरा है। इसमें त्रिकोणीय पहाड़ियाँ स्थित हैं। इसके दक्षिण में यह प्रदेश क्रमश. चौड़ा होता जाता है और मंगलोर के पास नेत्रावती घाटी में इसकी चौड़ाई ७० कि. मी. हो जाती है। मलाबार तट ५५० कि. मी लम्बा तथा २०–१०० कि. मी. चौड़ा है। उत्तर की तरफ इसकी चौड़ाई कम होती जाती है। इस प्रदेश में असंख्य, छोटी, तेज तथा आपस में समानान्तर प्रवाहित होने वाली नदियाँ पश्चिम की तरफ अरब सागर में गिरती हैं। इस प्रदेश की नदियों में वैतरणी, सावित्री, वाशिष्ठी, कालिन्दी, तथा पेरियार प्रमुख हैं। मलाबार की नदियाँ कुल मिलाकर २००० कि मी. (२०%) तक जल गमनागमन के योग्य हैं।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति—इस प्रदेश में पूरे वर्ष तापमान अधिक रहता है। औसत मासिक अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः ३२° तथा २१° से. ग्रे. के बीच रहता है। वर्षा सर्वत्र अधिक होती है। कोंकण में २८० से. मी. कर्नाटक में ३१० से. मी. तथा केरल में २४० से. मी. वर्षा होती है। अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर तक होती है। मंगलोर (केरल) के पास वर्षा ९ महीनों तक होती है। वर्ष में दो बार (जून-जुलाई तथा अक्टूबर-नवम्बर) अधिकतम वर्षा होती है। जून के प्रथम सप्ताह में द. प. मानसून प्रारम्भ हो जाता है। इसके साथ अरब सागर से प्रारम्भ होने वाले चक्रवात भी लगे रहते हैं। इस प्रदेश में हवा की सबसे अधिक गति १३० कि. मी. प्र. घ.) कोलाबा और (१५० कि. मी. प्र. घं.) जुहू में अंकित की गई है। प्रदेश में सात—बलुई, जलोढ़, कोर्स बलुई, लाल, पीट, काली तथा जंगली किस्म की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। इस प्रदेश में उष्ण कटिबन्धीय नम सदाबहार तथा मानसूनी नम पतझड़ के वन अधिक पाये जाते हैं। टीक तथा बाँस प्रधान वृक्ष हैं। इनके अलावा कोकोनट, मैंग्रोव, दलदली वनस्पति, तथा खजूर के वृक्षों की अधिकता है।

जनसंख्या, मानव बसाव एवं उद्योग—प्रदेश की कुल जनसंख्या २५ करोड़ से भी अधिक तथा घनत्व ३६४ व्यक्ति प्र. व. कि. मी. है। सबसे अधिक मानव अधिवास चावल

की पर्याप्त व्यवस्थाएँ की गई हैं। सिंचाई योजनाओं में पेरियार परियोजना सबसे प्रसिद्ध है। शक्ति संसाधनों के विकास के कारण औद्योगिक दृष्टि से यह प्रदेश अधिक विकसित है। कोयम्बटूर में प्रदेश की लगभग ३२ प्रतिशत फैक्ट्रियाँ स्थित हैं। इनमें ५५ प्रतिशत श्रमिक कार्य करते हैं। बड़े पैमाने पर चलाये जा रहे उद्योगों में सूती वस्त्र व्यवसाय, इंजीनियरिंग, खाद्य उद्योग, रसायन तथा कृषि संबंधित हैं। इन उद्योगों में सम्पूर्ण श्रमिक जनसंख्या के क्रमश: ४०,१६,१३,६ तथा ४ प्रतिशत मजदूर कार्य कर रहे हैं। इन उद्योगों के अलावा बागानी व्यवसायों, जैसे काफी, चाय, सिन्कोना, का भी पर्याप्त विकास हुआ है। सलेम में लौह एवं इस्पात उद्योग की भी स्थापना की गई है। इस प्रदेश का लघु उद्योग बहुत विकसित है जिनमें हैण्डलूम, खाद्य सामग्री निर्माण, छपाई, हल्की इंजीनियरिंग, धातु पर पच्चीकारी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

यातायात तथा परिवहन—प्रतिकूल स्थलाकृति के कारण इस प्रदेश में सड़कें अपेक्षाकृत कम हैं। इसलिए बड़े-बड़े आर्थिक एवं प्रशासनिक केन्द्रों को मिलाने वाली सड़कों एवं रेल मार्गों को अनावश्यक अधिक दूरियाँ तय करनी पड़ती हैं। दक्षिण के ऊँचे भाग में सबसे अधिक सड़कों का विकास हुआ है। उत्तरी-पश्चिमी पर्वतीय तथा दक्षिणी सह्याद्रि पहाड़ी क्षेत्रों में गम्यता सबसे कम है। अधिकांश क्षेत्र रेल मार्ग से १६ कि. मी. दूर हैं। कन्याकुमारी जिले में भी रेल मार्ग नहीं है। कोयम्बटूर शहर मद्रास, मदुराई, कोचीन तथा तिरुचिरपल्ली से वायु मार्ग से जुड़ा हुआ है।

२५. गुजरात प्रदेश

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—यह प्रदेश (१७६,३२० व. कि. मी.) २०°.१′–२४°.७′ उत्तरी अक्षांशों तथा ६८°.४′–७४°.४′ पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला हुआ है। इस सम्पूर्ण प्रदेश में छोटे प्रायद्वीप, खाड़ी द्वीप, दलदल, पहाड़ियाँ, पठार, तटीय पट्टियाँ, जलोढ़ तथा सकरी खाड़ियाँ जैसी अनेक प्रकार की भौगोलिक आकृतियाँ सम्मिलित हैं। गुजरात का पूर्वी भाग दक्षिण के भारतीय पठार में सिन्धु-गंगा के मैदान का प्रक्षेपित भाग कहा जा सकता है। इस प्रक्षेपित जलोढ़ का जन्म विस्तृत प्लीस्टोसीन युग में जमाव क्रिया से हुआ है। जमाव की यह प्रक्रिया गंगा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी डेल्टा प्रदेशों की भाँति अब भी क्रियाशील है। साबरमती, ताप्ती, माही, नर्मदा तथा इनके साथ अन्य अनेक नदियों ने इसकी निर्माण प्रक्रिया को अब तक अक्षुण्ण रखा हुआ है। गुजरात के उत्तर में कच्छ का रन स्थित है। यह ज्वार-भाटे का प्रदेश रहा है। जीवित सकरी खाड़ियाँ इसको मैं मूलाधार लगती हैं। गुजरात के पूर्वी भाग में अरावली पहाड़ियाँ स्थित हैं। राजपीपला, परतेगिया, गिरनार अन्य सुप्रसिद्ध पहाड़ियाँ हैं। स्थल विन्यास की दृष्टि से इस प्रदेश को चार—रन, कच्छ प्रायद्वीप, प्रायद्वीपीय भारत तथा गुजरात जलोढ़ प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रदेश की नदियाँ विविध प्रवाह का निर्माण करती हैं। अधिकांश नदियाँ कच्छ के रन में विलीन होती हैं अथवा खम्भात की खाड़ी या अरबसागर में गिरती हैं।

जलवायु, मिट्टी एवं वनस्पति—यह उत्तर में भारतीय रेगिस्तान तथा दक्षिण में

अरब सागर से घिरा हुआ है। ग्रीष्म के अधिकतम तापमान का वितरण ३७°-४३° से. ग्रे. के मध्य और अधिकांश भागों में जाड़े का तापमान २०° से. ग्रे. रहता है। इस प्रदेश के दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम में १५० से. मी., तथा उत्तरी-पूर्वी भाग में जो राजस्थान से संलग्न है केवल ५० से. मी. वर्षा होती है। स्थलाकृति एवं चलने वाली हवाओं की दिशाओं से मौसमिक वर्षा (असमान एवं अनिश्चित) का वितरण निर्धारित होता है। दक्षिण में अधिक (७०-१५० से. मी.) तथा उत्तर (५०-१०० से. मी.) और पश्चिम (४०-८० से. मी.) में कम वर्षा होती है। परन्तु वार्षिक वर्षा का औसत ३० से १५० से. मी. के बीच बदलता रहता है। मिट्टियों को ६ प्रकारों—गहरी काली, तटीय जलोढ़, जलोढ़-बलुई, बलुई जलोढ़, मध्यम काली तथा रेगिस्तानी में विभाजित किया गया है। (चित्र ८२) इनके अतिरिक्त कतिपय बिखरे हुए स्थानों पर लाल तथा पीली मिट्टियों का पाया जाना भी अपवाद नहीं है। समस्त कृषित भूमि का १० प्रतिशत सिंचित है। ज्वार, बाजरा, चावल, गेहूँ मुख्य रूप से उगाये जाते हैं। कटीली झाड़ियां यहां की प्रदेशीय एवं प्राकृतिक वनस्पति है। इनके अलावा नम, पतझड़, कटीली, तथा बेलांचली किस्म के वन भी पाये जाते हैं।

चित्र ८२

खनिज संसाधन—चूना का पत्थर, मैंगनीज, बाक्साइट, लिग्नाइट, जिप्सम, कालसाइट, डालोमाइट यहाँ की प्रसिद्ध खनिज संपदाएं हैं। खनिज तेल तथा गैस की खोज कर लिये जाने के कारण आसाम के बाद यह दूसरा महत्त्वपूर्ण तेल प्रदेश बन गया है। समूचे समुद्र तट प्रदेश में खनिज तेल के अपार भण्डार पाये जाने की सम्भावनाएँ हैं। अब तक इस प्रदेश में लगभग २०० तेल कुओं की खुदाई हुई है जिनमें १७० से तेल तथा १३ से गैस प्राप्त होती है। शेष अनुपयोगी हैं।

उत्पादक जलोढ़ मिट्टी क्षेत्रों अथवा मंगलोर, इर्नाकुलम्, तथा त्रिवेन्द्रम जैसे बड़े-बड़े नगरों के आसपास है। क्षेत्रीय आधार पर मलाबार तट पर जनसंख्या सबसे घनी (७००) तथा कर्नाटक तट पर सबसे कम (२००) बसी है। इस प्रदेश की लगभग ३२ प्रतिशत जनसंख्या शहरी है जिसका वितरण बहुत असमान है। उदाहरण के लिए रत्नगिरि में ६ प्रतिशत, थाना में ३० प्रतिशत, तथा बम्बई में १०० प्रतिशत, शहरी जनसंख्या निवास करती है। प्रदेश की लगभग ५० प्रतिशत शहरी जनसंख्या केवल बम्बई में केन्द्रित है। क्षेत्रीय आधार पर कृषि प्रमुख धंधा है। रत्नगिरि में ७५ प्रतिशत, कोलाबा में ६६ प्रतिशत तथा बम्बई में एक प्रतिशत से भी कम व्यक्ति कृषि से अपनी जीविका कमा रहे हैं। इस प्रदेश के लगभग ४५ प्रतिशत भू-भाग पर खेती की जाती है। इसके अलावा ३० प्रतिशत जमीन वनाच्छादित, ६ प्रतिशत कृषि योग्य बेकार भूमि तथा १३ प्रतिशत कृषि के लिए अयोग्य भूमि है। कृषि के अन्दर भूमि का प्रतिशत कन्या कुमारी (६०%), त्रिचूर (५०%), द० कनारा, त्रिवेन्द्रम तथा अलेप्पी (८६%) है। थाना, उत्तरी कनारा, कोट्टायम् तथा त्रिचूर में वनाच्छादन अधिक है। इस प्रदेश के लोगों का मुख्य धंधा खेती है। इस प्रदेश की कृषि से चावल, गन्ना, नारियल, रबर, चाय, कहवा, दालें, पान, मसाले, तथा सब्जियाँ बड़े पैमाने पर पैदा किये जाते हैं। कोंकण, कर्नाटक तथा अन्य क्षेत्रों में सिंचित भूमि का प्रतिशत बहुत कम है। औद्योगिक दृष्टि से इसको दो प्रधान क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है: (१) बम्बई तथा उसके आसपास (२) केरल निचला प्रदेश।

(१) प्रथम औद्योगिक पेटी में लगभग ३५०० फैक्ट्रियाँ हैं जिनमें लगभग १० लाख श्रमिक जीविकोपार्जन करते हैं। इस पेटी में चल रहे उद्योगों को चोला ताप बिजली घर, ट्राम्बे ताप बिजलीघर, तारापुर अणुशक्ति केन्द्र, खोपाली जल विद्युत्, भिवपुरी, भीमा तथा कोयना से शक्ति प्राप्त होती है। इस पेटी में सूती वस्त्र, रसायन, सामान्य इंजीनियरिंग तथा रेशम के सबसे प्रमुख उद्योग हैं। चावल कूटने, नमक बनाने, मछली पकड़ने, नौका निर्माण, तथा कागज, आदि अन्यान्य क्षेत्रीय महत्त्व के उद्योग हैं। दक्षिणी कनारा में नारियल का तेल, काफी निर्माण, आटोमोबाइल कार्यशाला, धातु उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, साबुन, रसायन, चावल, तेल, तम्बाकू, तथा बीड़ी निर्माण से संबंधित उद्योग अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(२) केरल के निचले क्षेत्र में मुख्य रूप से कृषि पर आधारित एवं लघु उद्योगों की अधिकता है। इन उद्योगों में लगभग ६५,००० श्रमिक कार्य करते हैं। वनों पर आधारित उद्योगों में लकड़ी चीरना, फर्नीचर बनाना, प्लाईवुड बनाना तथा कागज उद्योग सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त उद्योगों के अलावा इस प्रदेश में जलयान निर्माण, अल्युमुनियम, सीमेन्ट तथा उर्वरक उत्पादन के राष्ट्रीय स्तर के उद्योग स्थित हैं।

यातायात एवं परिवहन संसाधन—बम्बई, मंगलोर तथा केरल के निचले क्षेत्रों को छोड़कर इस प्रदेश में पर्याप्त एवं कुशल परिवहन व्यवस्था की कमी है। सँकरे स्थलखण्डों एवं एकाएक टूटी हुई पहाड़ियों के कारण रेल तथा सड़क मार्गों का निर्माण संतोषजनक ढंग से नहीं हो पाया है। इस प्रदेश में १२१५ कि. मी. रेल मार्ग है। बम्बई रेल मार्गों

का केन्द्र है तथा यहाँ से तीन दिशाओं में रेलें जाती हैं। सड़कों का घनत्व अपेक्षाकृत अधिक (२४ कि. मी. प्रति १०० व. कि. मी.) है। केरल में यह घनत्व सबसे अधिक ५० कि. मी. प्रति १०० व. कि. मी है। जबकि यहाँ पक्की सड़कों की लम्बाई १७,२५२ कि. मी. है। इस प्रदेश में लगभग २०२० कि. मी जल यातायात की भी सुविधाएँ प्राप्त हैं। बन्दरगाहों तथा समुद्री यातायात की दृष्टि से यह प्रदेश काफी विकसित है। (पाठक परिवहन एव व्यापार अध्याय देखें)।

२७. पूर्वी तटवर्ती मैदान

यह सम्पूर्ण प्रदेश ८°.२२' से १३°.१३'३०" उत्तरी अक्षांशों तथा ७७°.३०'३०" से ८७°.२०' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल १०२,८८२ व. कि. मी. तथा जनसंख्या लगभग ३५ मिलियन है। पश्चिमी तट के प्रतिकूल यह तटवर्ती मैदान काफी विस्तृत और चौड़ा है। गंगा के डेल्टा की भाँति इस प्रदेश के मैदानी भाग का निर्माण महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियों से हुआ है।

स्थलाकृति एवं प्रवाहतंत्र—इस प्रदेश का निर्माण मुख्य रूप से आधुनिक एवं टरशियरी मेराईन अवसादों एवं जलोढ से हुआ है। परन्तु आर्चियन युग की नीस तथा बालू की चट्टानें भी अपवाद नहीं हैं। उत्तर में सुवर्ण रेखा तथा दक्षिण में कन्याकुमारी के बीच धीरे-धीरे मैदान ऊँचा होता जाता है और पूर्वी घाट में अंततोगत्वा विलीन हो जाता है। यह मैदान डेल्टा प्रदेशों में चौड़ा परन्तु दो डेल्टाओं के बीच सँकरा हो गया है। प्रशासनिक आधार पर इसको उड़ीसा, आन्ध्र एव तमिलनाडु तटवर्ती मैदानों में बाँटा जा सकता है। इसकी तट रेखा अप्रत्याशित रूप से सीधी है और यहाँ पर बालू पुलिन, शिंगिल तथा सैण्ड-बारस स्थित हैं। इस तट का सबसे प्रसिद्ध पुलिन मद्रास का मरीना है। तटवर्ती क्षेत्र एक अत्यधिक उदास मैदान है जिसकी ऊँचाई धीरे-धीरे पश्चिम की तरफ बढ़ती जाती है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियाँ समुद्र की तरफ चौड़ी, छिछली तथा परिपक्व घाटियों का निर्माण करती हैं। इस प्रदेश में सान्तर, बिखरी हुई तथा छोटी-छोटी अनेक पहाड़ी चोटियाँ पाई जाती हैं। सबसे ऊँची चोटी केचीमलाई २४० मीटर है।

जलवायु, मिट्टी एवं प्राकृतिक वनस्पति—प्रदेश की जलवायु गर्म उष्ण कटिबन्धीय है। भीषण गर्मी, कम दैनिक तापान्तर, अधिक आर्द्रता, तथा मध्यम वार्षिक वर्षा होती है। कृष्णा डेल्टा के उत्तर में उष्ण कटिबन्धीय सवन्ना किस्म की (Aw) कृष्णा डेल्टा से वैपार तक उष्ण कटिबन्धीय नम एवं शुष्क, इसके दक्षिण उष्ण कटिबन्धीय मानसून (Amw) तथा पश्चिम की तरफ आतंरिक क्षेत्रों में स्टेप्स (Bshw) किस्म की जलवायु पाई जाती है। फरवरी के अंत से मई तक तापमान लगातार बढ़ता रहता है। मई उष्णतम महीना होता है। पुरी में ३१° से. ग्रे., मसुलीपट्टणम में ३५° से. ग्रे. तथा मद्रास में ४०° से. ग्रे. तापांकन होता है। दैनिक तापान्तर कम रहता है। वार्षिक वर्षा की मात्रा तट से (१४०–१७० से. मी.) पश्चिम के आतंरिक क्षेत्रों में (७०–८० से. मी.) कम होती जाती है। पूरे वर्ष हवाओं की गति सामान्य रहती है परन्तु मानसून के दिनों में हवाओं की गति अप्रत्याशित ढंग से बढ़ जाती है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से

चलोढ़ मिट्टी पाई जाती है। इसके साथ लाल, काली, तथा लैटेराइट मिट्टियाँ भी पाई जाती हैं। तमिलनाडु के एक बड़े हिस्से में तथा श्रीकाकुलम्, विशाखापट्टणम्, तथा पूर्वी गोदावरी, कृष्णा, गुन्टूर तथा नेलोर क्षेत्रों में लाल मिट्टी पाई जाती है। काली मिट्टी बिखरी हुई पाई जाती है जिसके लिए कृष्णा, पश्चिमी गोदावरी, नेलोर, मदुराई तथा गुन्टूर अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रदेश का बहुत छोटा भाग वनाच्छादित है। इसके अधिकांश भू-भाग पर कृषि की जाती है। प्राकृतिक वनस्पति में पुलिन वन, दलदली वन, तथा कटीली झाड़ियाँ अधिक उल्लेखनीय हैं। इस प्रदेश के वनों को निम्न तीन प्रकारों में रखा जाता है (१) उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र पतझड़ वन गंजाम्, पुरी, कटक, श्रीकाकुलम्, विशाखापट्टनम्, पूर्वी तथा पश्चिमी गोदावरी जिलों में पाये जाते हैं (२) पुलिन वन कटक, बालासोर, कृष्णा, गुन्टूर तथा नेलोर जिलों में सकरी पट्टियों में पाये जाते हैं (३) कटीले वनों की प्राप्ति सम्पूर्ण तमिलनाडु के तटवर्ती क्षेत्र में होती है।

जनसंख्या, मानव अधिवास तथा उद्योग—इस प्रदेश की कुल जनसंख्या ३३,१८५,७२० तथा घनत्व ३४२ प्र. व. कि. मी. है। देश का ३.२ प्रतिशत क्षेत्र तथा १२.४८ प्रतिशत जनसंख्या यहीं पाई जाती है। स्थानीय एवं क्षेत्रीय आधारों पर जनसंख्या के असमान घनत्व पर मिट्टी की उर्वरा शक्ति, जलपूर्ति, भूमि उपयोग पद्धतियों, तथा इसी प्रकार के अन्यान्य भू-आर्थिक कारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। यहाँ जनसंख्या का लगभग ८० प्रतिशत भाग ग्रामीण बस्तियों में रहता है। तटीय क्षेत्र (पांडिचेरी तथा नागापट्टनम् के मध्य) में गाँवों का घनत्व ३०० प्र. व. कि. मी. है। दक्षिण में कावेरी डेल्टा तथा ताम्रपर्णी घाटी के बीच, जहाँ मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है और वर्षा भी कम होती है, ग्रामीण घनत्व बहुत कम, लगभग १५० प्र. व. कि. मी है। इस प्रदेश की अधिकांश बस्तियाँ सड़कों, रेल मार्गों तथा नदी तटों के सहारे रेखाकार बसी हुई हैं। संहृत बस्तियों की भारी कमी है। तमिलनाडु के गाँव अभिकेन्द्रित एवं संहत हैं। तमिलनाडु मैदान में पैदा की जाने वाली फसलों में चावल, दालें, गन्ना, कपास, तथा मूँगफली सबसे प्रसिद्ध हैं। महानदी डेल्टा प्रदेश में जूट सबसे प्रसिद्ध रेशेवाली फसल है। तमिलनाडु मैदान में सबसे अधिक सिंचाई कावेरी डेल्टा में होती है। इस प्रदेश में नहरों की प्रधानता है और सम्पूर्ण सिंचित क्षेत्र का ७५ प्रतिशत इन्हीं से सींचा जाता है। इस तटवर्ती प्रदेश में सबसे प्रमुख फसल चावल है और उद्योग-धंधा खेती है। ७० लाख अथवा लगभग २० प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है। तमिलनाडु का तटवर्ती क्षेत्र सबसे अधिक शहरीकृत है। सड़कों, रेलों के जाल बिछने के साथ-साथ यहाँ पर आर्थिक विकास की गति बड़ी तेज है। उड़ीसा तटवर्ती प्रदेश में शहरीकरण की दो पेटियाँ—कटक-भुवनेश्वर तथा दूसरी पेटी बहरामपुर-छत्रपुर तथा गोपालपुर है। आंध्र क्षेत्र में विशाखापट्टनम् तथा इसके आसपास के क्षेत्र में शहरीकरण सबसे अधिक हुआ है। इसको राजमुन्द्री-काकीनाडा-विशाखापट्टनम् पेटी के नाम से पुकारा जाता है। शहरों में भुवनेश्वर (१०५४९१), विशाखापट्टनम् (३६३,४६७) मसुलीपट्टम (११२६१२) काकीनाड़ा (१६४२००), राजमुन्द्री (१६५६१२), नेलोर (१३३५६०), मदुराई (७११५०१) विशेष उल्लेखनीय हैं। औद्योगिक कच्चे माल की अत्यधिक कमी है इसलिए इस प्रदेश में कोई भारी औद्योगिक प्रतिष्ठान स्थापित नहीं किया

जा सका है। हाल ही में विशाखापट्टनम् में एक लौह एवं इस्पात उद्योग की स्थापना का कार्यारम्भ किया गया है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में चावल कूटने, सूती मिलें, सीमेन्ट तथा जहाजरानी उद्योग, टाइपराइटर, केल्कुलेटर, टेलीप्रिन्टर्स तथा फिल्म प्रोजेक्टर्स के निर्माण के अनेक प्रतिष्ठान हैं। इस सम्पूर्ण प्रदेश में सात औद्योगिक पेटियाँ हैं : (१) कटक तथा आसपास (२) विशाखापट्टनम् एवं राजमुन्द्री के बीच (३) मद्रास तथा समीपस्थ (४) तेवेली (५) तिरुचिरपल्ली (६) मदुराई (७) तूतीकोरन है।

यातायात एवं परिवहन—सभी परिवहन मार्ग उत्तर से दक्षिण तट के समानान्तर बनाये गये हैं। यहीं से सड़क एवं रेल मार्ग अन्दर प्रदेश में जाते हैं। राष्ट्रीय सड़क मार्ग नं० ५ कटक होती हुई मद्रास तथा कलकत्ता को मिलाती है। राष्ट्रीय सड़क मार्ग नं० ७ तथा ४५ दक्षिण में तिरुचिरपल्ली, मदुराई तथा केप कमोरिन को जोड़ते हैं। इस प्रदेश की प्रधान नदियों तथा उनकी सहायक नदियों पर पुल बनाकर सभी शहरों को सड़क मार्गों से जोड़ने की योजना कार्यान्वित की जा रही है। कटक का सम्बन्ध बालासोर तथा सम्भलपुर से और पाराद्वीप बन्दरगाह से प्रदेश का आंतरिक क्षेत्र जोड़ा जा रहा है। कटक एवं मद्रास के बीच रेल मार्ग हैं। वर्षा के दिनों में नदियों में बाढ़ आने तथा मार्गों के टूटने के कारण कलकत्ता और मद्रास के बीच सीधा परिवहन रुक जाया करता है। कटक जिले में नहरों से यातायात का काम लिया जाता है। इन नहरों में तालाडण्डा, केन्द्रपारा, गोबरी, तथा हाई कैनाल न० १ तथा २ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और इनके माध्यम से नमक, अनाज, ईंधन की लकड़ी, एक स्थान से दूसरे स्थान को ढोये जाते हैं। भुवनेश्वर हवाई मार्ग द्वारा मद्रास, कलकत्ता, हैदराबाद तथा विजयवाड़ा से जुड़ा हुआ है। कृष्णा-गोदावरी प्रदेश में भी छोटी-बड़ी मिलाकर २३ नहरें हैं। मद्रास सबसे शक्तिशाली परिवहन केन्द्र है जहाँ पर राष्ट्रीय सड़क मार्ग नं० ४ बम्बई तथा बंगलौर को मिलाती है। न० ४६ वेलोर को जोड़ती है। उपर्युक्त सड़कों के अतिरिक्त अन्य अनेक राष्ट्रीय, राज्यीय एवं जिलास्तर की सड़कें इस प्रदेश के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण शहरों को मिलाती है। उत्तरी भाग में रेल सेवाएँ अपेक्षाकृत दक्षिणी भाग की तुलना में अच्छी हैं। मद्रास में—अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा होने के कारण यह भारत तथा विश्व के अन्य भागों से जुड़ा हुआ है। मदुराई तथा तिरुचिरपल्ली में भी हवाई सुविधाएँ प्राप्त हैं।

२८. भारतीय द्वीप समूह

भारत में द्वीपों के दो समूह पाये जाते हैं। एक लक्षद्वीप, मिनीकाय तथा आमिन द्वीप समूह अरबसागर में (८° से १२°.२०′ उत्तरी अक्षांशों तथा ७१°.४५′ से ७४° पूर्वी देशान्तरों के बीच) और दूसरा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में (६°.४५′ से १३°.४५′ उत्तरी तथा ९२°.१०′ से ९४°.१५′ पूर्वी देशान्तरों के मध्य) स्थित हैं। इनकी स्थलाकृति अलग-अलग है। सब मिलाकर द्वीपों की संख्या २४७ है। अरब सागर के द्वीपों की संख्या २५, औसत ऊँचाई ३–५ मीटर तथा सम्पूर्ण क्षेत्र १०८.७८ व. कि. मी. है। शेष द्वीप बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं। सबसे अधिक ऊँचाई ७५० मीटर, तथा क्षेत्रफल ८३२६.९५ व. कि. मी. है।

२९. अरब सागरीय द्वीप

स्थलाकृति एवं अपवाहतंत्र—लक्षद्वीप भारत के दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर में स्थित है। पश्चिम में मुख्य रूप से सँपून तथा पूर्व में अपेक्षाकृत तीव्र ढाल है। अधिकांश द्वीप प्रवालनिर्मित हैं। जिनका जमाव ज्वालामुखी चोटियों के आसपास हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले इनका उभार छिछले अण्डाकार बेसिन के रूप में सतह तक हुआ होगा और फिर रीफ के संरक्षण में पूर्वी छोर धीरे-धीरे केन्द्र की तरफ बढ़ा होगा और उससे द्वीप की रचना हुई होगी। यह प्रक्रिया अभी जारी है। उत्तरी द्वीपों को सामूहिक रूप से अमिन द्वीप समूह के नाम से पुकारा जाता है। शेष को लक्ष द्वीप का नाम दिया जाता है। सबसे दक्षिण में मिनीक्वाय स्थित है। इन द्वीपों की आपसी दूरी ३१ कि. मी. से लेकर १७५ कि. मी. तक है। मिनीक्वाय सबसे बड़ा, (४.५३ व. कि. मी.) तथा सबसे अधिक विकसित द्वीप है। नौसैनिक दृष्टि से यह काफी महत्वपूर्ण है। सन् १८८५ में यहाँ एक प्रकाश स्तम्भ तथा १८६१ में मौसम वेधशाला की संस्थापना की गयी थी। *जलवायु में अधिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। पूरे वर्ष का वेट बल्व तापमान* कभी भी २४° से. ग्रे. के नीचे नहीं आता है। सापेक्ष आर्द्रता ७२ प्रतिशत रहती है। मिनीक्वाय में अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः ३६.७° से. ग्रे. और १७.२° से. ग्रे. अंकित किया गया है। औसत वार्षिक वर्षा २५५० मि. मीटर है, नीचे की तरफ कांग्लोमरेट की सतह पाई जाती है। *प्रवाल शैल वैसे तो काटने में आसान होते हैं परन्तु यदि उनको हवा में* रख दिया जाय तो कठोर हो जाते हैं। प्रवाल चट्टानें इमारती पत्थर का काम देती हैं। नारियल एवं खजूर बड़ी आसानी एवं बड़े पैमाने पर उगते हैं। चूहों से इन फलों को बड़ी क्षति होती है क्योंकि चूहे पेड़ पर चढ़ जाते हैं और उसी पर रहकर फलों को नष्ट करते रहते हैं। इनसे बचने के लिए *बिल्लियों, चीलों तथा विषरहित सांपों की सहायता ली* जाती रही है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में चूहों के विनाश कार्यक्रम को बड़े पैमाने पर लागू किया गया था। एक अनुमान के अनुसार चूहों से प्रति वर्ष २० से ३० प्रतिशत कृषिजन्य पदार्थ नष्ट हुआ करते थे।

जनसंख्या, मानव अधिवास तथा उद्योग-धन्धे—भारत के इस द्वीपीय भू-भाग के केवल २५ प्रतिशत पर जनसंख्या पाई जाती है। इन द्वीपों की सम्पूर्ण जनसंख्या ३१,८१० है जिनमें से लगभग २३ प्रतिशत शिक्षित हैं। इन द्वीपों में कुल मिलाकर ३६ शैक्षणिक संस्थान हैं जिनमें मुफ्त पढ़ाई होती है। ५२ प्रतिशत जनसंख्या कार्यशील है। और इनमें भी लगभग ८३ प्रतिशत कुटीर उद्योगों में लगे हुए हैं। निर्माण कार्यों, मछली पकड़ने, यातायात तथा सेवा कार्यों में लगी हुई जनसंख्या का प्रतिशत बहुत कम है। इन द्वीपों की जलवायु एवं मिट्टी नारियल उत्पादन के लिए बहुत अनुकूल है। नारियल यहाँ की खेती का प्रमुख उत्पादन तथा धन-सम्पत्ति है। लगभग सभी जगहों पर इसके घने वृक्षों की कतारें देखने को मिलती हैं। द्वीपों की अन्य स्थायी फसलों में मोटे अनाज, दालें, साग-सब्जियाँ हैं। बिखरे हुए टुकड़ों में पायी जाने वाली कृषि योग्य भूमि को इन द्वीपों की स्थानीय भाषा में टोटम (Tottam) अथवा बाग कहते हैं। चावल की आवश्यकता-पूर्ति

आयात के द्वारा की जाती है। कृषि विकास कार्यों को सफल बनाने की दृष्टि से तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में कृषि-विभाग ने रासायनिक उर्वरकों, सब्जी बीजों, कृषि यंत्रों, कीड़े मारने की दवाइयों आदि की व्यवस्था आंशिक भुगतान पर अथवा मुफ्त की थी। परीक्षण के तौर पर चावल का उत्पादन किया जा रहा है। बड़े पैमाने पर किये जाने वाले उद्योग-धंधों की बड़ी कमी है। परन्तु इनकी पूर्ति घरेलू एवं कुटीर उद्योगों से की जाती है। मछलियों को पकड़ने तथा इनकी प्रोसेसिंग आदि की क्रियाएँ यहाँ की जाती हैं। हैंडलूम वस्त्र निर्माण, मुर्गीपालन, नारियल जटा उद्योगों के केन्द्र एवं कोआपरेटिव सोसाइटियाँ स्थापित की जा रही हैं।

यातायात एवं परिवहन – दोनों ही द्वीप समूह बहुत सदियों से भारत के मुख्य स्थल खण्ड से अलग-थलग रहे हैं। मानसून महीनों के पश्चात् देशी नावों से थोड़ा बहुत संबंध स्थापित हो पाता था। नावें परिवहन की प्रमुख एवं परम्परागत माध्यम हैं। अब इन द्वीपों के बीच मोटरचालित नावें चलती हैं। चूंकि इनका औसत क्षेत्रफल २ वर्ग कि. मी. से अधिक नहीं है इसलिए आंतरिक परिवहन संसाधनों का विकास नहीं हो पाया है। कुछ द्वीपों में छोटे-छोटे ट्रैक्टर तथा मानवचालित ट्रालियाँ एक से दूसरे स्थान को सामान लेकर जाती हुई दिखाई पड़ती हैं।

बंगाल की खाड़ी के द्वीप

बंगाल की खाड़ी स्थित द्वीपों को दो—अण्डमान तथा निकोबार समूहों में रखा जाता है परन्तु पोर्ट ब्लेयर दोनों का प्रशासनिक केन्द्र है।

अण्डमान द्वीप समूह

इस समूह में २०४ द्वीप सम्मिलित हैं। बहुत सकरी क्रीक्स (Creaks) के द्वारा प्रधान अण्डमान तीन—उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी भागों में विभक्त है। सभी द्वीपों का सम्मिलित क्षेत्रफल लगभग ६६८२.२ वर्ग कि. मी. है। इनका विस्तार उत्तर-दक्षिण है। सैडिलचोटी (७५० मी०) सबसे ऊँची है। वर्ष भर प्रवाहित होने वाली नदियों की भारी कमी होने के कारण जलपूर्ति की स्थायी समस्या है। यहाँ की चट्टानें मेसोज़ोइक, टर्सियरी तथा क्वाटर्नरी युगों में निर्मित हुई थी। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर नवीनतम जमाव भी पाये जाते हैं। कुल मिलाकर इन द्वीपों का निर्माण नवीन मोड़दार पर्वतों से हुआ है जो अर्कानयोमा का बढ़ा हुआ भाग है।

जलवायु, वनस्पति एवं मिट्टी—सम्पूर्ण द्वीप समूह कर्क रेखा के दक्षिण में स्थित है। गर्म सागरों से घिरा होने के कारण यहाँ की जलवायु गर्म तथा आर्द्र है। फरवरी, मार्च, अप्रैल को छोड़कर लगभग पूरे वर्ष वर्षा होती है। वर्षा की औसत मात्रा २०० से. मी. है। पोर्ट ब्लेयर का औसत अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमशः २९.७° से. ग्रे. तथा २३.७° से. ग्रे. है। इन द्वीपों में सम्पूर्ण क्षेत्रफल के ७८% भाग पर सदाबहार किस्म के वन पाये जाते हैं। इन द्वीपों के अधिकतर (८६ प्रतिशत) वन सुरक्षित किस्म के तथा चार क्षेत्रीय वर्गों में विभाजित हैं। वनों में पाई जाने वाली लकड़ियों में दियासलाई की लकड़ी, प्लाई

एवं कड़ी लकड़ियाँ तथा बेंत आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन द्वीपों की अधिकांश मिट्टियाँ या तो अपने स्थान पर विकसित हुई हैं अथवा घाटियों और समुद्र तटों के सहारे जमा होकर बनी हैं। समुद्र के किनारे की मिट्टी बलुई एवं प्राचीन मृगों से परिपूर्ण है। घाटियों एवं निचले ढालों पर पाई जाने वाली मिट्टी चिकनी दुमट है। सभी मिट्टियाँ पूरे वर्ष नम रहती हैं।

जनसंख्या एवं अधिवास—सन् १८८१ में इन द्वीपों की सम्पूर्ण जनसंख्या लगभग १४६२८ थी जो बढ़कर सन् १९७१ में ११५१३३ हो गई है। इन द्वीपों में जनसंख्या का वितरण बड़ा ही असमान है। अधिकतर पत्तनों तथा स्थायी नदियों के कारण सबसे घनी जनसंख्या समुद्रों के तटवर्ती क्षेत्रों में पाई जाती है। यहाँ का मुख्य धन्धा खेती है। दक्षिण में अधिक शहरीकरण होने के कारण कृषि में लगे हुए लोगों का प्रतिशत कम है। इन द्वीपों की लगभग आधी जनसंख्या क्रियाशील है। सागरीय एवं खण्डीय द्वीपों की जनसंख्या के कार्यशीलता प्रतिशत को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

सागरीय एवं खाड़ीय द्वीपों में कार्यशीलता की तुलना

	तालिका	प्रतिशत
	अरब सागर	बंगाल की खाड़ी
कृषि	१.१	३१.८
खनन एवं बागान	४.७	२३.४
कुटीर उद्योग	८२.८	१४.६
निर्माण	३.०	१७.५
सेवाएँ	४.४	१३.८
मछली पकड़ना आदि	४.६	८.६
	१००.०	१००.०

पोर्ट ब्लेयर इन द्वीप समूहों में सबसे बड़ा शहर है जिसकी जनसंख्या सन् १९७१ में २६२१८ थी। अण्डमान द्वीपों में कुल मिलाकर सड़कों की लम्बाई केवल ५४३ कि. मी. है। अधिकांश सड़कें दक्षिणी अण्डमान में हैं। १३ बन्दरगाह हैं जिनमें पोर्टब्लेयर को छोड़कर सभी की सेवाएँ स्थानीय हैं।

निकोबार द्वीप समूह

अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूहों के बीच १२५ कि. मी. चौड़ा सागर स्थित है। इससे दो भौमिकी घटनाओं का आभास होता है। इस समूह के १८ द्वीपों में से कुछ निश्चित रूप से कोरल निर्मित और अनेक पहाड़ी निर्मित हैं। ११ द्वीपों में बस्तियाँ पाई जाती हैं। बालू की चट्टानें तथा शेल पोर्टब्लेयर सीरीज से मिलती-जुलती है। यहाँ की जलवायु गर्मार्द्र तथा मानसून से प्रभावित है। अण्डमान की ही भाँति यहाँ भी फरवरी से

अप्रैल तक के तीन शुष्क महीनों को छोड़कर पूरे वर्ष वर्षा होती है। इन द्वीपों में स्थित वनों की लकड़ियों मे मुलायम टिम्बर, दियासलाई की लकड़ी तथा नारियल विशेष उल्लेखनीय हैं। कार निकोबार तथा नानकोरी द्वीपों की सम्मिलित जनसंख्या १९७१ में लगभग २१,६९५ थी। नारियल तथा खजूर उगाना यहाँ का मुख्य धंधा है। यह न केवल खाद्य एवं पेय वस्तु उपलब्ध है बल्कि बड़े पैमाने पर इसका व्यापार भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त पानसुपारी, केले, पपीते तथा अनेकानेक साग सब्जियाँ भी पैदा किए जाते हैं। इन द्वीपों के अधिकांश ग्राम समुद्रों के समीप स्थित हैं। प्रत्येक गाँव में अपने औद्योगिक समुदाय हैं। सुअर पालने तथा मछली पकड़ने के अन्य प्रमुख उद्योग हैं। चटाइयाँ, सूखे नारियल तथा खिलौने आदि भी बनाये जाते हैं।

□□□

FURTHER READING

1. Ahmad, N. — An Economic Geography of E. Pakistan.
2. Alexanderson — Geography of Manufacturing.
3. Ali, S. M. — Geography of Puranas.
4. Anstay, V. — Economic Development of India, 1957.
5. Baker & Others — Agriculture in Modern Life.
6. Bhardwaj, O. P. — Climate of Bist—Jullundur Doab, 1960.
7. Calvert, H. — The Wealth and Welfare of the Punjab, 1936.
8. Census of India — 1971.
9. Chatterji, S. B. — Climatology of India.
10. Chatterjee, S. P. — Indian and World Food Supply, 1952.
11. Chatterjee, S. P. — *Land Utilization in District of 24 Pargana.*
12. Chibber, H. L. — Physical Basis of Geography of India, 1945.
13. Choudhary, S. P. Roy — Land and Soil.
14. Crassey, G. B. — *Asia's Land and People, 1948.*
15. Dass — (ऋग्वैदिक भारत) Rigvedic India.
16. Dutta, K. L. — *Morphology of Indian Cities.*
17. Fox, C. S. — Physical Geography for Indian Students.
18. Ganguli, B. — Trends of Agriculture and Population in Ganga Valley, 1938.
19. Gensser — *Geology of the Himalayas.*
20. Gupta, P. Sen — The Ganga, 1954.
21. Gupta, P. Sen — Jute belt of India.
22. Howard, H. — *Postwar Forest Policy in India, 1944.*
23. Kaji, H. L. — Principles of General Geography.
24. Koloman Ivanicka — *Functions and Forming of Regions.*
25. Krishnan, M. S. — Geology of India and Burma
26. Kumar, L. S. S. — Agriculture in India.
27. Kuriyan, G. — *Agriculture in India, 1956.*
28. Kuriyan, G. — India—A General Survey, 1969
29. Law, B. C. — Mountains and Rivers of India.
30. Majumdar, R. C. — *The Vedic Age, 1954.*
31. Masumdar, D. N. — Races and Culture of India.
32. Mighell, R. L. — International Competition in Agriculture.

33. Mishra, V. C. — Geography of Rajasthan.
34. Morrison, C. — New Geography of the Indian Empire & Ceylon.
35. Morris, J. Soloman — Better Plant Utilization in India.
36. Mrs. Mihirwadia — Minerals of India.
37. NCAER — Dry Farming in Mysore State.
38. NCAER — Techno—Economic Survey of States.
39. Parthasarthy, K. — Mansoons of the world, 1958.
40. Prasad, B. — Indian Railways.
41. Puri, G. S. — India Forests.
42. Ramamurti, V. — India Agriculture, 1957.
43. Randhowa, M. S. — Agriculture and Animal Husbandry in India.
44. Records of the Geological Survey of India.
45. Richamothu, C. S. — Physical Geography of India, 1967.
46. Riley, R. C. — Industrial Geography.
47. Robert, E. L. — Cities and Geology.
48. Sharma, T. R. — Location of Industries in India.
49. Singh, J. — Agricultural Atlas of India.
50. Singh, J. — Green Revolution (Suppliment).
51. Singh, R. L. — Banglore : An urban Survey.
52. Singh, R. L. — Banaras : A Study in urban Geography, 1955.
53 Singh, R. L. — Rural Settlements in Monsoon Asia.
54. Singh, R. L. — India—A Regional Study.
55. Spate, O H. K. — Geography of India and Pakistan.
56. Stamp, L. D — Land of Britain : Its use and Misuse, 1948.
57. The Imperial — Gazetteer of India, 1908.
58 Thoman — Geography of International Trade.
59. Thornwate, C. W. — Journal of Marine Research, 1955.
60. Wadia, D. N. — Geology of India.
61. Weber — The Theory of Industrial Location.
62. Zimmerman, E W — World Resources and Industries.

■■■

शुद्धि-पत्र

पृ० सं०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	१६	३४%	४२%
१०६	३	goods	good
१६१	नीचे से २	३२	३३
१६२	नीचे से ११	तालिका ३२	तालिका ३३
१७०	तालिका ४०	नमक का राष्ट्रीय उत्पादन तथा निर्यात	नमक का राष्ट्रीय उत्पादन तथा निर्यात १९६९ (२.१०), १९७१ (२.२२), १९७२ (२.३४)
१९०	२	१७७३	१९७३
२४४	तालिका ७३	—	क्षेत्रफल का कॉलम न पढ़ें।
२४४	तालिका ७३	—	१९७३–७४ न पढ़ें।
२६२	१	१८३६	१९३६
२७५	तालिका ८० तथा ८१	—	शेष आँकड़े अनुपलब्ध
२८०	नीचे से १६	चित्र ४६	चित्र ४५
२८४	तालिका ८४		१९७१–७२ का आँकड़ा अनुपलब्ध
२८६	१०	तालिका	तालिका ८७ क
२९१	१३	चित्र ४६	चित्र ४५
३०२	नीचे से ४	चित्र ४४	चित्र ४६
३१२	८	चित्र ४५	चित्र ४६
३२२	१३	चित्र ४५	चित्र ४८
३३०	नीचे से १०	चित्र ४६	चित्र ४७
३३१	३	तालिका १२४	तालिका ११४
३३३	नीचे से १२	तालिका नं० १२६	तालिका ११६
३३३	अंतिम	१२७	११७
३३८	नीचे से २	चित्र ४८	चित्र ४६
४०८	नीचे से १२	तालिका १४६	तालिका १४७
४१९	४	तालिका १४६	तालिका १५१
४२०-२१	जनसंख्या	आँकड़े प्राविज़नल तथा मिज़ोराम (२१०८७)	
४२२	३	तालिका १५१	तालिका १५०
४२२	८	तालिका १५१	तालिका १५०
४२८		रिक्त तालिका १९७१	हिन्दू ८२.७२ प्रतिशत मुसलमान ११.२१ „ सिक्ख १.८९ „ ईसाई २.६० „